CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया का इतिहास एवं संस्कृति

HISTORY & CULTURE OF SOUTH & SOUTH-EAST ASIA

6717

लखनऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

367

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

State Museum Library Lucknow
6717

राज्य संग्रहालय
प्रो॰ बी एन॰ पुरी
संग्रह
लखनऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया का इतिहास एवं संस्कृति

(HISTORY AND CULTURE OF SOUTH AND SOUTH-EAST ASIA)

लेखक

विनोद चन्द्र पांडे

एवं

के० सिंह

मूल्य : आठ रुपये पचास पैसे (रु० 8·50) मात्र

प्रकाशन केन्द्र, न्यू बिल्डिंग्स, अमीनाबाद, लखनऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतिहास की कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. उत्तरी भारत का राजनीतिक इतिहास (पाठ्य पुस्तक) : लक्ष्मीकान्त मालवीय
   (500 ई०-1200 ई०) एवं प्रधो मालवीय
2. परमार राजवंश का इतिहास (पाठ्य पुस्तक) : डॉ० डी० सी० गांगुली
   (800 ई० से 1300 ई० तक) एम० ए०, पी० एच-डी० (लन्दन)
3. प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास : प्रो विनोद चन्द्र पांडे
   (पूर्व ऐतिहासिक काल से 606 ई० तक) एवं के० सिंह
4. प्राचीन भारत का इतिहास : प्रो० विनोद चन्द्र पांडे
   (320 ई०-1200 ई०) एवं के० सिंह
5. प्राचीन भारत का इतिहास : प्रो० विनोद चन्द्र पांडे
   (पूर्व ऐतिहासिक काल से 320 ई० तक) एवं के० सिंह
6. गुप्त साम्राज्य का इतिहास : प्रो० विनोद चन्द्र पांडे एवं के० सिंह
7. मध्यकालीन भारत (सम्पूर्ण) : आनन्द बिहारी लाल श्रीवास्तव
   (700 ई० से 1803 तक)
8. मुगलकालीन भारत (1526 से 1803 तक : आनन्द बिहारी लाल श्रीवास्तव
9. सुल्तान कालीन भारत (711 से 1526 तक) : आनन्द बिहारी लाल श्रीवास्तव
10. इंग्लैण्ड का इतिहास (सम्पूर्ण) : वी० सी० पांडे एवं के० सिंह
11. इंग्लैण्ड का इतिहास : सुरेश चन्द्र पन्त
12. यूरोप का इतिहास : विनोद चन्द पांडे एवं के सिंह
13. प्राचीन भारत का इतिहास (320 ई० 1200): विनोद चन्द्र पांडे एवं के० सिंह
14. इंग्लैण्ड का संवैधानिक इतिहास : सुरेश चन्द्र पन्त
15. अरब की सभ्यता और संस्कृति का विकास : राजेन्द्र प्रसाद तिवारी
16. प्राचीन प्राच्य की सभ्यता एवं संस्कृति : पांडे एवं के सिंह
17. विश्व की सभ्यतायें : पांडे एवं के० सिंह
18. अरब की सभ्यता : सईद
19. आधुनिक भारत का इतिहास : एन० आर० सेठी
20. भारतीय संस्कृति का विकास : पांडे एवं के० सिंह

---

* प्रकाशक : प्रकाशन केन्द्र, न्यू बिल्डिंग्स, अमीनाबाद, लखनऊ
* अधिकार : प्रकाशक
* मूल्य : आठ रुपये पचास पैसे (रु० 8·50) मात्र
* संस्करण : 1972

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दो शब्द

दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया का प्राचीन इतिहास जितना अधिक गौरवशाली है, उतना ही अधिक अन्धकारमय। अनेक विद्वानों ने निरन्तर परिश्रम करके इस अन्धकार को दूर करने और वास्तविक इतिहास को लेखबद्ध करने का प्रयास किया है। इन विद्वान लेखकों ने प्राचीन दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया की समुचित झांकी प्रस्तुत की है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने इन्हीं विद्वानों के ग्रन्थों का आश्रय लेकर शुद्ध रूप से परीक्षोपयोगी सामग्री प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

पुस्तक शुद्ध रूप में भारतीय विश्वविद्यालयों की विभिन्न स्नातकोत्तर कक्षाओं के विद्यार्थियों और लोक-सेवा आयोग की परीक्षाओं में सम्मिलित होने वाले परीक्षार्थियों के लिए लिखी गई है। विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ही सामग्री का चयन किया गया है। विषय को सरल, सुबोध और प्रवाहमयी भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। विषय को रोचक बनाने और परीक्षा के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए यथास्थान विभिन्न भाषाओं के मौलिक ग्रन्थों के उद्धरण भी दिए गए हैं। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए ही विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे गए प्रश्नों का समावेश भी पुस्तक में किया गया है। पुस्तक के सृजन में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि समस्त प्रश्नों के उत्तर तो भली भांति दिए ही जायँ साथ ही किसी भी विषय को छोड़ा न जाय, जिससे पुस्तक की उपादेयता में किसी प्रकार की कमी न आने पाये।

पुस्तक की रचना में अनेक विद्वानों के प्रामाणिक ग्रन्थों को सहायता ली गई है। लेखक उन सबका आभारी है। पुस्तक के विषय में दिए गए सुझावों का स्वागत होगा। विश्वास है, विद्यार्थी और अध्यापक वर्ग इस पुस्तक को अपनायेगा।

प्रकाशन केन्द्र
न्यू बिल्डिंग्स, अमीनाबाद
लखनऊ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय सूची

पृष्ठ—

अध्याय 1

दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के इतिहास एवं संस्कृति की जानकारी के साधन

(SOURCES OF THE HISTORY AND CULTURE OF SOUTH AND SOUTH-EAST ASIA)

साहित्यिक साक्ष्य, पुरातात्विक साक्ष्य, 1—9

अध्याय 2

भारत में जैन और बौद्ध धर्म का उत्थान और पतन

(RISE AND FALL OF JAINISM AND BUDDHISM IN INDIA)

महावीर का जीवनवृत्त, जैन-धर्म के सिद्धान्त, जैन धर्म का सीमित प्रसार, जैन धर्म की देन, महात्मा बुद्ध का जीवन-वृत्त, महात्मा बुद्ध की शिक्षाएँ तथा सिद्धान्त, बौद्ध धर्म की उन्नति के कारण, बौद्ध धर्म के पतन के कारण, समानताएँ, असमानताएँ बौद्ध धर्म की देन, 10—34

अध्याय 3

मौर्य-शासन की सामाजिक पृष्ठभूमि और मौर्य संस्कृति

(THE SOCIAL BACKGROUNDS OF MAURIA RULE AND THE MAURIAN CULTURE)

मौर्य शासन-व्यवस्था, क्या अशोक बौद्ध नहीं था ?, अशोक के धर्म का स्वरूप और उसकी विशेषता बौद्ध धर्म के प्रसार के साधन, शिक्षा और साहित्य, 35—58

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

अध्याय 4

महान गुप्त सम्राटों के काल का वैभव

(GLORIES OF THE AGE OF THE INPERIAL GUPTAS)

(1) केन्द्रीय शासन, प्रान्तीय शासन, विषय का शासन, नगर शासन, ग्राम शासन, न्याय व्यवस्था, सैन्य संगठन, आय के साधन, आन्तरिक सुरक्षा, सार्वजनिक हित, शासन-प्रबन्ध का मूल्यांकन, सामाजिक दशा, आर्थिक स्थिति, धार्मिक दशा, फाह्यान का भारतीय विवरण, शिक्षा, साहित्य 59—104

अध्याय 5

हर्ष काल में भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक दशा

(THE SOCIAL AND CULTURAL CONDITIONS OF INDIA IN THE DAYS OF HARSHA)

हर्ष युगीन समाज, सांस्कृतिक उन्नति, ह्वेनसांग का वर्णन 105 —117

अध्याय 6

भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव

(THE IMPACT OF ISLAM ON INDIAN CULTURE)

भारतीय समाज पर इस्लाम का प्रभाव, भारतीय धार्मिक जीवन पर इस्लाम का प्रभाव, भारतीय शिक्षा एवं साहित्य पर इस्लाम का प्रभाव, वैज्ञानिक प्रभाव, कला पर प्रभाव, 118—125

अध्याय 7

मध्यकालीन भारत में धार्मिक आन्दोलन

(RELIGIOUS MOVEMENTS IN MEDIEVAL INDIA)

भक्ति-आन्दोलन का प्रादुर्भाव, भक्तों के सामान्य सिद्धान्त, प्रमुख भक्त या संत, भक्ति, आंदोलन का प्रभाव 126—133

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

अध्याय 8

मुगलों की सांस्कृतिक देन

(CULTURAL LEGACY OF THE MOGULS)

शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति, साहित्य, स्थापत्य कला, चित्र-कला, संगीत-कला, सुलेख 134—151

अध्याय 9

1206 से 1707 तक का भारतीय जन जीवन

(THE LIFE AND THE CONDITION OF PEOPLE IN INDIA FROM 1206 A. D. TO1707 A. D.)

सामाजिक जीवन, आर्थिक दशा, धार्मिक जीवन, (4) भक्ति आन्दोलन, साहित्यिक एवं कलात्मक उन्नति, सामाजिक जीवन, आर्थिक जीवन, धार्मिक जीवन, 152—171

अध्याय 10

भारत में ब्रिटिश आधिपत्य का विस्तार और आधुनिक भारत का निर्माण

(THE EXPANSION OF BRITISH DOMINATION IN INDIA AND THE MAKING OF MODERN INDIA)

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना और उसका विस्तार, भारतीय इतिहास का आधुनिक युग, 172—179

अध्याय 11

भारत का स्वतन्त्रता संग्राम

(INDIA'S FREEDOM STRUGGLE)

क्रान्ति के प्रमुख कारण, क्रान्ति का प्रारम्भ एवं विस्तार, क्रान्ति की असफलता के कारण, राजनीतिक जागृति के कारण,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, (1) प्रारम्भिक काल (सन् 1857 से सन् 1885 तक), कांग्रेस का प्रथम विकास काल (सन् 1885 से सन् 1905 तक), (3) कांग्रेस का द्वितीय विकास काल (सन् 1906 से सन् 1915 तक), (4) कांग्रेस का तृतीय विकास काल (1916 से 1928 तक), (4) कांग्रेस का चतुर्थ विकास काल (1929 से 1938 तक), (5) कांग्रेस का पंचम विकास काल, स्वाधीन भारत (1947 से अब तक), असहयोग आन्दोलन का कार्यक्रम 180—217

अध्याय 12

भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य प्रभाव

(THE IMPACT OF WEST ON INDIAN CULTURE)

भारत के आर्थिक जीवन पर प्रभाव, (अ) भारतीय धर्म पर प्रभाव, भारतीय शिक्षा पर प्रभाव, भारतीय साहित्य पर प्रभाव, विज्ञान पर प्रभाव, ललित कलाओं पर प्रभाव 218—227

अध्याय 13

आधुनिक भारत में पुनर्जागरण

(THE RENAISSANCE IN THE MODERN INDIA)

आन्दोलन के कारण, हिन्दुओं के धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन, ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, राधास्वामी मत, वेदान्त समाज या रामकृष्ण मिशन, मुसलमानों के धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलन, धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनों का भारतीय समाज पर प्रभाव, गांधी का योगदान, कला का विकासात्मक विवेचन 228—269

अध्याय 14

दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देशों पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

(IMPACT OF INDIAN CULTURE ON SOUTH AND SOUTH-EAST ASIAN COUNTRIES)

270—277

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

अध्याय 15

चम्पा की भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति
(INDIAN CIVILIZATION AND CULTURE OF CHAMPA)

आर्थिक जीवन, हिन्दू-धर्म, बौद्ध-धर्म, धार्मिक सहिष्णुता, शिक्षा और साहित्य, कला 278—294

अध्याय 16

कम्बुज की भारतीय सभ्यता और संस्कृति
(INDIAN CULTURE AND CIVILIZATION OF CAMBUJ)

सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था, ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म, शिक्षा, साहित्य एवं लेखन-कला, कला 295—319

अध्याय 17

सीलोन में भारतीय संस्कृति
(INDIAN CULTURE IN CEYLON)

सीलोन के इतिहास का प्राचीन युग, शासन-व्यवस्था, प्राचीन युग में धर्म, साहित्य एवं कला, धर्म, साहित्य, कला, सीलोन के इतिहास का पूर्व-मध्य कालीन युग, शासन व्यवस्था, पूर्व मध्य युग में धर्म साहित्य और कला, धर्म, साहित्य, कला, शासन-व्यवस्था, धर्म, साहित्य, कला 320—336

अध्याय 18

दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया में यूरोपीय शक्तियाँ और उनकी औपनिवेशिक नीति
(EUROPEAN PIONEERS IN SOUTH AND SOUTH EAST ASIA AND THEIR COLONIAL POLICY)

फिलिप्पाइन द्वीप समूह, इण्डोनेशिया एवं बोर्नियो,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पृष्ठ

इण्डोचायना, स्याम या थाईलैण्ड, मलाया, ब्रह्मा या बर्मा, पाश्चात्य देशों की औपनिवेशिक नीति 337—349

अध्याय 19

दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया में स्वतन्त्रता आन्दोलन
(FREEDOM MOVEMENT IN SOUTH AND SOUTH-EAST ASIA)

इण्डोचायना या हिन्द-चीन, थाईलैंड, मलाया, बर्मा, इण्डोनेशिया, फिलिप्पाइन द्वीप समूह 350—367

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | 1

दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के इतिहास एवं संस्कृति की जानकारी के साधन
(SOURCES OF THE HISTORY AND CULTURE OF SOUTH AND SOUTH-EAST ASIA)

दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया का इतिहास अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं मनोरंजक है। इस क्षेत्र में भारत, बर्मा, थाईलैण्ड, हिन्दचीन, मलाया, जावा, सुमात्रा बोर्नियो, बालि, सेल्बीज और सीलोन आदि के क्षेत्र आते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि इसके अन्तर्गत भारत, बर्मा, हिन्द चीन, कम्बोडिया, मलाया, लंका आदि के इतिहास का अध्ययन किया जाता है।

———

प्रश्न (1)—दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के इतिहास एवं संस्कृति की जानकारी के साधनों का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

दक्षिणी और दक्षिणी पूर्वी एशिया का प्राचीन इतिहास वास्तव में बृहत्तर भारत का इतिहास है। अति-प्राचीन काल में भारतवासियों ने इस क्षेत्र में अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। अतएव इन स्थानों की संस्कृति पर भारतीय संस्कृति का अत्यन्त व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है। दुर्भाग्य यह है कि जैसे भारतीय इतिहास का एक बहुत बड़ा भाग अंधकार से युक्त है वैसे ही इस समस्त क्षेत्र के इतिहास का बहुत बड़ा भाग अंधार से युक्त है। इस क्षेत्र के इतिहास और संस्कृति की जानकारी के बहुत कम प्रमाणित साधन उपलब्ध हुये हैं जो भी साधन उपलब्ध हैं उनका अध्ययन हम दो रूपों में कर सकते हैं—(1) साहित्यिक साक्ष्य और (2) पुरातात्विक साक्ष्य।

साहित्यिक साक्ष्य

(1) भारतीय इतिहास और संस्कृति—भारतीय इतिहास और संस्कृति की अधिकतर जानकारी साहित्य ग्रन्थों से ही होती है। भारतीय इतिहास और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृति की जानकारी कराने वाले साहित्यिक साधनों को तीन कोटियों में बाँटा जा सकता है :—

(अ) धार्मिक साहित्य

(ब) ऐतिहासिक एवं समसामयिक साहित्य

(स) विदेशी लेखकों एवं यात्रियों का विवरण

इनकी चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है :—

(अ) धार्मिक साहित्य—विभिन्न धर्म के साहित्य द्वारा भारत के इतिहास एवं संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। भारतीय संस्कृति की जानकारी के लिये वेद अनुपम धरोहर है। वेदों की संख्या चार है—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। इन वेदों के द्वारा यह ज्ञात होता है कि जिस समय संसार के अन्य देश पूर्णतया असभ्य थे, भारत में एक उच्च कोटि की संस्कृति फलीभूत हो रही थी। वेदों के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों का स्थान आता है। सूत्र साहित्य, वेदांग, महाकाव्य पुराण और स्मृतियाँ आदि भी प्राचीनकाल के इतिहास का दिग्दर्शन कराते हैं।

बौद्ध साहित्य में त्रिपिटक साहित्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त मिलिन्दपन्हों, दीपवंश, महावंश आदि के द्वारा भी प्राचीन काल के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। 'महावस्तु,' 'ललितविस्तार,' 'बुद्ध-चरित्र,' 'सौन्दरानन्द,' 'दिव्यावदान' और 'मंजु श्री मूलकल्प' भी उल्लेखनीय हैं।

जैन साहित्य में 'परिशिष्ट पर्वत,' 'भद्रबाहु चरित्र,' 'कथाकोष,' 'भगवतीसूत्र' 'कालिका पुराण' आदि ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

(ब) ऐतिहासिक एवं समसामयिक साहित्य—इसमें कौटिल्य का अर्थशास्त्र, पाणिनि का व्याकरण, पातंजलि का महाभाष्य, मालविकाग्निमित्रम्, मुद्राराक्षस हर्ष चरित्र, कामन्दकीय नीतिशास्त्र और बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र आदि मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त विक्रमांकदेवचरित, राजतरंगिणी, गौडवहो, नवसाहसांक चरित्र. पृथ्वीराज रासो और पृथ्वीराज विजय आदि उल्लेखनीय हैं।

(स) विदेशी लेखकों तथा यात्रियों के विवरण—विभिन्न विदेशी लेखकों और यात्रियों ने भी भारत के इतिहास पर प्रकाश डाला है। इन लेखकों में यूनानी और चीनी लेखकों का महत्वपूर्ण स्थान है। सिकन्दर के पूर्व के यूनानी लेखकों में स्काईलैक्स, हिकेटिस, हेरोडोटस और केशियम आदि मुख्य हैं। सिकन्दर के साथ आये हुये लेखकों में नियार्कस, एरिस्टो डेमेक्स, स्ट्रैबो, प्लिनी, एरियन, पैट्रोक्लीज और पालीवियस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चीनी लेखकों में सुमासीन, फाह्यान, ह्वेनसांग और इत्सिंग आदि के विवरणों द्वारा पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। तिब्बती लेखक तारानाथ और मुस्लिम लेखक अल्बरूनी, हसन निजामी तथा फरिश्ता आदि के द्वारा भी प्राचीन काल के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है।

(अ) दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के अन्य देशों का इतिहास और संस्कृति—हम पहले ही इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि दक्षिणी पूर्वी और दक्षिणी एशिया का प्राचीन इतिहास बहुत हद तक भारतीय इतिहास से संबधित है। इस इतिहास की जानकारी के लिए जो विभिन्न प्रकार के साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध हैं उनकी चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है—

(अ) भारतीय साक्ष्य—दक्षिणी और दक्षिणी पूर्वी एशिया के इतिहास की जानकारी मुख्यतया भारतीय ग्रन्थों में आये हुये लेखकों के विवरण से ही होती है। प्राचीन भारतीय साहित्य में सुवर्ण भूमि का उल्लेख बराबर मिलता है। पाली साहित्य में इस क्षेत्र का उल्लेख बार-बार हुआ है। सुस्सोन्दी जातक में भी इसका उल्लेख है। महाजनक जातक में भी ऐसा उल्लेख हुआ है। मिलिन्दपन्हो नामक पाली ग्रन्थ से ऐसा विवरण प्राप्त होता है कि भारतीय व्यापारी सुदूर-पूर्व में बहुत दूर दूर तक जाते थे। प्रोफेसर विन्टर नियूज इस ग्रन्थ का समय प्रथम शताब्दी ई० स्वीकार करते हैं। अतएव प्रगट होता है कि पहिली शताब्दी ई० पूर्व में भारत एवं दक्षिणी पूर्वी एशिया के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे। रामायण में यवदीप का उल्लेख है। साथ ही इसमें सुवर्ण का उल्लेख हुआ है। इसके आधार पर प्रो० नीलकंठ शास्त्री यह कहते हैं कि सम्भवतः सुवर्ण दीप सुमात्रा के लिए प्रयोग हुआ है। रामायण का रचनाकाल तीसरी शताब्दी ई० पू० हुआ है जिससे स्पष्ट है कि तीसरी शताब्दी ई० पू० में दक्षिणी-पूर्वी एशिया से भारत का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो चुका था। इस युग का प्रसिद्ध पाली ग्रन्थ निद्देश है जिसमें अनेक नगरों का उल्लेख हुआ है यथा--तक्कोला, सुवर्ण कुण्ड, कालमुख, जावा, तमली, सुप्पारा, आदि। इसमें अनेक मार्गों का भी उल्लेख है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी सुदूरपूर्व के देशों का उल्लेख है। कौटिल्य के वृत्तान्त से यह ज्ञात होता है कि मलाया सुवर्ण दीप आदि निकटवर्ती द्वीपों के साथ भारतीय व्यापार होता था। वृहद कथा पर आधारित "कथा सरित्सागर" और "वृहद कथा मंजरी" आदि की अनेक कथायें विभिन्न द्वीपों से सम्बन्धित हैं। पुराणों में भी सुदूर-पूर्व का उल्लेख हुआ है। वायु पुराण में दक्षिण की ओर स्थित द्वीपों का उल्लेख है। इसमें अन्हद्वीप, अंगद्वीप, भवद्वीप, मलयद्वीप, संखद्वीप, कुशद्वीप आदि उल्लेखनीय हैं। वायुपुराण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अतिरिक्त अन्य पुराणों में भी वृहत्तर भारत के विभिन्न द्वीपों का उल्लेख मिलता है। महाभारत में भी इनका उल्लेख हुआ है। क्षेमेन्द्र की रामायण मंजरी में समुद्र-द्वीप का उल्लेख है। कदाचित यह सुमात्रा था।

दक्षिणी भारत का मलाया एवं सुदूर-पूर्व के द्वीपों पर गहरा प्रभाव पड़ा परन्तु दक्षिण के प्राचीन साहित्य में उनके सम्बन्ध में कोई विशेष विषय सामग्री प्राप्त नहीं होती। पट्टिन प्याले में पुहार या कावेरी पट्टिनम में कालगत्तु आक्कमुम का उल्लेख है जिसकी समानता सिडो ने कडारम से की है। शिप्पदिकारन् में टोएडी निवासियों द्वारा बहुत बड़े-बड़े जहाजों में रेशम, चन्दन, मसाले और कपूर आदि भेजने का उल्लेख हुआ है। इन समस्त पदार्थों की उपज का स्थान पूर्वी देश था। टोएडी कौन सा स्थान था, इस विषय में पर्याप्त मतभेद है। अनेक विद्वान यह मानते हैं कि यह सुदूर-पूर्व में मलाया में कहीं रहा होगा और यहाँ से दक्षिणी भारत में बहुत सा सामान आता रहा होगा।

कालिदास के 'रघुवंश' में इन्दुमती के स्वयंवर के अवसर पर द्वीपान्तर मलाया से आई हुई लौंग के सुगन्धित वृक्ष के पवन का उल्लेख हुआ है और ऐसा प्रतीत होता है कि टोएडी भी मलाया में ही रहा होगा।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारतीय साहित्यिक साक्ष्य दक्षिणी पूर्वी-एशिया का इतिहास जानने के प्रमुख साधन हैं और उन्हीं के द्वारा हमें वहाँ की थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त होती है।

(ब) यूनानी-रोमीय साक्ष्य—यूनानी और रोमीय साहित्य में भी दक्षिणी पूर्वी एशिया और उसके भारत के सम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया है। पामपोनियस मेला जो सम्राट क्लाडियस का समकालीन था और जिसका काल प्रथम शताब्दी ई० माना जाता है, ने अपने ग्रन्थ 'कोरोग्राफिय' में छैरसे (सुवर्णद्वीप) का सबसे पहले उल्लेख किया है। 'पेरीपलस ऑफ दी इरीथ्रूनासी'' जिसमें यूनान और मिश्र के वाणिज्य का उल्लेख है, में भी सुवर्ण दीप पर प्रकाश डाला गया है। हॉल महोदय ने इस ग्रन्थ का रचना काल 70-71 ई० माना है। पहली शताब्दी के बाद भी अनेक यूनानी और रोमीय लेखकों ने दक्षिणी-पूर्वी एशिया के इतिहास एवं संस्कृति पर प्रकाश डाला। डियोनेसस पेरीगेटिस जिसका काल दूसरी शताब्दी ई० है, ने सुवर्णद्वीप का उल्लेख किया है। सालिनस (तृतीय शताब्दी ई०), मार्टिआनस कैपेला (ई० पाँचवीं शताब्दी)। सेविल के इसीडोर (ई० सातवीं शताब्दी), कास्मोग्राफी के लेख (ई० सातवीं शताब्दी) थियोडल्फ (आठवीं शताब्दी) और निसेफोरस (13वीं शताब्दी) एवं अन्य लेखकों के विवरण से भी दक्षिणी पूर्वी-एशिया के विभिन्न देशों के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पर प्रकाश पड़ता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाश्चात्य लेखकों में टॉलमी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसने अपने भूगोल की सातवीं पुस्तक में दक्षिणी-पूर्वी एशिया का अत्यन्त विस्तृत वर्णन किया है। उसने सुवर्ण भूमि को छैरसे-छैरेसेनिसस के नाम से पुकारा है। उसने पञ्च द्वीपसमूह को 'वराओ से' और अन्य तीन को" "सवदायिबे" के नाम से पुकारा है। उसने "इबडियो" या सबडियो' का भी संकेत किया है जिससे उसका तात्पर्य यवद्वीप से है। टालमी के विवरण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें उल्लिखित नामों की स्थिति का निर्धारण अक्षांश एवं देशान्तर के आधार पर किया गया है। हाल महोदय ने इबडियो का समीकरण यवद्वीप और बराओंसे का तादात्म्य सुमात्रा से किया है। मारसियन (ई० पू० पांचवीं शताब्दी) ने भी दक्षिणी-पूर्वी एशिया के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला है।

(स) चीनी साक्ष्य—चीनी साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि चीन का एक राजदूत जिसका नाम कांगतायी था तीसरी शताब्दी में फूनान गया था। उसने कौण्डिन्य के उत्तराधिकारियों का संकेत किया है जिसमें एक ने 90 वर्ष की आयु प्राप्त की थी और जिसके तृतीय उत्तराधिकारी ने 247 ई० में चीन को एक दूत भेजा था। इससे पता चलता है कि कौण्डिन्य का समय प्रथम शताब्दी ई० रहा होगा। इन्डो-चीन में भारतीय राजनीतिक सत्ता की स्थापना की तिथि यही मानी जा सकती है। एक अन्य चीनी वृतांत से यह ज्ञात होता है कि १३२ ई० में यीटियो के नरेश टियोपीन ने चीन को एक दूत भेजा था। पिलियो महोदय टियो का समीकरण यवद्वीप से करते हैं। फेराण्ड महोदय का मत है कि टियोपीन संस्कृत देव वर्मन का चीनी रूप है। इस सामग्री के द्वारा भी सुदूर-पूर्व में भारतीय उपनिवेशों की स्थापना का समय प्रथम या द्वितीय शताब्दी प्रतीत होता है। चीन के लियंग वंश के इतिहास में लगयासू नामक देश का उल्लेख हुआ है जो मलय प्राय-द्वीप में स्थित था (यांग वंश का समय 600 ई० है और ऐसा प्रतीत होता है कि लंग-या-सू में हिन्दू उपनिवेशों की स्थापना द्वितीय शताब्दी में हो चुकी थी। चीनी साक्ष्यों में लिन-यांग नामक राजधानी का संकेत हुआ है। कुछ विद्वान इसे बर्मा में स्थित बतलाते हैं। यहां अनेक बौद्ध भिक्षु रहते थे। जिस ग्रन्थ में इस प्रकार का उल्लेख है उसका समय तृतीय शताब्दी के आसपास हो सकता है। चीनी साक्ष्यों के आधार पर यह मानना चाहिये कि दक्षिणी-पूर्वी एशिया में भारतीय उपनिवेशों की स्थापना पहली और दूसरी शताब्दी के बीच हुई।

इत्सिंग ने किन-यू (सुवर्ण द्वीप) का उल्लेख किया है जिसकी समानता उसने चे-ली-फो-चे अथवा श्री विजय से की है। चीनी लेखकों ने नारिकेल द्वीप का उल्लेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी किया है जहां के निवासी केवल नारियल पर आश्रित थे। इस द्वीप की समानता निकोबार से की जाती है।

(र) अन्य साक्ष्य—उपर्युक्त देशों के अतिरिक्त अन्य देशों के साहित्य से भी दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के इतिहास के विषय में जानकारी प्राप्त होती है सीलोन के प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थों में 'महावंश' और 'दीपवंश' इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। इन ग्रन्थों में सुवर्ण भूमि में बौद्ध धर्म के विस्तार का विस्तृत विवरण दिया गया है। अरबी लेखकों में अलबरूनी ने सुवर्ण दीप और सुवर्ण भूमि का काफी उल्लेख किया है। उसका कहना है कि हिन्दुओं के मतानुसार जावाज का द्वीप सुवर्ण द्वीप कहलाता था। कुछ अन्य अरबी लेखकों ने भी दक्षिणी-पूर्वी एशिया की संस्कृति आदि पर प्रकाश डाला है। इनमें हरकी, या कूट शिराजी और बुजुर्ग बिनशहरियार आदि के नाम उल्लेखनीय है। अरबी लेखकों ने भी नारिकेल द्वीप का उल्लेख किया है। इब्न-सैद ने इसका उल्लेख करते हुए इसे लंका के अधीन लिखा है। इस द्वीप की समानता निकोबार से की जाती है।

पुरातात्विक साक्ष्य

भारतीय इतिहास और संस्कृति—भारतीय इतिहास और संस्कृति की जानकारी के लिए अनेक पुरातात्विक साक्ष्य भी उपलब्ध हैं। इनमें अभिलेख, मुद्रायें और स्मारक उल्लेखनीय हैं।

(अ) अभिलेख—अभिलेख 8 रूपों में प्राप्त होते हैं जो भारतीय और विदेशी दोनों ही हैं। भारतीय लेखों को, अशोक के समय के लेख और अशोक के बाद के लेख, दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। अशोक ने अनेक शिलाओं और स्तम्भों पर लेख लिखवाये थे। इसके बाद के लेख सरकारी व गैर-सरकारी दोनों प्रकार के हैं। इन लेखों में अशोक के स्तम्भ पर लिखी गई समुद्रगुप्त की प्रशस्ति, विशेष महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त सेनवंशीय राजा विजय सिंह की देवपुर प्रशस्ति, चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय की ऐहोल प्रशस्ति और प्रतिहार राजा भोज की ग्वालियर प्रशस्ति महत्वपूर्ण है। गैर सरकारी लेख भी अनेक स्थानों पर प्राप्त हुए हैं: विदेशी लेखों में एशिया माइनर में बोगजकोई स्थान पर वैदिक देवता का वर्णन, मिश्र में एल-अमर्ना नामक स्थान पर प्राप्त मोहर और ईरान में परसीपोलिस तथा नक्शे-रुस्तम के लेख उल्लेखनीय हैं।

(ब) मुद्रायें—भारतीय और विदेशी मुद्राओं द्वारा भी प्राचीन भारत के इतिहास का ज्ञान प्राप्त होता है। गुप्त-कालीन शासकों की मुद्रायें उस युग के वैभव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की परिचायक हैं। कनिष्क और सातवाहन राजा शातर्कणि की मुद्रा से भी तत्कालीन इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है। मौर्य साम्राज्य के पतनोपरान्त भारत में प्रविष्ट होने वाले यूनानियों, शकों, पार्थियनों के इतिहास का ज्ञान हमें उनकी मुद्राओं से ही प्राप्त होता है।

(स) स्मारक—प्राचीन स्मारकों के द्वारा भी पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। भारत के अनेक मन्दिर और स्तूप इतिहास की जानकारी में बहुत अधिक सहायक सिद्ध हुये हैं। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से अनेक चीजें प्राप्त हुई हैं। पाटलिपुत्र की खुदाई में राजप्रासादों के ध्वंसावशेष मिले हैं। नालन्दा की बुद्ध मूर्ति, कानपुर जिले में भीतर गाँव में ईंटों का मन्दिर और झांसी जिले में देवगढ़ का पाषाण मन्दिर अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। विदेशी स्मारकों में डींडा पठार के शिव मन्दिर, बोरोबुदुर तथा प्रम्बनम के देवालय और अंगकोखात और अंगोकोरथोम के प्राचीन स्मारक भारतीय संस्कृति की उत्कृष्टता के परिचायक हैं। मलाया में एक मन्दिर और कुछ मूर्तियाँ मिली हैं। बारी नामक द्वीप और बोर्नियों में भी कुछ सामग्रा प्राप्त हुई है।

दक्षिणी और दक्षिणी पूर्वी एशिया के अन्य देशों का इतिहास और संस्कृति—दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के इतिहास के विषय में जो जानकारी प्राप्त होती है उसमें पुरातात्विक साक्ष्यों का विशेष महत्व है। यह पुरातात्विक सामग्री पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हुई है और यहाँ सब का उल्लेख सम्भव नहीं है। आज भी सम्पूर्ण दक्षिणी-पूर्वी एशिया में भारतीय आस्थाओं और प्रणालियों के आधार पर निर्मित स्मारक पाये जाते हैं जिससे पता चलता है कि इस क्षेत्र में भारतीय संस्कृति का बहुत अधिक प्रसार हुआ था। बर्मा में एक पाषाण खण्ड पर ब्राह्मी अक्षरों की प्राप्ति हुई है और जिसके आधार पर डा० मजूमदार ने यह मत व्यक्त किया है कि प्रथम और द्वितीय शताब्दी में भारत और बर्मा का सम्बन्ध था। वा-चा ग्राम के निकट प्राप्त एक अभिलेख जो दक्षिणी अनाम के स्वान्ह-हो नामक प्रान्त में स्थित है, संस्कृत भाषा में लिखा है। उसमें श्रीमार शासक के किसी वंशज के दान का उल्लेख है। डा० मजूमदार इसका काल द्वितीय तथा तृतीय शताब्दी निर्धारित करते हैं और श्रीमार को चम्पा का पहला ऐतिहासिक नरेश स्वीकार करते हैं। जावा में "डींडा पठार", के शिव मन्दिर, बोरोबुदुर तथा प्रम्बनाम के देवालय, अंगकोखात और अंगकोरथोम के प्राचीन स्मारक इस बात के साक्षी हैं कि वहाँ भारतीयों ने उपनिवेशों की स्थापना की। जावा, सुमात्रा और कम्बोज आदि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थानों पर भारतीय कला का विकास हुआ था। मलाया में एक मन्दिर तथा कुछ पत्थर की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जिनके विषय में ईवन महोदय ने लिखा है, "यह अवशेष स्पष्ट रूप से इस बात को प्रदर्शित करते हैं कि वहाँ के निवासी हिन्दू थे जो शिव, पार्वती, गणेश, नन्दी आदि की पूजा करते थे।" बारी नामक द्वीप में कुछ ऐसे स्मारक मिले हैं जिनसे पता चलता है कि वहाँ उत्तर काल में भारतीय संस्कृति और धर्म का प्रचार था। बोर्नियो को "कयु-अस" नदी की घाटी में हिन्दू बस्तियों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार सेलीबीज टापू के पश्चिम तट पर पर्वत की एक घाटी में महात्मा बुद्ध की विशाल प्रतिमा उपलब्ध हुई हैं। महात्मा बुद्ध की प्रतिमायें तो बर्मा, थाईलैंड, मलाया, जावा, सेलीबीज आदि स्थानों में काफी मात्रा में प्राप्त हुई हैं। इन्डो-चीन में स्थित वोस-यवी का भी पुरातात्विक साक्ष्यों में विशेष महत्व है। यहाँ पर जितनी भी वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं उनमें अधिकांश बर्तन मिले हैं जिनका सम्बन्ध भारतीय बर्तनों से प्रतीत होता है। अनेक सिक्कों एवं मोहरों पर भारतीय चिह्नों के साथ भी भारतीय वर्णमाला भी प्राप्त हुई है। इन सब की तिथि द्वितीय शताब्दी निर्धारित की जा सकती है। इन्हीं के साथ ही रोम नरेश मार्स ओरोलियस की एक सोने की मुद्रा भी मिली है। यह ऐन्टो-नाईन वंश का प्रतापी सम्राट था। इसके आधार पर डा० मजूमदार ने यहाँ प्राप्त अवशेषों को द्वितीय शताब्दी ई० का स्वीकार किया है और इससे स्पष्ट होता है कि इन्डोचीन में द्वितीय शताब्दी ई० में भारतीय उपनिवेशों की स्थापना हो चुकी थी।

उपसंहार—उपर्युक्त साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से स्पष्ट है कि वास्तव में दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया का प्राचीन इतिहास भारतीय इतिहास से पूर्ण रूप से सम्बन्धित है। भारतीयों ने इन क्षेत्रों में जाकर वहाँ अपने उपनिवेशों की स्थापना की और भारतीय संस्कृति का प्रसार किया। दक्षिणी-पूर्वी एशिया में भारतीय उपनिवेशों के सम्बन्ध में दो मत प्रचलित हैं। एक मत यह है कि भारतीयों ने इन उपनिवेशों की स्थापना बहुत तेजी से की। प्रो० सिडी भी इसी मत के समर्थक हैं। दूसरी ओर फेरान्ड आदि विद्वान यह मत व्यक्त करते हैं कि इन उपनिवेशों के स्थापना की गति बहुत मन्द थी। उनका कथन है कि जावा तक ही उपनिवेशवाद पहुँचने में लगभग 500 वर्ष लगे होंगे। यही कारण है कि यह विद्वान यह कहते हैं कि उपनिवेशों की स्थापना का काल प्रथम शताब्दी पूर्व ही प्रारम्भ हो गया था। दूसरी ओर सिडी महोदय का मत है कि यह काल प्रथम शताब्दी में प्रारम्भ हुआ और द्वितीय एवं तृतीय शताब्दी में अपने पूर्ण विकास को प्राप्त हो गया। इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवादास्पद प्रश्न के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। यहाँ यह अवश्य स्वीकार किया जायेगा कि द्वितीय शताब्दी में दक्षिणी-पूर्वी एशिया में भारतीय उपनिवेशों की स्थापना हुई तभी से उनके क्रमबद्ध इतिहास के विषय में जानकारी के कुछ स्रोत उपलब्ध होते हैं। अन्यथा स्रोतों के अभाव में दक्षिण-पूर्वी एशिया का इतिहास अंधकारमय ही रहा है। यद्यपि आज इन क्षेत्रों में राजनीतिक दृष्टि से भारतीयों का कोई प्रभाव नहीं है। परन्तु इन क्षेत्रों की संस्कृति पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव है, इसमें किंचित-मात्र भी संदेह नहीं है। समस्त दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया भारतीय संस्कृति का ऋणी है।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | 2

भारत में जैन और बौद्ध धर्म का उत्थान और पतन

(RISE AND FALL OF JAINISM AND BUDDHISM IN INDIA)

भूमिका—ब्राह्मण धर्म के अतिरिक्त भारत के जिन धर्मों का उत्थान हुआ उनमें बौद्ध और जैन धर्म अपना विशेष स्थान रखते हैं। जैन धर्म भारत का अति प्राचीन धर्म था परन्तु बौद्ध धर्म का आरम्भ महात्मा बुद्ध के समय से ही हुआ। छठी शताब्दी ई० पू० और उसके काफी समय बाद तक इन दोनों धर्मों ने भारत के सांस्कृतिक जीवन में अपना विशिष्ट प्रभाव रखा। बौद्ध धर्म केवल भारत तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि अन्य देशों में भी उसका तेजी से प्रसार हुआ। आज बौद्ध धर्म यद्यपि भारत से लुप्तप्राय हो गया है परन्तु जापान, सीलोन, चीन आदि देशों में वह अभी भी फल-फूल रहा है। इस अध्याय में हम इन दोनों धर्मों के सिद्धान्तों और उनके उत्थान-पतन एवं उनकी देन पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

———

प्रश्न (1) महावीर स्वामी के जीवन का संक्षिप्त परिचय दीजिए और जैन धर्म के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।

महावीर का जीवनवृत्त

स्वामी महावीर का जन्म 540 ई० पू० के लगभग वैशाली के समीप, कुण्डा ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम सिद्धार्थ और माता का नाम त्रिशला था, जो राजा चेटक की बहन थी। महावीर का नाम वर्द्धमान था। बाल्यावस्था में उनका विवाह राजकुमारी यशोदा से हुआ। उनके अंग्रेजा नामक एक पुत्री भी उत्पन्न हुई। अपने माता-पिता के परलोक सिधारने के पश्चात वर्द्धमान ने अपने अग्रज नंदिवर्द्धन की आज्ञा लेकर तीस वर्ष की आयु में संन्यास ले लिया। संन्यासी हो जाने पर वर्द्धमान ने अत्यन्त कठोर तप द्वारा शरीर को कष्ट दिया। वे नग्न, गृह-विहीन होकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक पर्यटन करते रहे। आचारांग सूत्र नामक धार्मिक काव्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में महावीर की कठिन साधना का वर्णन इस प्रकार किया गया है—"वे नंगे और गृह-विहीन होकर भ्रमण करने लगे। लोग उन्हें मारते और चिढ़ाया करते, पर वे बिना किसी बात की परवाह किये अपनी साधनाओं में रत रहते। लाढ़ में वहाँ के निवासियों ने उन पर कुत्ते छोड़े। उन्हें वे डंडों से पीटते और उन पर लात बरसाते। परन्तु रणभूमि के सेनानायक की भाँति महावीर ने यह सब सहन किया।

बारह वर्ष की घोर तपस्या के पश्चात् तेरहवें वर्ष में उन्हें 'जुम्पिका' ग्राम से बाहर शाल वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ। अब वे 'जिन' (विजयी) नाम से प्रसिद्ध हुए और उनके 'जिन' नाम के कारण उनके अनुयायी जैन कहलाने लगे। जेकोबी के अनुसार महावीर ने अपने धर्म का तीस वर्ष तक उपदेश दिया और 72 वर्ष की आयु में पावा नामक स्थान पर, जो देवरिया जिले में है, 467 या 468 ई० पू० में उनका निधन हो गया। महावीर अपने धर्म का उपदेश देते हुए पैदल पर्यटन करते थे। उन्होंने मगध, कौशल, काशी, अंग आदि जन-पदों में घूम कर ज्ञान और सदाचार का प्रवचन दिया और जैन धर्म का प्रचार किया।

जैन-धर्म के सिद्धान्त

महावीर का जीवन-वृत्त जान लेने के पश्चात् अब हम जैन धर्म के सिद्धान्तों का अध्ययन करेंगे। इस धर्म के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(1) **अनीश्वरवाद**—जैन धर्म ईश्वर को इस सृष्टि का निर्माता और पालनकर्ता नहीं स्वीकार करता। उसके अनुसार '**ईश्वर उन शक्तियों का उच्चतम शालीनतम और पूर्णतम व्यक्तीकरण है जो मनुष्य की आत्मा में निहित रहता है।**' जैन धर्मानुयायी संसार को अनादि और अनंत मानते हैं। उनके अनुसार छः द्रव्य हैं जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश और काल। संसार इन्हीं छः द्रव्यों का योग है। वह ईश्वर की कृति नहीं है। यही कारण है कि जैन, ईश्वर-पूजा में विश्वास नहीं करते और उन तीर्थंकरों की पूजा करते हैं जिनकी आत्मा समस्त बन्धनों से मुक्त हो गई है और जो पूर्ण, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हैं।

(2) **आत्मवाद**—जैन धर्म में आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। हिन्दू धर्म की भाँति ही जैन धर्म भी आत्मा को अमर मानता है। उसके अनुसार आत्मा सर्वद्रष्टा है परन्तु कर्म के बन्धन उसकी शक्तियों को कम कर देते हैं जिस प्रकार जीव भिन्न-भिन्न हैं उसी प्रकार आत्मा भी भिन्न-भिन्न हैं। आत्मा सुख और दुःख का अनुभव करती है। यद्यपि आत्मा धर्म से अलग है और उसकी कोई आकृति नहीं होती परन्तु प्रकाश की भाँति वह अपना अस्तित्व रखती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आत्मा स्वभाव से निर्विकार है परन्तु कर्मों के कारण वह बन्धनों में पड़ जाती है। आत्मा की मुक्ति के लिए उसे कर्म के बन्धन से मुक्त करना आवश्यक है।

(3) कर्म की प्रधानता—जैन धर्म कर्म को अत्यधिक प्रमुखता प्रदान करता है। जैनी इस बात में विश्वास करते हैं कि पूर्व जन्म के कर्म का फल अवश्य मिलता है। अपने कर्मों के अनुसार ही यह निश्चित होता है कि हमारा जन्म कहाँ होगा और हमारा शरीर कैसा होगा ? व्यक्ति के रूप, रंग, आयु आदि बातों का निश्चय कर्मों के अनुसार ही होता है।

(4) निवृत्ति मार्ग—बौद्ध धर्म की भाँति जैन धर्म निवृत्ति मार्ग का पोषक है। संसार दुःख से पूर्ण है, संसार के सुख क्षणिक हैं जिनकी प्राप्ति से व्यक्ति सुखी नहीं रह सकता। दुःखों से निवृत्ति जैन धर्म का प्रधान उपदेश है। जैन धर्म के भिक्षु संसार त्याग कर संसार कल्याण के लिए उपदेश देते थे।

(5) निर्वाण—बौद्ध धर्म की भाँति जैन धर्म भी निर्वाण को चरम लक्ष्य मानता है। कर्मफल से मुक्त होने के बाद ही व्यक्ति को निर्वाण की प्राप्ति होती है निर्वाण प्राप्त होने के बाद दुःख-सुख से छुटकारा मिल जाता है तथा अनन्त शान्ति की प्राप्ति होती है। निर्वाण, शरीर के विनाश या भौतिक तत्व के विनाश का नाम है। जीव में आत्मिक तत्व का नाश नहीं होता। जब निर्वाण प्राप्त हो जाता है तो भौतिक तत्व का विनाश हो जाता है और आत्मिक तत्व ऊपर की ओर चढ़ता है इस प्रकार मोक्ष, चिर, शाश्वत, ऊर्ध्वगामिनी गति है।

(6) त्रिरत्नों का विधान—जैन धर्म के अनुसार मनुष्य अज्ञानतावश ही काम, क्रोध, मद, मोह और लोभ के वशीभूत होता है। पूर्व जन्म के कार्य फल से बचने के लिये जैन धर्म त्रिरत्नों के पालन का आदेश देता है। ये त्रिरत्न हैं सम्यक ज्ञान, सम्यक दर्शन, और सम्यक चरित्र। इन त्रिरत्नों को जैन धर्म ने बहुत अधिक महत्व दिया है। बिना सम्यक ज्ञान के मुक्ति नहीं प्राप्त होती। इसका ज्ञान उन तीर्थंकरों के उपदेशों से प्राप्त होता है जिन्होंने कर्म बन्धनों से मुक्ति प्राप्त कर ली है। इसके साथ ही सम्यक दर्शन भी अत्यन्त आवश्यक है। सम्यक चरित्र के लिये मनुष्य को अपनी इन्द्रियों, भाषण और कर्मों पर पूर्ण नियन्त्रण रखना चाहिए ऐसा करने से ही उसकी आत्मा सांसारिक प्रवाह में नहीं बहेगी और उसको मुक्ति भी प्राप्त हो जायेगी।

(7) पंच महाव्रत—जैन धर्म में आत्मिक उन्नति के लिये पंच महाव्रत का प्राविधान है। ये पंच महाव्रत हैं (1) अहिंसा (2) सत्य (3) अस्तेय (4) ब्रह्मचर्य (5) अपरिग्रह। जैन धर्म में अहिंसा के पालन पर बड़ा बल दिया गया है। सत्य

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

बोलने के लिये मनुष्य को क्रोध भय, लोभ पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। अस्तेय का अर्थ चोरी न करना है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है विषय वासनाओं को त्याग देना। अपरिग्रह का अर्थ किसी वस्तु में आसक्त न रहना है। अपरिग्रह के बिना मोक्ष नहीं मिल सकता।

(3) **पंच अणुव्रत**—ऊपर जिन 5 महाव्रतों का वर्णन किया गया है उनका उसी रूप में पालन करना गृहस्थ लोगों के लिये अत्यन्त दुष्कर है। भिक्षु ही उन कठोर व्रतों का पालन कर सकते हैं। गृहस्थों के लिये भी 5 व्रतों का विधान किया गया है जिन्हें 'पंच अणुव्रत' कहा जाता है। ये व्रत उतने कठोर नहीं हैं जितने कि 'पंचमहाव्रत'। ये अणुव्रत हैं (क) अहिंसा अणुव्रत (ख) सत्य अणुव्रत (ग) अस्तेय अणुव्रत (घ) ब्रह्मचर्य अणुव्रत और (च) अपरिग्रह अणुव्रत।

इन व्रतों के आधारभूत सिद्धान्त महाव्रतों के समान ही हैं। केवल इनमें कठोरता और अतिवादिता नहीं है।

(9) **तीन गुणव्रत**—उपर्युक्त अणुव्रतों का पालन तो गृहस्थों को सदा करना ही चाहिए परन्तु समय-समय पर कुछ कठोर व्रतों को करना भी आवश्यक है ये व्रत 'गुणव्रत' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये निम्नलिखित हैं :—

(क) गृहस्थ कभी-कभी ऐसे व्रत ले ले कि मैं इस निश्चित प्रदेश में ही रहूँगा और इससे बाहर नहीं जाऊँगा।

(ख) वह कोई ऐसा कार्य न करे जिससे उसका कोई सम्बन्ध न हो।

(ग) वह अपने भोजन का भी परिमाण निश्चित कर दे और उससे अधिक न खाये। उसे अपने मांग की भी सीमा निश्चित करनी चाहिए।

(10) **व्रत तथा तपस्या को विशेष महत्व**—ऊपर लिखी बातों से यह स्पष्ट होता है कि जैन धर्म में व्रत, उपवास और तपस्या का विशेष महत्व दिया गया है। आमरण अनशन करके प्राण त्याग कर देना जैन धर्म में बहुत अच्छा माना गया है। इसके द्वारा मनुष्य को निकृष्ट प्रवृत्तियाँ दब जाती हैं और वह कर्म बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करता है।

(11) **स्त्रियों की स्वतंत्रता**—महावीर स्त्री-स्वतंत्रता में विश्वास करते थे। महात्मा बुद्ध की भाँति महावीर की दृष्टि में भी स्त्रियाँ निर्वाण की अधिकारिणी थीं। तीर्थंकर पार्श्वनाथ भी इसी विचार के समर्थक थे। जैन धर्म में अनेक भिक्षुणियाँ हुईं।

(12) **ब्राह्मण धर्म का विरोध**—जैन धर्म ने ब्राह्मण धर्म की क्रियाओं वेदवाद, यज्ञवाद, जातिवाद आदि का विरोध किया। वेद-ज्ञान को महावीर प्रामाणिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं मानते। अहिंसा के कारण महावीर स्वामी ने यज्ञों का भी विरोध किया। श्री जे० एस० नेगी का मत है।

"Like Buddhism, Jainism rejects the authority of the Vedas and attaches no importance to the sacrificial ritual of the Brahmanas."

निर्वाण का द्वार सभी के लिये खुला है। सभी जातियों के लोग निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन धर्म मानवीय भावनाओं से अत्यधिक प्रभावित था। उसमें सात्विक और पवित्र जीवन की महत्ता पर बल देकर अहिंसा का जो मार्ग निर्धारित किया गया वह चिरंतन और चिरकालीन है।

———

प्रश्न (3) जैन धर्म के सीमित प्रसार के प्रमुख कारणों पर प्रकाश डालिए और उसकी देन का वर्णन कीजिए।

जैन धर्म का सीमित प्रसार

जैन धर्म, बौद्ध धर्म की अपेक्षा कम प्रचलित हुआ। महावीर के समय में वह मगध और अंग में ही विशेष रूप से प्रचलित हुआ। उनकी मृत्यु के पश्चात् भी इस धर्म को देश व्यापी और अन्तर्देशीय धर्म के होने का गौरव प्राप्त नहीं हुआ। भारत के अतिरिक्त अन्य किसी देश में तो यह धर्म कभी पनपा ही नहीं। इस धर्म के सीमित विकास के निम्नलिखित कारण थे :—

(1) अव्यावहारिक सिद्धान्त—महावीर स्वामी के अहिंसा, नग्नता, केश मूड़न, और आमरण अनशन, तथा कठोर तप के सिद्धान्त साधारण जनता के लिये अत्यन्त अव्यावहारिक सिद्ध हुए। इसी कारण यह धर्म कभी लोक-धर्म न बन सका।

(2) जातिगत भेद भाव—महावीर स्वामी जाति-भेद के विरोधी थे, परन्तु उनके अनुयायियों ने जाति विहीनता के सिद्धान्त को नहीं अपनाया। संघ प्रवेश के समय उच्च जाति के लोगों को सदैव प्राथमिकता दी गई।

(3) ब्राह्मण धर्म से सम्बन्ध—ब्राह्मण धर्म के बहुत से सिद्धान्त जैन धर्म में मिलने लगे। ब्राह्मण धर्म के अनेक संस्कार, भक्तिवाद, बहुसंख्यक देवी देवता जैन धर्म में प्रवेश पा गये। फलस्वरूप, जैन धर्म की नूतनता और नवीनता समाप्त होती गई और इस कारण इसका प्रभाव अत्यन्त व्यापक न हो सका।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(4) **जैन संघों का संगठन**—जैन संघ बौद्ध संघ की अपेक्षा कम जनतंत्रात्मक थे। इनमें गणधरों अथवा धर्माचार्यों की शक्ति अत्यधिक थी। जैन संघों की कोई विकसित वैधानिक व्यवस्था और व्यावहारिक जन-प्रणाली भी न थी। यही कारण था कि जैन धर्म को कभी भी जनता की व्यापक सहृदयता न प्राप्त हो सकी।

(5) **विद्वानों का अभाव**—जहाँ बौद्ध धर्म को प्रतिभाशाली प्रचारकों और उद्भट विद्वानों का प्रश्रय मिला वहाँ जैन धर्म में विद्वानों की संख्या कम रही। अश्वघोष, नागार्जुन और बुद्ध घोष जैसे विद्वान यदि जैन धर्म को अधिक मात्रा में प्राप्त होते तो जैन धर्म, धर्मों की दौड़ में पीछे न रहता।

(6) **राज धर्म पर प्रतिष्ठित न होना**—यद्यपि महावीर के समय में कुछ राज घरानों ने जैन धर्म को स्वीकार किया था परन्तु कभी भी इस धर्म को राज-धर्म के पद पर प्रतिष्ठित होने का गौरव न प्राप्त हो सका। बहुसंख्यक भारतीय नरेश इस धर्म के प्रति उदार तो अवश्य रहे परन्तु यह उदारता धर्म की देश-व्यापकता और अन्तर्देशीयता के लिए पर्याप्त न थी। इस देश में यदि कोई जैन अशोक अथवा हर्ष उत्पन्न हुआ होता तो जैन धर्म का प्रचार भी सीमित न रहा होता।

(7) **धर्म-प्रचारकों का अभाव**—जैन धर्म को बौद्ध धर्म जैसे प्रचारक भी नहीं प्राप्त हुए। बौद्ध धर्म के विदेशों में प्रचार का श्रेय बौद्ध भिक्षुओं को है, जिन्होंने निरन्तर कठिनाइयों का सामना करते हुए सुदूर देशों में अपने धर्म का प्रचार किया। बौद्ध धर्म के ग्रन्थों के अध्ययन के लिए फाह्यान और ह्वेनसांग जैसे विद्वान भारत आये। परन्तु धर्म प्रचारकों के अभाव के फलस्वरूप जैन धर्म किसी विदेशी श्रद्धालु को आकर्षित न कर सका।

(8) **कलाकारों का अभाव**—किसी भी धर्म का प्रचार जितना अधिक लेखनी से होता है उससे कहीं अधिक छेनी और तूलिका से। बौद्ध धर्म के प्रचार में कलाकारों ने महान् योगदान दिया। जिस कुशलता से पाषाण खण्डों के द्वारा उन्होंने अपने धर्म का प्रचार करना चाहा है वह निस्सन्देह प्रशंसनीय है। दुर्भाग्यवश जैन प्रचारकों ने जैन धर्म के प्रचार के लिए कला को माध्यम नहीं बनाया। अतः साधारण जनता जो ग्रन्थों और प्रवचनों से दूर रहती है, जैन धर्म की ओर आकर्षित न हो सकी।

(9) **जैन साहित्य की भाषा**—जैन साहित्य की भाषा संस्कृत थी जो लोक भाषा न रही। किसी भी धर्म के प्रचार के लिए लोक-भाषा के साहित्य की अत्यधिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आवश्यकता होती है और इस भाषा के साहित्य के अभाव में जैन धर्म अधिक प्रचलित न हो सका।

जैन धर्म की देन

जैन धर्म भारतीय दर्शन में अपना एक अलग स्थान रखता है। इस धर्म का केवल दार्शनिक महत्व ही नहीं है वरन् साहित्य और कला के क्षेत्र में भी इस धर्म की महान देन है। यहाँ हम संक्षेप में इस धर्म की देन की चर्चा करेंगे :—

(क) दार्शनिक देन—जैन दर्शन अति व्यापक और विस्तृत है। इस दर्शन पर वैदिक दर्शन की छाप तो कही जा सकती है परन्तु फिर भी इस दर्शन का एक अलग महत्व है। उदाहरण के लिए 'स्यात्वाद' बिल्कुल नवीन और मौलिक दर्शन है।

जैन दर्शन जहाँ एक ओर अति व्यापक है वहाँ दूसरी ओर गम्भीरता से युक्त है। इस दर्शन में जहाँ एक ओर व्यष्टि की उन्नति की ओर ध्यान दिया गया वहाँ दूसरी ओर 'समष्टि' के कल्याण की कामना है।

(ख) अहिंसा का सिद्धान्त—जैन धर्म का अहिंसा का सिद्धान्त कोई नवीन सिद्धान्त नहीं है। परन्तु जैन धर्म में वैदिक धर्म की अपेक्षा अहिंसा पर अधिक बल दिया गया। महावीर स्वामी का सिद्धान्त था कि किसी भी जीव को कष्ट न देना चाहिए। जैन धर्म के इस सिद्धान्त का व्यापक प्रसार हुआ। कालान्तर में वैदिक कर्मकाण्ड और यज्ञों में बलि देना समाप्त कर दिया गया। वैदिक धर्म में भी अहिंसा पर अधिक जोर दिया गया। आधुनिक युग में कोई भी वैदिक धर्म का उपासक किसी जैनी से कम अहिंसा प्रेमी नहीं है। परन्तु इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं कि वैदिक धर्मानुयायियों ने जैन धर्मानुयायियों से अहिंसा के क्षेत्र में बहुत कुछ सीखा है। अहिंसा का प्रसार जितना जैन धर्म के कारण जनता में हुआ उतना और किसी अन्य धर्म के कारण नहीं हुआ। अतः अहिंसा के क्षेत्र में इस धर्म की महान देन है।

(ग) साहित्यिक देन—जैन धर्मावलम्बियों ने बोल-चाल की भाषा को साहित्यिक रूप प्रदान किया। उनके अधिकतर ग्रन्थों की रचना प्राकृत भाषा में हुई। अपभ्रंश में भी महान साहित्य का सृजन किया गया। प्राकृत साहित्य को समृद्ध बनाने में जैन धर्मानुयायियों का विशेष हाथ है। दक्षिण के साहित्य पर भी जैन धर्म का प्रभाव स्पष्ट है। जैन विद्वानों द्वारा केवल धर्म और दर्शन-ग्रन्थों को लिखा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया । संस्कृत भाषा में, जैन धर्मानुयायियों ने अपेक्षाकृत कम ग्रन्थों का निर्माण किया ।

महावीर स्वामी की मृत्यु के पश्चात् जैन लेखकों ने अपनी लेखनी बहुत तीव्र गति से चलाई । उनकी मृत्यु के 200 वर्ष बाद पाटलिपुत्र में एक जैन सभा हुई जिसमें साहित्य क्षेत्र की ओर अधिक ध्यान दिया गया । श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही जैनियों ने धार्मिक ग्रन्थों का निर्माण किया । जैन साहित्यकारों में हेमचन्द्र, हरिभद्र, सिद्धसेन, पूज्यपाद आदि के नाम विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं ।

(घ) कलात्मक देन—धर्म और दर्शन के अतिरिक्त कला के क्षेत्र में भी जैनियों की महान देन है । इस धर्म के अनुयायियों ने अनेक गुफाओं का निर्माण करवाया । उदयगिरि की टाइगर केव और एलोरा की इन्द्र सभा विशेष रूप से उल्लेखनीय है । अनेक मन्दिर, पाषाण स्तम्भ, मूर्तियों आदि का निर्माण भी इस धर्म के अनुयायियों ने किया । श्रमणबेलगोला में गोमतेश्वर की 57 फीट ऊँची मूर्ति की रचना ग्रेनाइट पत्थर काट कर की गई है । ग्वालियर के जैन मन्दिरों को देखते ही बनता है । खजुराहो और आबू पर्वत के जैन मन्दिर कला से पूर्ण हैं । ग्यारहवीं और बारहवीं सदी के मध्य जैन कला बहुत अधिक विकसित हुई । दक्षिण भारत के राज्यों ने भी इस कला को अत्यधिक पल्लवित किया । इस युग में मध्य प्रदेश तथा बुन्देल खण्ड में अनेक जैन कला-कृतियों का सृजन हुआ । इस धर्म के अनुयायियों ने अनेक स्तूप बनवाये स्तूपों की पाषाण रेलिंग, अलंकृत प्रवेश-द्वार, पाषाण-छत्र आदि कला के सुन्दर नमूने हैं । जैन चित्रकला के दर्शन हस्तलिखित पुस्तकों में होते हैं ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विभिन्न क्षेत्र में जैन धर्म की महान देन है । जैन धर्म यद्यपि भारत का मुख्य धर्म नहीं कहा जा सकता परन्तु फिर भी वह सदैव पल्लवित रहा है । एक विद्वान ने ठीक ही लिखा है—"यद्यपि यह भारत में अधिक प्रभुत्वशाली धर्म नहीं रहा तथापि देश में एक सशक्त सम्प्रदाय अवश्य ही बना रहा । जैन धर्म की रूढ़िवादिता, ब्राह्मण धर्म से इसकी सादृश्यता, धर्म-प्रचार की उग्र भावना का अभाव तथा अन्य धर्मों से विरोधाभास का दुर्भाव होने से जैन धर्म देश के विभिन्न भागों में आज भी विद्यमान है ।

प्रश्न (3) महात्मा बुद्ध के जीवन का संक्षिप्त परिचय दीजिए और उनके सिद्धान्तों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महात्मा बुद्ध की गणना संसार के महापुरुषों में की जाती है । उन्होंने जिस धर्म का प्रचार किया वह संसार के विभिन्न धर्मों के मध्य अपना विशेष स्थान रखता है । यहाँ हम महात्मा बुद्ध के जीवन और उनके सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं :—

महात्मा बुद्ध का जीवन-वृत्त

जन्म तथा बाल्यकाल (वर्ष 1-16)—गौतम बुद्ध का जन्म 563 ई० पू० शाक्यगण की राजधानी कपिलवस्तु के लुम्बिनी वन में हुआ था । इनके पिता का नाम शुद्धोदन था, जो शाक्यों के गण के प्रधान थे । शाक्य, सूर्य वंशी क्षत्रिय थे और 'गौतम' इनका गोत्र था । इसलिये बुद्ध को गौतम के नाम से पुकारा गया । इनकी माता का नाम माया देवी था । गौतम के बचपन का नाम सिद्धार्थ था । इनके जन्म के कुछ दिन पश्चात् माया देवी का देहान्त हो गया और इनका लालन-पालन उनकी विमाता प्रजापति ने किया ।

राजकुमार सिद्धार्थ आरम्भ से ही एकान्त प्रिय तथा सरल स्वभाव के थे । संसार के दुःखों को देखकर उनका हृदय करुणा से द्रवीभूत हो जाता था और वह एकान्त में इनके निवारण करने के साधनों पर मनन करते रहते थे । राजा शुद्धोदन को उनकी ओर से बड़ी चिन्ता रहने लगी, उन्होंने राजकुमार का पालनपोषण पूर्ण सुख तथा विलासिता के साथ प्रारम्भ किया ।

गृहस्थ जीवन (वर्ष 16-29)—जब सिद्धार्थ की अवस्था सोलह वर्ष की हुई तो उनके पिता ने उनका विवाह एक सुन्दर राजकुमारी यशोधरा से कर दिया । विवाह से सिद्धार्थ की मनोवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ । कुछ समय पश्चात् उनके एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ । इसका नाम राहुल रखा गया । पुत्र जन्म के समाचार पाकर सिद्धार्थ ने कातर स्वर में कहा, "आज मेरे जीवन की शृंखला की एक कड़ी और निर्मित की गई ।"

गृह-त्याग या महाभिनिष्क्रमण—30 वर्ष की आयु में एक दिन रात्रि को जब यशोधरा और राहुल वासियों के मध्य शयन कर रहे थे तब सिद्धार्थ ने उन पर एक दृष्टि डालकर राजभवन को त्यागकर कानन की ओर प्रस्थान किया । उन्होंने रातों रात रथ पर बैठकर अपने राज्य की सीमा पार की । अपने राजसी वस्त्रों को देकर सारथी को बिदा किया और स्वयं एक भिक्षुक का वेश धारण करके सत्य की खोज में निकल पड़े । उनके जीवन की यह घटना "महाभिनिष्क्रमण" के नाम से प्रसिद्ध है ।

बुद्ध का बनवास—कुछ समय तक गौतम विद्वानों के पास ज्ञान प्राप्ति

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए रहे और यह जानकर कि आत्मिक शान्ति तपस्या द्वारा मिलती है, वह अपने 5 साथियों सहित तप के लिए चल दिए। उन्होंने अत्यन्त कठोर तपस्या की। यहाँ तक कि एक दिन वे अचेत होकर गिर पड़े। इससे इनको घोर निराशा हुई और गौतम ने सुजाता स्त्री की दी हुई खीर का भोजन किया। इस समय उनके साथी "गौतम भोगवादी है, अपने पथ से भ्रष्ट हो गया है" कहकर चल दिए।

सम्बोधि या ज्ञान-प्राप्ति—अब सिद्धार्थ एकान्त जीवन व्यतीत करने लगे और सत्य के चिन्तन में मग्न रहने लगे। एक दिन वह पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान में मग्न थे, तब उन्हें सच्चे ज्ञान का प्रकाश हुआ। बौद्ध साहित्य में इसका वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है "इस समय मनुष्य जाति के महान रक्षक और माया में भीषण संग्राम हुआ। पृथ्वी हिल गई, समुद्र उमड़ आया, नदियां पर्वत की ओर लौट पड़ीं, पर्वत शिखर चकनाचूर होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। अन्त में सिद्धार्थ मोह और माया पर विजयी हुए और उन्हें ज्ञान का प्रकाश मिल गया। तब से गौतम को बुद्ध (ज्ञान प्राप्त व्यक्ति) कहा जाने लगा।" उनके जीवन की यह घटना 'सम्बोधि' कहलाती है।

धर्म प्रचार—गौतम बुद्ध इस निश्चय पर पहुँचे कि उनके ज्ञान द्वारा मानव-मात्र का कल्याण होना चाहिए। सर्वप्रथम वह काशी के निकट सारनाथ स्थान पर पहुँचे। वहाँ पर वह उनको वे पाँचों साथी मिले जिन्होंने उनका साथ छोड़ दिया था। गौतम बुद्ध के इन शिष्यों को "पंचवर्गीय" कहते हैं। सर्वप्रथम, उन्होंने इनको अपने धर्म का उपदेश दिया। इस घटना को "धर्म-चक्र-प्रवर्तन" कहते हैं। इसके पश्चात् बुद्ध जी की कीर्ति चारों दिशाओं में फैलने लगी और उनके अनुयायियों और शिष्यों की संख्या बढ़ने लगी। अब बुद्ध जी ने अपने शिष्यों का एक संघ बनाकर उन्हें धर्म-प्रचार करने का आदेश दिया। "भिक्षुओ जाओ और इस सर्वोत्तम धर्म का प्रचार करो। तुम लोगों के हितों के लिए, लोगों के कल्याण के लिए, देवों और मानवों के कल्याण के लिये घूमो। इस धर्म का प्रचार करो, जिसका आदि मंगल है, मध्य मंगल है और अन्त भी कल्याणकारी है।" इस संघ ने बौद्ध धर्म के प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने स्वयं अपने जीवन के अन्तिम 45 वर्ष भ्रमण करके धर्म-प्रचार में व्यतीत किए। उन्होंने बिहार, अवध, अयोध्या, श्रावस्ती, राजगृह में बौद्ध धर्म का प्रचार किया।

महात्मा बुद्ध का पुनः कपिलवस्तु जाना—प्रचार करते हुए गौतम बुद्ध अपनी जन्म भूमि कपिलवस्तु पहुँचे, जहां लोगों ने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। यहाँ पर उनका पुत्र राहुल और उनका भाई नन्द उनके शिष्य हो गए। उनकी पत्नी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यशोधरा उनकी शिष्या बन गई। कुछ समय यहाँ रुक कर गौतम ने अपने धर्म का प्रचार किया।

परिनिर्वाण—अपने धर्म का प्रचार करते हुए अस्सी वर्ष की आयु में वह कुशीनगर पहुँचे। यहाँ उन्हें अतिसार रोग ने घेर लिया। मृत्यु शैय्या पर लेटे हुए उन्होंने अपने एक शिष्य को धैर्य धारण कराते हुए कहा, "मेरे विदा होने पर मत रोओ और धीरज धारण करो और अपना निर्वाण अपने प्रयत्नों द्वारा पूरा करो।" इसके पश्चात् उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी। इस घटना को उनके अनुयायी "महानिर्वाण" कहते हैं।

महात्मा बुद्ध की शिक्षाएँ तथा सिद्धान्त

महात्मा गौतम बुद्ध के जीवन-वृत्त और व्यक्तित्व को जान लेने के पश्चात् उनकी शिक्षाओं तथा बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। उन्होंने अपने समस्त उपदेश, मानव जाति के कल्याण के लिए सरल और सुबोध भाषा में दिये हैं। उनके उपदेश क्रियात्मक एवं व्यावहारिक थे।

नैतिक शिक्षायें (चार आर्य सत्य)

महात्मा बुद्ध के चार आर्य सत्य थे। इन सत्यों को वह सरल और व्यावहारिक भाषा में जनता के सामने प्रस्तुत करते थे। उनकी समस्त शिक्षाओं का सन्निवेश उनके "आर्य सत्य चतुष्टय" नामक सिद्धान्त में है।

(1) दुःख ही जीवन का सत्य है—वास्तव में यह संसार दुःखमय है। मानव को अनेक कारणों वश दुःख उठाना पड़ता है। वृद्धावस्था दुःख है, जन्म तथा मृत्यु भी दुःख है, प्रिय का वियोग दुःख है, अप्रिय का मिलन दुःख है और इच्छाओं का पूरा न होना भी दुःख ही है।

(2) दुःख की जननी तृष्णा है—संसार दुःख से भरा है। उन्होंने दुःखों का कारण भी बताया है। दुःखों की वास्तविक जननी तृष्णा है। तृष्णा के कारण ही अहंकार, ममता, राग-द्वेष, कलह आदि उत्पन्न होते हैं।

(3) दुःखों का अन्त तृष्णा-नाश से सम्भव है—दुःख के कारण का ज्ञान हो जाने पर दुःख का निरोध करना भी सम्भव हो जाता है। तृष्णा को समाप्त कर देने पर मानव जरा-मरण, अतृप्त कामना, संयोग-वियोग तथा उससे सम्बधित सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है। तृष्णों का अन्त हो जाने पर मानव दुःख रहित हो जाता है और इस प्रकार उसे निर्वाण प्राप्त हो जाता है।

(4) तृष्णा का नाश अष्टांगिक मार्ग द्वारा—निर्वाण प्राप्त करने के लिए गौतम बुद्ध ने जिस मार्ग पर लोगों को चलने के लिए कहा है, उसे "आर्याष्टांग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार्ग" कहा जाता है। इसमें आठ साधन बताये गए हैं, जो इस प्रकार हैं—(1) सम्यक् दृष्टि (2) सम्यक् संकल्प (3) सम्यक् वाक् (4) सम्यक कर्म (5) सम्यक जीविका (6) सम्यक व्यायाम (7) सम्यक स्मृति और (8) सम्यक समाधि। उक्त आर्याष्टांग मार्ग को "मज्जिमा परिपदा" भी कहा जाता है क्योंकि इसमें जीवन के अतिवाद से हटकर मध्यम मार्ग पर चलने का उपदेश दिया गया है।

गौतम बुद्ध ने अपने उपदेशों में आचरण पर भी विशेष बल दिया था। उन्होंने दस आचरणों का पालन आवश्यक बताया था। वे इस प्रकार हैं—(1) अहिंसा (2) सत्य (3) अस्तेय (चोरी न करना) (4) अपरिग्रह (5) ब्रह्मचर्य (6) नृत्य-गान का त्याग (7) सुगन्ध आदि का त्याग (8) कामिनीकंचन का त्याग। उनके उपदेश सबके लिए थे, और नर नारी, युवा-वृद्ध, धनी-निर्धन सभी उस पर आचरण कर सकते थे।

(ब) गौतम बुद्ध के दार्शनिक विचार

गौतम बुद्ध के दार्शनिक विचार निम्नलिखित हैं—

(1) **अनीश्वरवाद**—महात्मा गौतम ईश्वर के बारे में कुछ नहीं कहते। जब कभी उनसे ईश्वर के सम्बन्ध में पूछा जाता था तो वे मौन हो जाते थे। इस सम्बन्ध में श्री जवाहर लाल नेहरू का कथन है—

"Whether there is a God or an Absolute or not, he does not say. He neither affirms nor denies it. Where knowledge is not possible, we must suspend judgement."

—Jawahar Lal Nehru.

उनकी समस्त शिक्षाओं का सार यही है कि संसार की उत्पत्ति के लिए किसी कर्ता की आवश्यकता नहीं है। यह संसार कार्य कारण की शृंखला द्वारा चलता है।

(2) **अनात्मवाद**—वह आत्मा के विषय में भी कुछ नहीं कहते थे। वह मानव की व्यक्तिगत आत्मा को अनेक संस्कारों का योग मानते थे। मैक्समूलर का विचार है कि बुद्ध, जो कि संसार का कल्याण चाहते थे, उनका आत्मा के सम्बन्ध में कोई दार्शनिक विचार न था। इस सम्बन्ध में श्री जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है—

"So also Buddha gives no clear answer about the existence of the souls. He does not deny it and he does not affirm it. He refuses to discuss this is very remarkable."

—Jawahar Lal Nehru.

(3) **कर्मवाद**—बुद्ध जी कर्मवाद के कट्टर समर्थक थे। उनका विचार था

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि मनुष्य जैसा कर्म करता है उसी के अनुसार उसे फल भोगना पड़ता है। श्रेष्ठ कर्मों का फल दुःखों से छुटकारा पाना है, और बुरे कर्मों का फल दुःख, पाप और आवागमन है। उनका विचार था कि मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न योनियों में जन्म लेता है।

(4) पुनर्जन्म में विश्वास—ईश्वर तथा आत्मा की महत्ता को अस्वीकार करते हुए भी बुद्ध जी ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त को माना है। पुनर्जन्म भी कर्म के नियम द्वारा संचालित होता है। वासना के पूर्णरुपेण समाप्त हो जाने पर मनुष्य का अहंकार नष्ट हो जाता है तब वह आवागमन के कष्ट से मुक्त होकर निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

(5) जाति-प्रथा का विरोध—बुद्ध जी ने जन्म पर आधारित जाति-व्यवस्था का विरोध किया। वह ऊँच-नीच, छुआ-छूत के भेदभाव को नहीं मानते थे। बुद्ध जी का द्वार प्रत्येक मानव के लिए खुला था।

(6) अहिंसा परमो धर्मः—गौतम बुद्ध वैदिक हिंसा, बलि तथा यज्ञों के घोर विरोधी थे और अहिंसा पर बड़ा बल देते थे। वे समस्त प्राणियों पर दया करने का उपदेश देते थे। वे 'पर पीड़ा सम नाहिं अधमाई' को मानते थे।

(7) सर्वोच्च उद्देश्य निर्वाण—वह कहते थे कि मनुष्य का सबसे बड़ा उद्देश्य निर्वाण प्राप्त करना है। निर्वाण का शाब्दिक अर्थ 'बुझ जाना' है। जब मनुष्य की वासनाएँ बुझ जाती हैं तो वह 'निर्वाण' की स्थिति को प्राप्त करता है। निर्वाण प्राप्ति के पश्चात् मानव आवागमन के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

महात्मा गौतम बुद्ध के जीवन-वृत्त और शिक्षाओं के उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अतीत काल में भारत समस्त संसार का धर्म गुरु था। वर्तमान काल में भी विश्व की बहुत बड़ी जनसंख्या बौद्ध धर्म से प्रभावित है। डब्ल्यू० डब्ल्यू० हण्टर का कथन है—

"Buddhism has created a literature and a religion for nearly half the human race and affected the believes of the other half."

—Hunter.

प्रश्न (4) बौद्ध धर्म की उन्नति और पतन के कारणों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

बौद्ध धर्म की उन्नति के कारण

बौद्ध धर्म की उन्नति के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं—

(1) वैदिक धर्म के दोष—बौद्ध धर्म का जन्म धार्मिक क्रान्ति के फलस्वरुप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ था । वैदिक धर्म में इतनी जटिलताएँ आ गयी थीं कि साधारण जन दार्शनिक सिद्धान्तों को नहीं समझ पा रहे थे । वर्ण-व्यवस्था कठोर हो चुकी थी और वर्ण का आधार जन्मजात माना जाने लगा था । यज्ञों तथा धार्मिक कार्यों में अधिक धन व्यय करना पड़ता था, जो जन-साधारण की शक्ति से बाहर था । इन दोषों से ऊबकर लोग किसी नये धर्म की खोज में थे जिसमें बाह्य आडम्बर और जटिलता न हो । ऐसी अवस्था में लोगों का बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक था । मैक्सूलर ने सत्य ही लिखा है "जिस बात का अनुभव बुद्ध ने भी किया उसी बात का अनुभव सहस्रों अन्य व्यक्ति भी कर रहे थे और यही उनकी सफलता का रहस्य था ।"

(2) आचरण की प्रधानता—बौद्ध धर्म में आचरण की पवित्रता पर अधिक बल दिया गया है । बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों पर सभी लोग आचरण कर सकते थे । इस कारण इस धर्म की उन्नति हुई ।

(3) महात्मा बुद्ध का व्यक्तित्व—बुद्ध जी के व्यक्तित्व का परिचय हमें बौद्ध साहित्य से प्राप्त होता है । जो व्यक्ति उनके दर्शन करता था और उनके उपदेश सुनता था, उस पर उनके व्यक्तित्व की अमिट छाप पड़ जाती थी । मोनियर विलियम्स ने उनके व्यक्तित्व की प्रशंसा करते हुए लिखा है, उनके "व्यक्तिगत चरित्र और रुचिकर शिक्षा का प्रभाव अचूक होता था ।"

(4) संगठन की श्रेष्ठता—बौद्ध धर्म की महान उन्नति का रहस्य बौद्ध भिक्षुओं का आश्चर्यजनक संगठन था । धर्म-प्रचार के लिए बुद्ध जी ने अनेक संघों की स्थापना की थी । भिक्षुओं को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था, "भिक्षुओ जाओ और सर्वोत्तम धर्म का प्रचार करो । तुम लोगों के हितों के लिए लोगों के कल्याण के लिए, देवों और दानवों के कल्याण के लिए घूमो । तुम में से कोई दो एक साथ न जायँ । इस धर्म का प्रचार करो जिसका आदि मंगल है, मध्य मंगल है और अन्त भी कल्याणकारी है । "बौद्ध धर्म की उन्नति में संघों के प्रभाव को बताते हुए स्मिथ महोदय ने लिखा है " भिक्षु और भिक्षुणियों का सुसंगठित संघ इस धर्म के हाथ में सबसे अधिक प्रभावशाली अस्त्र था ।"

(5) विभिन्न सम्राटों का संरक्षण—बौद्ध धर्म को हिन्दू काल के अनेक प्रमुख सम्राटों का संरक्षण प्राप्त था । इनके प्रयत्नों से यह धर्म विश्वव्यापी हो गया । अशोक महान् ने इस धर्म का प्रचार तन-मन-धन सब कुछ लगाकर किया । अशोक ने इस धर्म को राजधर्म बनाया था । अशोक के पश्चात् कनिष्क और हर्षवर्द्धन भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बौद्ध धर्म से प्रभावित थे। इन दोनों सम्राटों ने इस धर्म के प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

(6) सरल भाषा में प्रचार—बौद्ध भिक्षुओं और विद्वानों ने अपनी शिक्षाओं का प्रचार लोक भाषा में किया था। बुद्ध जी ने स्वयं कहा था "मैं गरीबों की भाषा द्वारा गरीबों तक पहुँचना चाहता हूँ।"

(7) जाति-प्रथा का विरोध—बौद्ध धर्म की उन्नति का एक यह भी कारण है कि इस धर्म में जातिगत भेदभाव और ऊँचनीच का भेद नहीं था। इस धर्म का द्वारा मानव-मात्र के लिए खुला हुआ था और सभी जातियों तथा वर्गों के लोग इसमें प्रवेश ले सकते थे। संघ में आने के बाद निम्न वर्ग का व्यक्ति भी सह-धार्मिक के समान हो जाता था और उसमें किसी प्रकार का वर्ग भेद नहीं होता था।

(8) सरल सिद्धान्त—बौद्ध धर्म की उन्नति का कारण इस धर्म के सरल सिद्धान्त भी थे। वैदिक धर्म इतना जटिल था कि कोई भी धार्मिक कृत्य बिना पुरोहित की सहायता के नहीं होता था। लोग वैदिक धर्म की जटिलता से ऊब चुके थे और इस लिए उन्होंने सहर्ष नवीन धर्म का स्वागत किया।

(8) अन्य धर्मों का विरोध न करना—इस धर्म के प्रचारकों ने अन्य धर्मों की आलोचना ही नहीं की वरन् दूसरे धर्मों की अच्छाइयों को ग्रहण करने पर बल दिया। इस प्रकार बौद्ध धर्म के विचार उदार तथा महान् थे। यही कारण था कि बौद्ध धर्म में ऐसी चुम्बकीय शक्ति उत्पन्न हो गयी कि सभी लोग इसकी ओर आकृष्ट हो गए।

(10) अनुकूल सामाजिक स्थिति—छठीं शताब्दी ई० पू० की धार्मिक और सामाजिक स्थिति ने बौद्ध धर्म की उन्नति में सहायता पहुँचाई। इस समय पशुबलि, झूठी तपस्या, तथा शूद्रों पर अत्याचार हो रहे थे। ऐसी अनुकूल सामाजिक स्थिति में यह धर्म दैवीय के रूप में सिद्ध हुआ।

(11) राजनीतिक घटनाओं की अनुकूलता—राजनीतिक घटनाओं की अनुकूलता भी बौद्ध धर्म की उन्नति का महत्वपूर्ण कारण है। बिम्बिसार और अशोक आदि सम्राटों ने बौद्ध धर्म की सहायता की थी। इसी प्रकार सम्राट कनिष्क और हर्षवर्द्धन न केवल इस धर्म के अनुयायी थे, वरन् उन्होंने तन-मन-धन से इस धर्म का प्रचार किया था।

(12) बौद्ध सभाओं का प्रभाव—बौद्ध धर्म के प्रचार तथा उसके भीतर आये दोषों को दूर करने के लिए समय-समय पर बौद्ध धर्म की प्रचार सभाओं से बड़ी सहायता मिली। इन सभाओं द्वारा इस धर्म के दोषों का निराकरण होने के अतिरिक्त प्रचार कार्य में प्रत्येक बार सहायता मिली। संगठन की दृढ़ता और भिक्षुओं के उत्साह संवर्द्धन के फलस्वरूप यह धर्म विश्व्यापी हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(13) **नालन्दा विश्वविद्यालय द्वारा प्रचार**—बौद्ध धर्म के प्रचार में नालन्दा विश्वविद्यालय ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस विश्वविद्यालय में सुदूर देशों से विद्यार्थी आकर अध्ययन करते थे। यहाँ के आचार्य अपने विषय के प्रकांड विद्वान होते थे, जिनका प्रभाव विद्यार्थियों पर भी पड़ता था। इस प्रकार वे विद्यार्थी अपने देशों में लौट कर उक्त धर्म का प्रचार करते थे।

(14) **प्रचारकों की लगन**—बौद्ध धर्म के प्रचारकों का अदम्य उत्साह और लगन सम्भवत: किसी अन्य धर्म के प्रचारकों में नहीं थी। इन लोगों ने अपना परिवार त्याग कर, स्वजनों को त्यागकर मानव मात्र की सेवा के लिए अपरिचित व्यक्तियों के मध्य जाकर बुद्ध जी की शिक्षाओं को सुनाया।

(15) **मध्य मार्ग का अनुसरण**—उक्त कारणों के अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी हैं जिनसे इस धर्म की जन प्रियता का कारण मध्यम मार्ग का अनुसरण है। गौतम बुद्ध ने 'अतिसर्वत्र वर्जयेत' के पालन की शिक्षा देते हुए कहा कि मनुष्य को चाहिये कि न तो वह भोग विलास के लुभावने क्षीर-जलधि में डूब जाय और न तपादि द्वारा ही अपने शरीर को गला दे। अत: जन-साधारण के लिए यह मार्ग सरल, सुगम तथा सुबोध बन गया।

(16) **उन्नत तथा विशाल साहित्य**—बौद्ध साहित्य की व्यापकता और विशालता भी धर्म के प्रचार में सहायक सिद्ध हुई। अनेक सुदूर देशों के यात्री ज्ञानार्जन के लिए भारत आते थे और यहाँ से लौट कर स्वदेश में इस धर्म का प्रचार करते थे।

(17) **तर्क का अवलम्बन**—इसके प्रचारकों ने विश्वास के स्थान पर सदैव तर्क का आश्रय लिया। तर्क पर अवलम्बित होने के कारण बौद्ध धर्म ने लोगों को उचित तथा अनुचित की कसौटी बताई थी।

(18) **प्रबल प्रतिद्वन्द्वियों का अभाव**—बौद्ध धर्म को धर्मप्रचार मे प्रबल प्रतिद्वन्द्वियों का सामना नहीं करना पड़ा, इसलिए इस धर्म की सहज ही उन्नति होती चली गई। यदि धर्म का कोई प्रबल विरोधी होता तो इसकी इतनी उन्नति न हो पाती।

बौद्ध धर्म के पतन के कारण

उत्थान के पश्चात् पतन, प्रकृति का शाश्वत नियम है। भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार बहुत दिनों तक रहा, किन्तु 12 वीं शताब्दी के बाद भारत से उस धर्म का लोप होता गया। डब्ल्यू० डब्ल्यू० हण्टर का विचार है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

"The downfall of Buddhism seems to have largely resulted from new movements of religious thought rather than from any general supression by the sword."

—W. W. Hunter.

बौद्ध धर्म की अवनति के निम्नलिखित कारण हैं—

(1) हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान—कनिष्क की मृत्यु के पश्चात् शुंग वंश के राजा हुए थे। ये लोग ब्राह्मण थे और वैदिक धर्म के अनुयायी थे। गुप्त काल के सम्राटों ने भी वैदिक धर्म को स्वीकार किया था। इस प्रकार हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान से बौद्ध धर्म को धक्का लगा था। डब्ल्यू० डब्ल्यू हण्टर का विचार है—

"During the 8th and 9th centruries A. D. Brahmanism became a ruling religion in India." **—W. W. Hunter.**

(2) सम्राटों का संरक्षण समाप्त होना—भारतीय राजाओं द्वारा जो सहायता और प्रोत्साहन बौद्ध धर्म को मिलता था, वह समाप्त हो गया। हर्ष तथा पाल सम्राटों के अतिरिक्त शेष सभी सम्राटों ने हिन्दू धर्म को प्रोत्साहन दिया। इस प्रकार हिन्दू धर्म के राज धर्म बन जाने से बौद्ध धर्म अवनति करता गया।

(3) भिक्षुओं के आचरण का पतन—बौद्ध भिक्षुओं का चरित्र भ्रष्ट होना भी इस धर्म की अवनति का मुख्य कारण है। उनका जीवन और चरित्र अब पहले के समान नहीं था। राजाओं की ओर से आर्थिक सहायता मिलने के कारण बौद्ध धर्म के अनुयायी बुद्ध जी के उपदेशों को भूल गये, अतः साधारण जनता इस धर्म की ओर से उदासीन हो गयी।

(4) भाषा में परिवर्तन—आरम्भ में इस धर्म का प्रचार बोलचाल की भाषा में हुआ था परन्तु आगे चलकर बौद्ध विद्वानों ने अपने उपदेश संस्कृत भाषा में देने आरम्भ कर दिए। सामान्य जन संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ होने के कारण इस धर्म की शिक्षाओं को भली प्रकार नहीं समझ सकते थे।

(5) सम्प्रदायवाद का विकास—आगे चलकर बौद्ध धर्म वर्गों और सम्प्रदायों में विभक्त हो गया। इनमें निरर्थक विवाद और संघर्ष होता रहता था। अब इसके अनुयायी धर्म प्रचार के स्थान पर वाद विवाद करने में समय नष्ट करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि भिक्षुओं का अदम्य उत्साह तथा लगन समाप्त हो गयी और इस धर्म का पतन प्रारम्भ हो गया।

(6) बौद्ध धर्म द्वारा हिन्दुओं का वेदवाद अपनाना—गौतम बुद्ध मनुष्य होते हुए भी अनेक शक्तियों से सम्पन्न थे। वह ईश्वर तथा देवी-देवताओं के सम्बन्ध में सदैव मौन रहे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके अनुगामियों ने बौद्ध धर्म में वेदवाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का प्रवेश कर लिया। इस प्रकार बौद्धधर्म के रीति-रिवाज बढ़ने लगे और क्रमशः इन दोनों का अन्तर समाप्त होने लगा।

(7) मिथ्याडम्बरों का प्रवेश—बुद्ध जी के सरल और बोधगम्य उपदेशों के कारण यह धर्म फलीभूत हुआ था। आगे चलकर लोग इन उच्चादर्शों को भूलने लगे। धर्म की सादगी और सरलता समाप्त होने लगी और उसके स्थान पर मिथ्याडम्बर, ढकोसले बढ़ने लगे। इस प्रकार आन्तरिक दोषों के कारण बौद्ध धर्म का पतन अवश्यम्भावी था।

(8) अन्य धर्मों के साथ प्रतिद्वन्द्विता—बौद्ध धर्म की अवनति का एक अन्य कारण अन्य धर्मों के साथ प्रतिद्वन्द्विता का होना है। जैन, शैव, वैष्णव आदि धार्मिक सम्प्रदाय की दौड़ में बौद्ध धर्म सफल न हो सका। इन धर्मों की लोकप्रियता का भी बौद्ध धर्म पर व्यापक प्रभाव पड़ा और उक्त धर्म अनवति की ओर अग्रसर होने लगा।

(9) बौद्ध संघ में स्त्रियों का प्रवेश—बौद्ध संघ में स्त्रियों के प्रवेश से बिहार और मठ भ्रष्टाचार के केन्द्र बनने लगे। भिक्षुकों और भिक्षुणियों का चारित्रिक पतन होने लगा और कालान्तर में बौद्ध बिहार और मठ विलासिता और व्यभिचार के केन्द्र बन गये। एक दिन बुद्ध जी ने अपने प्रिय शिष्य आनन्द से कहा था "आनन्द मैंने जो धर्म चलाया था वह पांच हजार वर्ष तक टिकने वाला था, लेकिन अब वह केवल पाँच सौ वर्ष ही चलेगा, क्योंकि हमने स्त्रियों को संघ में सम्मिलित होने की अनुमति दे दी है।"

(10) राजपूतों का प्रबल होना—राजपूतों ने बुद्ध जी के अहिंसा के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया। राजपूत युद्ध-स्थल में अहिंसा के स्थान पर तलवार, शान्ति के स्थान पर कृपाण का प्रयोग करते थे। राजपूत बौद्ध धर्म की तुलना में हिन्दू धर्म की ओर अधिक आकृष्ट हुए, इससे बौद्ध धर्म पतनोन्मुख होने लगा।

(11) योग्य नेता तथा संगठनकर्त्ता का अभाव—जब बौद्ध धर्म का पतन आरम्भ हुआ तो उसमें कोई ऐसा योग्य नेता और संगठनकर्त्ता नहीं था जो इस धर्म को पतनोन्मुख होने से रोकता। इस प्रकार कुशल नेता के अभाव में यह धर्म द्रुतगति से पतन की ओर अग्रसर हुआ।

(12) विदेशी आक्रमण—विदेशी आक्रमणों ने बौद्ध धर्म की इतिश्री कर दी। हूणों तथा मुसलमानों के आक्रमणों द्वारा बौद्ध धर्म की बची-खुची शक्ति भी समाप्त हो गयी। मुसलमानों ने बौद्ध बिहारों तथा मठों को विध्वंस कर दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्ष में बौद्ध धर्म ने जिस द्रुतगति से उन्नति की, उसी द्रुतगति से उसका पतन भी हो गया। प्रसिद्ध विद्वान श्री मैक्समूलर का विचार है कि जिस स्रोत से बौद्ध धर्म उत्पन्न हुआ था, उसी में वह समा गया। यद्यपि भारतवर्ष में इसका अन्त हो गया तथापि विदेशों में अब भी यह धर्म बहुसंख्यक जनता को प्रभावित किये हुए है।

प्रश्न 5—बौद्ध धर्म और जैन धर्म की तुलना कीजिए।

बौद्ध धर्म और जैन धर्म दोनों ही का उत्कर्ष छठीं व सातवीं शताब्दी ई० पू० के लगभग हुआ। दोनों में बहुत समानता है और कारण था कि बहुत दिनों तक लोग जैन धर्म को बौद्ध धर्म का एक अंग मानते रहे। पहले कुछ विद्वानों का मत था कि इन दोनों धर्मों का सम्बन्ध अवश्य ही पिता-पुत्र के रूप में रहा होगा, परन्तु यह बात उचित नहीं है।

यद्यपि यह कहा जा सकता है कि दोनों धर्मों में समानता है परन्तु इस समानता में भी विभिन्नता है। यहाँ हम बौद्ध धर्म और जैन धर्म की समानताओं और असमानताओं की चर्चा करेंगे।

समानताएँ

(1) दोनों का स्रोत वैदिक धर्म ही है। दोनों ही उपनिषदों के ऋणी हैं।

(2) दोनों ही धर्म एक प्रकार से अनीश्वरवादी हैं।

(3) दोनों धर्म वैदिक कर्मकाण्डों, ब्राह्मणों की प्रधानता और पशु-बलि का विरोध करते हैं।

(4) दोनों ही धर्मों द्वारा कर्म, पुनर्जन्म तथा मोक्ष के सिद्धान्तों का समर्थन किया गया है।

(5) दोनों धर्म वेदों की प्रामाणिकता में विश्वास नहीं करते।

(6) दोनों ही धर्म में सच्चरित्रता और नैतिक आदर्शों पर अधिक बल दिया गया है।

(7) अहिंसा, दोनों धर्मों की प्राण है।

(8) दोनों ही धर्म हिन्दू धर्म के सुधारक के रूप में आये।

(9) दोनों ही धर्मों पर दुःखवाद की गहरी छाया है और दोनों ही में वैदिक काल के आर्यों की आशावादिता के दर्शन नहीं होते।

(10) बौद्ध तथा जैन दोनों ही धर्म दो प्रधान सम्प्रदायों में विभक्त हो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गये । बौद्धों के सम्प्रदाय महायान तथा हीनयान तथा जैनियों के श्वेताम्बर तथा दिगम्बर हुए ।

(11) दोनों ही धर्मों का प्रचार बोलचाल की भाषा में हुआ ।

(12) दोनों ही के त्रिरत्न हैं । जैनियों के तीन रत्न, सम्यक्-दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र हैं । बौद्धों के तीन रत्न-बुद्ध, धर्म तथा संघ हैं ।

(13) दोनों ही धर्मों के तीन धर्म-ग्रन्थ हैं । बौद्ध धर्म के ग्रन्थ 'त्रिपिटक' कहलाते हैं, जिनके अंग हैं—विनयपिटक, सुत्तपिटक, अभिधम्मपिटक । जैन धर्म के ग्रन्थ 'अंग' कहलाते हैं, जो तीन हैं—अंग-उपांग तथा मूलग्रन्थ ।

असमानताएँ

(1) मोक्ष सम्बन्धी धारणा में मतभेद—बौद्धों के अनुसार जब मनुष्य के हृदय में कोई बासना नहीं रहती है और वह अपनी वासनाओं को पूर्ण रूप से समाप्त कर देता है तो उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है । जीवित अवस्था में ही निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है । जैनियों के अनुसार दुःखों से मुक्ति पा लेने का नाम ही मोक्ष है, जिसके प्राप्त करने के लिए मृत्यु आवश्यक है ।

(2) मोक्ष प्राप्ति के साधनों में अन्तर—बौद्ध धर्मानुयायी संघ को मोक्ष प्राप्ति के लिए उचित बतलाते हैं । वे शारीरिक कष्टों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं । जैन धर्म के अनुयायी उपवास और कठोर तप में विश्वास करते हैं ।

(3) अहिंसा के सम्बन्ध में मतभेद—यद्यपि दोनों ही सम्प्रदाय अहिंसा पर बल देते हैं परन्तु इस विषय में जैन धर्म बौद्ध धर्म की अपेक्षा अधिक कठोर हैं ।

(4) आचरण सम्बन्धी अन्तर—बौद्ध धर्म अष्टांग मार्ग पर चलने पर बल देता है और जैन धर्म त्रिरत्नों को ही विशेष महत्व प्रदान करते हैं ।

(5) आचरण के सम्बन्ध में अन्तर—बौद्ध अनात्मवादी हैं परन्तु जैनी, प्रत्येक जीव में आत्मा का निवास मानते हैं ।

(6) ग्रन्थों की भाषा में अन्तर—जैन ग्रन्थ अधिकतर संस्कृत और प्राकृत भाषा में लिखे गये परन्तु बौद्ध धर्म के ग्रन्थ पाली भाषा में लिखे गये ।

(7) हिन्दू धर्म से सम्बन्ध में अन्तर—जैन धर्म हिन्दू धर्म के अति निकट मालूम होता है परन्तु बौद्धों ने पृथकता की नीति अपनाई । एक विद्वान न लिखा है :—

"जैन धर्म ने ब्राह्मणों की अनेक धार्मिक क्रिया-विधियों तथा समारोहों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का, एवं जाति-प्रथा का सुधरा हुआ रूप अपनाया, किन्तु बौद्धों ने इन्हें पूर्णतया अलग कर दिया है।"

(8) जाति-भेद सम्बन्धी मतभेद—सभी जैनियों ने जाति का विरोध किया परन्तु बौद्धों की तरह इस व्यवस्था पर कुठाराधात नहीं किया। उनकी शिक्षाओं में इस विरोध का उग्र रूप नहीं दिखलाई पड़ता।

(9) राज्याश्रय प्राप्ति में अन्तर—बौद्ध धर्म को अनेक सम्राटों ने अपनाया। अशोक और कनिष्क जैसे महान् सम्राटों के आश्रय में वह पनपा परन्तु जैन धर्म को इतना प्रबल संरक्षण कभी प्राप्त नहीं हुआ।

(10) प्रचार क्षेत्र में अन्तर—बौद्ध धर्म का प्रचार विदेशों में हुआ परन्तु जैन धर्म भारत की सीमाओं तक ही रहा। बौद्ध धर्म अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ख्याति प्राप्त कर गया परन्तु जैन धर्म को इसका श्रेय नहीं मिला।

प्रश्न (7) भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की क्या देन है ?

बौद्ध धर्म की देन

भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की अपार देन है। धर्म, दर्शन, साहित्य और कला सभी क्षेत्रों में इस धर्म ने भारत पर जो अमिट छाप डाली है वह चिरन्तन और चिरकालीन है। एक विद्वान का मत है, यद्यपि बौद्ध धर्म भारत से लुप्त है फिर भी देश की विचारधारा और जीवन पर अपना गहरा प्रभाव छोड़ गया है। 1000 वर्षों से अधिक बौद्ध धर्म का इस देश में प्रचार रहा, इस सुदीर्घ काल में इस धर्म ने अपना इतना अधिक प्रभाव छोड़ा है जो अभी तक विद्यमान है। बौद्ध धर्म के देन की चर्चा हम निम्नलिखित ढंग से करेंगे—

(1) सरल तथा स्पष्ट धर्म की स्थापना—बुद्ध की सबसे बड़ी देन है एक सरल और सुबोध धर्म का आदर्श प्रस्तुत करना। वैदिक धर्म कर्मकाण्ड और जाति भेद के फलस्वरूप बोझिल हो गया था। उसके स्थान पर एक ऐसे धर्म के स्थापना की आवश्यकता थी जो सर्वग्राह्य हो, महात्मा बुद्ध ने एक ही धर्म का आदर्श जनता के सम्मुख रखा। डा० जदुनाथ सरकार ने लिखा है—

"It gave us a popular religion, without any complicated and unintelligible ritual such as could be performed only by a priestly class."

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(2) **ब्राह्मण धर्म पर प्रभाव**—महात्मा बुद्ध ने सरल और स्पष्ट धर्म को चलाया था। उन्होंने ब्राह्मण धर्म को प्रभावित किया। ब्राह्मण धर्म पूर्णतया नष्ट नहीं हुआ परन्तु इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं कि बौद्ध धर्म के प्रभाव स्वरूप ब्राह्मण धर्म की मान्यताओं में अन्तर आ गया। इतिहास का अध्ययन करने से प्रतीत होगा कि बौद्ध धर्म की अहिंसा के फलस्वरूप ही ब्राह्मण धर्म से पशुबलि का प्रायः लोप हो गया। जटिल कर्मकाण्डों को उसमें स्थान देना कम कर दिया गया। बौद्ध धर्म के कारण ही भागवत, शैव आदि सम्प्रदायों का जन्म हुआ। इन सम्प्रदायों ने यज्ञों और बलि को महत्व न देकर भक्ति को महत्व प्रदान किया। पं० जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है।

"Buddhism influnced Indian life in a hundred ways. Even in the long years of its decline in India, it remained as a part of the Hindu faith."

(3) **मूर्ति पूजा का विकसित रूप**—बौद्ध धर्म के प्रभाव के फलस्वरूप ही मूर्ति पूजा का विकसित रूप देखने को मिला। वैदिक काल में देवताओं की पूजा प्रतीक के रूप में की जाती थी। कुछ विद्वानों ने तो यहाँ तक कहा है कि मूर्ति पूजा का प्रारम्भ बौद्धों द्वारा ही हुआ क्योंकि बौद्ध धर्म के पूर्व मूर्ति पूजा को यह स्थान प्राप्त नहीं हुआ था। बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय ने बुद्ध की मूर्ति बनाकर उनकी पूजा प्रारम्भ की और फलस्वरूप उसका प्रभाव अन्य धर्मों पर भी पड़ा।

(4) **दर्शन पर प्रभाव**—दर्शन के क्षेत्र में बौद्ध धर्म की महान् देन है। भारतीय दर्शन का विकास वैदिक काल में ही नहीं समाप्त हुआ। बौद्ध विद्वान् नागार्जुन ने शून्यवाद तथा माध्यमिक दर्शन को प्रतिपादित किया। इस धर्म के चिन्तन ने अनेक सम्प्रदायों को जन्म दिया जैसे प्रतीत्य, समूल्यवाद, शून्यवाद, योगाचार-स्वास्तवाद, सौत्रान्तिक तथा विज्ञानवाद आदि। भारतीय दर्शन में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए वसुमित्र, दिगनाथ और धर्मकीर्ति के दर्शन के अध्ययन की आवश्यकता है। बौद्ध दर्शन का खंडन करने के लिए ही अनेक दार्शनिक आये। इन दार्शनिकों में शंकराचार्य का नाम प्रमुख है। परन्तु शंकराचार्य भी बौद्ध धर्म से प्रभावित प्रतीत होते हैं। उनके विचारों पर बौद्धों की विचारसारिणी का प्रभाव है। उनका भाग्यवाद नागार्जुन के शून्यवाद का दूसरा रूप प्रतीत होता है। शंकराचार्य के दर्शन ने अन्य दार्शनिक विचारधाराओं को प्रभावित किया।

(5) **संघ व्यवस्था**—संघ-व्यवस्था को जन्म देने का श्रेय भी बौद्ध धर्म को ही है। इन संघों के द्वारा बौद्धों ने अपना प्रचार कार्य प्रारम्भ किया। भारत में इससे पूर्व संघ-व्यवस्था का यह रूप देखने को नहीं मिलता। हिन्दू धर्म में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यद्यपि संन्यासी तप के लिये वनों में जाते थे और एकान्तवास करके धर्म का चिन्तन किया करते थे, परन्तु धर्मोपदेश के लिए इस प्रकार के संघों की व्यवस्था नहीं हुई थी। इस प्रकार धर्म-प्रचार के लिए एक नई-शैली का जन्म बौद्ध धर्म की एक बहुत बड़ी देन है।

(6) अनुशासन-भावना का प्रसार—बौद्ध संघों और मठों के द्वारा अनुशासन भावना का प्रचार देश में हुआ। जदुनाथ सरकार का मत है, "बौद्ध धर्म की विशेषता यह थी कि इसमें अनुशासनपूर्ण ढंग का भिक्षु मंडली में संगठन किया गया था। यह ठीक है कि बौद्ध धर्म के विकास के पूर्व भी भारतवासी वृद्धावस्था में एकान्त में रह कर अपना सारा समय चिन्तन में बिताते थे, किन्तु भिक्षुओं का एक सूत्र में बँध कर रहना तथा एक के ही नेतृत्व में धर्म के नियमों का दृढ़ता से पालन करना.........बौद्ध धर्म की विशेषता है।"

वास्तव में बौद्ध भिक्षुओं ने जिस अनुशासन का परिचय दिया वह देशवासियों के लिए एक आदर्श था।

(7) साहित्यिक देन—साहित्य के क्षेत्र में भी बौद्ध धर्म की महान् देन है। संस्कृत व्याकरण, में चन्द्रगोविल का व्याकरण एक विशिष्ट स्थान रखता था। 'अमरकोष' के रचयिता विद्वान् अमरसिंह भी बौद्ध थे। आयुर्वेद सम्राट नागार्जुन ने एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की। अश्वघोष ने बुद्धचरित और 'सौन्दरानन्द' नामक महाकाव्यों का सृजन किया। 'राष्ट्रपाल' व 'सारिपुत्र' नाटक भी उन्होंने लिखे। हर्ष ने 'नागानन्द' की रचना की। पाली भाषा के साहित्य में 'त्रिपिटक' नामक ग्रंथ के लिखने का श्रेय भी बौद्ध धर्मानुयायियों को ही है। बौद्ध साहित्य की जातक कथाएँ संसार प्रसिद्ध हैं। एक विद्वान् ने लिखा है। "इतना कहने में कोई हिचक नहीं कि बौद्धों के धार्मिक ग्रन्थों की उपयोगिता केवल इसीलिए नहीं है कि उनके द्वारा हमें इस धर्म के सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त होता है वरन् उन्होंने प्राचीन भारत के इतिहास के पुनर्निमाण जैसे दुःसह कार्य में विद्वानों की काफी सहायता की।"

(8) लोक भाषाओं का विकास—लोक भाषाओं के विकास के क्षेत्र में भी बौद्ध धर्म का योगदान है। भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेश लोक भाषा में ही दिये। पालि साहित्य का प्रचार इसी के कारण हुआ। बौद्ध धर्मानुयायियों ने 'मिलिन्दपन्हों' 'महावस्तु' और 'दीर्घनिकाय' जैसे ग्रन्थों की रचना पाली भाषा में ही की है।

(9) कला के क्षेत्र में देन—कला के क्षेत्र में बौद्ध धर्म की बहुत बड़ी देन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। भारतीय शिल्प-कला, मूर्तिकला की अभिवृद्धि में बौद्ध धर्म ने बहुत बड़ा योग दिया। एक विद्वान् के शब्दों में, "यद्यपि भारतीय कला की परम्परा काफी प्राचीन है तथापि हमें सिन्धु घाटी की कला को छोड़कर भारत में कला के जो नमूने प्राप्त होते हैं उनमें से अधिकांश बौद्ध कला के ही नमूने हैं। मूर्तिकला और शिल्प-कलाओं का तो उद्भव ही सम्भवतः बौद्ध धर्म के द्वारा हुआ। एक यह भी महत्वपूर्ण बात है कि बौद्ध कलाकारों ने जिन कृतियों का निर्माण किया उनका सौन्दर्य और सौष्ठव साधारण नहीं है।"

गुहा मन्दिरों का निर्माण सबसे पहले बौद्धों ने किया। सांची और भरहुत के स्तूप बौद्ध कला की ही देन हैं। गान्धार और मथुरा के कला केन्द्र, भारतीय बौद्ध कला की महान् देन हैं। अजन्ता और बाघ आदि की चित्रकारी में बौद्धों का बहुत बड़ा योगदान है। एलोरा, अजन्ता, कार्ली आदि में पहाड़ों को काटकर बनाये गये भव्य प्रासाद बौद्ध शिल्पियों की कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। प्रोफेसर कोहन का मत है :—

"यह स्पष्ट है कि बौद्ध कला का अनुभव हम सबों के लिये एक गम्भीर अनुभव होना चाहिए। सभी क्षेत्रों में, चित्रकला में, स्थापत्य कला में, वास्तुकला में और कारीगरी में.........बौद्ध धर्म ने ऐसी कलाकृतियों का निर्माण किया है जो पाश्चात्य कला की श्रेष्ठतम कृतियों के समक्ष रखी जा सकती हैं।"

(10) बौद्धिक तथा विचारों की स्वतन्त्रता—बौद्ध धर्म ने विचार स्वातंत्र्य की ओर विशेष बल दिया। महात्मा बुद्ध का उपदेश था कि किसी का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए। 'आत्मदीप' बनकर ही आत्मा को प्रकाशित करना चाहिए। इस प्रकार बौद्ध धर्म ने बौद्धिक तथा विचारों की स्वतन्त्रता की स्थापना की।

(11) राजनीतिक तथा सामाजिक एकता—बौद्ध धर्म ने देश में राजनीतिक और सामाजिक एकता को स्थापित करके राष्ट्रीयता के विकास का महान् कार्य किया। देश के जातिगत बन्धनों को छिन्न-भिन्न करके अन्ध-विश्वासों और रूढ़ियों को तोड़कर भारतीय जनता को अन्धकूप से निकालने का श्रेय बौद्धों को ही है। जन भाषा और जन साहित्य ने राष्ट्रीय भावनाओं को प्रबल किया और देश में धार्मिक एकता के साथ ही राजनीतिक एकता की स्थापना हुई।

(12) भारतीय संस्कृति का विदेशों में प्रसार—भारतीय संस्कृति के प्रसार के क्षेत्र में बौद्ध धर्म की महान् देन है। इस धर्म के फलस्वरूप हमारी संस्कृति का प्रसार, चीन, जापान, मंगोलिया, बर्मा, जावा, सुमात्रा, तिब्बत और लंका आदि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देशों में हुआ। बौद्ध धर्म देश की सीमाओं में बँधकर नहीं रहा। फलस्वरूप, उसका विदेशों में प्रसार हुआ और विदेशियों ने भारत को एक तीर्थ समझा। श्री जदुनाथ सरकार ने लिखा है, "बौद्ध धर्म ने भारत तथा विदेशों के बीच सम्बन्ध स्थापित किया.........वह देश का विश्वव्यापी आन्दोलन था, जिसमें जाति का कोई बन्धन नहीं था, अतः सभी प्राचीन पूर्वी देशों ने इसे स्वतन्त्रता-पूर्वक अपना लिया। भारतीय भिक्षु तथा विद्वानों ने बौद्ध धर्म का सन्देश ईसा से तीन शताब्दी पूर्व ही विदेशों में पहुँचाया था, अतः इस धर्म के मानने वाले विदेशी भारत को पवित्र तीर्थ स्थान तथा अपने धर्म का मूल स्रोत मानने लगे थे और सद्गृहस्थ भारत की यात्रा को तीर्थ-यात्रा समझने लगे थे।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की महान् देन है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | 3

मौर्य-शासन की सामाजिक पृष्ठभूमि और मौर्य संस्कृति
(THE SOCIAL BACKGROUNDS OF MAURIA RULE AND THE MAURIAN CULTURE)

भूमिका—भारतीय इतिहास में मौर्यकाल का विशेष महत्व है। 321 ई० पू० में चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपने गुरु चाणक्य की सहायता से नन्दवंश के अन्तिम शासक का नाश करके मौर्य साम्राज्य की स्थापना की थी। 299 ई० पू० में बिन्दुसार मौर्य साम्राज्य का राजा हुआ। तत्पश्चात् 273 ई० पू० में अशोक महान गद्दी पर बैठा। उसने 236 ई० पू० तक राज्य किया। अशोक के शासन काल में मौर्य साम्राज्य उन्नति के शिखर पर पहुँच गया'। उसके राज्य की सीमाएँ उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में चित्तल दुर्ग जिले तक और उत्तर-पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में बंगाल तक थी। मौर्य साम्राज्य का पतन 184 ई० पू० में हुआ। इस अध्याय में हम भारतीय इतिहास के मौर्यकाल की सामाजिक पृष्ठभूमि और मौर्य संस्कृति पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

प्रश्न (1) मौर्यों के शासन की स्थापना के समय भारत की राजनीतिक स्थिति पर संक्षेप में प्रकाश डालिए और मौर्यों की शासन-व्यवस्था का उल्लेख कीजिए।

321 ई० पू० में चन्द्रगुप्त मौर्य ने मगध में मौर्य वंश के शासन की स्थापना की। उस समय देश की राजनीतिक स्थिति किस प्रकार की थी, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि विभिन्न साक्ष्यों में उस युग की राजनीतिक स्थिति का विस्तृत वर्णन प्राप्त नहीं होता। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उस युग की राजनीतिक स्थिति अच्छी न रही होगी क्योंकि चन्द्रगुप्त के सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व ही सिकन्दर समस्त भारत को रौंदता हुआ गया था। ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय समस्त भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था केवल मध्य और पूर्व में विशाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मगध साम्राज्य था जिन पर नन्दों का शासन था। सिकन्दर के आक्रमण के समय विभिन्न राज्यों का उल्लेख वहाँ संक्षेप में किया जा रहा है और उन्हीं से चन्द्रगुप्त मौर्य के सिंहासनारूढ़ होने के समय की भारत की राजनीतिक स्थिति की जानकारी प्राप्त की जा सकती है क्योंकि सिकन्दर उत्तर भारत को केवल रौंदता हुआ गया था और उसकी विजयों का इन राज्यों की राजनीतिक स्थिति पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था। सिकन्दर के आक्रमण के समय में उत्तरी भारत में जो छोटे-छोटे राज्य थे उनका उल्लेख यहाँ किया जा रहा है :—

(1) **अश्वक या अस्पेसियन**—यह राज्य काबुल के उत्तर में अलिसग, कूनार और बजोर नदियों की घाटियों में था। इसकी राजधानी कूनार नदी के तट पर थी।

(2) **गुरेइन या गौर**—यह राज्य अस्पेसियन के मध्य में पजकार नदी की घाटी में था।

(3) **अस्सेकेनोज**—यह राज्य सिन्धु नदी के पूर्व में फैला था। मालकन्द दर्रे के निकट मस्सग इसकी राजधानी थी।

(4) **नीसा**—काबुल और सिन्धु नदी के बीच में नीसा राज्य था।

(5) **प्यकेलाटिस या पश्चिमी गान्धार**—इसकी राजधानी पुष्कलावती थी।

(6) **तक्षशिला**—सिन्धु और झेलम के मध्य तक्षशिला का राज्य था इसका राजा आम्भी था।

(7) **अरसका या उरशा**—अरसक या उरुशा राज्य आधुनिक हजारा और प्राचीन कम्बोज में था।

(8) **अभिसार**—इसके अन्तर्गत काश्मीर का पश्चिमी भाग आता है।

(9) **पुरु राज्य**—झेलम और चिनाव के बीच में राजा पोरस का पुरु राज्य था।

(10) **ग्लागनिकाई**—चिनाब नदी के पश्चिम में यह राज्य था।

(11) **गैण्डरिस**—रावी और चिनाब नदी के बीच में यह राज्य स्थित था।

(12) **अड्रेस्टाइ**—यह राज्य रावी नदी के पूर्व में था।

(13) **कठ**—रावी और व्यास नदी के बीच कठ का राज्य था।

(14) **सौभूति**—यह राज्य झेलम नदी के तट पर था।

(15) **केगलस**—यह रावी और व्यास के बीच में था।

(16) **सिबोई**—यह भी झेलम और चिनाव के बीच में था।

(17) **क्षुद्रक**—झेलम और चिनाव के संगम के नीचे क्षुद्रक जाति के लोगों का स्वतंत्र गणराज्य था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(13) **मालव**—यह राज्य रावी के निचले भाग के दाहिनी ओर था।

(19) **अम्बष्ठ**—यह मालव राज्य का पड़ोसी राज्य था।

(20) **जैथूराइ**—इस जाति का समीकरण क्षत्री से किया है। इस जाति का राज्य भी चिनाव और रावी के बीच में था।

(21) **ऑक्सेडिग्राइ**—इनका राज्य सिन्धु और चिनाव के बीच में था।

(22) **मैसिकेनाज**—यह राज्य आधुनिक सिन्ध में था।

(23) **पैटलीन**—यह नगर सिन्ध नदी के डेल्टा पर था।

सिकन्दर के वापस लौटने के पश्चात इनमें कुछ राज्य अत्यन्त शक्तिशाली हो गये। साथ ही सीमाप्रान्त पर यूनानियों की सत्ता भी स्थापित हो गई।

सिकन्दर के प्रस्थान करते ही चन्द्रगुप्त मौर्य जब सिंहासनारूढ़ हुआ तो उसने इन विभिन्न राज्यों को एकता के सूत्र में बाँधा। मगध राज्य को उसने अत्यन्त परिश्रम से प्राप्त किया था और उसके स्थायित्व के लिए यह आवश्यक था कि वह छोटे-छोटे विभिन्न राज्यों का अन्त करके अपने साम्राज्य की सीमा का विस्तार करे। 'मुद्राराक्षस' में चन्द्रगुप्त के अनेक वैरियों का उल्लेख हुआ है। सबसे पहले चन्द्रगुप्त ने पंजाब पर आक्रमण किया और वहाँ से यूनानियों के विजय के अवशेष चिह्नों को सर्वदा के लिए अन्त कर दिया और अब भारत में यूनानी राज्य का नाम तक अवशेष न रहा। उसने सेल्यूकस पर विजय प्राप्त करके भारत में एकता स्थापित करने का एक महान कार्य सम्पन्न किया। सेल्यूकस पर विजय के फलस्वरूप चन्द्रगुप्त को गान्धार, काबुल, हेरात और बलूचिस्तान का कुछ भाग प्राप्त हो गया था। पश्चिमी भारत और दक्षिणी भारत भी उसने विजय किया। प्रो० काश्यप ने उसके साम्राज्य के विषय में लिखा है, "उत्तर-पूर्व में हिन्दूकुश से लेकर दक्षिण-पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक उसका साम्राज्य विस्तृत था।" काश्मीर, कलिंग, और सुदूर दक्षिण के कुछ भाग इसमें सम्मिलित नहीं थे। उसके साम्राज्य का स्वरूप विशिष्ट रूप से बहुत कुछ आधुनिक था। इसमें कुछ विजित राष्ट्र सम्मिलित थे कुछ प्रान्तों में आन्तरिक स्वतंत्रता थी जैसे लिच्छवि, वज्जि, मल्ल, भद्र आदि। इसी प्रकार यवन, कम्बोज को भी कुछ स्वतंत्रता प्रदान की गई थी। सुराष्ट्र (सौराष्ट्र) महाराष्ट्र तथा विन्ध्य-मेखला पार्श्ववर्ती वन्य प्रदेशों तथा पर्वतीय भू-भागों में भी आन्तरिक स्वतंत्रता थी।' इस विषय में डाक्टर स्मिथ का विचार है कि "अफगानिस्तान, प्राचीन आरियाना (Ancient Ariana) हिन्दूकुश पर्वतमाला, पंजाब, उत्तर प्रदेश (भूतपूर्व संयुक्त प्रान्त) विहार, सुदूर-पश्चिम में काठियावाड़ का प्रायद्वीप, इत्यादि प्रदेश चन्द्रगुप्त के राज्य के अंग थे। सम्भवतः बंगाल भी साम्राज्य में सम्मिलित था। यह

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जब चन्द्रगुप्त के शासन का अन्त हुआ तो उस समय उसके राज्य की सीमाएँ दूर-दूर तक फैली थीं। यह समय 298 ई० पू० का समय था। इस समय वह सम्पूर्ण भारतवर्ष का सम्राट था। नर्मदा उसके साम्राज्य की दक्षिणी सीमा थी। वहाँ इस बात का स्पष्ट प्रमाण तो नहीं मिलता कि उसने दक्षिण को विजय किया हो किन्तु यह सम्भव है कि वह अपने सिपाहियों को नर्मदा पार ले गया हो। मैसूर की परम्परा के अनुसार उस प्रदेश में नन्द राजाओं का आधिपत्य भी था।''

इस प्रकार चन्द्रगुप्त ने अपने पुत्र बिन्दुसार और पौत्र अशोक के लिए एक विशाल साम्राज्य छोड़ा था और जो राजनीतिक अस्थिरता सिकन्दर के आक्रमण के समय देश में व्याप्त थी उसे दूर किया था। उसका साम्राज्य कई भागों में धिभाजित था। ये भाग कितने थे, इस सम्बन्ध म कोई जानकारी नहीं है। इन भागों को 'चक्र' के नाम से पुकारा जाता था। अशोक के समय निम्नलिखित चक्र थे :—

(1) **उत्तरापथ**—इसमें गान्धार, काश्मीर, काम्बोज, अफगानिस्तान और पंजाब के प्रदेश थे। इसकी राजधानी तक्षशिला थी।

(2) **मध्य देश**—इसमें आधुनिक उत्तर प्रदेश, बिहार तथा बंगाल का भाग था। इसकी राजधानी पाटलिपुत्र थी।

(3) **दक्षिण का प्रदेश**—इसमें विन्ध्याचल के दक्षिण का सारा प्रदेश आ गया था। इसकी राजधानी स्वर्णगिरि थी।

(4) **पश्चिमी प्रदेश**—इसमें काठियावाड़ गुजरात, राजस्थान और मालवा का प्रदेश सम्मिलित किया गया था।

(5) **कलिंग**—इस प्रदेश को अशोक ने जीत कर अपने राज्य में मिला लिया था और इसकी राजधानी तोषाली थी।

मौर्य शासन-व्यवस्था

मौर्यों ने अपने शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए सुदृढ़ शासन की स्थापना की थी। उनकी शासन-व्यवस्था की जानकारी कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' तथा मेगस्थनीज के 'इंडिका' नामक ग्रन्थ से विशेष रूप से होती है। यहाँ हम मौर्यों की शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं :—

(अ) **सम्राट**—मौर्यों का शासन एकतन्त्रीय पद्धति पर आधारित था। सम्पूर्ण शासन का प्रधान सम्राट था, और उसकी देखभाल में सम्पूर्ण प्रशासन चलता था। डा० रामशंकर त्रिपाठी लिखते हैं, ''शासन का प्रधान सम्राट होता था जिसकी सेना, न्यायप्रशासन तथा विधान निर्माण के सम्बन्ध में सर्वोच्च तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्तिम सत्ता होती थी । राजा सर्वशक्ति सम्पन्न होते हुए भी निरंकुश नहीं था । सम्राट तीन प्रकार के कार्य करता था—(1) प्रशासन-सम्बन्धी (2) न्याय-सम्बन्धी (3) सेना सम्बन्धी । प्रशासनिक कार्यों की दृष्टि से वह राज्य के मुख्य अधिकारियों की नियुक्ति करता, राजदूतों से बातचीत करता, और गुप्तचर विभाग के कर्मचारियों से राज्य के समाचारों के सम्बन्ध में वार्तालाप करता था । न्यायाधीश के रूप में वह प्रजा की शिकायतों को सुनता और निचली अदालत से आए अभियोगों का फैसला करता था । सेना-सम्बन्धी कार्यों में वह सेना का संगठन, युद्ध में उसका नेतृत्व तथा देश रक्षा का कार्य करता था । कुछ इतिहासकारों ने उसे निरंकुश शासक माना है । परन्तु यह उचित नहीं है क्योंकि सर्वशक्तिमान होते हुए भी वह मनमानी नहीं कर सकता था ।

(ब) मन्त्रि परिषद् —शासन के कार्य में राजा को सहायता देने के लिए उसने मन्त्रि-परिषद् का गठन किया था । इसमें 12 से 20 तक सदस्य हुआ करते थे । आवश्यकतानुसार मन्त्रियों की संख्या घटाई-बढ़ाई जा सकती थी । चाणक्य का कथन है, "राजसत्ता सहायता द्वारा ही सम्भव है क्योंकि एक पहिए की गाड़ी कभी चल नहीं सकती । अतएव सम्राट को चाहिए कि वह मन्त्रियों की नियुक्ति करे और उनके परामर्श पर ध्यान दे ।" सम्राट मन्त्रि-परिषद् के निर्णय मानने के लिए बाध्य न था, परन्तु व्यवहारतः वह उसके परामर्श का पालन करता था ।

(स) केन्द्रीय सरकार के विभाग और अधिकारी—शासन की सुविधा के लिए केन्द्रीय सरकार में 18 विभाग थे । ये विभाग तीर्थ कहलाते थे, और प्रत्येक विभाग (तीर्थ) का अलग-अलग एक अध्यक्ष होता था जो अमात्य कहलाता था । ये अमात्य निम्नलिखित थे—(1) प्रधान (मन्त्री तथा पुरोहित), (2) समाहर्ता (राजस्व मन्त्री), (3) सन्निधाता (कोषाध्यक्ष), (4) सेनापति, (5) युवराज, (6) प्रदेष्टा, (शासन-सम्बन्धी न्याय के लिए अमात्य), (7) व्यावहारिक (उत्तराधिकार सम्बन्धी न्यायालयों का अमात्य), (8) नायक (सेनापति) (9) कर्मान्तिक (उद्योग मन्त्री) (10) मन्त्रि-परिषदाध्यक्ष, (11) दण्डपाल (सेना की सामग्री जुटाने वाला मन्त्री) (12) अन्तपाल (सीमा-रक्षक मन्त्री), (13) दुर्गपाल (गृह-रक्षा मन्त्री, (14) पौर (राजधानी के प्रबन्ध का अध्यक्ष), (15) प्रशास्ता (राजकीय कागज-पत्रों का मन्त्री), (16) दौवारिक (मुख्य द्वार की रक्षा का प्रमुख अधिकारी), (17) अन्तर्वेशिक (राजा और उसके परिवार के रक्षकों का मुख्य अधिकारी), (18) आटविक (जंगल विभाग का मन्त्री) । उक्त 18 विभागों के अतिरिक्त अनेक उप विभाग भी थे, जिनका प्रधान अधिकारी अध्यक्ष कहलाता था ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(2) प्रान्तीय शासन—विशाल साम्राज्य के प्रशासन को सुविधापूर्वक चलाने के लिये साम्राज्य कई प्रान्तों में बाँटा गया था। प्रत्येक प्रान्त का शासक 'कुमार' कहलाता था। प्रान्त दो प्रकार के होते थे। पहले प्रकार के प्रान्त सैनिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होते थे और इनका शासक राजवंश का कोई राजकुमार होता था। दूसरे प्रकार के प्रान्त प्राच्य थे। यह गृह राज्य होते थे और इनका शासन सम्राट स्वयं महामात्य नामक अधिकारियों की सहायता से करता था। कुछ तीसरे प्रकार के भी प्रदेश थे जिन्हें शासन में कुछ स्वतन्त्रता प्राप्त थी। एरियन ने कुछ ऐसे नगरों के लोगों का वर्णन किया है जिन्हें इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्त थी। केन्द्रीय सरकार का दूरस्थ प्रान्तों पर भी नियन्त्रण था। इसकी प्रशंसा इतिहासकार स्मिथ ने निम्न शब्दों में की है :—

"The control of the Mauryan Central Government over distant provinces and subordinate officials appears to have been more stringent than exercised by Akbar."

—V. A. Smith.

(3) स्थानीय शासन—मैगस्थनीज ने 'इण्डिका' पुस्तक में नगर-शासन-व्यवस्था का वर्णन किया है। नगर शासन-व्यवस्था का प्रमुख अधिकारी 'नागरिक' कहलाता था। मैगस्थनीज के लेखों के अनुसार पाटलिपुत्र का शासन तीस सदस्यों की समिति द्वारा होता था। यह समिति 6 उपसमितियों में विभाजित की गई थी और प्रत्येक उपसमिति में 5 सदस्य होते थे। 6 उपसमितियाँ ये थीं—(1) शिल्प तथा कला समिति (2) वाणिज्य समिति (3) जनगणना समिति (4) विदेशी यात्री समिति (5) कर समिति (6) वस्तु-निरीक्षक समिति।

शासन की लघुतम इकाई ग्राम थे। इसका प्रधान 'ग्रामिक' होता था। 'ग्रामिक' गाँव का कोई अनुभवी और प्रभावशाली व्यक्ति होता था और उसकी नियुक्ति सरकार की ओर से होती थी। ग्रामिक के ऊपर 'गोप' तथा 'गोप' के ऊपर 'स्थानिक' अधिकारी होते थे। इस समय गांव के प्रबन्ध के लिए विशेष ध्यान दिया जाता था।

(4) पुलिस और गुप्तचर विभाग—राज्य में आन्तरिक शान्ति-व्यवस्था के लिए पुलिस विभाग भी था। इसके दो विभाग थे—(1) पुलिस (2) गुप्तचर। पुलिस के सिपाही को 'रक्षिन' कहा जाता था। अर्थशास्त्र में लिखा है कि गुप्तचरों के भी दो वर्ग होते थे—एक वर्ग को 'संस्थान' और दूसरे को 'संचारण' कहते थे। पहले वर्ग के गुप्तचर एक ही स्थान पर रहते थे परन्तु दूसरे वर्ग के गुप्तचर घूमा करते थे। इन गुप्तचरों द्वारा प्रत्येक अधिकारी और प्रान्त के समाचार राजा तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहुँचाये जाते थे। सम्राट ने प्रत्येक मंत्री के पीछे कई गुप्तचर लगा रखे थे। सम्राट का गुप्तचर विभाग अत्यन्त संगठित और सुदृढ़ था।

(5) **न्याय-व्यवस्था**—सम्राट स्वयं प्रधान न्यायाधीश होता था और उसका निर्णय अन्तिम होता था। नगरों और जनपदों में अलग-अलग न्यायाधीश होते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार 18 प्रकार के दण्ड दिए जाते थे। पाटलिपुत्र में उच्चतम न्यायालय था, जहाँ लोगों की अन्तिम अपील होती थी। नगरों के न्यायाधीश 'व्याबहारिक महामात्र' और जनपदों के न्यायाधीश 'न्यायाधीश 'राजुक' कहलाते थे। दण्ड-विधान कठोर थे और राजद्रोह या फौजदारी के सम्बन्ध में कठोर दण्ड दिया जाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि उस समय भी न्याय की उत्तम व्यवस्था थी।

(6) **भूमि-कर व्यवस्था और राज्य की आय के साधन**—सम्राट को सेना और शासन पर अपार धन व्यय करना होता था। राज्य की आय के अनेक साधन थे। जिसमें भूमि-कर मुख्य था। गांवों से धन प्राप्त करने के दो साधन थे—(1) भाग, (2) बलि। उपज का 1/6 भाग कर के रूप में लिया जाता था। संकट के समय 1/4 भाग लिया जाता था। जब दैवी प्रकोपवश खेती की हानि पहुँचती थी तो केवल 1/8 भाग कर के रूप में लिया जाता था। 'बलि' नामक कर 'भाग' कर के अतिरिक्त होता था। भूमि-कर एकत्र करने वाला अधिकारी 'अग्रम' कहलाता था। खान तथा वन पर सरकारी अधिकार होता था जिससे राज्य को बड़ा लाभ होता था। इसके अतिरिक्त हाट, मेलों, बाजारों पर भी कर लागाया जाता था। शराब और नशीली वस्तुएँ विक्रय करने वाले दूकानदारों पर भी राज्य कर लगाता था।

(7) **सिंचाई का प्रबन्ध**—कृषि की उन्नति के लिए राज्य की ओर से सिचाई-व्यवस्था की गई थी। उसका उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र और मेगस्थनीज के ग्रन्थों में हुआ है। इस विभाग के अधिकारी सिचाई के लिए नहरों, तालाबों और कुंओं का प्रबन्ध करते थे। नहरों से पानी लेने वाले किसान सरकार को कर देते थे। इस युग में कृषि की दशा अच्छी थी। किसानों द्वारा राज्य की ओर से आर्थिक सहायता भी दी जाती थी।

(8) **सड़कों का प्रबन्ध**—सड़कों की व्यवस्था के अधिकारी नयी सड़कों का निर्माण, विस्तार और पुराने मार्गों का सुधार आदि कराते थे। मार्गों पर दूरी प्रकट करने के लिए आज कल के समान पत्थर भी लगे हुए थे। मार्ग के किनारे-किनारे छायादार वृक्ष कुएँ और यात्रीशालाएँ भी थीं। इस प्रकार स्पष्ट है कि आवागमन के श्रेष्ठ साधन थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(9) लोक हितकारी कार्य विभाग—इस विभाग का उद्देश्य जनता को अधिक सुविधाएँ प्रदान करना था। सड़क-निर्माण, सिंचाई की व्यवस्था, औषधालय खोलना, शिक्षा-व्यवस्था इसी विभाग के कार्य थे। नगर और ग्रामों की स्वच्छता पर बड़ा ध्यान दिया जाता था। लोकहितकारी विभाग ने प्रजा को अधिक से अधिक सुविधा और सुख प्रदान करने का प्रयत्न किया था।

(10) सेना का प्रबन्ध—मौर्य सम्राट महत्वाकांक्षी थे इसलिए उन्होंने एक विशाल और व्यवस्थित सेना का संगठन किया था। इतिहासकार स्मिथ के शब्दों में

"चन्द्रगुप्त मौर्य के पास एक विशाल स्थायी सेना थी जिसे राजकोष से वेतन दिया जाता था और जो अकबर की सेना से भी अधिक सुयोग्य थी।" उसकी सेना में 9000 हाथी, 8000 रथ, 3000 घोड़े और 6 लाख पैदल सैनिक थे। सेना का सर्वोच्च अधिकारी सेनापति था। उक्त सेना का प्रबन्ध करने के लिए 30 सदस्यों की 6 समितियों का निर्माण किया गया था। सेना के छः प्रमुख विभाग थे—(1) पैदल सेना विभाग (2) रथ विभाग (3) गज विभाग (4) नौसेना विभाग (5) रसद विभाग (6) अश्वारोही विभाग, अर्थशास्त्र के अनुसार एक चिकित्सा विभाग भी होता था। उसकी सेना स्थायी थी, तथा प्रत्येक सैनिक को राजकोष द्वारा वेतन दिया जाता था।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मौर्यों ने सुदृढ़ शासन-व्यवस्था की नींव डाली थी।

प्रश्न (२)— अशोक के धर्म के विषय में आप क्या जानते हैं ? उसने बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए क्या किया ?

"बौद्ध धर्म के प्रचारकों में अशोक अग्रणी था।" इस कथन की विवेचना कीजिये।

प्रस्तावना—कलिंग युद्ध को यदि भारतीय इतिहास की युगान्तरकारी घटना की संज्ञा दी जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। इस युद्ध के पश्चात् भारत में नवयुग तथा नये आदर्शों का सूत्रपात हुआ। कुछ इतिहासकारों के अनुसार कलिंग-विजय अशोक की पहली और अन्तिम भौतिक विजय थी। इस युद्ध की विभीषिका, घोर रक्तपात तथा हत्याकाण्ड ने उदार अशोक के हृदय को द्रवीभूत कर दिया। इसके पश्चात उसने भौतिक विजय के स्थान पर नैतिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक विजय आरम्भ कर दी। इसके पश्चात वह बौद्ध धर्म की ओर उन्मुख हुआ और अब भेरी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घोष के स्थान पर धर्म-घोष होने लगा। अपने 13वें शिलालेख में अशोक ने बतलाया है कि वह बौद्ध धर्म की शरण में गया। धीरे-धीरे इस धर्म के प्रति उसकी श्रद्धा प्रगाढ़ होती गयी।

क्या अशोक बौद्ध नहीं था ?

अशोक के धर्म के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। डा० मुकर्जी ने लिखा है, "अशोक के व्यक्तिगत और सामूहिक धर्म का अन्तर स्पष्ट करना चाहिये। जिस धर्म का अशोक ने प्रचार किया वह निश्चय ही बौद्ध नहीं है। कुछ अन्य इतिहासकारों ने भी इस सम्बन्ध में संदेह व्यक्त किया है। सेनार्ट कर्न तथा फ्लीट की धारणा है कि अशोक बौद्ध नहीं था। सेनार्ट का कथन है, "अशोक के धर्म में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे हम उसे केवल बौद्ध कह सकें। कर्न का विचार है, "अशोक के शिलालेखों को छोड़कर उसमें और कोई बात नहीं है जो विशेष रूप से बौद्धों की हों। "फ्लीट महोदय का कथन है, अशोक का ध्येय बौद्ध या अन्य किसी धर्म का प्रचार करने का नहीं था। उसका ध्येय सभी धार्मिक सम्प्रदायों का ध्यान रखते हुए एक दया तथा न्याय का शासन करना था। "डा० रामशंकर त्रिपाठी का कथन है, "जिन बातों पर अशोक ने जोर दिया है वे सभी धर्मों में समान हैं इस लिए यह कहना ठीक नहीं है कि उसने अपने विशाल साम्राज्य के सभी साधनों को एक विशेष धर्म का प्रचार करने में लगा [illegible]

अशोक के बौद्ध होने में संदेह के कारण—

(1) अशोक ने अपने अभिलेखों में निर्वाण की कोई चर्चा नहीं की है।

(2) बुद्ध जी के "चत्वारि आर्य सत्यानि" का अशोक ने कहीं पर एक बार भी उल्लेख नहीं किया।

(3) अशोक के अभिलेखों में मध्यमा परिपदा का कहीं पर उल्लेख नहीं है। उक्त शंकाओं के फलस्वरूप यही कहा जा सकता है कि अशोक बौद्ध धर्म का अनुयायी नहीं था।

अशोक के बौद्ध होने के प्रमाण

डा० हेमचन्द्र राय चौधरी तथा अन्य इतिहासकारों ने उक्त मत का खंडन किया है। डा० चौधरी का कथन है, "अशोक निश्चित रूप से बौद्ध बन गया था। बुद्ध धर्म तथा सघ में उसका अटूट विश्वास था। उसने गौतम बुद्ध के जीवन सम्बन्धी स्थानों की यात्रा भी की थी। बौद्ध सिद्धान्तों को व्याख्या में उसे बड़ी रुचि थी। "अशोक के बौद्ध होने के पक्ष में निम्नांकित प्रमाण हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(1) बौद्ध ग्रन्थ "महावंश" तथा "दीपवंश" में उसके बौद्ध धर्म में परिवर्तित होने का विवरण मिलता है।

(2) भब्रू शिलालेख में अशोक ने बौद्ध त्रिरत्नों (बुद्ध, धर्म और संघ) के प्रति अपनी आस्था प्रगट की है। सांची के अभिलेख में भी उसने बौद्ध त्रिरत्नों के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। बौद्ध त्रिरत्नों के प्रति अशोक की आस्था से सिद्ध होता है कि वह बौद्ध धर्मावलम्बी था।

(3) उसने मुख्य बौद्ध तीर्थों की यात्रायें की थीं और किसी अन्य धर्म के तीर्थों की यात्रा नहीं की थी।

(4) चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी उसका बौद्ध धर्मावलम्बी होना माना है।

(5) सारनाथ के शिलालेख में अशोक ने अपने को बौद्ध धर्म का संरक्षक घोषित किया है।

(6) उसने मन्त्रों तथा पशु वलि का विरोध किया था।

(7) उसने अनेक शिलालेखों और स्तूपों को बनवाया।

(8) उसने बुद्ध जी के उपदेशों को स्तूपों तथा शिलालेखों पर खुदवाया था।

(9) उसने बुद्ध जी की शिक्षाओं और सिद्धान्तों की व्याख्या के लिए पाटलिपुत्र में बौद्ध भिक्षुओं की विशाल सभा बुलाई थी।

(10) उसने बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए कई प्रचारकों को भारत के विभिन्न भागों तथा विदेशों में भेजा था।

अशोक के धर्म का स्वरूप और उसकी विशेषता

बौद्ध धर्मावलम्बी होते हुए भी अशोक ने प्रजा को जिस धर्म का पालन करने का उपदेश दिया, उसमें सभी धर्मों के मूलतत्वों का समन्वय था। बौद्ध होते हुये भी उसने अपने व्यक्तिगत विचार कभी जनता पर थोपने का प्रयास नहीं किया। अशोक ने माता पिता, गुरु और वृद्धों की सेवा पर और उनके प्रति आदर की भावना पर बल दिया है। उसने धर्म के निम्नलिखित गुणों के पालन को आवश्यक बतलाया है—सत्य, पवित्रता, दान, दया, संयम, साधुता, दृढ़ता। उसने इन दोषों को त्यागने का उपदेश दिया—जड़ता, निष्ठुरता, क्रोध, अभिमान, ईर्ष्या। उसने चित्त-शुद्धि के लिए आत्म निरीक्षण पर बल दिया। उसके धर्म की निम्न विशेषतायें थीं—

(1) **सार्वभौमिकता**—अशोक का धर्म सार्वभौमिक धर्म है क्योंकि उसमें सभी धर्मों का सार है। इस धर्म में साम्प्रदायिकता कहीं पर भी नहीं है।

(2)**धार्मिक सहिष्णुता**—इस धर्म में किसी अन्य धर्म से ईर्ष्या या द्वेष करने की आज्ञा नहीं है। यह धर्म "वसुधैव कुटुम्बकम्" के आदर्श का पालन कराता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(3) **नैतिक आदर्शों का प्राधान्य**—अशोक के धर्म में नैतिकता तथा आचरण की प्रधानता पर विशेष बल दिया गया है।

(4) **व्यावहारिकता**—इस धर्म के नियम व्यावहारिक हैं और इन नियमों को बाह्याडम्बरों या दार्शनिक सिद्धान्तों के जाल से अलग रखा गया है।

(5) **अहिंसा**—इस धर्म द्वारा अहिंसा पालन पर विशेष जोर दिया गया है। इस धर्म में सभी प्राणियों पर दया दिखाने की शिक्षा दी गई है।

(6) **अन्य धर्मों के लिये आस्था**—यह धर्म पूर्णतया उदार है और अन्य धर्मों के लोग अपने धर्म का पालन करते हुए भी इस धर्म को मान सकते थे।

बौद्ध धर्म के प्रसार के साधन

बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए अशोक ने निम्नलिखित कार्य किये—

(1) **बौद्ध धर्म को राजधर्म बनाना**—अशोक ने बौद्ध धर्म को राज धर्म स्वीकार किया। राज्य की सहानुभूति, सहायता और संरक्षण के फलस्वरूप यह धर्म निरन्तर पनपता गया।

(2) **धर्म विजय का संकल्प**—अशोक के 13 वें शिलालेख से स्पष्ट होता है कि उसने कलिंग युद्ध के पश्चात हिंसात्मक विजय का परित्याग कर दिया और धर्म-विजय का संकल्प लिया। उसने हथियारों का त्याग कर सत्य, अहिंसा और प्रेम जो बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धान्त थे, को अपनाया और इन सिद्धान्तों का सर्वत्र प्रसार किया।

(3) **धार्मिक प्रदर्शन**—बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए अशोक ने धार्मिक प्रदर्शनों की भी व्यवस्था की। चौथे शिलालेख से ज्ञात होता है कि अशोक ने लोगों को विमान-दर्शन, हस्ति-दर्शन और अग्नि-स्कन्ध आदि दिव्य रूपों के दर्शन कराये। इन प्रदर्शनों के फलस्वरूप जनता में धर्म निष्ठा और धर्म परायणता की भावना उत्पन्न हुई।

(4) **धर्म श्रावण**—सातवें स्तम्भ लेख से ज्ञात होता है कि समय-समय पर अशोक धर्म-श्रावण की भी व्यवस्था करता था। इस व्यवस्था के अन्तर्गत धार्मिक विषयों पर भाषण और वाद विवाद करता था। धर्म-श्रावण के कार्य में सहायता पहुँचाने के लिए उसने अपने राज्य के बड़े-बड़े कर्मचारियों, राजुक, प्रादेशिक आदि को आदेश दिये थे।

(5) **धर्म-विभाग की स्थापना**—अशोक ने धर्म विभाग की अलग स्थापना की थी। इस विभाग का अध्यक्ष धर्म-महामात्र होता था। अपने पाँचवें शिलालेख में अशोक स्वयं कहता है, "पहले धर्म-महामात्र नहीं थे किन्तु अभिषेक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के 13 वें वर्ष में मैंने धर्म-महामात्र नियुक्त किये। वे सब धर्मों अथवा सम्प्रदायों के लिये नियुक्त हैं। वे धर्म की स्थापना अथवा धर्म की देखरेख और धर्म की वृद्धि तथा धर्म पर आचरण करने वालों के सुख-दुःख के लिये नियुक्त हैं।" इससे स्पष्ट होता है कि धर्म-महामात्र प्रजा की आध्यात्मिक और नैतिक उन्नति का विशेष ध्यान रखते थे। धर्म-महामात्र भ्रमण करके धर्म का प्रचार करते रहते थे।

(6) मठों का निर्माण तथा उनकी सहायता—अशोक ने अपने साम्राज्य में विभिन्न स्थानों पर बौद्ध मठों और विहारों का निर्माण कराया। इन मठों में बहुत बड़ी संख्या में भिक्षु एवं भिक्षुणियाँ तथा धर्मोपदेशक निवास करते थे। ये सभी धर्म चिन्तन में लीन रहते थे। अशोक उनकी पूर्ण रूप से आर्थिक एवं अन्य प्रकार से सहायता करता था। उसकी इस व्यवस्था के फलस्वरूप बौद्ध धर्म का द्रुत-गति से प्रचार अवश्यम्भावी था।

(7) दान-व्यवस्था—बौद्ध धर्म के प्रचार पर अशोक की दान-व्यवस्था का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। राजधानी एवं अन्य स्थानों पर योगियों और दीन-दुःखियों को दान दिये जाने की व्यवस्था की गई थी। विभिन्न धार्मिक संस्थाओं को भी यह दान दिया जाता था और ये संस्थायें निरन्तर धर्म का प्रचार करती थीं।

(8) धर्म-यात्रा की व्यवस्था—अशोक ने धर्म-प्रचार का दृढ़ संकल्प लिया था। अतएव उसने 'विहार यात्रायें' समाप्त कर दीं और उनके स्थान पर धर्म-यात्रायें प्रारम्भ कीं। वह अन्य राजाओं की भाँति आखेट एवं मनोरंजन के अन्य साधनों में लीन नहीं रहता था। इनको तिलांजलि देकर वह तन-मन-धन से धर्म के प्रचार में लीन हो गया। धर्म के प्रचार के लिये वह विभिन्न स्थानों की यात्रायें भी करता था।

(9) पशु-वध निषेध—अशोक ने पशु-वध निषेध करके और प्राणि-मात्र पर दया दिखाने के उपदेश देकर अहिंसा का प्रचार किया। उसने यज्ञों में पशु-वध का निषेध कर दिया और ऐसे यज्ञों जिनमें पशु-वध होना अनिवार्य था, को समाप्त कर दिया। इन सब का जनता पर अधिक प्रभाव पड़ा और अहिंसा का अत्यधिक प्रचार हुआ।

(10) धर्म-मंगल की व्यवस्था—अशोक ने अपने धर्म की लोकप्रियता में वृद्धि करने के लिए उसके वास्तविक स्वरूप को जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया और बाह्याडम्बरों का खण्डन किया। अशोक ने जन्म,मृत्यु, विवाह और यात्रा आदि अवसरों पर होने वाले परम्परागत अनुष्ठानों और पाखण्डों का तिरस्कार किया और उनका निषेध किया। उसने आचरण की शुद्धता पर बहुत अधिक बल दिया। इस प्रकार अशोक ने बौद्ध धर्म के मंगलकारी स्वरूप को जनता के सम्मुख रखा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(11) धर्म-लिपि और शिलालेखों की व्यवस्था—अशोक ने अपने धर्म के प्रचार के लिये धर्म के सिद्धान्तों एवं आदेशों को पर्वत की चट्टानों एवं गुफाओं तथा पाषाण स्तम्भों पर लिखवाया। फलस्वरूप, साधारण जनता धर्म के सिद्धान्तों से परिचित हुई और इस धर्म का स्थायी प्रचार हुआ।

(12) पाली भाषा में बौद्ध धर्म के ग्रन्थों के लिखे जाने की व्यवस्था—अशोक ने धर्माचार्यों और भिक्षुओं को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे अपने उपदेश लोकप्रिय और जन-साधारण की भाषा में दें और जन साधारण की भाषा में धर्म-ग्रन्थों की रचना करें। इसका भी प्रभाव बौद्ध धर्म के प्रसार पर पड़ा।

(13) धर्म विजय की व्यवस्था—अशोक ने धर्म विजय की भी व्यवस्था की। उसने भारत के विभिन्न भागों के अतिरिक्त विदेशों में भी अपने धर्म-प्रचारक भेजे। उसने अपने शिलालेख में लिखा है: "देवानाम् प्रिय धर्म के द्वारा इस विजय को मुख्य समझता है यहां (भारत), पड़ोसी देशों और यहां तक कि 600 योजन दूर के देशों में भी यह विजय देवानां प्रिय को प्राप्त हुई है।" इस धर्म के प्रचारकों ने सिंहलद्वीप, चीन, जापान और स्वर्णभूमि आदि देशों में जाकर इस धर्म का बहुत अधिक प्रचार किया। अशोक के इस प्रकार के सम्बन्ध में प्रोफेसर आर० सी० मजूमदार ने लिखा है:

"The Emperor organized a net work of missions to preach the gospels. His missionaries visited not only the different parts of India, and Ceylon, but also Western Asia, Egypt and Eastern Europe...The great Emporer even sent his own children, his son—Mahendra and daughter Sanghamitra to preach the religion in Ceylone."

(14) लोकहित के कार्य—लोकहित के अनेक कार्यों के द्वारा भी अशोक ने धर्म का अत्यधिक प्रचार किया। उसने मनुष्यों और पशुओं दोनों की ही चिकित्सा के लिए अलग अलग औषधालयों का निर्माण करवाया जिनमें निःशुल्क चिकित्सा की जाती थी। उसने अनेक राजपथों, विश्रामगृहों और कुओं के निर्माण द्वारा भी बौद्ध धर्म के प्रचार में अप्रत्यक्ष रूप से बहुत अधिक सहायता पहुँचायी।

(15) निरीक्षकों की नियुक्ति—अशोक ने बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों एवं आदर्शों को शिलाओं, स्तम्भों और गुफाओं पर अंकित करने के आदेश ही नहीं दिये बल्कि कुछ ऐसे निरीक्षकों की भी नियुक्ति की जिनका कार्य यह देखना था कि धर्म प्रचार का कार्य सुचारु रूप से हो रहा है या नहीं। जनता इन अभिलेखों में अंकित उपदेशों का पालन कर रही है या नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(16) **बौद्ध संगीति का आयोजन**—अशोक ने अपने राज्याभिषेक के 18 वें वर्ष पाटलिपुत्र में तीसरी बौद्ध संगीति का आयोजन किया। इस संगीति के अध्यक्ष मुग्गलिपुत्त तिश्य थे। संगीति में बौद्ध धर्म के ग्रन्थों का संशोधन किया गया और बौद्ध संघ में जो दोष आ गये थे, उनको दूर करने का प्रयास किया गया। इन सुधारों के फलस्वरूप बौद्ध धर्म के प्रचार में आई हुई शिथिलता दूर हो गई और उसे नवजीवन की प्राप्ति हुई।

उपसंहार

अशोक के कार्य कलापों से ही बौद्ध धर्म ने अत्यधिक उन्नति की। इस धर्म को संसार के प्रमुख धर्मों में स्थान दिलाने का श्रेय अशोक को ही प्राप्त है परन्तु अशोक का धर्म संकीर्णता से परे था। बौद्ध धर्मावलम्बी होते हुए भी उसने व्यक्तिगत धर्म को प्रजा पर थोपने का प्रयास नहीं किया। उसने धार्मिक सहिष्णुता की नीति का अक्षरशः पालन करके परवर्ती सम्राटों का पथ-निर्देशन किया। इस प्रकार उसने विश्व-कल्याण के लिये एक ऐसे आदर्श मार्ग का निर्माण किया जिस पर चल कर प्रत्येक देश की जनता सुख शान्ति प्राप्त कर सकती है। आज भी हमारी राष्ट्रीय शासन-व्यवस्था में अशोक की नीति और सिद्धान्तों का प्रचुर समावेश है। डा० त्रिपाठी ने उसके धर्म में लिखा है—

"The 'Dharma' which he presents to the world is so to say, the essence or sara of all religions. He prescribes a Code of conduct with a view to making life happier and purer."

—Dr. R. S. Tripathi.

प्रश्न (4) "इतिहास के पृष्ठों को रंगने वाले सहस्रों राजाओं के नामों के मध्य अशोक का नाम सर्वोपरि नक्षत्र की भाँति देदीप्यमान है।" (एच० जी० वेल्स) इस कथन की विवेचना कीजिये।

अशोक की गणना महानतम सम्राटों में क्यों की जाती है?

अशोक की गणना संसार के महानतम सम्राटों में की गई है। अपने धार्मिक विचारों उच्च आदर्शों और आध्यात्मिक चिन्तन एवं त्याग के द्वारा अशोक भारतीय राजनीतिक जगत का एक ऐसा उज्जवल नक्षत्र बन चुका है जिसकी आभा कभी भी मलिन नहीं हो सकती। अपने विशाल साम्राज्य में उसने सुसंगठित शासन प्रबन्ध की स्थापना करके जनता के इहलौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया। यही कारण है कि डा० आर० के० मुकर्जी ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"In the annals of kingship, there is scarcely any record comparable to that of Ashoka, both as a man and as a ruler."

—Dr. R. K. Muckerjee.

अशोक की महानता उसके गुणों पर अवलम्बित थी। अपने विभिन्न गुणों के कारण ही उसकी गणना संसार के महानतम सम्राटों में की जाती है।

(1) महान एवं आदर्श विजेता—अशोक की शासन व्यवस्था आध्यात्मिकता पर आधारित थी। उसने झूठ और अन्धकार की ओर अग्रसर होती हुई प्रजा को सत्य, ज्ञान और आलोक का मार्ग दिखाया था। उसने अपने अधिकारियों के सम्मुख अपने चरित्र का आदर्श प्रस्तुत करते हुये उनके आध्यात्मिक स्तर को विकसित किया। उसने पग-पग पर प्रजा की भलाई के लिये कार्य किये। उसका कथन था कि "सर्व लोक हित से बढ़ कर किसी का कोई भी दूसरा कर्तव्य नहीं है।" एक अन्य स्थल पर वह कहता है, "हर समय चाहे मैं भोजन करता हूँ या शयनागार में हूँ, प्रतिवेदक प्रजा की दशा से मुझे अवगत करें। मैं सर्वत्र प्रजा कार्य का करूँगा।

अशोक ने अपने बाबा चन्द्रगुप्त मौर्य की कठोर शासन व्यवस्था में कुछ सुधार किये थे। उसने कठोर शासन व्यवस्था को नरम और सरल बनाने का प्रयास किया था। चन्द्रगुप्त के समय दण्ड विधान कठोर थे, अशोक ने दण्ड-व्यवस्था को सरल कर दिया। इसके अतिरिक्त उसने धर्म महामात्रों की नियुक्ति करके जनता का आध्यात्मिक स्तर ऊँचा उठाने का प्रयास किया था।

(2) महान धर्म-परायण व्यक्ति—ऐतिहासिक रङ्गमंच पर सम्भवतः कुछ ही ऐसे सम्राट अवतरित हुए हैं जिन्होंने आध्यात्मिकता को मूल मन्त्र मानकर विश्व कल्याण के लिये प्रयास किया हो। अशोक ने कलिंग युद्ध के पश्चात् बुद्ध और संघ की शरण जाकर मन, वचन, और कर्म द्वारा भगवान बुद्ध के उपदेशों का प्रचार किया। उसने राजप्रासादों के वैभव और विलासपूर्ण जीवन को त्याग कर सरल और सादा जीवन व्यतीत किया था। अशोक के पूर्व बौद्ध धर्म केवल भारत में ही फैला था। उसने इसे विश्वव्यापी धर्म बना दिया। उसने संसार में सत्य और अहिंसा पर आधारित रक्तहीन क्रान्ति का सूत्रपात किया। इस दृष्टि से यदि उसे सेन्ट पाल और कांन्स्टेटाइन से बढ़ कर कहा जाय तो अनुचित न होगा।

(3) धार्मिक सहिष्णुता—बौद्ध धर्मावलम्बी होते हुए भी अशोक ने अपने व्यक्तिगत विचार कभी जनता पर थोपने का प्रयास नहीं किया था। उसका धार्मिक दृष्टिकोण उदार था, और वह सभी धर्मों का समान रूप से आदर करता था। उसने द्वादश शिलालेख में लिखवाया था कि "देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा सभी धर्मों के प्रति आदर का भाव रखते हैं।" अशोक की धार्मिक सहिष्णुता की प्रशंसा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करते हुए डा० हेमचन्द्र का कथन है, "उसने ऐसे युग में धार्मिक सहिष्णुता तथा मेल जोल के सदगुणों का उपदेश दिया था जब धार्मिक कट्टरता अत्यधिक थी।" इस सम्बन्ध में एक विद्वान ने लिखा है," विश्व के इतिहास में सम्राट अशोक के उपदेशों ने लोगों को सभ्य बनाने में सबसे अधिक प्रभाव डाला है, क्योंकि इनका प्रवेश ऐसे प्रदेशों में हुआ था जिनका अधिक भाग असभ्य तथा अंधविश्वासपूर्ण था और इन असभ्य लोगों में बौद्ध धर्म का सौम्यतापूर्वक प्रचार हुआ।"

(4) राष्ट्रीय एकता का नायक—अशोक ने साम्राज्य की जनता को राजनीतिक एकता के सूत्र में बाँधा था। वह भारत का पहला सम्राट है जिसने सर्व प्रथम सोचा था कि राजनीतिक एकता के अभाव में सुदृढ़ साम्राज्य स्थापित करना सम्भव नहीं है। उसने सम्पूर्ण राज्य के लिये एक ही भाषा प्रयोग किये जाने की आज्ञा दी थी। इस प्रकार सभी प्रान्त राष्ट्रीय एकता के धागे में बँध गये।

(5) महान आदर्शवादी—अशोक का नाम इतिहास में स्वर्ण अक्षरों द्वारा लिखे जाने का कारण उसके महान आदर्श थे। उसने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदर्शवाद को अपना कर उसे व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया। राजनीतिक क्षेत्र में वह विजेता और कुशल शासक होने के साथ धार्मिक क्षेत्र में उदार और सहिष्णु भी था। सामाजिक क्षेत्र में उसने मानव कल्याण के लिए अनेक कार्य करते हुए "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धान्त का प्रचार किया। ये विशेषतायें विश्व के अन्य किसी सम्राट में दुर्लभ हैं। इसलिए उसे विश्व का महान आदर्शवादी सम्राट कहना न्यायसंगत है।

(6) अशोक की प्रजावत्सलता—अशोक की महानता का कारण उसकी प्रजावत्सलता भी है। वह अपनी प्रजा को सन्तान तुल्य मानता था। कलिंग अभिलेख द्वारा उसकी प्रजा वत्सलता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। "सभी मनुष्य मेरी सन्तान हैं। जिस प्रकार मैं चाहता हूँ कि मेरी सन्तान इस लोक और परलोक में सब प्रकार की समृद्धि और सुख भोगे, ठीक उसी प्रकार मैं अपनी प्रजा की सुख समृद्धि की कामना करता हूँ।" प्रजा की दशा जानने के लिए वह समय-समय पर वेष परिवर्तन करके यात्रायें करता था और इसी प्रकार के आदेश उसने अपने अधिकारियों को भी दिये थे।

(7) कला का उन्नायक—उसके शासन काल में कला की बड़ी उन्नति हुई। उसने धर्म प्रचार का साधन कला को मान कर अनेक भवन, स्तूप, स्तम्भ अभिलेख और बौद्ध विहार बनवाये थे। न केवल कला की दृष्टि से, वरन् ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अभिलेखों का बड़ा महत्व है। डा० रामशंकर त्रिपाठी अभिलेखों के ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं, "**अशोक के अभिलेख एक**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनूठे लेख संग्रह हैं। उनसे उसकी आन्तरिक भावनाओं और आदर्शों का पता लग जाता है। ये महान सम्राट के शब्दों को शताब्दियों से वहन करते आये हैं।"

(8) एक महान जन सेवक—अशोक ने मानव कल्याण के लिए अनेक महान कार्य किये थे। उसने न केवल मनुष्यों के लिए वरन् पशुओं तक के लिये औषधालय खुलवाए थे। उसने लोगों के आवागमन के लिए अनेक सड़कें बनवाईं। इन पर छायादार वृक्ष लगवाये और यात्रियों की सुविधा के लिए स्थान-स्थान पर कुएँ तथा धर्मशालायें बनवायी थीं। उसने न्याय तथा दान के क्षेत्र में धर्म महामात्रों की नियुक्ति की थी। उसने पशु हत्या और मदिरापान पर प्रतिबन्ध लगा कर प्रजा का नैतिक स्तर उठाने का प्रयास किया था। उसने मानव कल्याण के लिये वे सभी कार्य किये जिनसे जनता सुखमय जीवन व्यतीत कर सके।

अशोक के उक्त कार्यों और आदर्शों के कारण उसकी तुलना विश्व के महान सम्राटों सिकन्दर, सीजर, सेंटपाल आदि के साथ की जाती है, परन्तु इनमें एक भी सम्राट उसका समकक्ष होने का अधिकारी नहीं है। डा० राधा कुमुद मुकर्जी ने लिखा है, "प्रत्येक युग और प्रत्येक देश में अशोक जैसा सम्राट नहीं पैदा होता। अशोक आज भी संसार के इतिहास में अपनी बराबरी नहीं रखता है।" डा० स्मिथ ने उसे महान सम्राट की संज्ञा देते हुए लिखा है, "यदि अशोक योग्य न होता तो वह अपने विशाल साम्राज्य पर चालीस वर्ष तक सफलता-पूर्वक शासन न कर सका होता और अपना नाम न छोड़ गया होता जिसे लोग सहस्रों वर्षों के उपरान्त भी विस्मरण नहीं कर पाये हैं।" डा० हेम चन्द्र राय चौधरी ने अशोक की प्रजा वत्सलता की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "अशोक अपने उत्साह और प्रयत्नों में अथक था और उसने अपने साम्राज्य में समस्त साधनों को अपनी प्रजा की भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति में लगा दिया।।" इस प्रकार यदि उसे संसार के महान सम्राटों का सिरमौर कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। उसकी धार्मिक उदारता तथा सहिष्णुता, पवित्र सद्‌भावना, कर्तव्य परायणता और प्रजा वत्सलता आदि आदर्शों ने इतिहास में उसके नाम को सदैव के लिये अमर कर दिया। उसकी तुलना संसार के किसी भी सम्राट से नहीं की जा सकती है। उसकी महानता के सम्बन्ध में रॉलिन्सन ने लिखा है—

"Very often Ashoka is compared to Marx Orlions, St. Paul and Constantine, but like him, no Christian King made the Sermon on the Mount the basis of ruling huge Empire."

—Rawlinson

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रश्न (4) मौर्य-कालीन समाज की व्यवस्था का वर्णन कीजिए।

मेगस्थनीज द्वारा वर्णित मौर्य-कालीन सामाजिक स्थिति पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

मेगस्थनीज एक यूनानी यात्री था। वह मौर्यकाल में भारत आया था। उसने 'इण्डिका' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ से मौर्य काल की सामाजिक स्थिति के विषय में पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इस युग की सामाजिक स्थिति का ज्ञान हमें निम्नलिखित बातों से होता है :—

(1) वर्ग एवं वर्ण-व्यवस्था—इस काल में वर्ण व्यवस्था का विकसित रूप परिलक्षित होता है। कौटिल्य ने ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र चार जातियों का उल्लेख किया है। मेगस्थनीज ने सात वर्गों का वर्णन किया है। प्रथम वर्ग में दार्शनिक आते थे जिनका कार्य यज्ञ कराना, शुभ मुहूर्त बताना, और ज्योतिष का हिसाब लगाना था। द्वितीय वर्ग कृषकों का था। यह समाज का सबसे बड़ा वर्ग था। तृतीय वर्ग में ग्वाले आदि आते थे। चौथे वर्ग में कारीगर और अन्य छोटे-छोटे उद्योग करने वाले आते थे। पंचम वर्ग सैनिकों का था। सैनिक राजाश्रय में पलते थे और युद्ध के समय में महत्वपूर्ण कार्य करते थे। निरीक्षक वर्ग, छठा वर्ग था। इसमें गुप्तचर भी आते थे। जिनका कार्य सम्राट व उच्च पदाधिकारियों को राज्य की सूचना देना होता था। सातवाँ वर्ग अमात्यों या प्रशासकों का था। गिने-चुने लोग ही इस वर्ग में आते थे। इनके ऊपर ही राज्य का संचालन निर्भर करता था। परन्तु मेगस्थनीज ने इन्हें वर्ग न कह कर जाति कहा है। यह उसका दोष है। एक विद्वान ने लिखा है :—

"मेगस्थनीज के इस जाति वर्णन के विषय में यह जान लेना आवश्यक है कि इससे यह प्रतीत होता है कि उसने भारत की तत्कालीन सामाजिक अवस्था को समझने में त्रुटि की है। उसने भ्रमवश लोगों के व्यवसायों और उद्योगों को उनकी जातियाँ समझ लिया। मालूम होता है कि जातियों की अपेक्षा वह लोगों के व्यवसायों से अधिक परिचित था।"

(2) वैवाहिक व्यवस्था—मौर्य काल में वैवाहिक नियमों के अनुसार विवाह के समय कन्या की आयु बारह वर्ष और वर की आयु सोलह वर्ष होनी चाहिए थी। इससे कम अवस्था की कन्याओं और युवकों का विवाह नहीं होता था। कौटिल्य ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आठ विवाहों का उल्लेख किया है-ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापति, गन्धर्व, असुर, राक्षस तथा पिशाच। बहुविवाह प्रथा और तलाक भी उस समय प्रचलित थी।

(3) स्त्रियों की दशा—मौर्य काल में समाज में स्त्रियों का मान कम था। उन्हें पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त थी परन्तु स्त्रियाँ पुरुषों के आधीन हुआ करती थी। स्त्रियों में अन्ध विश्वास काफी मात्रा में था। सती प्रथा नहीं थी परन्तु दहेज प्रथा प्रचलित थी। स्त्रियाँ राजकीय कार्यों में भी सहायता देती थीं। उदाहरण के लिए वे सम्राट की संरक्षिका नियुक्ति होती थीं और गुप्तचरों का भी कार्य करती थीं। स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। कुछ स्त्रियों में पर्दे की प्रथा भी प्रचलित थी।

कौटिल्य ने स्त्रियों पर अत्याचार करने वालों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की है। "स्त्रियों के प्रति किसी भी प्रकार का अनौचित्य कठोर से कठोर दण्ड का विषय था। इस सम्बन्ध में कारखानों और बन्दी गृहों के कर्मचारियों के कृत्यों पर भी नियन्त्रण था। स्त्री हत्या का अपराध उतना ही गुरुतर समझा जाता था जितना कि ब्रह्म हत्या का।

(4) खान-पान—मौर्य काल में शाकाहारी व मांसाहारी दोनों ही प्रकार के लोग थे। भोजन को स्वादिष्ट बनाने का विशेष प्रयास किया जाता था। भोजन के विषय में श्री सत्यकेतु विद्यालंकार ने मेगस्थनीज के आधार पर लिखा है। "जब भारतीय लोग भोजन के लिए बैठते हैं, तो प्रत्येक व्यक्ति के सामने मेज रहती है जो तिपाई की शक्ल की होती है। इसके ऊपर एक सोने का प्याला रखा जाता है जिसमें सब से पहले चावल परोसे जाते हैं। वे इस तरह उबाले होते हैं जैसे जौ हों। इसके बाद अन्य बहुत से पकवान परोसे जाते हैं जो भारतीय सामग्रियों के अनुसार तैयार किए जाते हैं। वे सदैव अकेले भोजन करते हैं। वे कोई ऐसा नियत समय नहीं रखते जब कि इकट्ठे भोजन किया जाय। जिस समय जिसकी इच्छा होती है वह तभी भोजन कर लेता है।"

मांस अधिक मात्रा में बेचा तथा खाया जाता था। मांस बेचने वाले अपनी दुकानें अलग रखते थे। यद्यपि अशोक ने मांस का निषेध किया परन्तु उसे अधिक सफलता नहीं मिली। समाज में शराब का भी प्रचलन था। शराब बेचने वाले शराब के साथ-साथ वेश्यायें व दासियाँ भी रखते थे। मदिरा का सेवन सिर्फ मदिरालयों में ही किया जा सकता था। उसके बाहर शराब ले जाने की मनाही थी।

(5) आमोद-प्रमोद—मौर्य-काल में समाज में अनेक प्रकार के आमोद के साधन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपलब्ध थे । शिलालेखों से इस बात का पता चलता है कि उस समय अनेक उत्सव हुआ करते थे जिनमें पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी भाग लेती थीं । उत्सवों के मौकों पर सम्राट दान देकर अपनी उदारता का परिचय देते थे । नृत्य, गान तथा वाद्यों से लोग आमोद-प्रमोद करते थे । लोग पहलवानों को बुलवाकर दंगल कराते थे । कुछ इतिहासकारों का मत है कि शतरंज भी इस युग में प्रचलित थी । आखेट द्वारा भी यह लोग मनोरंजन करते थे ।

(6) कृषि, उद्योग धन्धे एवं व्यापार—इस युग का मुख्य उद्यम कृषि था । भारत में अनेक प्रकार के उद्योग धन्धे प्रचलित थे । ऊनी, रेशमी, सूती, सभी प्रकार के वस्त्र बनाये जाते थे । जलपोतों को भी बनाया जाता था । कपड़े का व्यापार अत्यन्त उन्नति स्थिति में था । ठठेरों, तेलियों, कुम्हारों आदि ने अपने अलग-अलग संगठनों की स्थापना की थी । व्यापार के लिए बड़ी बड़ी सड़कों का निर्माण हुआ था । इस युग में विदेशी व्यापार भी काफी उन्नति कर गया था । अधिकतर वस्त्र और भोग-विलास की सामग्री का निर्यात होता था । चाँदी के बर्तनों, शराब, दासों और सुन्दरियों का आयात होता था ।

(7) धार्मिक स्थिति—इस युग में वैदिक, जैन और बौद्ध तीनों धर्मों का प्रचलन था । वैदिक धर्म में देव पूजा को प्रमुख स्थान दिया गया था । बलि तथा यज्ञ भी होते थे परन्तु बाद में अशोक ने पशु बल को समाप्त कर दिया था । जैन धर्म का भी प्रचलन था और कहा जाता है कि बाद में चन्द्र गुप्त मौर्य ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया था । अशोक के काल में बौद्ध धर्म की अपार उन्नति हुई थी ।

शिक्षा और साहित्य

मौर्य काल में शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई थी । शिक्षा के क्षेत्र में सभी वर्णों के लोगों को समान अधिकार प्रदान किया गया था । बनारस, उज्जैन, तक्षशिला आदि शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे । ब्राह्मी और खरोष्ठी 2 प्रकार की लिपियाँ प्रचिलित थीं । संस्कृत तथा पाली दोनों ही भाषाओं का प्रचलन था । इस युग में सूत्र ग्रन्थों का निर्माण हुआ । बौद्ध 'कथा वस्तु' और 'त्रिपिटक' इसी काल में लिखे गये । कौटिल्य का 'अर्थ शास्त्र' और भाद्रबाहु का 'कल्पसूत्र' इस युग के अनुपम ग्रन्थ हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मौर्य काल में समाज अधिक उन्नत अवस्था में था और चतुर्मुखी विकास हो रहा था ।

प्रश्न (5) मौर्य-कालीन कला के विषय में आप क्या जानते हैं ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मौर्य काल से ही हमें भारतीय कला के वास्तविक रूप के दर्शन होते हैं। मौर्य-काल से पूर्व भारत में कला नहीं के बराबर ही थी। मौर्य-काल से भारतीय कला का वास्तविक आरम्भ मानना चाहिए। श्री नाहर ने लिखा है, **"भारतीय कला का इतिहास वास्तविक रूप में इसी युग में प्रारम्भ होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूर्ववर्ती युगों में कला थी अवश्य क्योंकि साहित्यिक कृतियों में कला की विभिन्न शाखाओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं किन्तु केवल सिन्धु-घाटी की कलाकृतियों को छोड़कर हमें किसी प्राग-मौर्यकालीन भारतीय कला के नमूने नहीं प्राप्त होते। ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्यकाल के पहले कलाकृतियों के निर्माण में ईंट और काठ का प्रयोग किया जाता था। इसी समय से ईंट और काठ के स्थान पर पत्थरों का प्रयोग किया जाने लगा।** श्री लूनिया का मत है, **"मौर्य कला भारतीय कला के इतिहास में युग प्रवर्तक है। हमारे पास ऐसे कोई प्राचीन अवशिष्ट स्मारक नहीं हैं जिनका सम्बन्ध मौर्य से पूर्व की भारतीय कला से हो। मौर्य सम्राट असाधारण निर्माता थे।"**

मौर्य-काल में कला को राजाश्रय प्राप्त हुआ। अशोक महान की छत्रछाया में कला की विशेष उन्नति हुई। अशोक के पूर्व लकड़ी का प्रयोग भवन-निर्माण आदि के लिए किया जाता था। अशोक ने लकड़ी के स्थान पर पाषाणों का प्रयोग किया। अशोक के समय से ही भारतीय भास्कर-कला के स्पष्ट दर्शन होते है। इस कला की कुछ अपनी पृथक विशेषताएं हैं। यह कला वैयक्तिक है और इसका उद्देश्य जन-साधारण के मन में मौर्य साम्राज्य की गरिमा की छाप बैठाना था। श्री बी० जी० गोखले ने लिखा है,

"It is only with Ashoka that we can properly begin the history of the art of ancient India. He it was, who substituted stone for wood, the common material for building purposes before his time. The Mauryan art is best on the scene with a tremendous force shown through both its technique and material used."

—B. G. Gokhle.

मौर्य कला की अवस्थायें—सर जान मार्शल ने लिखा है कि मौर्य कला की दो अवस्थाएँ प्रतीत होती हैं—(1) प्रारम्भिक अवस्था (2) विकसित अवस्था।

प्रारम्भिक अवस्था में कला कम विकसित है मथुरा के अजायब घर में रखी परखम की मूर्ति इस अवस्था का नमूना है। सारनाथ आदि स्थानों की कलाकृतियाँ विकसित अवस्था की हैं। वे अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर और परिष्कृत हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कला के विभिन्न रूप—मौर्यकालीन कला के चार रूप परिलक्षित होते हैं :—

(1) राजप्रासाद तथा भव्य भवन,
(2) गुफायें,
(3) स्तूप,
(4) स्तम्भ या लाट।

(1) राजप्रासाद तथा भव्य भवन—चन्द्रगुप्त मौर्य ने अनेक भवनों का निर्माण करवाया। भवन, स्तम्भ पर ही खड़ा होता था। चीनी यात्री फाहयान भी इन भवनों को देख कर चकित रह गया था। इन भवनों में विशाल कमरे बने हुए थे। स्तम्भों के ऊपर सोने-चाँदी की पालिश की गई थी तथा विविध आकृतियाँ बनी हुई थीं। अशोक का बनवाया हुआ राजमहल तो मनुष्यों द्वारा बनवाया प्रतीत ही नहीं होता था। फाहयान कहता है कि यह प्रेतात्माओं द्वारा बनवाया गया होगा।

मौर्य सम्राटों की राजधानी पाटलिपुत्र थी। इस नगर के सम्बन्ध में सेल्यूकस लिखता है, "भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ नगर पाश्चात्य देशों में पाटलिपुत्र कहलाता है। वह गंगा और सोन नदियों के तट पर स्थित है। इस नगरी की बस्ती की लम्बाई लगभग 15 मील और चौड़ाई 3 मील है। यह नगरी समानान्तर चतुर्भुज की शक्ल में बनी है। इसके चारों ओर लकड़ी की एक प्राचीर है जिसके बीच में तीर छोड़ने के बहुत से छेद बने हैं। दीवारों के साथ चारों तरफ एक खाईं है जो रण के निमित्त और शहर के मैला बहाने के काम आती है। यह गहराई में 45 फीट और चौड़ाई में 600 फीट है। शहर के चारों ओर की प्राचीर 500 बुर्जों से सुशोभित है और उसमें 64 द्वार बने हैं। यहाँ के भव्य भवनों को देखकर फाहयान इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

(2) गुफायें—अशोक एक धार्मिक सम्राट था अतः उसने भिक्षुओं के लिए गुफाओं का निर्माण करवाया था। ये गुफायें बारबरा और नागार्जुन की पहाड़ियों में स्थित थीं। इनको पत्थरों को काटकर बनाया गया था। इनकी दीवारों पर चमकती पालिश की गई थी। यह गुफाएँ इस काल की कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

पहाड़ों को काटकर अनेक प्रकार के मन्दिर तथा चैत्य बनाये गये थे। मौर्य कालीन 'गोपिका कुहाभवन' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसका निर्माण महाराज दशरथ ने करवाया था।

(3) स्तूप—धार्मिक भावना से प्रेरित होकर ही स्तूपों का निर्माण करवाया गया था। साधु-सन्तों तथा अन्य महान पुरुषों की अस्थियों पर समाधि रूप में स्तूप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बनाये जाते थे। यह अत्यन्त पवित्र समझे जाते थे। सम्राट अशोक ने 84000 स्तूप बनवाये थे। इनके चारों ओर एक पाषाण का घेरा होता था। जिस पर अनेक चित्र अंकित होते थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने लगभग 80 विहारों और स्तूपों का अवलोकन किया था। सांची का स्तूप अत्यन्त सुन्दर है। इस स्तूप का व्यास लगभग $121\frac{1}{2}$ फीट तथा ऊँचाई $77\frac{1}{2}$ फीट है। इसके चारों ओर 11 फीट ऊँचाई का एक घेरा बना है। ह्वेनसांग तक्षशिला के तीन स्तूपों के बारे में लिखता है कि प्रत्येक स्तूप की ऊँचाई 100 फीट थी। उसने श्रीनगर, कपिलवस्तु, बनारस, अयोध्या, प्रयाग और कन्नौज के स्तूपों का भी वर्णन किया है।

सन् 1873 ई० की खुदाई में कनिंघम को भरहुत में एक बड़े स्तूप के अवशेष प्राप्त हुए। इस स्तूप के चारों ओर भी पाषाण-रेलिंग बना था। स्तूप की दीवारों पर उत्कीर्ण की गई गाथाएँ चित्रकला की श्रेष्ठता की उद्घोषणा करती हैं।

(4) स्तम्भ व लाट—स्तम्भ व लाट मौर्य काल के अनुपम उदाहरण है। इन स्तम्भों का भार लगभग 50 टन तथा ऊँचाई 50 फीट तक है। वी० ए० स्मिथ ने लिखा है "स्तम्भों का निर्माण, उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाना, तथा उनकी स्थापना एक प्रबल प्रमाण है कि अशोककालीन कलाकार तथा इंजीनियर किसी भी अन्य देश के कलाकारों से शिल्प कला तथा साधनों से कम नहीं थे।" स्तम्भ के तीन भाग होते थे:—

(1) पृथ्वी में गड़ा हुआ भाग।
(2) पृथ्वी के ऊपर का गोल भाग।
(3) तने पर बना शीर्ष।

स्तम्भों का कई फीट भाग पृथ्वी के अन्दर गड़ा होता था। इस अन्दर वाले भाग पर मोरों की आकृतियाँ मिलती हैं।

पृथ्वी के ऊपर का भाग तथा एक ही पाषाण से बना हुआ होता था। धीरे-धीरे ऊपर की ओर इसकी गोलाई कम होती जाती थी। इसके ऊपर की ओर एक ही पत्थर में कटा हुआ शीर्ष होता था।

अशोक के स्तम्भों के ऊपर सिंह, वृषभ, हस्ति आदि के चित्र बने हुए थे। इन स्तम्भों का शीर्ष कला की दृष्टि से अधिक महत्व है। स्तम्भ के ऊपरी भाग में उलटा कमल का फूल बना होता था। जिसमें पत्तियाँ बड़े ही कलात्मक ढंग से बनाई जाती थीं। इसके किनारे के चारों ओर विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ चित्रित की गई थीं। फूल के ऊपर अंगूठी के घेरे की भाँति गोल तथा कहीं-कहीं पर रस्सी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की भांति ऐंठी हुई किनारी बनी हुई थी। चक्र विशेष रूप से सुन्दर बनाया गया था जो धर्म चक्र का द्योतक था। सारनाथ स्तम्भ के शीर्ष स्थान पर चार सिंहों की मूर्तियाँ बनी हैं जो मौर्यों की शक्ति और ऐश्वर्य की परिचायक हैं। शीर्षस्थ पशु कला का विकास बसरा से रामपुरवा में अधिक तथा सारनाथ के सिंहों में और अधिक मिलता है। सारनाथ में चार सिंह पीठ सटाए हुए दिखाए गये हैं। इनके मुख बाहर की ओर हैं। सिंहों में बड़ी सजीवता है। इन सिंहों की मांस पेशियां सुडौल और उभरी हुई हैं। वी० ए० स्मिथ ने इनकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, "संसार के किसी भी देश में इतनी सुन्दर या इनकी समानता करने वाली पशुओं की मूर्तियों के अंकन पाना कठिन है। इनके अन्दर कल्पना और यथार्थता का सुन्दर तथा सफल सम्मिश्रण किया गया है और उनका प्रत्येक भाग दोषों से दूर है। श्री बी० जी० गोखले लिखते हैं :—

"The lion is ordinary lion-a denizen of the frightening wild roaring of an evening across a mountain spur in search of prey but a symbol of dignified strength and noble determination."

—B. G. Gokhle.

स्तम्भों पर अत्यन्त सुन्दर पालिश है जो आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए एक आदर्श है। यह पालिश सारे स्तम्भ पर नहीं है। सतह के नीचे का भाग चमकीली पालिश से रहित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मौर्यकालीन स्तम्भ अप्रतिम हैं। केवल भारत ही नहीं, समस्त विश्व में कहीं भी इस प्रकार के स्तम्भों के दर्शन नहीं होते। सर जान मार्शल ने लिखा है।

"These sculptures are masterpieces in point of both style and technique, the finest carving indeed, that India has yet produced, and unsurpassed, I venture to think, by anything of their kind in the ancient world."

—Sir John Marsha

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | 4

महान गुप्त सम्राटों के काल का वैभव
(GLORIES OF THE AGE OF THE INPERIAL GUPTAS)

भूमिका—गुप्त काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग है। मौर्य युग के बाद गुप्त काल में भारत की अत्यधिक सांस्कृतिक उन्नति हुई। गुप्त वंश में समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय नाम के दो महान शासक हुए जिन्होंने भारत में राजनीतिक एकता स्थापित करने के साथ ही भारतीय संस्कृति के उत्थान में महान योगदान दिया स्कन्द गुप्त का नाम भी भारतीय संस्कृति के उन्नायकों में अत्यन्त गौरव के साथ लिया जाता है। इस अध्याय में हम गुप्तकालीन वैभव पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

———

प्रश्न (1) गुप्त सम्राटों की शासन-व्यवस्था पर संक्षेप में प्रकाश डालिए। गुप्त सम्राटों ने भारत में एकतंत्रात्मक शासन व्यवस्था की नींव डाली थी।

चीनी यात्री फाहयान जो चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्य काल में भारत आया था उसने चन्द्र गुप्त की शासन नीति का परिचय दिया है। उसने लिखा है, 'शासन में प्रजा के हित की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। शासन व्यवस्था अत्यन्त मृदु थी और शासक का हस्तक्षेप अत्यधिक नहीं होता था। राजा का राज्य कम से कम और साधारण से साधारण नियमों के आधार पर चलाया जाता था। अपराधों की संख्या समाज में बहुत कम थी। इसीलिए कठोर नियम नहीं थे। 'गुप्त काल में जियो और जीने दो' सिद्धान्त पर लोग रहते थे।

साम्राज्य का प्रशासकीय विभाजन—गुप्त सम्राटों ने एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया था। इतने बड़े साम्राज्य में सम्राट का प्रत्यक्ष शासन सम्भव नहीं था। अनेक छोटे बड़े राजा उसके आधीन शासन करते थे। शासन की दृष्टि से यह साम्राज्य निम्नलिखित भागों में विभक्त था :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(1) सम्राट द्वारा शासित प्रदेश, जिन्हें भुक्तियों और विषयों में बांटा गया था।

(2) प्रजातन्त्रात्मक राज्य, जो गुप्त शासन के अन्तर्गत आता था।

(3) आर्यावर्त तथा मध्य प्रदेश के सामन्त जो गुप्त सम्राट के आधीन कार्य करते थे।

(4) आधीन राजा जिन्होंने गुप्तों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था।

(5) ऐसे सीमावर्ती राज्य जो गुप्त सम्राट को भेंट देते थे और उनकी आज्ञा का पालन करते थे।

(6) मित्र राज्य जो गुप्तों को अपना मित्र बनाने के लिये उत्सुक रहते थे और एक प्रकार से उनका आधिपत्य स्वीकार करते थे।

इस युग की शासन-व्यवस्था का अध्ययन करने के लिए हम उसको चार भागों में बांट सकते हैं :—

(1) केन्द्रीय शासन,

(2) प्रान्तीय (भुक्ति) शासन,

(3) जिले (विषय) का शासन,

(4) ग्राम शासन।

(1) केन्द्रीय शासन

राजा—शासन का स्वरूप राजतन्त्रात्मक था। शासन का प्रधान राजा होता था और उसकी इच्छा सर्वोपरि मानी जाती थी। गुप्त राजा 'महाराजाधिराज' 'परमेश्वर', 'परमभागवत्', 'परमदैवत', 'चक्र्वर्तिन', आदि उपाधियाँ धारण करते थे। राजा को देव तुल्य माना जाता था। प्रयाग-प्रशस्ति में समुद्र गुप्त को कुबेर, बरुण व इन्द्र के सदृश्य बताया गया है। गुप्तकालीन साहित्य से पता चलता है कि उस काल में केन्द्र का अधिष्ठाता निरंकुश था। राज्य के महत्वपूर्ण पदों से अधिकारियों की नियुक्ति राजा ही करता था। सम्मानित व्यक्तियों को उपाधियाँ प्रदान करने का कार्य भी राजा द्वारा सम्पन्न किया जाता था। उसका पद वंशानुगत होता था। अधिकतर उसका बड़ा पुत्र ही सम्राट बनाया जाता था। परन्तु कभी-कभी बड़े पुत्र के अयोग्य होने पर छोटा पुत्र राजा बनता था।

यद्यपि राजा को बहुत अधिक अधिकार प्रदान किये गये थे और उस पर कोई बन्धन नहीं था फिर भी राजा को कुछ नैतिक बन्धनों को मानना होता था। बह अपने अमात्यों की सलाह से ही शासन का संचालन करता था। आर्यावर्त की समस्त परम्पराओं का पालन उसे करना पड़ता था कि इस विषय में आर० सी० मजूमदार ने लिखा है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"प्राचीन सिद्धान्त बार-बार यह कहते हैं कि राजा केवल अपनी भलाई के लिए नहीं रहता परन्तु वह जनता का ऋणी है और इस ऋण को वह अपने अच्छे शासन द्वारा ही चुका सकता है।"

इस काल से सम्बन्धित ग्रंथों में इस बात पर विचार किया गया है कि राजा को सदैव लोक-कल्याण पर ध्यान रखना चाहिए। इसी कारण साम्राज्य में निरंकुशता के कुपरिणाम जनता को नहीं सहने पड़ते थे। ग्राम पंचायतों तथा नगर सभाओं को काफी विस्तृत अधिकार प्राप्त थे और उनके कार्य में राजा कम से कम हस्तक्षेप करता था। राजा के निरंकुश न होने की चर्चा करते हुए प्रो० अल्तेकर ने लिखा है। "देवत्व के कारण राजा को निरंकुश होने का अधिकार प्राप्त होता है, ऐसी कोई धारणा नहीं थी। अपने देवत्व होते हुए भी राजा के लिये वृद्ध-सेवा करना तथा योग्य शिक्षा अत्यधिक आवश्यक था।"

मन्त्रि परिषद्—शास्त्रानुमोदित मन्त्रिपरिषद का निर्माण किया गया था। इसमें हर विषय के पंडित होते थे। मन्त्रिपरिषद का कार्य शासन कार्य में सम्राट की सहायता करना था। मन्त्रियों की नियुक्ति सम्राट स्वयं करता था। प्रत्येक मन्त्री अपने-अपने विभाग की देख-भाल करता था। मन्त्रियों के लिए पवित्र, विचारशील, विद्वान, सत्यवादी, न्यायप्रिय तथा कुलीन होना आवश्यक था।

केन्द्रीय शासन के विभाग—केन्द्रीय शासन विभिन्न विभागों द्वारा संचालित होता था। उन विभागों में प्रमुख विभाग निम्नलिखित होते थे —

(1) **महासेनापति**—गुप्त सम्राट के अधीन महासेनापति होता था। जो साम्राज्य के विभिन्न भागों में, विशेषतः सीमान्त प्रदेशों में सैन्य संचालन के लिए नियुक्त रहता था। सेना विभाग का समस्त कार्य इसी के हाथ में था।

(2) **महादण्डनायक**—महासेनापति के अधीन महादण्डनायक होता था। यह युद्ध के अवसर पर सेना का नेतृत्व करता था।

(3) **रणभाण्डागारिक**—इसका कार्य सेना के लिए सामग्री जुटाना था। यह अस्त्र-शस्त्र, सेना को समय पर पहुँचा देते थे और इनका एक अलग विभाग था।

(4) **महाबलाधिकृत**—इसके अधीन सेना, छावनी एवं व्यूह रचना के विभाग रहते थे। महाबलाधिकृत के नीचे अन्य बलाधिकृत रहते थे।

(5) **दण्डपाशिक**—यह पुलिस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी था। उसके नीचे 'चौरोद्धरणिक', 'दूत', आदि अन्य कर्मचारी होते थे। पुलिस के साधारण सैनिक को 'भट्ट' कहा जाता था।

(6) **महासंधिविग्रहिक**—इसका कार्य अन्तर्राष्ट्रीय विभाग की देख-भाल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करना था। पड़ोसी राजाओं से सन्धि अथवा विग्रह करना इनका ही कार्य था। राज्य का अन्य राज्यों के साथ किस प्रकार का व्यवहार हो, कैसी नीति हो, इसका निर्धारण यह अधिकारी ही करता था। गुप्त काल में हरिषेण और वीरषेण विद्वान इस पद पर आसीन हुए। महासंधिविग्रहिक को 'सन्धिविग्रहाधिकरणाधिकृत' भी कहा जाता था।

(7) **भाण्डागाराधिकृत**—यह खजाने का रक्षक होता था। कोष सम्बन्धी सभी मामलों में इसका निर्णय बहुत महत्वपूर्ण होता था।

(8) **विनयस्थिति स्थापक**—यह धर्म विभाग का अध्यक्ष था। पुरोहित के स्थान पर विनयस्थिति स्थापक नाम के एक कर्मचारी का नाम वैशाली की एक मोहर पर मिलता है। विनयस्थिति स्थापक का कार्य जनता के चरित्र को सुधारना, देश में धर्म नीति की स्थापना तथा विभिन्न धर्मों के लोगों के बीच एकता उत्पन्न करना था। डा० अल्तेकर का मत है कि शिक्षा-विभाग भी इसी कर्मचारी के अधीन था।

(9) **महापक्षपटलिक**—यह अधिकारी राज्य के समस्त आदेशों का रिकार्ड रखने के लिए होता था। लेखा विभाग का यह सर्वोच्च अधिकारी था। राज्य की आय-व्यय का लेखा भी यही रखता था।

(10) **सर्वाध्यक्ष**—यह साम्राज्य के केन्द्रीय विभाग का प्रधान अधिकारी था। इस पद पर किसी राजकुमार अथवा अन्य कुलीन व्यक्ति को आसीन किया जाता था। इससे स्पष्ट है कि यह पद बहुत महत्वपूर्ण था। इस अधिकारी का कार्य समस्त विभागों की देख-भाल करना था।

उपर्युक्त कर्मचारियों के अतिरिक्त कुछ अन्य छोटे कर्मचारी भी होते थे जिनका चर्चा यहाँ की जा रही है :—

(1) **ध्रुवाधिकरण**—इनका काम भूमि-कर वसूल करना था।

(2) **पुस्तपाल**—यह राज्य के आदेशों का लेखा रखने में महापक्षपटलिक का सहायक होता था।

(3) **गोप**—यह गाँव की आय-व्यय का लेखा रखते थे।

(4) **अग्रहारिक**—यह दान से सम्बन्धित कार्यों की देख-भाल करते थे।

(5) **गौल्पिक**—यह वन विभाग का अध्यक्ष होता था।

(7) **शाल्किक**—इसका कार्य कर वसूल करना होता था।

(6) **करणिक**—इसका कार्य आधुनिक रजिस्ट्रार की भाँति होता था।

राजाज्ञा—डा० वासुदेव उपाध्याय ने लिखा है "मंत्रियों की सलाह से राजा शासन करता था तथा वह मंत्रिमण्डल का सदस्य होता था...गुप्त काल में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभी विभागों की पृथक-पृथक मोहरें थीं। राजाज्ञा उसी अवस्था में सत्य होती थी जब उस पर सरकारी मोहर तथा राजा के हस्ताक्षर होते थे। गुप्त सम्राटों के संधि पत्रों तथा सनदों पर 'गरुड़' बना होता था। राजाज्ञा को सुनने के लिये आज्ञापक के सदृश्य दूतक भी होते थे।

राज्य कर्मचारियों का वेतन—राज्य कर्मचारियों को वेतन दो रूप में दिया जाता था। कुछ कर्मचारी वेतन के रूप में भूमि प्राप्त करते थे जिससे प्राप्त धन से वह जीवन भर अपनी जीविका चलाते थे। कर्मचारी की मृत्यु के बाद उसकी भूमि पर पुनः राज्य का अधिकार हो जाता था। कुछ कर्मचारियों को नकद वेतन हिरण्य (मुद्राओं) के रूप में दिया जाता था। अधिकतर मुद्राओं के रूप में ही वेतन देने की प्रथा प्रचलित थी।

प्रान्तीय शासन

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है गुप्त साम्राज्य अत्यन्त विशाल था, और प्रान्तों में बँटा हुआ था, जिन्हे 'भुक्ति' या 'देश' कहते थे। साम्राज्य में कुल कितने भुक्ति थे, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। अभिलेखों में पुण्ड्रवर्धन भुक्ति का उल्लेख हुआ है जो उत्तरी बंगाल में था। इसके अतिरिक्त तीरा, मन्दसौर, कौशाम्वी, सौराष्ट्र, पंचाल, कौशल, काशी, मगध इत्यादि भुक्ति थे। भुक्ति के शासकों को 'उपरिक महाराज' कहते थे। उपरिक की नियुक्ति सम्राट स्वयं करते थे और उसका कार्य आधुनिक गवर्नरों की भाँति होता था। अधिकतर राजकुमार इस पद पर नियुक्त किये जाते थे। भुक्ति के शासकों को भौगिक, भोगपति या भोक्ता भी कहा जाता था। यद्यपि यह ठीक है कि अधिकांश राजकुमार ही इन पदों पर नियुक्त किये जाते थे परन्तु अन्य व्यक्तियों को भी इस पद पर आसीन होने का उल्लेख मिलता है जैसे चिरतिदत्त जो पुण्ड्रवर्धन भुक्ति का उपरिक था, राजकुल से सम्बन्धित नहीं था।

प्रान्तीय शासक अपने भुक्ति की बाहरी आक्रमणों तथा आंतरिक विप्लव से रक्षा करते थे। अपने राज्य में शान्ति स्थापित करना उनका परम कर्त्तव्य था। सार्वजनिक कार्य जैसे बाँध, नगर, सड़कों आदि की देख-भाल करना भी उनका कार्य था। वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को नियुक्त करते थे। प्रान्त में भी उसी प्रकार के विभाग होते थे जिस प्रकार केन्द्र में होते थे। आधुनिक काल की भाँति गुप्त काल में भी प्रान्तों के शासकों के शासन काल की अवधि निर्धारित थी। यह कार्यकाल कम से कम 5 वर्ष का होता था।

विषय का शासन

प्रान्त (भुक्ति) को विषयों (जिलों) में बाँटा गया था। एक भुक्ति में 2 या 3

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

विषय होते थे। मगध भुक्ति में 2 विषय—गया तथा पाटलिपुत्र थे, पुण्ड्रवर्धन भुक्ति 3 विषय—खाडायर, पंचनगर तथा कोटिवर्ष थे।

विषय का अधिकारी विषयपति कहलाता था। उसकी नियुक्ति उपरिक के द्वारा की जाती थी और वह उसी के अनुशासन में रहता था। हो सकता है कि कुछ विषयपति सीधे भी सम्राट द्वारा नियुक्त किये जाते हों जैसे अन्तर्वेदी के विषयपति शर्वनाग की नियुक्ति सम्राट ने स्वयं की थी। विषयपति के प्रधान कार्यालय का स्थान 'अधिष्ठान' कहलाता था। वैशाली की अनेक मोहरों में विषयपति के लिये 'कुमारामात्य' की उपाधि का उल्लेख किया गया है। विषयपति को परामर्श देने के लिये एक सस्था होती थी जिसके सभासद 'विषय महत्तर' कहलाते थे। इन सभासदों की संख्या 30 थी। परन्तु इनमें से निम्नलिखित मुख्य थे—

(1) **नगर-श्रेष्ठ**—नगर का प्रधान सेठ।

(2) **सार्थवाह**—नगर का मुख्य व्यवसायी।

(3) **प्रथमकुलिक**—शिल्पियों का मुखिया।

(4) **प्रथम कायस्थ**—प्रधान लेखक।

(5) **पुस्तपाल**—संग्रहधिकारी।

सम्भवतः महत्तरों में नियुक्ति के लिए चुनाव की प्रथा नहीं थी। यह विषयपति द्वारा नियुक्त किये जाते थे। महत्तरों के कारण जिले के शासन में जनसाधारण का काफी हाथ रहता था।

विषयपति अपने प्रदेश में शांति व सुरक्षा की व्यवस्था के लिए उत्तरदायी था। अतएव उसके अधीन 'दण्डपाशिक' (पुलिस कर्मचारी), 'चौरोद्धरणिक' (गुप्तचर), 'दण्डनायक' (विषय की सेना का अधिकारी), 'आरच्छाधिकृत' (जनता की रक्षा के लिए कर्मचारी) होते थे। राजकीय करों को वसूल करने के लिए भी अनेक कर्मचारी होते थे जिन्हें 'युक्त', 'आयुक्त', 'नियुक्त' आदि कहा जाता था।

नगर शासन

विषय में अनेक नगर होते थे। नगर के शासकों को पुरपाल कहा जाता था जो कुमारामात्य की श्रेणी के होते थे। पुरपालों की नियुक्ति बड़े-बड़े नगरों में होती थी। विषय महत्तर पुरपाल को भी सलाह देते थे। नगरों में एक परिषद होती थी जो आधुनिक म्युनिस्पैलिटी की तरह कार्य करती थी। नगर का समस्त प्रबन्ध करना इसी परिषद का काम था। पुरपाल को 'द्रांगिक' के नाम से पुकारा जाता था। पुरपाल की नियुक्ति विषयपति द्वारा होती थी और कोई-कोई विषयपति अपने पुत्र को पुरपाल बना देते थे। नगरों की सुरक्षा के लिये उसके चारों ओर खाई खोदी जाती थी। नगरों में व्यापारियों और शिल्पियों की काफी संख्या विद्यमान थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ग्राम शासन

शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी। ग्राम का मुखिया 'ग्रामिक' कहलाता था जो ग्राम के शासन-प्रबन्ध, शांति स्थापना, मर्यादा तथा सुरक्षा के लिए उत्तरदायी था। ग्रामिक को सहायता देने के लिए एक पंचायत होती थी जिसे पंच मण्डली अथवा जनपद कहा जाता था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने एक गाँव की पंच मण्डली को 25 दीनारें दी थीं। ये ग्राम पंचायतें अपने कार्य में स्वतन्त्र थीं। ग्राम पंचायतों के निम्न-लिखित सदस्य होते थे—

महत्तर, अष्टकुलाधिकारी, ग्रामिक, कुटुम्बिन। ये सभी सदस्य चरित्रवान और अनुभवी होते थे। ग्राम पंचायत के निम्नलिखित कार्य थे—

(1) आय-कर को वसूल करना।
(2) नाबालिगों के हितों की रक्षा करना।
(3) शांति और सुव्यवस्था का प्रबन्ध करना।
(4) पारस्परिक वाद-विवादों का निपटारा करना।

वासुदेव उपाध्याय ने ग्राम पंचायत की कार्य प्रणाली को कुल दो वाक्यों में बहुत सुन्दर ढंग से स्पष्ट किया है—

'ग्राम संस्था एक छोटी प्रजातन्त्र थी। इसमें प्रजा साधारण अधिकारी रहती थी।'

पंचायत के कार्य अधिक होने पर उप समितियाँ बन जाती थीं। सिंचाई, मन्दिर, खेती आदि की व्यवस्था के लिए अलग-अलग समितियाँ थीं।

न्याय व्यवस्था

गुप्त-काल की न्याय व्यवस्था अत्यन्त व्यवस्थित और सुसंगठित थी। सम्राट, न्याय का सर्वोच्च पदाधिकारी होता था परन्तु इतने बड़े साम्राज्य की न्याय व्यवस्था अकेला सम्राट नहीं कर सकता था। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय दोनों ही न्यायालय होते थे। विषय का न्यायाधीश नगर में निवास करता था। गाँव का न्याय का कार्य ग्राम पंचायतें तथा सभायें करती थीं। नारद स्मृति के अनुसार उस समय चार प्रकार के न्यायालय थे—

(1) कुल, (2) श्रेणी, (3) गज, (4) राजकीय।

प्रथम तीन न्यायालय जनता के अपने होते थे और अन्तिम न्यायालय सरकारी व्यवस्था के लिए होता था। इस काल में जूरी की प्रथा भी प्रचलित थी।

राज्य में अपराधों की संख्या कम थी। सभी न्यायाधिकारी बड़ी योग्यता से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपना कार्य सम्पन्न करते थे। उनका आधुनिक कचहरियों की भाँति एक कार्यालय होता था। डा० सेलेटोर (Dr. Saletore) लिखते हैं :—

"Officials of the Gupta administration from the highest down to the lowest appear to have conducted administrative duties in an Adhikarna which may be interpreted to be an office or a court."

गुप्तकालीन न्याय व्यवस्था के सम्बन्ध में चीनी यात्री फाह्यान लिखता है :—

'प्रजा सुखी तथा धन सम्पन्न थी। प्रजा को व्यक्तिगत छोटी-छोटी बातों का ब्यौरा नहीं देना होता था और न ही न्यायाधिकारी तथा शासकों को को यह हाजिरी…राजा न प्राण दण्ड देते थे और न शारीरिक दण्ड। अपराधियों को अवस्था के अनुसार दण्ड देने की व्यवस्था थी, जो अपराध की लघुता के अनुसार कम-ज्यादा हो सकती थी। बार-बार अपराध करने पर दक्षिण करच्छेदन कर दिया जाता था। राज्य कर्मचारियों को नियमानुसार वेतन प्रदान किया जाता था।'

जैसा कि चीनी यात्री फाह्यान के कथन से स्पष्ट है गुप्त कालीन व्यवस्था उदार थी। परन्तु इसके यह अर्थ नहीं कि वह दुर्बल थी। अर्थपूर्ण व्यवस्था के साथ ही उचित दण्ड दिया जाता था। यह दण्ड व्यवस्था सभी के लिये समान रूप से थी। गम्भोर से गम्भीर आरोपों के अपराधी को भी क्षमा कर देने में गुप्त राजा हिचकिचाते नहीं थे। गुप्त कालीन न्याय व्यवस्था का ही परिणाम था कि उस काल में अपराधों की संख्या बहुत कम थी। न्याय की दृष्टि से यह युग अति उत्तम था।

सैन्य संगठन

गुप्तकालीन सम्राट साम्राज्यवादी थे। वे वीर थे, अतः अपनी योग्यता और चतुराई के आधार पर उन्होंने विशाल सेना का निर्माण किया था। यह सेना, उनकी नीति को सफल बनाने का महत्वपूर्ण साधन थी। गुप्तकाल में रथों का प्रयोग नहीं होता था। सेना के प्रधान अङ्ग घोड़े, हाथी तथा पैदल ही थे। आवश्यकता पड़ने पर ऊँट की भी सहायता ली जाती थी। इसका प्रयोग राजपूताना में होता था। दक्षिण के प्रान्तों में नौ सेना का भी प्रबन्ध था। सेना के लिये बड़े-बड़े जहाजों का निर्माण होता था। इस सम्बन्ध में प्रोफेसर कुमारस्वामी ने लिखा है :—

"The greatest period of Indian ship building, however must have been the Imperial age of Guptas and Harsh Vardhana,……"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेना का सर्वोच्च पदाधिकारी सेनापति होता था। उसके नीचे क्रमशः महादण्डनायक, रणभांडागारिक, भटाश्वपति आदि होते थे। सेना की नौकरी के सम्बन्ध में किसी जाति के साथ पक्षपात नहीं होता था। इस प्रकार की एक सेना केन्द्र में राजा के आधीन रहती थी। कुछ सेनायें प्रान्तों में भी रहती थीं जो आवश्यकता पड़ने पर सम्राट की सहायता करती थीं।

आय के साधन

विशाल साम्राज्य की व्यवस्था के लिए अतुल धनराशि की आवश्यकता थी। कुछ अभिलेख इस ओर संकेत करते हैं कि राज्य में, आय के लिए, 18 प्रकार के कर लगाये गये थे परन्तु इनमें से किसी के भी बारे में पूर्ण जानकारी नहीं प्राप्त होती। इस समय आय का प्रमुख साधन भूमि-कर था जो भूमि के उपजाऊपन के आधार पर 16 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तक लिया जाता था। यह अधिकतर अनाज के रूप में लिया जाता था। करों को मुख्य रूप से हम चार भागों में बाँट सकते हैं :—

(अ) **भाग-कर**—जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है 16 से 25 प्रतिशत तक भूमि-कर लिया जाता था जिसे भाग-कर कहा जाता था।

(ब) **बोझ-कर**—यह चुङ्गी-कर था। माल को लाने और ले जाने पर यह कर लगाया जाता था।

(स) **भूतावात प्रत्याय**—यह कर उन चीजों पर लगता था जो देश में बाहर से आती थीं।

(द) **शुल्क-कर**—यह कर व्यापारियों तथा शिल्पियों पर लगता था।

इसके अतिरिक्त वनों, खानों, चारागाहों आदि पर भी कर लगता था। वाकाटक नरेशों के लेखों से यह पता चलता है कि गाय, बैल, दूध, घी तथा शहद और नशीली वस्तुओं पर भी कर लगता था। युद्ध के समय विशेष कर लगाये जाते थे।

आन्तरिक सुरक्षा

गुप्तकालीन सम्राट शान्ति-प्रेमी थे। यद्यपि उन्होंने अपनी सीमाओं को बढ़ाने का प्रयास किया परन्तु साम्राज्य में पूर्ण शान्ति रखने की चिन्ता उन्हें सदैव रही। यही कारण था उन्होंने एक रक्षा विभाग की स्थापना की थी। इसका सर्वोच्च पदाधिकारी 'दण्डपाशाधिकारी' होता था। इसी विभाग के आधीन एक गुप्तचर विभाग भी कार्य करता था। गुप्तचर, अपराधियों को पता लगाने में बहुत कुशल होते थे। इस प्रकार की सुरक्षा व्यवस्था के कारण ही गुप्तकाल में अपराध प्रायः नहीं के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बराबर होते थे । गुप्तकाल में अपराधों की इतनी कम संख्या देखकर एवं जनता का शान्तिपूर्ण जीवन देखकर चीनी यात्री फाह्यान चकित रह गया था ।

सार्वजनिक हित

उदार शासकों के लिए उपर्युक्त आवश्यक कार्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य लोकोपकारी कार्य भी आवश्यक होते हैं । गुप्तकाल में भी इस प्रकार के कार्यों का अभाव न था । गुप्त सम्राटों ने प्रजा के हित के लिए सड़कों का निर्माण करवाया था, सिंचाई की व्यवस्था की, चिकित्सालय एवं औषधालयों में निःशुल्क चिकित्सा की व्यवस्था की । राज्य की ओर से शिक्षा तथा दान की व्यवस्था भी की गई । इस प्रकार गुप्त सम्राटों का जनता के प्रति बड़ा सद्भावनापूर्ण व्यवहार था ।

शासन-प्रबन्ध का मूल्यांकन

वेनकेट गुप्त (Venket Gupta) ने गुप्त शासन-प्रणाली की श्रेष्ठता के विषय में बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है :—

"We possess fairly detailed information about the Gupta-Government and its achievements and can well conclude that it was very well organised, both at the centre and in provinces."

डा० अल्तेकर लिखते हैं :—

"We may, therefore, be well proud of the Gupta administrative system which served as the ideal for contemporary and later states."

डा० स्मिथ चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासन काल को भारत का सर्वश्रेष्ठ शासन काल मानते हैं । वे लिखते हैं :—

"सम्भवतः पूर्वी ढङ्ग पर भारत का शासन संचालन विक्रमादित्य के राज्य काल की अपेक्षा श्रेष्ठ कभी नहीं रहा ।"

प्रश्न (2) गुप्त काल की सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक दशा पर संक्षेप में प्रकाश डालिए ।

सामाजिक दशा

चीनी यात्री फाह्यान बुद्ध जी की जन्म-भूमि का दर्शन करने भारत आया था । उसने अपनी भारत यात्रा पर एक पुस्तक लिखी है जो गुप्तकालीन समाज की विशद व्याख्या प्रस्तुत करती है । शिलालेखों तथा मुद्राओं द्वारा भी तत्कालीन समाज के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त होता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(1) **कुटुम्ब**—समस्त समाज कुटुम्बों में बँटा हुआ था। कुटुम्ब का स्वामी पिता होता था। वही कुटुम्ब की सम्पत्ति का अधिकारी होता था। माँ-बाप, भाई-भतीजे सब एक स्थान पर ही रहते थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् भी संयुक्त-कुटुम्ब-प्रणाली बनी रहती थी। गुप्तकाल में मिताक्षरा' न्याय का नियम था अर्थात् पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति का पूर्ण अधिकारी होता था। पिता के बाद सारी सम्पत्ति पुत्रों में बाँट दी जाती थी।

(2) **भोजन तथा पेय**—गुप्तकाल में शाकाहारी भोजन की प्रथा अधिक प्रचलित थी। लोग अधिकतर गेहूँ, जौ और विभिन्न प्रकार के फल तथा सब्जियाँ खाते थे। इस काल के खान-पान के विषय में फाह्यान ने लिखा है—"बाजारों में माँस और मदिरा की दुकानें नहीं हैं। लोग सूअर तथा मुर्गियाँ नहीं पालते, प्याज तथा लहसुन तक नहीं खाते, शराब नहीं पीते, केवल चाण्डाल जो समाज से बहिष्कृत हैं शिकार खेलते हैं और मांस का विक्रय करते हैं।"

बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण लोग हिंसा से घृणा करते थे, अतः मांसाहारी भोजन न करके शाकाहारी भोजन ही करते थे। चाण्डाल या समाज द्वारा वर्जित वर्ग ही मांस-भक्षण करता था। साधारणतया मद्यपान भी नहीं होता था। केवल राजघराने के ही लोग विदेशी शराब का प्रयोग करते थे।

उपर्युक्त वर्णन फाह्यान के मत पर आधारित है परन्तु बहुत से इतिहासकारों के अनुसार उस युग में मांस भक्षण का निषेध नहीं था क्योंकि तत्कालीन साहित्य में मांस-मदिरा के प्रयोग का उल्लेख हुआ है। कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्, में माढव्य को सूअर का मांस खाते हुये चत्रित किया गया है। स्मृति ग्रन्थों में माँस का निषेध नहीं लिखा है। बृहस्पति के मतानुसार वे स्त्रियाँ, मांस-मदिरा से अलग रहें जिनके पति विदेश में हों। कुछ विद्वानों का मत है कि फाह्यान का वर्णन केवल बौद्धों और जैनियों के लिये ज्ञात होता है, ब्राह्मणों के अनुसार उसने अपना वर्णन नहीं किया है। कालिदास के नाटकों में स्त्रियों और पुरुषों दोनों को ही सुरापान करते हुए चित्रित किया गया है। 'रघुवंश' में उल्लेख है कि सहभोजों में मदिरा परोसी जाती थी।

(3) **वस्त्र**—गुप्तकालीन पहनावा पूर्णतया भारतीय था। साधारण वर्ग धोती तथा एक ऊपरी वस्त्र पहनता था। राजा और अन्य धनवान व्यक्ति बहुमूल्य कोट तथा पैजामे पहनते थे। स्त्रियाँ साड़ी तथा दामन पहनती थीं। पुरुषों के लिए विदेशी सीथियनों ने सिले हुए कोटों तथा पैजामों का प्रचलन प्रारम्भ किया था परन्तु वे धनिक वर्ग ही तक सीमित रहे, जनसाधारण में वे प्रचलित नहीं हो पाये। कुछ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्त्रियाँ सीथियनों का अनुकरण करके फ्राक तथा जैकेट पहनती थीं । साड़ी अधिकतर प्रचलित थी और उसके नीचे पेटीकोट पहनने की भी प्रथा थी । ब्लाउज और चोली का प्रयोग भी होता था । अजन्ता की चित्रकारी में स्त्रियों को चोली पहने हुए दिखाया गया है । पुरुषों के लिए पगड़ी बाँधने की प्रथा भी प्रचलित थी ।

साधारण वर्ग सूती वस्त्रों का ही प्रयोग करता था परन्तु धनवान लोग उत्सवों आदि पर रेशमी वस्त्र पहनते थे । रेशम, चीन से आता था । फाह्यान के अनुसार भारतीय, ऊनी और रेशमी वस्त्रों को मौसम के अनुसार धारण करते थे । भारतीय पहनावा इतना अधिक आकर्षक था कि विदेशी इसे पहनकर गर्व का अनुभव करते थे ।

(4) आभूषण एवं अन्य शृंगार सामग्री—स्त्री तथा पुरुष दोनों ही आभूषणों का प्रयोग करते थे । तत्कालीन साहित्य में आभूषणों को धारण करने का वर्णन किया गया है । इस सम्बन्ध में श्री नाहर का मत है, "स्त्रियों के आभूषण विविध प्रकार के तथा नेत्रों को भले लगने वाले होते थे । सोने तथा मोतियों के हारों का सौंदर्य अद्भुत होता था । 'मृच्छकटिक' में चारुदत्त की स्त्री वसन्त सेना के लिए मोतियों के जो हार भेजती है उनके वर्णन से पता चलता है कि इस समय के स्वर्णकार निपुण और कलात्मक अभिरुचि-सम्पन्न होते थे । कम से कम छः प्रकार की करधनियों (मेखला) का उल्लेख मिलता है । कड़ों, अँगूठियों और केमरों (बाजूबन्दों) का प्रयोग बहुलता से किया था । पैरों में काफी संख्या में कड़े पहने जाते थे ।"

कालिदास के साहित्य से भी पता चलता है कि उस काल में सौंदर्य पर विशेष ध्यान दिया जाता था । स्त्रियों की भाँति पुरुष भी आभूषणों को धारण करते थे । उच्च कुलों की दासियाँ भी सुन्दर आभूषण धारण करती थीं । 'अमरकोष' में विभिन्न आभूषणों की सूची प्रस्तुत की गई है ।

सौंदर्य प्रदर्शन के लिए अन्य वस्तुएँ जैसे ओठों पर रंग, सुगन्धित तेल आदि का भी प्रयोग होता था । बालों को विभिन्न प्रकार से संवारा और पुष्पों द्वारा सजाया जाता था । कालिदास के 'मेघदूत' में स्त्रियाँ मन्दार के फूलों से केशों को सुन्दर बनाते हुए चित्रित की गई हैं । अजन्ता तथा बाघ की गुफाओं में भी ऐसे चित्र मिलते हैं जिनमें स्त्रियों के केश पुष्पों से सुसज्जित हैं । जूड़ा बांधने की प्रथा भी गुप्त काल में प्रचलित थी ।

(5) मनोरंजन के साधन—गुप्त-काल में लोग सुखमय जीवन व्यतीत करते थे । वे विभिन्न प्रकार के खेल खेलते थे । तत्कालीन साहित्य में उस युग के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मनोरंजन के साधनों पर प्रकाश डाला गया है। आखेट, मनोरंजन का मुख्य साधन था। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में दुष्यन्त के आखेट का वर्णन है। समुद्रगुप्त के सिक्कों में उसे बाघ का शिकार करते हुए चित्रित किया गया है। 'मृच्छकटिकम्' और 'रघुवंश' में द्यूत-क्रीड़ा उल्लेख हुआ है। मेढों, भैंसों, हाथियों और मुर्गों की लड़ाई भी प्रचलित थी। विभिन्न धार्मिक उत्सवों पर विभिन्न प्रकार के नाच-गानों द्वारा भी यह लोग मनोरंजन करते थे। उस समय गणिकाएँ भी होती थीं जो नाच-गाकर लोगों का मनोरंजन करती थीं। उद्यान-भ्रमण भी एक प्रकार का मनोरंजन था। गुप्त-काल के मनोरंजन के सम्बन्ध में श्री सत्यकेतु विद्यालंकार ने लिखा है, "लोग धार्मिक उत्सवों में बड़ा आनन्द लेते थे। समय-समय पर रथ-यात्राएँ हुआ करती थीं। फाह्यान ने बहुत से नगरों में इस प्रकार की रथ-यात्राएँ अपनी आँखों से देखी थीं, जिनमें हजारों नर-नारी सम्मिलित होते थे। इन अवसरों पर दीपक जलाये जाते थे, घण्टियाँ बजती थीं और लोग खुशी मनाते थे। गोष्ठियों का भी उस समय बहुत रिवाज था। एक स्थिति के लोग अपनी-अपनी गोष्ठियों में एकत्र होकर नाचने-गाने आदि का आनन्द उठाते थे और तरह-तरह से आमोद-प्रमोद करते थे। इकट्ठे होकर पान करने का भी इस समय रिवाज था।"

(6) **वर्ण-व्यवस्था**—पूर्वकालीन वर्ण-व्यवस्था इस समय भी विद्यमान थी। चार वर्ण थे :—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र। यद्यपि तत्कालीन ग्रन्थ वर्ण-व्यवस्था के बन्धनों को कठोर बनाने के लिए प्रयत्नशील दिखाई देते हैं परन्तु व्यावहारिक रूप में उसमें पर्याप्त लचकता आ गई थी। इस सम्बन्ध में श्री नाहर का मत है, "·········सैद्धान्तिक रूप में गुप्त-युग वर्ण-नियमों की जटिलता के प्रारम्भ का युग था परन्तु व्यावहारिक रूप में इस बात के समुचित प्रमाण मिलते हैं कि सामाजिक नियम अभी कठोर नहीं हो पाये थे। साधारणतः विवाह अपने वर्ण में ही होते थे किन्तु अन्तर्वर्णीय विवाहों का प्रचलन भी था। ········ अपने वर्ण के अनुसार व्यवसाय ग्रहण करना, गुप्त काल में एक नियम के रूप में नहीं था। ·········गुप्त युग में अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि लोग अपने वर्ण के अनुकूल व्यवसाय अपनाने के नियम का पालन नहीं करते थे।"

श्री नाहर का यह मत ठीक ही प्रतीत होता है। मयूरशर्मन नामक ब्राह्मण क्षत्री बना था। विन्ध्यशक्ति नामक ब्राह्मण क्षत्रीवृत्ति अपना कर वाकाटक वंश का संस्थापक बना। पाँचवीं शताब्दी के एक लेख से यह भी प्रतीत होता है कि तैलिक श्रेणी में क्षत्री भी थे।

जातियों में परस्पर खान-पान होता था। केवल शूद्रों के यहाँ अन्य जातियों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के लोग नहीं खाते थे। याज्ञवल्क्य ने कृषक, अहीर, नाई आदि के साथ भोजन करने की अनुमति प्रदान कर दी थी। किसी भी व्यक्ति को अपना जातीय व्यवसाय ही करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता था। शूद्रों की दशा में भी सुधार हुआ था। उनका कार्य केवल सवर्णों की सेवा ही नहीं रह गया परन्तु वे कृषि एवं व्यापार भी कर सकते थे। कहीं-कहीं उन्हें सैनिकों के रूप में भी भर्ती किए जाने का उल्लेख है।

अछूतों और चांडालों की दशा बहुत गिरी हुई थी। वे नागरिक बस्तियों से दूर रहते थे और जब नगर या गाँव में आते थे तो लकड़ी बजाते हुए चलते थे। उनके विषय में फाह्यान लिखता है, "वे नगर के बाहर रहते हैं और नगर में जब आते हैं, तो सूचना के लिए लकड़ी बजाते चलते हैं, कि लोग जान जायँ और बचकर चलें, कहीं उनसे छू न जायँ।"

चाण्डालों को दूसरे व्यवसाय करने की भी आज्ञा नहीं थी। वे केवल मछली तथा माँस बेच सकते थे। शव ढोना और अपराधियों को प्राण दण्ड देना इनका कार्य था।

समाज में ब्राह्मणों का स्थान अत्यन्त ऊँचा था। उनका आदर राजा भी करता था। ब्राह्मणों के बाद क्षत्रियों का स्थान था। वैश्यों को भी काफी सम्मान दिया गया था। वैश्यों की दानशीलता प्रसिद्ध थी। उनके विषय में फाह्यान ने लिखा है "जनपद के वैश्यों के मुखिया लोगों ने नगर में सदाव्रत और औषधालय स्थापित कर रखे हैं। देश के निर्धन, अनाथ, अपंग, विधवाएँ, सन्तानहीन, लूले, लँगड़े और रोगी इन स्थलों पर जाते हैं और सब प्रकार की सहायता तथा सुविधाएँ प्राप्त करते हैं।"

(7) वैवाहिक व्यवस्था—गुप्तकालीन लेख इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि गुप्तकाल में अन्तर्जातीय विवाह प्रथा प्रचलित थी। उच्च वर्ण के पुरुष निम्न वर्ण की स्त्रियों से विवाह कर लेते थे। इस प्रकार के विवाहों को अनुलोम विवाह कहा जाता था। इनके अतिरिक्त प्रतिलोम विवाह भी होते थे अर्थात् उच्च वर्ण की स्त्रियाँ निम्न वर्ण के पुरुषों से विवाह कर लेती थीं। ब्राह्मण चारुदत्त ने वसन्तसेना नाम की वैश्या से विवाह किया था, वाकाटक नरेश रुद्रसेन जो कि ब्राह्मण था, ने गुप्तवंशीय प्रभावती गुप्ता से विवाह किया था और कदम्ब शासक ब्राह्मण थे परन्तु उन्होंने अपनी पुत्रियों के विवाह गुप्त वंश में किये थे। शूद्र कन्याओं से भी विवाह हो जाते थे। मनुस्मृति में लिखा है 'शिल्प कला' तथा 'स्त्री रत्न' को प्रत्येक स्थिति में स्वीकार करना चाहिए। अन्तर्जातीय विवाहों के कारण वर्णसंकर जातियों का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जन्म हुआ। अम्बष्ठ, पारशव, उग्र आदि वर्णशंकरों और कायस्थों का उल्लेख इस काल के ग्रन्थों में हुआ है।

गुप्त-काल में विधवा विवाह भी प्रचलित था। विधवा विवाह वैध था। क्योंकि चन्द्रगुप्त ने अपने भाई की विधवा ध्रुवदेवी से विवाह किया था। बहुपति तथा बहुपत्नी की प्रथा भी प्रचलित थी।

(8) **दास-प्रथा**—रोम एवं यूनान की भाँति भारत में भी प्राचीनकाल में दास प्रथा प्रचलित थी। ऋण न चुका पाने पर, बन्दी बनने पर, खरीदे जाने पर, लोग दास बना लिए जाते थे। परन्तु भारतीय दास-प्रथा में कठोरता नहीं थी। दास ऋण चुकाकर और अपने स्थान पर अन्य किसी व्यक्ति को रखकर, दासता से मुक्त हो सकता था।

स्त्रियों की दशा—गुप्तकाल में नारी को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया था। स्त्रियों को पुरुषों के समान ही शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। यही कारण था कि शील तथा महारिका आदि विदुषी स्त्रियाँ इस काल में हुईं। गुप्तकाल में स्त्रियाँ शासन कार्य में भी सक्रिय भाग लेती थीं। इस काल में अनेक स्थानों पर स्त्रियों के मुखिया होने के उदाहरण मिलते हैं। शिक्षित स्त्रियाँ समाज में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करती थीं। वे केवल घर की चहारदीवारी में बन्द न रहती थीं वरन् सम्पूर्ण समाज का ज्ञान प्राप्त करती थीं। वाद-विवाद आदि में भी स्त्रियाँ भाग लेती थीं। दक्षिण के अनेक अभिलेखों से पता चलता है कि स्त्रियाँ ललित कलाओं में भी निपुण होती थीं। पर्दे की प्रथा नहीं थी। स्त्रियों की दशा के विषय में **आर० सी० मजूमदार** ने लिखा है :—

"Women of the upper class in certain areas took a prominent share in administration. The queen consort clearly occupied an important position in the Gupta Period. Specially in Deccan women acted even as governors and head of villages. The seclusion of women was not generally observed in these regions."

यद्यपि यह ठीक है कि गुप्तकाल में नारी का सम्मान था परन्तु पहले की अपेक्षा स्त्रियों की दशा गिर गई थी। गुप्त-काल में स्त्रियों को अपने पति स्वयम्बर में स्वयं चुनने का अधिकार नहीं था। स्मृतियों में पिताओं को सलाह दी गई है कि वे अपनी पुत्रियों का विवाह यौवन से पूर्व ही कर दें। नारद और याज्ञवल्क्य तो रजस्वला होने से पूर्व ही स्त्रियों का विवाह कर देने के पक्ष में हैं इससे स्पष्ट है कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्त्रियों का विवाह कम अवस्था में ही हो जाया करता । इसके साथ ही हिन्दू समाज का कलंक-सती प्रथा इस युग में धीरे-धीरे पनप रहा था । बृहस्पति के अनुसार विधवा स्त्री को पति के साथ जल जाना चाहिए ।

आर्थिक स्थिति

गुप्त सम्राटों की उदारनीति का परिणाम यह था कि समाज समृद्धशाली था शासक-वर्ग जनता का रक्त नहीं चूस रहा था । फलस्वरूप हर क्षेत्र में प्रगति हो रही थी । चीनी यात्री फाह्यान ने लिखा है कि हर व्यक्ति सुखी था, बहुत थोड़े में ही निर्वाह किया जा सकता था ।

(1) **कृषि**—कृषि, इस काल का प्रमुख व्यवसाय था । गेहूँ, चावल, जौ, जूट, बाजरा, दालें, तिलहन आदि भी उत्पन्न किये जाते थे । विभिन्न मसालों नील तथा सुपारी की खेती भी की जाती थी । उत्पत्ति का साधन वन भी थे । वनों से सागौन, देवदार और आबनूस आदि की लकड़ी प्राप्त होती थी ।

कृषि के लिए सिंचाई की सुन्दर व्यवस्था थी । इस कार्य के लिए गुप्त सम्राटों ने एक नया विभाग खोला था । स्कन्दगुप्त के शासन काल में सुदर्शन झील का पुनः निर्माण हुआ ।

कृषि योग्य भूमि पर राज्य का अधिकार नहीं समझा जाता था । कृषक ही भूमि का मालिक होता था । जमींदारी प्रथा का उदय नहीं हुआ था । फलों की खेती और चन्दन के वन लगाने पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था ।

(2) **उद्योग**—अन्न के अतिरिक्त अन्य धातुओं और लकड़ी का कार्य भी इस युग की आय का मुख्य साधन था । दक्षिणी भारत की खानों से अनेक धातुएँ प्राप्त होती थीं जिनसे विभिन्न प्रकार के आभूषण तैयार किये जाते थे 'बृहत्संहिता' में चौबीस प्रकार के आभूषणों का उल्लेख है । स्वर्णकार 'रत्न परीक्षा' में निपुण थे ।

गुप्तकाल में हाथी दाँत का कार्य बड़ी निपुणता से किया जाता था गुजरात, बंगाल तथा तामिल आदि देशों में वस्त्र उत्पादन बहुत बड़ी मात्रा में होता था यहाँ का बना कपड़ा मजबूत और अच्छा होता था । अमरकोष में चार प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख हुआ है । वस्त्रों को रँगने की प्रथा भी थी ।

(3) **व्यापार**—गुप्तकाल में आन्तरिक तथा वैदेशिक दोनों प्रकार का व्यापार होता था । व्यापार सड़कों और नदियों द्वारा होता था । सड़कों द्वारा व्यापार होने के कारण ही देश में चौड़ी-चौड़ी सड़कों का निर्माण किया गया था । भड़ौंच, उज्जैन, वैशाली, बनारस आदि प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र बनते जा रहे थे । विदेशों से व्यापार करने के लिए बड़े-बड़े बन्दरगाहों का निर्माण किया गया था । भड़ौंच,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कम्बे, गुजरात आदि प्रमुख बन्दरगाह थे। ये लोग समुद्र द्वारा निडर होकर व्यापार करते थे। इस काल के विदेशी व्यापार के विषय में श्री के० एम० पाणिक्कर ने लिखा है—"गुप्त साम्राज्य में सौराष्ट्र प्रान्त के प्रदेशानुबंधन से अरब सागर के बन्दरगाहों के द्वार जनता के लिए खुल गये जिनमें होकर रोमन साम्राज्य का धन पहली बार उत्तर भारत में आना आरम्भ हुआ।......गुप्तवंशी राजाओं ने पश्चिम के साथ व्यापार का द्वार खोल दिया जिसके कारण भारत में अभूत-पूर्व समृद्धि की वर्षा होने लगी।

निर्यात की प्रमुख वस्तुएँ, हीरे, मोती, मूल्यवान पत्थर, सुगन्धित पदार्थ, मसाले, नील और दवाइयाँ थी। घोड़ों, सोना, चाँदी, खजूर, टीन तथा कपूर आदि का आयात होता था।

(4) **शिल्प संघ**—गुप्तकाल में छोटे बड़े शिल्पियों ने अपने अलग-अलग संघ बना लिये थे। उनका मुख्य कार्य अपने सदस्यों की आर्थिक दशा को ठीक रखना था। यह संघ सदस्यों के आपसी वादविवादों को भी तय करते थे। इन संघों के अपने-अपने नियम होते थे। बहुत से संघ बड़े मालदार होते थे। संघ अपनी सम्पत्ति को जनहित के कार्यों में लगाते थे तथा मन्दिरों आदि का निर्माण करवाते थे। आवश्यकता पड़ने पर इन संघों के सदस्य शस्त्र भी धारण करते थे तथा सम्पत्ति की रक्षा करते थे। संघों के विषय में श्री सत्यकेतु विद्यालंकार ने स्पष्ट किया है "......उस समय में न केवल श्रेष्ठियों और सार्थवाहों के निगम थे, अपितु जुलाहे, तेली आदि विविध व्यवसायी भी अपनी-अपनी श्रेणियों में संगठित थे। जनता का इन पर पूर्ण विश्वास था। यही कारण है, कि इनके पास रुपया विविध प्रयोजनों से धरोहर रख दिया जाता था, और ये उस पर सूद दिया करते थे। इन निगमों व श्रेणियों का एक मुखिया व उसको परामर्श देने के लिए चार या पाँच व्यक्तियों की एक समिति रहती थी।...श्रेणियाँ छोटी या बड़ी सब प्रकार की होती थीं।

यह संघ अपने सदस्यों की सहायता से लोगों को अपने व्यवसाय की शिक्षा भी देते थे। इस शिक्षा-काल में शिष्य को गुरु के घर रहना पड़ता था। यह संघ अपनी अलग-अलग मोहर रखते थे। इस प्रकार भारतीय आर्थिक व्यवस्था को ठीक रखन में इन संघों का महत्वपूर्ण योग था।

धार्मिक दशा

(1) **धार्मिक सहिष्णुता**—गुप्त काल धार्मिक सहिष्णुता का काल था। इस समय सम्राट यद्यपि ब्राह्मण धर्म को प्रोत्साहन दे रहे थे और स्वयं भी ब्राह्मण धर्म को स्वीकार कर चुके थे परन्तु उन्होंने अन्य धर्मावलम्बियों को अपने धर्म को मानने और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसकी उन्नति करने की छूट दे रखी थी। अधिकांश गुप्त शासक वैष्णव थे परन्तु उन्होंने शैवों तथा बौद्धों को कभी नहीं सताया। कुमारगुप्त का पुत्र 'पुरुगुप्त' बौद्ध धर्म का मानने वाला था। गुप्त राजा 'नरसिंह वर्मन' तथा 'बुध गुप्त' बौद्ध धर्मावलम्बी थे जबकि उनके पूर्वजों ने वैदिक धर्म को स्वीकार किया था। विभिन्न धर्मानुयायी आपस में वाद-विवाद करते थे और धार्मिक कलह के दर्शन उस युग में नहीं होते थे। **श्री सत्यकेतु विद्यालंकार** ने स्पष्ट किया है "सब मतों के आचार्य व पण्डित आपस में शास्त्रार्थों में व्यस्त रहते थे। अपने ग्रन्थों में वे जहाँ एक-दूसरे का युक्ति व तर्क से खण्डन करते थे, वहाँ पण्डित, मण्डलियों और जन साधारण के समक्ष भी उनमें शास्त्रार्थ व वाद-विवाद होते रहते थे। पर इनके कारण जनता में धार्मिक विद्वेष उत्पन्न नहीं होता था। इस काल के राजा धर्म के मामले में सहिष्णु थे। सम्राट चन्द्रगुप्त परम भागवत थे ......पर उन्होंने अपने राजकुमारों की शिक्षा के लिए आचार्य वसुबन्धु को नियुक्त किया था।......एक ही परिवार में भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न धर्म के अनुयायी हो सकते थे।......यह इस युग की धार्मिक सहिष्णुता का ज्वलन्त उदाहरण है।"

गुप्त सम्राटों की उदारवादी नीति के कारण ही हिन्दू धर्म का इतना अधिक प्रचार हुआ। इस सम्बन्ध में स्मरण रखना चाहिए कि तलवार के जोर पर कोई धर्म नहीं पनपता। धर्म की उन्नति के लिए उदारवादी नीति की आवश्यकता होती है। इस काल में वैदिक धर्म की उन्नति का मुख्य कारण सम्राटों की उदार और सहिष्णु नीति थी। हिन्दू धर्म की समन्वय की भावना और व्यापक दृष्टिकोण के कारण ही वह उन्नति कर सका। इस धर्म के विषय में **श्री ए० एल० बाशम** (A. L. Basham) ने लिखा है :—

"Thus India, though always loyal to her indigenous cults, gave a welcome to those of the west. If we accept the uncertain tradition of St. Thomas Martydom there is no good evidence of the prosecution of any of these non-India sects. Their members quietly pursued their own cults, small but significant elements in the religious life of the coastal cities, while the great body of Hindus were scarcely aware of the alien faith, and in no way antagonistic to them. This capacity for toleration contributed to the characteristic resiliency of Hinduism and helped to assure its survival."

वैदिक धर्म—

गुप्त काल में वैदिक धर्म की बड़ी उन्नति हुई। यह धर्म केवल उत्तरी भारत तक ही सीमित न रहा वरन् दक्षिण भारत में इसका प्रचार बढ़ा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिव और विष्णु की पूजा—गुप्त काल में वैदिक धर्म के दोनों सम्प्रदायों शैव और वैष्णव को मान्यता प्राप्त हुई। इस काल के लेखों और मुद्राओं में जहाँ एक ओर विष्णु के प्रतीक—शंख, चक्र, गदा और पद्म के चिह्न अंकित हैं वहाँ दूसरी ओर अनेक शिवलिंग और शिवजी की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमार गुप्त प्रथम और स्कन्दगुप्त की मुद्राओं में उनको 'परम भागवत' बतलाया गया है। वैष्णव धर्म के अन्तर्गत राम और कृष्ण दोनों की ही आराधना होती थी' विक्रमादित्य के महरौली के लौह-स्तम्भ को विष्णुध्वज कहा गया है। केरल का राजा विष्णु का अवतार, राम का भक्त था। तामिल ग्रन्थ 'शिल पट्टिकारम्' विष्णु के अवतार कृष्ण की आराधना का उल्लेख है।

गुप्त सम्राटों के मन्त्री, सेनानायक तथा अन्य उच्च अधिकारी शिव की उपासना करते थे। भारशिव, वाकाटक, नेल, कदम्ब आदि वंशों के राजा भी शिव की पूजा करते थे। विक्रमादित्य के मन्त्री वीरसेन ने 'उदयगिरि पर शिव मन्दिर की स्थापना की। पृथ्वीषेण तथा विष्णुवर्मन ने भी शिव मन्दिरों का निर्माण करवाया। गुप्त काल का एक लेख उदयगिरि पहाड़ी में एक गुफा में अङ्कित है जिसमें लिखा है :—

'भक्त्या भगवतः शंभाः गुहामेतामकारयत्'। इस प्रकार के अनेक अन्य लेख भी मिले हैं जो यह स्पष्ट करते हैं कि ये लोग शैव धर्म को मान्यता प्रदान करते थे।

अन्य देवी-देवताओं की पूजा—विष्णु और शिव के अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं की आराधना भी इस युग में होती थी। तन्त्रवाद का प्रारम्भ वैदिक काल में ही था परन्तु इसका विकास गुप्त काल में हुआ। इस वाद का उद्देश्य मनुष्य की कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर मनुष्य को देवत्व की ओर ले जाना था। इस वाद के द्वारा शक्ति-पूजा को प्रेरणा मिली। परिणामस्वरूप अनेक देवियाँ यथा काली, चण्डी, दुर्गा आदि की पूजा भी की गई।

वैदिक कालीन प्रकृति पूजा की भावना से प्रेरित होकर इस काल में सूर्य-पूजा भी की जाती थी। इस युग में सूर्य की अनेक मूर्तियों का निर्माण हुआ। मन्दसौर के शिलालेख से सूर्य पूजा का स्पष्ट प्रमाण प्राप्त होता है। गणेश और कार्तिकेय की पूजा भी की जाती थी।

नाग एवं यक्ष-पूजा—गुप्त काल में अन्य देवी-देवताओं की पूजा के साथ नाग तथा यक्ष की पूजा भी प्रचलित थी। राजगृह में नाग देवता के लिए एक देवालय बनवाया गया था। परन्तु, नाग पूजा अधिकतर निम्न वर्ग में ही प्रचलित थी। यक्ष-पूजा का भी समाज में प्रचलन था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अवतारवाद—गुप्त काल में हिन्दू धर्म के प्रमुख सिद्धान्त अवतारवाद का पूर्ण विकास हो गया था । अब यह माना जाने लगा था कि समय-समय पर राक्षसों का संहार करने और विश्व के कल्याण के लिए विष्णु अवतार धारण करते हैं । कृष्ण, विष्णु के ही अवतार थे । इसमें विश्वास कर लिया गया था, परन्तु राम-सीता के अवतार में इस युग तक लोगों का विश्वास नहीं था ।

मन्दिर और पूजा-पाठ—गुप्त काल में बहुत अधिक मन्दिरों का निर्माण किया गया । ये लोग मूर्ति-पूजा में विश्वास करते थे । मन्दिरों में व्याख्यान तथा पूजा-पाठ होते रहते थे । यह मन्दिर केवल पूजा-गृह ही नहीं थे वरन् भारतीय संस्कृति के महान् गढ़ थे । इनमें शिल्प-कला, चित्रकला आदि के सुन्दर नमूने मिलते हैं ।

तीर्थयात्रा—गुप्त काल में तीर्थयात्रा का बहुत प्रचार था । स्त्रियाँ भी तीर्थ-यात्राएँ करती थीं । तीर्थस्थलों पर जाकर दान देने की प्रथा भी थी । लोग पवित्र स्थलों पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तत्पर रहते थे ।

इस प्रकार आधुनिक वैदिक धर्म के लगभग समस्त तथ्यों का समावेश गुप्त काल में हो चुका था और उसे राज्य धर्म के रूप में मान्यता प्राप्त हो गई थी ।

(2) बौद्ध धर्म (Buddhism)—

फाह्यान के अनुसार गुप्त काल में बौद्ध धर्म ने सम्राटों का संरक्षण तो खो दिया परन्तु जनता में इस धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा थी । बौद्ध धर्म राजाश्रय से मुक्त होकर प्रगति कर रहा था । पंजाब, काश्मीर और अफगानिस्तान में इस धर्म का विशेष प्रचलन था । फाह्यान लिखता है—"काबुल में एक सहस्र से अधिक भिक्षु हैं । समस्त महायान के अनुयायी हैं ।......गान्धार देश के निवासी सब हीनयान के अनुयायी हैं । तक्षशिला में राजा, मन्त्री और जनसाधारण सब स्तूपों की पूजा करते हैं । इन दोनों स्तूपों पर पुष्प और दीप चढ़ाने वालों का तांता कभी नहीं टूटता । यहाँ (पेशावर में) सात सौ से अधिक श्रमण होंगे । जब दोपहर का समय होता है, श्रमण भिक्षा पात्र लेकर निकलते हैं ।......मथुरा को जाते हुए मार्ग में लगातार बहुत से विहार मिले, जिनमें लाखों श्रमण मिले । बौद्ध-धर्म का प्रसार अच्छा है । नदी के दायें-बायें किनारे बीस विहार थे ।......पश्चिम भारत के सभी जनपदों के अधिपति बौद्ध-धर्म के अनुयायी मिले ।"

गुप्त-काल में अनेक बौद्ध विद्वान् हुए जिनमें वसुबन्ध, कुमार जीव, परमार्थ, आसंग और दिगनाथ के नाम उल्लेखनीय हैं । बौद्ध-धर्म की स्थिति के विषय में श्री लूनिया स्पष्ट करते हैं—"राजाश्रय के अभाव ने बौद्ध-धर्म की लोकप्रियता पर कोई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विशेष प्रभाव नहीं डाला। गंगा की घाटी के उत्तर में, विहार और बंगाल में बौद्ध-धर्म और हिन्दू धर्म दोनों ही समान रूप से लोकप्रिय थे। परन्तु फाह्यान के कथनानुसार गुप्त-काल में काश्मीर, अफगानिस्तान और पंजाब, बौद्ध-धर्म के घर थे। सारनाथ, पहाड़पुर, अजन्ता और नागार्जुन कोंडा के कला के नमूने इस कथन की पुष्टि करते हैं कि गुप्त-काल बौद्ध-काल का स्वर्ण युग था।"

गुप्त-काल में महात्मा बुद्ध की जितनी अधिक मूर्तियाँ बनीं कदाचित् किसी अन्य काल में बुद्ध जी की उतनी अधिक मूर्तियों का निर्माण नहीं हुआ। अनेक स्तूप और विहार तथा चैत्य भी बने। नालन्दा विश्वविद्यालय बौद्ध दर्शन का प्रमुख केन्द्र था।

गुप्त-काल में बौद्ध धर्म में पूजा-पाठ, स्तुति, अर्चन आदि प्रचलित हो रहा था। इस प्रकार बौद्ध धर्म के वास्तविक स्वरूप का ह्रास हो रहा था और अब वह वैदिक धर्म के काफी निकट आता जा रहा था। बौद्ध स्तूपों पर पूजन, अर्चन आदि प्रारम्भ हो चुका था। धनी राजा सभी बौद्ध विहारों को दान देते थे। आन्ध्र, तामिल तथा कांची बौद्ध स्तूपों तथा विहारों से भरे पड़े थे। तत्कालीन अजन्ता और एलोरा की कला भी यह सिद्ध करती है कि गुप्त-काल में बौद्ध धर्म के अनेक केन्द्र थे।

(3) जैन-धर्म

फाह्यान के वर्णन से पता चलता है कि गुप्त-काल में हिन्दू एवं बौद्ध धर्म के साथ-साथ जैन धर्म भी विद्यमान था। जैन धर्म अपने कठोर नियमों के कारण अधिक लोकप्रिय नहीं था। जैन-धर्म की संगीतियाँ गुप्त-काल में हुई। 313 ई० में वल्लभी में प्रथम सभा हुई। इस सभा का सभापतित्व नागार्जुन ने किया। 543 ई० में, दूसरी सभा हुई। इसके सभापति क्षमा-श्रमण थे। इसी काल में श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सिद्धान्तों को लिपिबद्ध किया गया। जैन धर्मावलम्बी उमास्वामी ने संस्कृत में 'तत्वार्थाधिगम सूत्र' तथा सिद्धसैन ने 'न्यायावतार' नामक ग्रन्थों की रचना इसी काल में की। जैन विद्वानों में भद्रबाहु, क्षपणक और सिद्धदिवाकर के नाम उल्लेखनीय हैं।

गुप्तकाल में श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदाय प्रचलित थे। मथुरा तथा वल्लभी श्वेताम्बर संप्रदाय के गढ़ थे और दिगम्बर सम्प्रदाय का केन्द्र उत्तरी बंगाल में पुण्ड्रवर्द्धन था। जैनियों ने बाह्य आक्रमणकारियों से अपने धर्म को सुरक्षित रखने के लिए उसका प्रचार दक्षिण में करना प्रारम्भ कर दिया था। कर्नाटक तथा मैसूर में बहुत से दिगम्बर जैनी रहते थे। 470 ई० में मदुरा में एक 'संगम' का आयोजन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया गया था। इसकी अध्यक्षता 'बज्रनन्दी' ने की। काँची में भी जैन-धर्म का प्रभाव था। कदम्ब और गंगवंशी राजाओं ने इस धर्म के प्रचार में योगदान दिया।

हिन्दू धर्म के बढ़ते हुए काल में जैन धर्म भी उसके प्रभाव से मुक्त न रह सका। उसमें भी स्तुति, पूजन, अर्चन, तीर्थयात्रा आदि का प्रचलन हो गया था।

प्रश्न (3) फाह्यान कौन था ? उसकी भारत-यात्रा विवरण का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में चीनी यात्री फाह्यान ने भारत यात्रा की। फाह्यान बौद्ध था और भारतीय बौद्ध ग्रन्थों को चीन ले जाने के लिए भारत आया था। वह भारत स्थल मार्ग से आया परन्तु समुद्री मार्ग से वापस लौटा।

फाह्यान ने लगभग 6 वर्ष यात्रा की और 30 देशों का भ्रमण किया। भारत में उसने 6 वर्ष तक अध्ययन किया। तीन वर्ष का समय संस्कृत लिखना और बोलना सीखने में और तीन वर्ष नीति पुस्तकों की नकल करने में व्यतीत किए। उसने बौद्ध नीति पुस्तकों की प्राप्ति की। उसके अन्य 4 सहायक भी बन गए परन्तु उन्होंने कोई विवरण नहीं लिखा।

फाह्यान का भारतीय विवरण

फाह्यान के भारतीय विवरण से गुप्तकालीन इतिहास की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। उसका विवरण पक्षपात रहित है। विसेन्ट स्मिथ ने लिखा है,—"सामान्य जीवन के विषय में उसने अचानक और अनुषांगिक रूप में उल्लेख किया है, परन्तु उसका विवरण विश्वसनीय है क्योंकि उसका दृष्टिकोण पक्षपात रहित है।"

यहाँ हम संक्षेप में फाह्यान द्वारा किये गये भारतीय विवेचन पर प्रकाश डाल रहे हैं—

(1) शासन-व्यवस्था का विवरण—फाह्यान के विवरण से पता चलता है कि गुप्त काल में राजतंत्रात्मक शासन-व्यवस्था थी और साधारण जनता को पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे। वह लिखता है,—"प्रजा प्रभूत समृद्ध तथा सुखी है। लोगों को अपने घरों को छोटी-मोटी बातों का न तो ब्योरा देना पड़ता है और न ही न्यायाधिकारियों या शासकों के यहाँ हाजिरी ही।" राजा जनता के कार्यों में अधिक हस्तक्षेप नहीं करता था। लोगों को राज्य में भ्रमण करने की पूर्ण छूट थी और उन्हें ऐसा करने के लिए कोई अनुमति-पत्र नहीं प्राप्त करना होता था। दण्ड आधुनिक युग की अपेक्षा मृदु थे। न तो प्राण दण्ड दिया जाता था और न कठोर शारीरिक यातना।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(2) **नैतिक स्तर का विवरण**—फाह्यान लिखता है,—"गुप्त काल में भारतीयों का जीवन सुखमय था और उनका नैतिक जीवन अत्यन्त उच्च था।" यद्यपि उसने इस देश की यात्रा अरक्षित रूप से की थी, परन्तु मार्ग में उसे कभी लूटा-खसोटा नहीं गया। वैश्यों की दानशीलता को उसने बहुत अधिक प्रशंसा की है। उसने यह भी लिखा है कि भारतीयों में अतिथि सत्कार का विशिष्ट चारित्रिक गुण विद्यमान था।

(3) **पाटलिपुत्र का वर्णन**—फाह्यान ने पाटलिपुत्र की दशा का विवेचन बहुत खुल कर किया है। उसने लिखा है कि प्रजा धनवान और सुखी थी तथा वहाँ दान आदि के लिए अनेक संस्थाएँ विद्यमान थीं और सड़कों के दोनों ओर छायादार वृक्ष थे। यहाँ औषधालयों की बड़ी सुन्दर व्यवस्था थी और दीन-दुखियों को मुफ्त औषधि दी जाती थी। फाह्यान पाटलिपुत्र में अशोक के द्वारा बनवाये गये भवनों और राजप्रसादों को देखकर चकाचौंध रह गया था।

(4) **सामाजिक अवस्था का विवेचन**—फाह्यान के विवेचन से पता चलता है कि इस युग की सामाजिक स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ थी। धनी लोग निर्धनों की सहायता करते थे और समाज में शाकाहारी और मांसाहारी दोनों ही प्रकार के लोग विद्यमान थे। साधारणतया जीव-हत्या नहीं की जाती थी। चाण्डाल नगर से बाहर रहते थे। फाह्यान ने लिखा है,—"बाजारों में मांस और मदिरा की दुकानें नहीं हैं। लोग सुअर तथा मुर्गियाँ नहीं पालते हैं। प्याज और लहसुन तक नहीं खाते थे, शराब नहीं पीते हैं, केवल चाण्डाल, समाज से बहिष्कृत है, अन्य पशुओं का आखेट करके मांस का विक्रय करते हैं।" इस युग में सामाजिक उत्सव बहुत अधिक मात्रा में होते थे। फाह्यान ने इन उत्सवों का खुलकर विवेचन किया है। इन उत्सवों में गृहस्थ और संन्यासी दोनों ही भाग लेते थे।

(5) **धार्मिक दशा का विवेचन**—फाह्यान की बौद्ध धर्म में अभिरुचि थी। इसलिए उसने बौद्धों की दशा पर अधिक प्रकाश डाला है। उसने लिखा है कि—"अधिकतर राजा बौद्धों के प्रति सहिष्णु हैं और उनका सम्मान करते हैं। कुछ राजाओं ने संघों को दान में भूमि भी दी थी।" उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ था कि बौद्ध धर्म के गृहस्थ अनुयायियों में भिक्षुओं के प्रति बहुत अधिक श्रद्धा थी। गृहस्थ लोग चैत्यों और स्तूपों का निर्माण कराते थे। उसके विवेचन से यह आभास मिलता है कि उस युग में हीनयान मत का अधिक प्रचार था। महायान केवल इधर-उधर विद्यमान था। कपिलवस्तु में फाह्यान ने विहारों को उजड़ा हुआ पाया था। उसने यह भी लिखा है, कि इस युग में वैष्णव धर्म का प्राबल्य था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फाह्यान के वर्णन का मूल्यांकन—फाह्यान के वर्णन का ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्व है। उसके वर्णन से गुप्त-काल की राजनैतिक तथा सामाजिक दशा के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त होती है। परन्तु उसके वर्णन के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिये कि फाह्यान बौद्ध था और उसके सभी वर्णन इसी दृष्टिकोण पर किये गये हैं, अतः वह एकांगी है। धर्म के अतिरिक्त उसने अन्य विषयों की चर्चा कम की है। यहाँ तक कि उसने तत्कालीन राजा (चन्द्रगुप्त द्वितीय) का नाम भी अपने वर्णन में नहीं किया। बौद्ध धर्म के वर्णन में उसने पक्षपात किया है। इस धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों का विस्तारपूर्वक वर्णन उसने नहीं किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में वैष्णव धर्म की प्रधानता थी परन्तु अपने वर्णन में उसने इस धर्म को अधिक स्थान नहीं प्रदान किया है। इसलिए एक विद्वान का यह कथन उचित ही है—

"The description of Fahien is important from the historical point of view but it is purely one sided. His description can be a source of the history of Guptas but we will have to judge ourselves by other sources what is right and what is wrong in it."

प्रश्न (4) शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में गुप्त काल की उपलब्धियों की चर्चा संक्षेप में कीजिये।

शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में गुप्त काल की अपूर्व देन है। कालिदास और वाराहमिहिर आदि विद्वानों का यह युग साहित्यिक और कलात्मक क्षेत्र में किसी काल से पीछे नहीं कहा जा सकता। शिक्षा, साहित्य एवं कला क्षेत्र में जो उन्नति गुप्त काल में हुई उसकी चर्चा यहाँ संक्षेप में की जा रही है।

शिक्षा

गुप्त कालीन शिक्षा-प्रणाली काफी सन्तोषप्रद थी। इस समय शिक्षा कार्य गुरुकुलों द्वारा सम्पादित होता था। वेदों की शिक्षा के साथ ही साथ पुराण, स्मृति तर्क, दर्शन, न्याय, व्याकरण आदि की भी शिक्षा दी जाती थी। वाद-विवाद द्वारा शिक्षा प्रदान करने की प्रथा भी प्रचलित थी। आश्रम में दो प्रकार के विद्यार्थी होते थे—प्रथम धन देकर शिक्षा प्राप्त करने वाले, दूसरे गुरु के साथ रह कर उनकी सेवा करके शिक्षा प्राप्त करने वाले। धनवान व्यक्ति शिक्षा-आश्रमों को आर्थिक सहायता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

देते थे। शिक्षा का द्वार केवल शूद्रों को छोड़ कर सबके लिए खुला हुआ था। तक्षशिला विश्वविद्यालय की स्थापना इसी समय शुक्रादित्य नामक नरेश ने की थी। बुद्ध गुप्त आदि ने उसके विकास में प्रोत्साहन दिया। विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिये बड़ी कठिन परीक्षा देनी पड़ती थी। इसमें वाद-विवाद तथा विमर्श के आधार पर शिक्षा दी जाती थी। इसमें एक बड़ा पुस्तकालय भी था। विश्वविद्यालय में लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान ही अध्यापक हो सकते थे। इसके अतिरिक्त बनारस बल्लभी, नासिक आदि में भी विश्वविद्यालय थे।

साहित्य

गुप्त सम्राटों ने संस्कृत भाषा को पूर्ण आश्रय दिया और उसको राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान किया। श्री के० एम० पणिक्कर ने लिखा है, "गुप्त काल में उच्च-कोटि के संस्कृत साहित्य का सृजन हुआ। इसे संस्कृत साहित्य का श्रेष्ठ युग कहा जा सकता है। पाणिनि के पश्चात् पांच सौ वर्ष तक संस्कृत का परिमाजन और परिष्कार होता रहा और तब कहीं वह कालिदास के समय में जाकर अपनी साहित्य-सुषमा से अत्यन्त मनोरम बन गई। इस समय प्रमुख पुराणों और महाभारत के नवीन संस्करण तैयार किये गये जो निस्संदेह एक बड़ा काम था और अकेला यही काम गुप्त साम्राज्य को हिन्दू सभ्यता के निर्माण में ऊँचा स्थान प्रदान कर सकता है।"

(अ) काव्य—काव्य-कला को सम्पन्न एवं समृद्ध बनाने का कार्य गुप्त-कालीन कवियों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस काल के कवियों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। प्रथम वे जिनके विषय में अभिलेखों द्वारा ही कुछ जान सकते हैं। इस श्रेणी में हरिषेण, वीरसेन तथा वत्स भट्टि प्रमुख हैं। हरिषेण का परिचय समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से मिलता है। वीरसेन का परिचय उदयगिरि के द्वितीय महालेख से मिलता है। इस लेख के आधार पर उन्हें व्याकरण, राजनीति तथा दर्शन का मर्मज्ञ माना गया है। वत्स भट्टि मन्दसोर प्रशस्ति के रचयिता थे।

द्वितीय श्रेणी में वे कवि आते हैं जिनके पूरे-पूरे ग्रन्थ प्राप्त हैं। इस प्रकार के कवियों में कालिदास, मातृगुप्त, भारवि, भट्टि के नाम उल्लेखनीय हैं। कालिदास, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नौ रत्नों में से थे। इन्होंने 'रघुवंशम्' की रचना इसी काल में की थी। यह संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इनकी दूसरी अनुपम कृति 'ऋतु संहार' है। इनकी ख्याति को बढ़ाने वाला तीसरा काव्य-ग्रंथ 'मेघदूत' है। इस युग के दूसरे कवि भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' की रचना की। भट्टि ने भट्टि काव्य की रचना की। प्रसिद्ध कवि मातृगुप्त काश्मीर के सम्राट थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ब) **नाटक**—इस काल में संस्कृत के तीन महान नाटककार हुए-कालिदास, शूद्रक और विशाखदत्त। कालिदास ने तीन नाटक लिखे—"मालविकाग्निमित्रम्", "विक्रमोर्वशीयम्" तथा "अभिज्ञानशाकुन्तलम्"। इनमें "अभिज्ञानशाकुन्तलम्", संस्कृत साहित्य का सबसे उत्कृष्ट नाटक माना जाता है। शूद्रक ने "मृच्छकटिकम्" की रचना की जिसके द्वारा गुप्त कालीन संस्कृति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। "मुद्राराक्षस" का लेखक विशाखदत्त भी इसी काल में हुआ।

(स) **कथा साहित्य**—डा० अम्बेदकर का कथन है कि "पंचतन्त्र" और "हितोपदेश" की रचना इसी काल में हुई। ये ग्रन्थ केवल भारत में ही नहीं वरन् संसार के अनेक भागों में बहुत प्रचलित हुए और 50 विभिन्न भाषाओं में इनका अनुवाद किया गया। "वासवदत्त" के लेखक सुबन्धु भी इसी युग में हुए।

(द) **व्याकरण ग्रन्थ**—इस युग में व्याकरण एवं कोष भी बने। चन्द्र-गोमिन ने "चान्द्र व्याकरण" की रचना की। यह ग्रन्थ बड़ा प्रसिद्ध हुआ और तिब्बत में इसका सर्वाधिक प्रचार हुआ। तिब्बतीय भाषा में इसका अनुवाद भी हुआ। अमरसिंह ने "अमर कोष" की रचना की। दण्डी ने "काव्यादर्श" में व्याकरण-सम्बन्धी नियमों का उल्लेख किया।

(य) **धार्मिक तथा दार्शनिक साहित्य**—गुप्त काल में धार्मिक तथा दार्श-निक साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ। मनुस्मृति के आधार पर अनेक स्मृतियों का सृजन इस युग में हुआ। याज्ञवल्क्य, नारद, कात्यायन आदि गुप्त काल की महान विभूतियाँ थीं। स्मृतियों में याज्ञवल्क्य स्मृति का विशेष महत्व है।

धार्मिक साहित्य के साथ ही दार्शनिक साहित्य लिखा गया। सभी धर्मों के दार्शनिकों ने अपने-अपने विचार प्रगट किए। सांख्य दर्शन पर ईश्वर-कृष्ण द्वारा रचित "सांख्य कारिका" गुप्त काल की ही देन है। वात्सायन ने न्याय सूत्रों पर टीका लिखी। प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान वसुबन्ध ने हीनयान और महायान दोनों ही सम्प्रदायों के ग्रन्थों का सृजन किया। बौद्ध आचार्य दिगनाथ ने 'प्रमाण समुच्चय' तथा 'न्याय प्रवेश' का सृजन किया। बुद्ध घोष ने 'विशुद्धि मग्ग' की रचना की। 'सुमंगल विलासिनी' नामक ग्रन्थ का सृजन भी बुद्ध घोष ने किया।

जैन धर्म के ग्रन्थों के दार्शनिकों में आचार्य सिद्धसेन गुप्त और भद्रबाहु के नाम उल्लेखनीय हैं। सिद्धसेन ने "न्यायावतार" नामक ग्रन्थ लिखा।

इस युग के साहित्य की तुलना यूनान के पेरिक्लियन युग, इंग्लैण्ड के एलिजाबेथन युग और चीन के तुंग काल से की गई है। श्री नाहर ने लिखा है, 'पेरीक्लीज के युग और एलिजाबेथ के शासन-काल की तरह गुप्तकाल भी विशुद्ध साहित्य के क्षेत्र में मौलिक सृजन-काल था। चीनी इतिहास के स्वर्ण युग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तुंगकाल की भाँति गुप्त युग में कविता का विकास अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था।'

(र) वैज्ञानिक साहित्य—गुप्तकाल में विज्ञान के सभी क्षेत्र में उन्नति हुई। प्रसिद्ध ज्योतिषो आर्य भट्ट इसी काल मे हुआ। उसने 'आर्य-भट्टीयम्' की रचना की। वाराहमिहिर के 'बृहन-संहिता' आदि ग्रन्थ भी इसी युग की देन हैं। ज्योतिषियों में ब्रह्म गुप्त भी उल्लेखनीय है। गणित के क्षेत्र में भी 'आर्य-भट्टीयम्' का विशेष महत्व है। आयुर्वेद के क्षेत्र में चरक तथा सुश्रुत नामक चिकित्सकों ने महान योगदान दिया। धन्वन्तरि भी गुप्तकाल में हुए। नागार्जुन, बाणभट्ट आदि विद्वानों ने भी इस क्षेत्र में योगदान दिया।

प्रश्न (5) "गुप्त काल भारतीय कला का स्वर्ण युग है।" इस कथन की विवेचना कीजिये और गुप्तकालीन कला पर विस्तार से प्रकाश डालिए।

कला के क्षेत्र में गुप्त काल की महान् देन है। गुप्त काल के समस्त राजा महान् कला प्रेमी थे। सौन्दर्य, भाव तथा अभिव्यक्ति तीनों ही दृष्टियों से गुप्त कालीन कला बहुत उच्चकोटि की है। यह कला शुद्ध भारतीय है।

गुप्त काल के शान्तिमय वातावरण ने विभिन्न कलाओं के विकास में अपूर्व योगदान दिया। इस काल की कला में भद्रता, आध्यात्मिकता, सरलता, अनुपातशीलता, सौन्दर्य का अद्भुत समन्वय मिलता है। डा० वी० एस० अग्रवाल ने लिखा है :

"The glories of the Gupta age have been made permanent through the visible creations of its art."

श्री लूनिया ने लिखा है—"कलाओं के क्षेत्र में गुप्त काल अपनी सर्वोत्कृष्टता की चरम पराकाष्ठा तक पहुँच गया था। गुप्त काल का गौरव और वैभव दर्शनीय कला-कृतियों के द्वारा ही स्थायी और चिरस्मरणीय हो गया। इस युग में समस्त भारतवर्ष में कलाओं की अतुलनीय गतिविधि रही। कला के विविध अंग जैसे तक्षण (भास्कर) कला, वास्तुकला, चित्रकला और पकी हुई मिट्टी की मूर्ति कला ने वह परिपक्वता, सन्तुलन और अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता प्राप्त की जो आज भी कोई प्राप्त न कर सका।" वह पुनः लिखते हैं—"शिल्पियों का हाथ इतना सध गया था कि वे जिस वस्तु या विषय को लेते उनमें जान डाल देते थे। उनकी सुविकसित सौन्दर्य-भावना, परिमार्जित एवं प्रौढ़ कल्पना तथा अद्भुत रचना ने ऐसी कृतियों का निर्माण किया जो भारतीय कला के क्षेत्र में 'न भूतो, न भविष्यत्' रचनाएँ थीं।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त कालीन कला का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे :—

(क) वास्तु कला (Architecture)।

(ख) मूर्ति कला या तक्षण कला (Sculpture)।

(ग) चित्र कला (Painting)।

(घ) मुद्रा कला एवं धातु कला।

(च) संगीत तथा नृत्य कला (Music and Dancing)।

(क) **वास्तु कला**—वास्तु कला की गुप्त काल में विशेष उन्नति हुई। इतने वर्षों तक बर्बर आक्रमणकारियों के हाथों से बच कर कुछ स्तूप, भवन और मन्दिर आज भी इस युग की कला का दिग्दर्शन करा रहे हैं।

इस काल में मन्दिरों का निर्माण, एक विशेष महत्व रखता है। इस युग में सगुणोपासना को विशेष महत्व दिया गया है। फलस्वरूप अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ। इसके पूर्व मन्दिरों में मूर्तियों की स्थापना नहीं की जाती थी परन्तु इस काल में मूर्तियों की स्थापना की गई। इस काल के मन्दिरों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :—

(1) मन्दिर को एक ऊँचे चबूतरे पर निर्मित किया जाता था और उस चबूतरे के चारों ओर सीढ़ियाँ होती थीं। प्रारम्भ मे मन्दिरों की छत चपटी होती थी। उसकी दीवालों की बाहरी सतह सादी होती थी और उस पर किसी प्रकार का अलंकरण नहीं होता था। गृह-गर्भ में मूर्ति स्थापित की जाती थी।

(2) गृह गर्भ के चारों ओर प्रदिक्षणापथ बनाये जाते थे, जो ऊपर से ढके रहते थे।

(3) मन्दिरों की छत चार स्तम्भों पर टिकी रहती थी और इन स्तम्भों पर भाँति-भाँति के अलंकरण किये जाते थे। स्तम्भों के ऊपर एक वर्गाकार पत्थर का टुकड़ा रखा रहता था। प्रत्येक पत्थर के टुकड़े पर अधिकतर चार-चार सिंह एक दूसरे से पीठ सटाये हुई दिखाये जाते थे। मन्दिर के आगे एक बरसाती निर्मित की जाती थी।

प्रमुख मन्दिर—गुप्त सम्राटों ने अनेक मन्दिर बनवाये। ईंट तथा पत्थर से दोनों के ही मन्दिरों का निर्माण हुआ। कुछ प्रमुख मन्दिर निम्नलिखित हैं :—

(1) **भूमरा का शिव मन्दिर**—मध्य प्रदेश के नागौद रियासत में भूमरा नामक स्थान पर यह मन्दिर है। इस मन्दिर का केवल गृह गर्भ ही बाकी रहा है। लेकिन चारों ओर के चौड़े चबूतरे को देखकर यह आभास होता है कि गृह गर्भ के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चारों ओर एक प्रदक्षिणापथ था। गृह गर्भ में शिवलिंग स्थापित है जो अत्यन्त सुन्दर है। गृह गर्भ के स्तम्भ पर गंगा यमुना की मूर्ति है। द्वार की चौखट अनेक प्रकार के अलंकरणों से युक्त है। गृह गर्भ देखते ही बनता है। शिवलिंग को रत्नजड़ित मुकुट पहने हुए चित्रित किया गया है। उनकी जटाओं के बीच में आधा चन्द्रमा है और मस्तक पर तीसरा नेत्र। इस मन्दिर के विषय में पर्सी ब्राउन (Percy Brown) ने लिखा है।

"There are few buildings for their size that could have displayed such choice embellishment that under stone lying around the Bhumra Sanctum."

(2) **देवगढ़ का दशावतार मन्दिर**—यह झांसी जिले के देवगढ़ नामक स्थान में है। गुप्त काल के मन्दिरों में यह सबसे अधिक कलापूर्ण, सुन्दर और प्रसिद्ध है। इसका निर्माण एक ऊँचे चबूतरे पर हुआ है। प्रदक्षिणापथ का भी आभास होता है। मन्दिर के दरवाजे पर गंगा और यमुना की मूर्तियाँ हैं। सबसे पहले इसी मन्दिर में शिखर बनवाया गया जो पिरामिड के आकार का था। यह शिखर अब नष्ट हो गया है। मन्दिर के अन्दर शेषनाग पर शयन करते हुए भगवान विष्णु को चित्रित किया गया है। गृह गर्भ के चार द्वार हैं, जिन पर सुन्दर मूर्तियाँ बनी हैं। मन्दिर के बाहर एक चहार दीवारी है। द्वारों के चौखटों पर कमल की आकृतियाँ बनी हुई हैं। इस मन्दिर के विषय में पर्सी ब्राउन (Percy Brown) ने स्पष्ट किया है :

"Few monuments can show such a high level of workmanship combined with a ripeness and rich refinement in its sculpture effect as the Gupta Temple at Deogarh.

(3) **भीतर गाँव का मन्दिर**—कानपुर के समीप भीतरगाँव में ईंटों का बना यह मन्दिर है जो ऊपर की तरफ कम चौड़ा हो गया है। इसके गृह-गर्भ में शिवलिंग स्थित है। गृह-गर्भ 15-15 वर्ग फीट है। मन्दिर की दीवार का बाहरी भाग मिट्टी के पकाये गये फलकों द्वारा बनाया गया है। फलकों के ऊपर तरह-तरह के चित्र और सुन्दर मूर्तियाँ बनी हुई हैं।

(4) **टिवुवा का विष्णु मन्दिर**—मध्य-प्रदेश के जबलपुर जिले में टिबुआ नामक स्थान पर यह मन्दिर स्थित है। कनिंघम का मत है कि पहले इस स्थान पर दो मन्दिर थे। एक की छत चपटी थी और दूसरे की शिखर युक्त।

(5) **अजयगढ़ का पार्वती का मन्दिर**—अजयगढ़ राज्य के निकट नचना कूथना स्थान पर यह मन्दिर है। इस मन्दिर का निर्माण 35 फोट लम्बे और 35

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फीट चौड़े चबूतरे पर किया गया था। यह मन्दिर भूमरा के मन्दिर की भाँति है। अन्तर केवल इतना है कि यह दो मंजिला है।

(6) लरखान का मन्दिर—यह बीजापुर के ऐहोल नामक स्थान पर है। इसके द्वार स्तम्भों पर गंगा और यमुना की मूर्तियाँ हैं।

इसके अतिरिक्त पहाड़पुर और आसाम आदि में भी गुप्त कालीन मन्दिर प्राप्त हुए हैं।

स्तूप, विहार और गुफाएँ—मन्दिरों के अतिरिक्त गुप्त काल में अनेक गुहा भवनों, गुफाओं एवं स्तम्भों का निर्माण भी हुआ, जिनके कुछ भग्नावशेष आज भी मिलते हैं।

(1) धमेख स्तूप—सारनाथ का धमेख स्तम्भ गुप्त काल का ही है। यह स्तम्भ अन्दर से बड़ा सुन्दर और कलापूर्ण है। बाहरी भाग पर अनेक चित्र मूर्तियाँ, और बेल बूटे बने हैं।

(2) अजन्ता की गुफाएँ—अजन्ता की गुफाओं में कम से कम 3 गुफाएँ गुप्त-काल की मानी जाती हैं। 16 नं० की गुफा गुप्त-काल की ही है जो 65 फीट लम्बी और लगभग इतनी ही चौड़ी है। इसमें 16 स्तम्भ और 6 कमरे हैं। गुफा के द्वार पर अनेक चित्र हैं। 17 और 19 नवम्बर की गुफाओं का भी विशेष महत्व है।

(3) उदयगिरि की गुफा—कला की दृष्टि से उदयगिरि गुफा का भी विशेष महत्व है। गुफा में भगवान विष्णु की विशाल मूर्ति है। इसके द्वार तथा स्तम्भों पर मूर्तियाँ बनी हैं। गुफा के बाहर एक बरामदा भी बना है।

इन गुफाओं के अतिरिक्त मोगलराजपुरम्, डण्डाविल्ली तथा अखण्डमदन की गुफाएं प्राप्त होती हैं।

(4) प्रस्तर स्तम्भ—गुप्त काल में अनेक प्रस्तर स्तम्भ बनवाये गये। इस काल के प्रस्तर स्तम्भों में निम्नलिखित प्रमुख हैं :—

(1) गोरखपुर जिले के कहौम स्थान पर स्कन्दगुप्त द्वारा निर्मित स्तम्भ।

(2) एरण का भगवान की प्रतिष्ठा के लिए निर्मित स्तम्भ।

(3) भिटारी गाँव का भगवान विष्णु का प्रस्तर स्तम्भ।

(4) भिलसद का स्तम्भ।

गुप्त काल के स्तम्भ मौर्य काल के स्तम्भों की भाँति गोल तथा चिकने नहीं हैं। वे कोणदार हैं। कुछ स्तम्भों के शीर्ष पर गरुड़ और सिंह की मूर्ति बनी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ख) मूर्ति कला तथा तक्षण कला (Sculpture)—गुप्त काल में मूर्ति कला के क्षेत्र में असाधारण उन्नति हुई। यह काल "कला के पुनर्जीवन का नहीं वरन् चर्मोत्कर्ष एवं प्रस्फुटन का काल था।" कुषाण काल में जन्म लेने वाली विभिन्न शैलियों का विस्तृत रूप इस काल में देखने को मिला। इस काल में एक राष्ट्रीय शैली का जन्म हुआ। इस काल की शिल्प कला के विषय में डा० आर० सी० मजूमदार ने लिखा है :

गुप्त-काल की मूर्ति कला की विशेषताएँ—इस काल की मूर्ति कला की कतिपय विशेषताओं की चर्चा यहाँ की जा रही है :—

1—विदेशी प्रभाव से रहित—गुप्त काल की मूर्ति कला पर विदेशी प्रभाव के दर्शन नहीं होते। इस युग की मूर्ति कला के विकास के सम्बन्ध में हैवेल महोदय ने लिखा है :

"India was not then in a state of pupilage but the teacher of All Asia and she borrowed western suggestions to mould them to her own way of thinking."

श्री आर० डी० बनर्जी का मत है :

"ईसवी सन् की चौथी और पाँचवीं शताब्दियों में उत्तरी भारत के लोगों के आदर्शों का रूपान्तर होने के कारण गुप्तकालीन कला को भारतीय कला का पुनर्जागरण काल कहा जा सकता है। इस परिवर्तनकालीन कला का मूल आधार यह था कि अपने प्रधान तत्वों को आत्मसात किया जाय, विदेशी स्रोत और विदेश से समागत कला का मूलोच्छेदन किया जाय। इस काल की मूर्तिकला विशेष उल्लेखनीय है भारतीय तत्वों के पुनरुद्धार से अनुप्राणित है।"

कुषाण काल की गाँधार कला पर यूनानी प्रभाव स्पष्ट है परन्तु गुप्त-काल की कला शुद्ध भारतीय है।

2—आध्यात्मिक भावों का प्रदर्शन—गुप्त-कालीन कला में वाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आंतरिक सौन्दर्य को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। यह कला पूर्णतः स्वाभाविक और प्राकृतिक है। श्री लूनिया का मत है :

"गुप्तकाल के कलाकारों के कुशल करों से जो कुछ भी निर्मित हुआ वह पूर्ण-रूपेण स्वाभाविक प्रतीत होता था। कलाकृति में अत्यधिक विस्तार की गुञ्जाइश भी नहीं थी।"

गांधार कला में शारीरिक सौन्दर्य की ओर विशेष ध्यान दिया गया है परन्तु गुप्तकालीन कलाकार आध्यात्मिक भावों के अंकन में अधिक सफल हुए हैं। श्री सत्यकेतु विद्यालंकार का मत है :

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"भौतिक सौन्दर्य की अपेक्षा भी उनमें आन्तरिक-शान्ति, खोज, आध्यात्मिक आनन्द की झलक है ।

कुमार स्वामी ने भी लिखा है :

"गुप्त काल की शिल्पकला और चित्रण-कला निस्सन्देह प्रगाढ़ आध्यात्मिकता से युक्त है ।···इस कला का आधारभूत विषय निःसन्देह सदा धार्मिक है । किन्तु इस विषय के प्रतिपादन में आध्यात्मिक भावना और जीवन के अनुभव तथा तथ्यपूर्ण बातें सब एक सुसंग समष्टि के अन्तर्गत हैं ।"

(3) **वस्त्रांकन में बारीकी**—गुप्तकालीन मूर्तियों के वस्त्रों का अंकन बड़ी बारीकी से हुआ है । बारीक वस्त्रों के फलस्वरूप शरीर का अंग प्रत्यंग झलकता है ।

(4) **घुँघराले बाल**—गांधार कला में घुटा हुआ सिर दिखलाया गया है परन्तु गुप्त कालीन मूर्तियों में भगवान बुद्ध के घुंघराले बाल दिखलाये गये हैं ।

(5) **अलंकृत प्रभा मण्डल**—कुषाण काल की मूर्तियों का प्रभामण्डल साज-सज्जा से रहित है, परन्तु गुप्तकालीन मूर्तियों का प्रभामण्डल विभिन्न प्रकार के अलकरणों से युक्त है ।

(6) **मुद्राओं का बाहुल्य**—गुप्त कालीन मूर्तिकारों ने अनेक मुद्राओं में भगवान बुद्ध और अन्य देवताओं को बनाने का प्रयास किया । इन मूर्तियों में कोमलता, गम्भीरता और शान्ति के दर्शन होते हैं ।

(7) **आदर्श और सौन्दर्य का समन्वय**—गुप्त कालीन कला में जहाँ एक ओर सौन्दर्य है वहाँ दूसरी ओर आदर्श के भी दर्शन होते हैं । डा० मजूमदार ने ठीक ही लिखा है:—

"साधारणतया गुप्त मूर्ति-कला की विशेषता पवित्र आदर्शवाद तथा लय और सौंदर्य की अत्यधिक विकसित भावना का सम्मिलन है और इसके रूपों और सम्पादन में ओज और संस्कृति हैं । गुप्त-कला में बौद्धिक गुण की प्रधानता है और वह बहुत ही विकसित भावात्मक रूप और अलंकरणों के प्राचुर्य को नियन्त्रित रखती है, जो आने वाले युगों की कला की विशेषता हो जाती है ।"

कला के केन्द्र और नमूने—गुप्त काल में मूर्तियों के निर्माण के लिए तीन प्रमुख केन्द्र थे—पाटलिपुत्र, सारनाथ और मथुरा । यह मूर्तियाँ पाषाण, धातु और पकी हुई मिट्टी द्वारा बनाई जाती थीं । इन मूर्तियों को निम्न कोटियों में विभाजित किया जा सकता है:—

(अ) बौद्ध धर्म की मूर्तियाँ,

(ब) पौराणिक मूर्तियाँ,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(स) जैन मूर्तियाँ,

(द) अन्य मूर्तियाँ,

(अ) **बौद्ध मूर्तियां—(1) सारनाथ की बुद्ध मूर्ति**—इस मूर्ति में महात्मा बुद्ध पद्मासन लगाये हुए धर्म चक्र-प्रवर्तन मुद्रा में विराजमान हैं। उनके घुंघराले बाल हैं और शीर्ष के चारों ओर अलंकृत प्रभामण्डल है। अंग प्रत्यंग सुकुमारता और सौन्दर्य से युक्त हैं। दोनों कन्धे बारीक वस्त्र से ढके हैं। यह वस्त्र पैरों तक दिखलाये गये हैं। डा० स्मिथ के अनुसार इस मूर्ति पर गाँधार कला का प्रभाव नहीं है।

(2) सुल्तानगंज की बुद्ध मूर्ति—यह तांबे की बनी हुई साढ़े सात फीट ऊंची मूर्ति है। इसमें महात्मा बुद्ध खड़े हुए दिखलाये गए हैं और उनके हाथ अभय-मुद्रा में हैं। बाल घुंघराले हैं और मुख मण्डल पर करुणा और दिव्यता के दर्शन होते हैं।

(3) मथुरा की खड़ी मूर्ति—यह मूर्ति सात फीट ढाई इंच लम्बी है। मूर्ति में भगवान बुद्ध खड़े हुए दिखलाये गये हैं। इसमें वस्त्रांकन अत्यन्त महीन है और शरीर का अंग प्रत्यंग झलकता है। चेहरे पर शान्ति,करुणा, गौरव और आध्यात्मिकता के दर्शन होते हैं। इस मूर्ति के विषय में श्री नाहर ने लिखा है:—

"मथुरा के संग्रहालय में सुरक्षित एक सजीवाकृति बुद्ध-प्रतिमा गुप्त काल की आध्यात्मिक कलामयी मूर्तिकला का भव्य नमूना प्रस्तुत करती है इस मूर्ति में जिस मानसिक सन्तुलन और आध्यात्मिक सन्तुष्टि की अभिव्यक्ति दिखलाई पड़ती है वह यह सिद्ध करती है कि इसके निर्माण का दृष्टिकोण आध्यात्मिक था और वह शरीर पर आत्मा की विजय प्रदर्शित करना चाहता था। मथुरा की मूर्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त युग की मूर्ति कला विदेशी प्रभाव से सर्वथा मुक्त थी।"

उपर्युक्त मूर्तियों के अतिरिक्त अनेक बौद्ध देवी देवताओं की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। गुप्त काल में अवलोकितेश्वर और मैत्रेय आदि की अनेक मूर्तियाँ गढ़ी गईं।

(4) प्रस्तर फलक—गुप्त काल के अनेक प्रस्तर फलक प्राप्त हुए हैं जिनमे बुद्ध की जीवनी को चित्रित किया गया है। सारनाथ में अनेक प्रस्तर खण्ड मिले हैं। पत्थरों से उत्कीर्ण घटनाओं से गुप्त काल की कला मुखरित हो उठी है।

(ब) **पौराणिक मूर्तियाँ—(1) देवगढ़ की विष्णु मूर्ति**—झांसी जिले में देवगढ़ नामक स्थान में शेषशायी विष्णु की बहुत सुन्दर मूर्ति प्राप्त हुई है। विष्णु की नाभि से कमल निकल रहा है जिस पर ब्रह्मा विराजमान हैं। आकाश में अनेक देवी देवताओं की मूर्तियां अंकित हैं।

(2) उदयगिरि की वाराहावतार की मूर्ति—उदयगिरि पहाड़ी पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उत्कीर्ण भगवान विष्णु की वाराहावतार की मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है। इस मूर्ति में भगवान विष्णु पृथ्वी को पाताल से ऊपर उठाते हुए चित्रित किए गये हैं।

(3) मथुरा की विष्णु की मूर्ति—मथुरा की विष्णु मूर्ति अपनी कलात्मकता के कारण सारनाथ की बुद्ध मूर्ति की समता रखती है। इसमें भगवान विष्णु रत्नों से जड़ा मुकुट धारण किये हुये हैं। उनके कानों में आभूषण है। शरीर ढका हुआ है और मुख पर आध्यात्मिक आभा है। इस मुख की प्रशंसा में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है:—

"Perhaps the best quality of the Gupta plastic art finds expression in the superb example of Vishnu from Mathura with its face revealing a celestical contentment and serene spiritual contemplation similar to that of the Buddha image in the Sarnath museum."

(4) काशी के कार्तिकेय की मूर्ति—मोर पर बैठे हुए कार्तिकेय की मूर्ति भी बड़ी रमणीय है। कार्तिकेय के दोनों पैर मोर के गले में पड़े हुए हैं। सिर के ऊपर मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में हार और चेहरे पर गम्भीरता है।

कौशाम्बी की सूर्य मूर्ति—कौशाम्बी की विशालकाय सूर्य मूर्ति भी गुप्त कालीन मूर्तियों में प्रसिद्ध है।

(6) शिव मूर्तियां तथा शिवलिंग—गुप्त काल में अनेक शिवमूर्तियाँ और शिवलिंगों का निर्माण हुआ। सारनाथ के संग्रहालय में शिव का एक शीर्ष रखा है। यह शीर्ष जटाओं से युक्त है। नागौद में एक शिवलिंग मिला है जिसके ऊपरी भाग पर शिव का सिर बना है और मस्तक पर तृतीय नेत्र झलक रहा है। शिव की एक अर्द्धनारीश्वर मूर्ति भी प्राप्त हुई है।

(स) जैन मूर्तियां—गुप्त काल में कुछ जैन मूर्तियां भी निर्मित हुई हैं। मथुरा में पद्मासन लगाये हुए महावीर स्वामी की मूर्ति प्राप्त हुई है। कुछ मूर्तियां गोरखपुर जिले में भी मिली हैं।

(द) अन्य मूर्तियां—धार्मिक मूर्तियों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकार की मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं। अनेक स्त्री, पुरुष और पशु पक्षियों की मूर्तियां गुप्तकाल में बनाई जाती थीं। यह मूर्तियां पत्थर और धातु के अतिरिक्त मिट्टी से भी बनती थीं। अहिच्छत्र और राजघाट में कुछ ऐसी मूर्तियां मिली हैं।

गुप्त कालीन अलंकरण के कुछ उपकरण—

गुप्त काल से पहले स्थापत्य और मूर्ति कला को अलंकरणयुक्त करने का प्रयास नहीं किया गया था। सबसे पहले इस काल में इस दिशा में प्रयास किया गया। अलंकरण पद्धति में अनेक उपकरणों का प्रयोग किया गया है, जिनमें अग्रलिखित मुख्य हैं:-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(1) **गंगा-यमुना**—गुप्त काल में दरवाजे के चौखट के दोनों ओर द्वारपालों की जगह गंगा यमुना की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। गंगा की मूर्ति दाहिनी ओर और यमुना की मूर्ति बाईं ओर है। गंगा को मकर पर बैठी हुई तथा यमुना को कूर्म पर बैठी हुई चित्रित किया गया है। भूमरा के शिव मन्दिर के दरवाजे पर गंगा यमुना की सुन्दर मूर्तियां मिलती हैं।

(2) **सर्प**—गुप्त मूर्तियों और स्थापत्य में व्याल की अनेक आकृतियां प्राप्त हुई हैं। उसे पंख, पूंछ और सींग से चित्रित किया गया है। इस प्रकार के अनेक सर्प सारनाथ के संग्रहालय में देखे जा सकते हैं।

(3) **सिंह-मुख**—भवनों और मन्दिरों के दरवाजों पर सिंह-मुख भी उत्कीर्ण किए गये हैं। कभी-कभी झरोखों और ताखों पर भी उन्हें उत्कीर्ण किया जाता था। इन सिंह-मुखों को कीर्ति मुख कहा जाता था। देवगढ़ और भूमरा के मन्दिरों में यह प्राप्त हुए हैं।

(4) **पुष्प-पत्र**—गुप्त काल के कलाकारों ने अलंकरण के लिए पुष्पों, पत्तियों, लताओं आदि का प्रयोग बड़ी सुन्दरता से किया है। सांची और भारहूत के स्तूपों के अलंकरण दर्शनीय हैं। गुप्त काल का यह कला का चित्रण मानव जगत के साथ ही वनस्पति जगत को भी विशेष महत्व प्रदान करता है।

(5) **झरोखे**—गुप्त काल में घोड़े के पैर के आकार के झरोखे बड़ी सुन्दरता से बनाये गये हैं। कहीं-कहीं इन झरोखे में पशु-पक्षियों की मूर्तियां भी स्थापित की गई हैं।

(6)**टेरा कोटा**—(**Terra-Cotta**)—मिट्टी की कला भारत में अति प्राचीन काल से प्रचलित थी। गुप्त काल में इस कला का अत्यधिक विकास हुआ और उसके अन्तर्गत सौन्दर्य प्रधान और उपयोगिता प्रधान दोनों ही प्रकार की मूर्तियों का निर्माण किया गया। सौन्दर्य प्रधान मृण मूर्तियों के द्वारा घरों, स्तूपों और मन्दिरों को सजाया जाता था। इस प्रकार टेरा कोटा गुप्त काल की कला एक मुख्य शाखा थी। यह कला निर्धनों की कला थी, और यही कारण है कि इसके फलस्वरूप ही गुप्त कला साधारण जनता में लोकप्रिय हो गई।

टेरा कोटा मूर्तियों के तीन रूप प्राप्त होते हैं—(1) देवता तथा देवियों की आकृतियां, (2) पुलिंग और स्त्रीलिंग आकृतियाँ, और (3) पशुओं की छोटी-छोटी आकृतियाँ। देवी तथा देवताओं दुर्गा, गंगा, यमुना और सूर्य की आकृतियां बहुत अधिक मात्रा में बनाई गई हैं। ईरान और मध्य एशिया के निवासियों को भी यह आकृतियां प्राप्त हुई हैं। द्वितीय कोटि की कला में हाथी, सवारों, वरों, बौनों,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विदूषकों की अनेक आकृतियां मिली हैं। मिट्टी की बनी हुई इन आकृतियों को फूलों और पत्तियों से सँजोया भी गया है। राजघाट में प्राप्त हुई टेरा कोटा की मूर्तियों की तुलना मिट्टी में वर्णित गीतों में की गई है। डा० अग्रवाल का मत है कि गुप्त काल की कला की आत्मा इन टेरा कोटा आकृतियों में निवास करती है। राजघाट और अहिच्छत्र में प्राप्त आकृतियों की सुन्दरता के विषय में उन्होंने लिखा है'—

"The terracotta figurings from the recent excavations at Rajghat and Ahichhatra present a feast of beauty to the eyes and the best female heads, skilfully finished, appear like lyric expressed in clay."

अतः गुप्त काल के कलाकारों के लिए यह कहा जा सकता है कि उन्होंने जिस वस्तु को भी छू लिया उसे सुन्दर बना दिया।

(ग) चित्र कला—गुप्त कालीन साहित्य का अध्ययन करने और अजन्ता तथा एलोरा की गुफाओं को देखने से पता चलता है कि गुप्त काल में चित्रकला की भी पर्याप्त उन्नति हुई थी। ऐसा ज्ञात हुआ है कि इस काल में चित्र कला इतनी प्रचलित हो गई थी कि प्रत्येक घर में एक चित्र शाला का होना आवश्यक माना जाता था। इस काल में चित्रों को बनाने के लिए पृष्ठभूमि को भली भांति स्वच्छ करके उस पर चन्दन लगाया जाता था। पृष्ठभूमि को सुन्दर बनाने के लिए उस पर कोई प्राकृतिक दृश्य अंकित किया जाता था। इस काल के चित्रों में भावों का अंकन इस चतुरता से किया गया है कि देखने वाला मूक रह जाता है। इन चित्रों में जीवन के सभी पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। चित्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लौकिक चित्रों में आध्यात्मिक पक्ष के दर्शन होते हैं। इस काल की चित्रकला की उत्कृष्टता का पता अजन्ता और एलोरा की गुफाओं में बने चित्रों द्वारा, बाघ के मोह चित्रों और लंका में प्राप्त चित्रों से चलता है। अजन्ता और एलोरा की चित्रकारी दर्शनीय है। एलोरा की गुफाओं की चित्रकारी के विषय में स्वीडेन (Sweden) ने लिखा है :—

"They represent the climax to which genuine Indian Art has achieved everything in which these pictures from the composition as a whole to the smallest pearl or flower testifies to the depth of insight complete with greatest technical skill."

अजन्ता के चित्रों में 'मरती हुई राजकुमारी', 'माता और पुत्र' और 'बुद्ध

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के महानिष्क्रमण' के चित्र बहुत सुन्दर हैं। अजन्ता की चित्रकला की चर्चा अलग अध्याय में विस्तार से की गई है।

(घ) मुद्रा कला एवं धातु कला—गुप्त कालीन मुद्रा कला भी बड़ी उच्च कोटि की है। इस काल में भारत धन-धान्य से पूर्ण था अतः सोने और चांदी के सिक्के चलते थे। उनको बहुत सुन्दर-सुन्दर रूपों में ढाला जाता था। इन पर गुप्त सम्राटों की विभिन्न रूपों में मूर्तियां तथा लक्ष्मी, गरुड़ और सिंह की मूर्तियां अंकित की जाती थीं। इनको अंकित करने का ढंग बड़ा सुन्दर तथा आकर्षक था।

गुप्त कालीन मूर्तियों तथा स्तम्भों आदि से पता चलता है कि उस काल में धातु का ज्ञान भी अधिक था। इस युग की मूर्तियां तथा स्तम्भ इतने वर्षों के आंधी, पानी और तूफान को सहकर भी ज्यों के त्यों सुरक्षित हैं। दिल्ली में कुतुबमीनार से पास बना लौह स्तम्भ उस काल की कला का उत्कृष्ट नमूना है। उसका ऊपरी भाग बहुत ही आकर्षक है। सुल्तानगंज से साढ़े सात फीट ऊंची बुद्धजी की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है। ह्वेनसांग ने भी अपने लेखों में कई अद्भुत स्तम्भों तथा मूर्तियों का वर्णन किया है।

(च) संगीत तथा नृत्य कला—संगीत के क्षेत्र में गुप्त कालीन सम्राटों की जितनी रुचि थी उतनी कदाचित ही किसी युग के सम्राटों में रही हो। गुप्त सम्राटों में समुद्रगुप्त तो स्वयं ही बहुत बड़ा संगीतज्ञ था। सगीत में उसकी स्वयं की रुचि तो थी ही साथ ही उसने राज्य में संगीत कला की उन्नति का काफी प्रयास किया था। इस युग में वीणा, वेणु तथा मृदंग प्रमुख वाद्य-यन्त्र थे। भास ने वीणा को समुद्र से निकला हुआ रत्न बतलाया है। वेणु की प्रशंसा में वात्सायन ने कहा है कि वेणु प्रियतमा को आकर्षित करने का मूल मन्त्र है। धनिकों के घर में विभिन्न प्रकार के वाद्य यन्त्र होते थे। संगीत कला का ज्ञान कराने में उस काल के साहित्य संगीत कला पर से पर्याप्त सहायता मिलती है 'रघुवंशम्' तथा 'शाकुन्तलम्' में तो अनेक स्थलों पर संगीत कला पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

(छ) अभिनय—गुप्त कालीन नाटकों का अभिनय भी किया जाता था। इस समय की रंगमंच सज्जा बड़ी उच्च कोटि की थी। कालिदास के 'माल-विकाग्निमित्र' का अभिनय उसके सामने हुआ था। सम्राट स्वयं नाट्य-कला में विशेष अभिरुचि रखते थे और रंगशालाओं में जाते थे। अभिनय की सफलता दर्शकों को आनन्द प्रदान करने में समझी जाती थी। 'शाकुन्तलम्' में सूत्रधार कहता है, "सभ्यों को आनन्द प्रदान करना अभिनेता का वास्तविक कार्य है। जब तक उन्हें सन्तोष न हो जाय तब तक मैं अपनी कला की श्रेष्ठता में विश्वास नहीं करता।"

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रश्न (6) गुप्त काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग क्यों कहा जाता है ?

भारतीय इतिहास में गुप्तकाल को 'स्वर्ण युग' की संज्ञा से विभूषित किया गया है, और इस काल की तुलना पेरिक्लियन, ऑगस्टस और एलिजाबेथन कालों से की गई है। डा० रामशंकर त्रिपाठी का कथन है, "गुप्तकाल की तुलना प्रायः यूनान के इतिहास में पेरिक्लीज के काल से अथवा इंग्लैण्ड में एलिजाबेथ के युग से की जाती है।" इतिहास में स्वर्णयुग उस काल को कहा जाता है जिसमें राज्य और प्रजा का चतुर्दिक विकास होता है। निस्सन्देह गुप्त काल में भारत की बहुमुखी प्रगति हुई और अन्य राष्ट्रों के सम्मुख हमारे देश का मस्तक उन्नत हुआ। इस काल में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक विकास हुआ और प्रजा की आध्यात्मिक, मानसिक तथा भौतिक प्रगति हुई। डा० स्मिथ का कथन है:— "हिन्दू भारत के इतिहास में महान गुप्त सम्राटों का काल किसी भी अन्य काल से अधिक सौम्य तथा सन्तोषजनक चित्र उपस्थित करता है। साहित्य, कला तथा विज्ञान की सामान्य से कहीं अधिक उन्नति हुई और बिना किसी अत्याचार के धर्म में क्रमागत परिवर्तन सम्पादित किये गये।" भारतीय इतिहास में गुप्तकाल को स्वर्ण युग कहे जाने के निम्नांकित मुख्य कारण हैं :—

(1) महान् सम्राटों का युग— गुप्तकाल के सम्राट वीर योद्धा, कुशल सेनानी, महान विजेता तथा सफल शासक थे। उन्होंने भारत में एक सुदृढ़ साम्राज्य स्थापित किया था। समुद्रगुप्त, जिसे भारतीय नेपोलियन कहा जाता है, ने उत्तर भारत के अतिरिक्त मध्य तथा दक्षिण भारत के राज्यों पर विजय प्राप्त की थी। उसने चीनी सम्राट तक के कुछ प्रान्तों पर अधिकार कर लिया था। इसी प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अनेक विजयें प्राप्त करके 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की थी। स्कन्दगुप्त ने हूणों को युद्ध में पछाड़कर उन्हें देश से बाहर निकाल दिया था। गुप्त सम्राट केवल युद्ध मे ही अद्वितीय न थे, वरन् वे शासन के क्षेत्र में भी महान् थे।

(2) राजनीतिक एकता का युग—अशोक की मृत्यु के उपरान्त देश की राजनीतिक एकता लुप्त हो गई थी और सम्पूर्ण देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो गया था। गुप्त सम्राटों ने देश में एकछत्र राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया था, जिसमें उनको पर्याप्त सफलता मिली थी। समुद्रगुप्त की दिग्विजय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का एक मात्र उद्देश्य अन्य राजाओं को अपनी अधीनता स्वीकार कराना था। गुप्त-काल को स्वर्णयुग सिद्ध करते हुए डा० रामशंकर त्रिपाठी ने लिखा है :—

"The period of the Imperial Guptas has often been described as the golden age of Hindu history. It comprised the reigns of a number of able, versatile and might monarchs, who brought about the consolidation of a large part of Northern India under one political umbrella and ushered in an age of orderly gavernment and progress."

—Dr. R. S. Tripathi.

(3) शान्ति तथा सुव्यवस्थित शासन का युग—गुप्तकाल के शासकों ने एक ऐसे शक्तिशाली और सुव्यवस्थित साम्राज्य की स्थापना की थी, जो कई सौ वर्षों तक बना रहा। इस काल का शासन पूर्ण उदार तथा न्याय पर आधारित था। इस काल में शान्ति और समृद्धि होने के कारण जनता को विकास का विशेष अवसर प्राप्त हुआ था। इस काल में न्याय की भी उत्तम व्यवस्था थी और दण्ड-विधान मौर्यकाल के समान कठोर न थे। फाह्यान के लेखों के अनुसार देश का शासन बहुत अच्छी प्रकार से चल रहा था।

(4) शासन की उदारता का युग—गुप्त काल के शासक देश को समृद्ध-शाली बनाने के लिए विशेष प्रयत्नशील रहते थे। वे राजमार्ग बनवाते थे और कृषि की उन्नति के लिए तालाब, झील तथा बांधों का निर्माण करवाते थे। राज्य की ओर से व्यापार तथा कृषि विकास पर विशेष बल दिया जाता था। डा० अल्तेकर ने लिखा है :—

"We may therefore, be well proud of the Gupta administrative system which served as the ideal for contemporary and later states."

—Dr. Altekar.

(5) वैदिक धर्म, शिक्षा एवं साहित्य की उन्नति का युग—वैदिक धर्म ने विशेष उन्नति की थी। इस युग में शिव और विष्णु की पूजा का विशेष प्रचलन था। काली, चण्डी, दुर्गा आदि की भी आराधना होती थी। नाग एवं यज्ञ पूजा, और सूर्य पूजा का भी प्रचलन था। अवतारवाद, मन्दिरों में पूजा-पाठ और तीर्थ-यात्रा को मान्यता प्रदान की गई थी। इस युग में बौद्ध धर्म पर वैदिक धर्म का प्रभाव था। जैन-धर्म भी वैदिक धर्म के प्रभाव से नहीं बचा। इन धर्मों में भी पूजा-पाठ, अर्चन आदि का प्रचलन हो गया।

इस युग में तक्षशिला विश्वविद्यालय का प्रभाव कम हो गया था। इस युग में ज्योतिष, आयुर्वेद, गणित और रसायनशास्त्र में पर्याप्त उन्नति हुई थी। वैज्ञानिकों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में आर्य भट्ट और वराहमिहिर के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं। चरक और सुश्रुत जैसे महान चिकित्सक भी इस युग में हुए। साहित्य के क्षेत्र में बहुत अधिक उन्नति हुई। इस युग के कवियों में कालिदास, मातृगुप्त, भारवि, भट्ट आदि के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। कालिदास और शूद्रक ने नाटक के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। डा० अम्वेदकर का कथन है कि 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' की रचना इसी युग में हुई। चन्द्रगोमिन का व्याकरण, अमरसिंह का 'अमर-कोष' और 'दण्डी का 'काव्यादर्श' भी इसी युग में रचे गये। याज्ञवल्क्य, कात्यायन, नारद और बृहस्पति आदि भी गुप्तकाल में हुए।

(6) **धार्मिक सहिष्णुता तथा स्वतंत्रता का युग**—गुप्तकाल के सम्राट विष्णु उपासक होते हुए भी अन्य धर्मो के प्रति उदार तथा सहिष्णु थे। सभी लोग अपने-अपने धर्मों का पालन निर्भय होकर करते थे। इस काल में हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान हो रहा था, साथ ही जैन तथा बौद्ध धर्म का भी विकास हो रहा था। सभी धर्म वाले पूर्ण शिष्टतापूर्ण धार्मिक वाद-विवादों में भाग लेते थे। धर्म-प्रचार के लिये लोगों को मौत के घाट नहीं उतारा जाता था। सभी धर्मावलम्बी अपने धर्म के प्रचार का भगीरथ प्रयास कर रहे थे। इस काल में हिन्दू धर्म का विशेष विकास हुआ तथा इस धर्म की विजय-पताका विदेशों में भी फहराने लगी।

(7) **वैज्ञानिक प्रगति का युग**—इस काल में विज्ञान की भी प्रगति हुई। तथा विज्ञान की अनेक शाखाएँ जैसे रसायन विज्ञान, धातु विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, ज्योतिष और गणित की बड़ी उन्नति हुई। इस युग में रेखागणित का प्रारम्भ हुआ और अंकगणित में दशमलव भिन्न का अन्वेषण हुआ। आर्य भट्ट प्रसिद्ध गणितज्ञ खगोल वेत्ता थे। यह सर्वप्रथम भारतीय थे जिन्होंने यह खोज की थी कि पृथ्वी अपनी कीली पर घूमती है। इस काल में धन्वन्तरि सरीखे आयुर्वेदाचार्य और ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर भी हुये। वरहिमहिर को डा० स्मिथ ने ग्रीक विद्वानों का पण्डित कहा है। वराहमिहिर ने 'लघुजातक' 'वृहत्संहिता' 'बृहज्जातक' और 'पंच सिद्धान्तिका' ग्रन्थों की रचना की थी। इस काल में वैद्यक की भी उन्नति हुई और चरक तथा सुश्रुत गुप्त काल के प्रसिद्ध वैद्य थे।

(8) **मूर्तिकला की उन्नति का युग**—गुप्त काल की मूर्ति कला को देखकर आधुनिक काल के विद्वान दाँतों तले उंगली दबा लेते हैं। इस काल में महात्मा बुद्ध की एक मूर्ति मिली है जो बर्मिघम के अजायबघर में रखी है। सारनाथ की धर्म चक्र प्रवर्तन मुद्रा में बुद्ध जी की मूर्ति विशेष आकर्षक है। इसी प्रकार मथुरा में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भगवान बुद्ध की जो मूर्ति है वह भी कला की दृष्टि से श्रेष्ठ है गुप्तकालीन मूर्तिकला में सादगी है परन्तु उसमें आकर्षण है।

(9) **चित्रकला की उन्नति का युग**—विश्व चित्रकला में गुप्तकालीन चित्रकला को प्रमुख स्थान प्राप्त है। अजन्ता की गुफाओं की चित्रकारी देखकर प्रत्येक मानव का मन-मयूर नाच उठता है। संसार के सभी चित्रकारों ने एक मत होकर अजन्ता की चित्रकला की प्रशंसा की है। स्वीडेन के एक आलोचक ने अजन्ता चित्रकारी के सम्बन्ध में लिखा है—

"They represent the climax to which genuine Indian art has achieved everything in which these pictures, from the composition as a whole to the smallest flower testifies to the depth of insight, coupled with greatest technical skill."

(10) **संगीत और अन्य कलाओं की उन्नति का युग**—गुप्त काल में संगीत कला की भी बड़ी उन्नति हुई थी। प्रत्येक अच्छे कुटुम्ब में लड़कियों को संगीत की उचित शिक्षा दी जाती थी। गायन के अतिरिक्त वादन, नृत्यकला और अन्य ललित कलाओं की भी खूब उन्नति हुई। इस काल के सम्राट कला प्रेमी और कलाकारों के संरक्षक थे। समुद्रगुप्त के काल की जो मुद्राएँ मिली हैं। उन पर उसका वीणा सहित चित्र अंकित है। गुप्तकालीन कला की कुछ विशेषताओं का वर्णन 'ए न्यू हिस्ट्री आफ इण्डियन पीपुल' पुस्तक में इस प्रकार किया गया है—"गुप्तकालीन कला की कुछ विशेषताएँ हैं, जिन्होंने अपने युग को अमर बना दिया है। स्वाभाविकता उच्चकोटि का सौन्दर्य, सरलता तथा आध्यात्मिकता उस युग की कला की विशेषताएँ हैं। उन कलाकारों के सौन्दर्य-प्रेम में वासना का सर्वथा अभाव था।" इनके अतिरिक्त इस काल में उपयोगी कलाओं का भी पर्याप्त विकास हुआ। इस प्रकार कला के उत्कर्ष के दृष्टिकोण से गुप्तकाल निस्सन्देह स्वर्ण युग था।

(11) **व्यापारिक उन्नति का युग**—गुप्त काल में भारत का व्यापार विदेशों से बहुत अधिक बढ़ गया था। यह व्यापार जल एवं स्थल दोनों ही मार्गों से होता था। आन्तरिक व्यापार की अवस्था भी अत्यन्त सन्तोषजनक थी। मुद्राओं की उचित व्यवस्था के फलस्वरूप विनिमय में सरलता होती थी और अनेक राजमार्गों की व्यवस्था व्यापारिक उन्नति को दृष्टि में रखकर ही की गई थी।

(12) **विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार का युग**—गुप्त काल में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारतीय संस्कृति का बहुत अधिक प्रसार हुआ। इण्डोचीन, जावा, सुमात्रा और बोर्नियो आदि भारतीय संस्कृति के प्रमुख केन्द्र बन गये थे। भारतीय संस्कृति के प्रसार में उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत दोनों का ही महान योगदान रहा। सुदूरपूर्व और दक्षिण-पूर्व एशिया में भारत के विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों आदि का बहुत अधिक प्रचार हुआ। डा० अल्तेकर ने लिखा है "उस युग के हिन्दू, दर्शन के नये और साहसपूर्ण सम्प्रदायों का विकास करने में उतने ही सफल थे जितने कि समुद्र द्वारा माल ले जाने के लिये सुदृढ़ और विशाल जलयानों का निर्माण करने में।"

"The Hindus of that age were as successful in evolving new and bold systems of philosophy as in building large and steady vessels to carry goods over sea." **—Dr. Altekar.**

आज भी विभिन्न देश में गुप्तकालीन भारतीय संस्कृति के चिह्न देखे जा सकते हैं।

निष्कर्ष—अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गुप्त काल में भारत की सर्वतोमुखी उन्नति हुई। राजनीतिक, सामाजिक और कलात्मक सभी दृष्टियों से यह युग महान था। यही कारण है कि विभिन्न विद्वानों ने उसे स्वर्ण युग के नाम से पुकारा है। श्री अरविन्दो ने लिखा है —

"The Gupta age witness the creative and aesthetic enthusiasm of race in every field......Never in the history, has India seen such a manysided blossoming of her force of life." **—Shri Aurobindo.**

प्रसिद्ध इतिहासकार बर्नेट ने उसकी तुलना यूनान के पेरिक्लियन युग से करते हुए लिखा है—

"Gupta period is in the annals of classical India, almost, what Perclean age in the history of Greece." **—Barnett.**

6717

प्रश्न (7) अजन्ता की चित्र-कला पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

भारत की चित्रकला के इतिहास में अजन्ता की चित्रकला अपना विशेष महत्व रखती है। अजन्ता के चित्रों के सम्बन्ध में सर्वप्रथम जानकारी 1819 ई० में एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अंग्रेज पदाधिकारी को हुई। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि अजन्ता की प्रत्येक गुफा में चित्र थे किन्तु आज वे सभी चित्र प्राप्त नहीं हुए हैं। केवल 1, 2, 9, 10, 16 तथा 17 नम्बर की गुफाओं के चित्र प्राप्द हुए हैं।

कला का समय—अजन्ता के कुछ चित्र ई० पू० प्रथम शताब्दी के हैं। प्रथम तथा दूसरी गुफा के चित्र सातवीं शताब्दी के हैं तथा अन्य चित्र 400-800 ई० के मध्य के हैं।

अजन्ता चित्रकला के कुछ चित्र अविकसित हैं, इससे ज्ञात होता है कि ये भिन्न-भिन्न कालों में बनाये गये थे। इनमें कुछ चित्र शुंग-कालीन तथा कुषाण-कालीन हैं।

अजन्ता-चित्र कला की शैली—भारत के प्राचीन चित्रों में एक ही रंग का प्रयोग देखने को मिलता है। एक ही रंग से लाइट और शेड दिया जाता था। शायद पौधों के रेशों की शलाका बनाई जाती थी और रंगों को पीसने के लिए पाषाण-खण्डों का प्रयोग किया जाता था। चित्र बनाते समय सतह पर प्लास्टर की प्रणाली प्रचलित नहीं थी। सीधी चट्टान पर ही चित्र बनाये जाते थे। जोगीमारा की गुफाओं में इसी प्रकार की चित्रकारी है।

अजन्ता की गुफाओं में सबसे पहले प्लास्टर करने के अच्छे उदाहरण प्राप्त होते हैं। चित्र बनाने के पूर्व चट्टान पर प्लास्टर किया जाता था। प्लास्टर मिट्टी गोबर, और टूटी हुई चट्टानों के टुकड़ों को पीस कर बनाया जाता था। कभी-कभी उनमें भूसा और धान का छिलका भी मिश्रित कर लिया जाता था। सबसे पहले, दीवाल चिकना किया जाता था, जिससे गुफा बनाते समय होने वाले छेनी के गड्ढे पूरी तरह भर जायँ तथा रंगने में सुगमता हो। पहले लेप 1/8 इंच से 3/4 इंच तक मोटा होता था। पहले लेप को करनी से चौकस किया जाता था और फिर हल्के चूने का लेप लिया जाता था।

अजन्ता की चित्रण-प्रणाली के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार इसमें विशुद्ध फ्रेस्को प्रणाली को अपनाया गया है और कुछ के अनुसार विशुद्ध टेम्परा अथवा फ्रेस्को टेम्पैरा को कुछ विद्वानों का मत है कि भारतीयों के फ्रेस्को प्रणाली के चित्र भारी और स्थायी होते हैं। अजन्ता में इन दोनों शैलियों का मिश्रण देखने को मिलता है।

जब उपर्युक्त वर्णित रीति द्वारा रंगने के लिए धरातल तैयार हो जाता था। तब गेरू से चित्र की प्रारम्भिक रूपरेखा बनाई जाती थी। कभी-कभी गेरू के रंग पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गहरे काले अथवा भूरे रंग से सुधार किया जाता था। कदाचित यह कार्य कलाकारों के विशेषज्ञ करते थे। इन चित्रों में बहुत सीमित रंगों का प्रयोग किया गया है। रंग इस प्रकार होते थे कि चूने पर लगाने में परिवर्तन न हो। अजन्ता में सफेद, पीले, बादामी, हरे तथा नीले रंगों का प्रयोग किया गया है। श्वेत रंग चूने से बनता था। लाल-बादामी रंग लोहे व संखिया से बनाया जाता था। बहुमूल्य पत्थरों से नीला रंग बनता था। यह पत्थर बदखशां एवं फारस से आता था। इन गुफाओं में लाइट और शेष का प्रयोग हुआ है। इसको प्रदर्शित करने के लिए परस्पर विरोधी रंगों का प्रयोग किया जाता था और अधिक गहरे और हल्के रगों का प्रयोग किया जाता था।

रूपरेखा तैयार करने के पश्चात् रंगों का प्रयोग इस प्रकार किया जाता था कि दो विरोधी रंग एक साथ न आवें। कभी-कभी रूप रेखा की लाल रेखा के ऊपर पारदर्शक हरे रंग का प्रयोग किया जाता था। एक रंग भरने के उपरान्त उसे सूखने के लिए छोड़ दिया जाता था और तत्पश्चात् दूसरे रंग का प्रयोग किया जाता था।

चित्र कला का विषय—अजन्ता की चित्र कला अग्रलिखित तीन भागों में बांटी गई है :—

(1) आलेखन (2) वर्णन (3) अलंकरण।

आलेखन में महात्मा बुद्ध के चित्र आते हैं। वर्णन में जातक कथाओं के चित्र हैं। अलंकरण हेतु पशु, पक्षी, लता, यक्ष, गन्धर्व आदि के चित्र चित्रित किए गए हैं।

चित्रों का विभाजन एक अन्य रीति से भी किया गया है :—

(1) बौद्ध धर्म से सम्बन्धित चित्र—इस प्रकार के चित्रों में प्रथम गुफा का मार विजय चित्र, अवलोकितेश्वर का विशाल चित्र, 16 वीं गुफा में बुद्ध-देव के गृहत्याग का चित्र, माता-पुत्र का प्रसिद्ध चित्र, छन्देक जातक तथा गज-जातक के विभिन्न चित्र, वेस्सव्तर-जातक का वानप्रस्थी राजकुमार का चित्र आदि उल्लेख-नीय हैं।

(2) बुद्ध धर्म से सम्बन्ध न रखने वाले चित्र—गुफा न० 1 में कुछ विदेशी पुलकेशिन द्वितीय को भेंट देते हुए चित्रित किये गये हैं। इसी गुफा की छत पर बने चित्र में विदेशी सम्राट अपनी रानी के साथ मदिरा पान करते हुए दिखाए गए हैं। स्त्रियों के विभिन्न मुद्राओं में चित्र मिलते हैं जो अपनी स्वाभाविकता से दर्शकों के मन को मोहित कर लेते हैं।

(3) सौन्दर्य बढ़ाने के लिए बनाए गए चित्र—इन चित्रों में पशुपक्षियों,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वृक्षों, लताओं, यक्षों, गन्धर्वों, पशुओं आदि के चित्र आते हैं।

अजन्ता के ये चित्र जीवन की विभिन्न दशाओं का चित्रण करते हैं। एक विद्वान के अनुसार इन चित्रों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई नाटक देखा जा रहा हो।

अजन्ता के कुछ प्रसिद्ध चित्र—अजन्ता के निम्नलिखित चित्र प्रमुख हैं :—

(i) **मरणासन्न राजकुमारी का चित्र**—इस चित्र में एक राजकुमारी को मृत्यु शय्या पर दिखाया गया है। मृत्यु नेत्र बन्द करना चाहती है। उसके सम्बन्धी उसके चारों ओर खड़े हैं। राजकुमारी कातर नेत्रों से उनकी ओर देख रही है। चित्र को देखते ही हृदय में निर्वेद की भावना घर कर लेती है। मृत्यु का शोकाकुल दृश्य देखते ही बनता है। ग्रिफिथ के शब्दों में भावों के प्रदर्शन, करुणा की भावना और केवल भावनाओं द्वारा अपनी कहानी कहने की कला के इतिहास में यह चित्र बेजोड़ है। फ्लोरेन्स का कलाकार अपने चित्रों की अपेक्षा अधिक सुन्दर रूप दिखा सकता है, वेनिस का कलाकार अपने चित्रों में अधिक रंग भर देता है पर अजन्ता के चित्रों का सा भाव-प्रकाशन विश्व का कोई कलाकार नहीं कर सकता है।"

(ii) **महात्मा बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण**—सत्रहवीं गुफा का यह चित्र बड़ा ही स्वाभाविक है। गौतम शान्त भाव से गृह त्याग कर रहे हैं, यशोधरा और राहुल सोये हुए हैं। गौतम के चेहरे पर उद्वेग नहीं है। सिस्टर निवेदिता ने इस चित्र की प्रशंसा करते हुए इसे अद्वितीय कल्पना का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण बताया है।

(iii) **राजा तथा स्वर्ण हंस का चित्र**—सत्रहवीं गुफा का एक अन्य चित्र है जिसमें एक राजा स्वर्ण हंस से बातें कर रहा है। इस चित्र की प्रशंसा करते हुए सिस्टर निवेदिता ने इसे विश्व का सुन्दर चित्र बताया है। उन्होंने स्पष्ट किया है—

"Nowhere in the world could more beautiful painting be found than in the king listening to the golden goose in cave seventeen."

(iv) **माता और पुत्र का चित्र**—गुफा नम्बर 17 में माता और पुत्र का चित्र बड़ा मनमोहक है। माता बालक को भिक्षा दे रही है। बालक के हाथ में एक तथा माता के हाथ में अनेक कंकड़ हैं। माता ने एक महीन वस्त्र पहन रखा है तथा बालक नंगा है। सादगी तथा निर्धनता का यह मूर्तिमान रूप है। रायकृष्ण दास के अनुसार यह चित्र यशोधरा तथा राहुल का है। अन्य विद्वान यह विचार नहीं मानते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं। यह चित्र बड़ा सजीव-स्वाभाविक तथा सुन्दर है। माता के चेहरे पर गम्भीरता तथा पुत्र के मुख पर सरलता का भाव अंकित किया गया है।

(v) राजकीय जुलूस का चित्र—इस चित्र में अनेक स्त्री-पुरुष सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण धारण किये चल रहे हैं। कुछ पुरुषों के सिर पर छाता है तथा कुछ बाजा लिये हुए हैं। कुछ स्त्रियाँ फूलों की माला पहने हुए हैं।

मूल्यांकन :—

अजन्ता के चित्र चित्रकला की उत्कृष्टता की चरमसीमा की ओर संकेत करते हैं। एक विद्वान लेखक के शब्दों में "अजन्ता के चित्रों में मैत्री, प्रेम, करुणा, क्रोध, लज्जा, उत्साह, चिन्ता ग्रहण आदि सभी भाव, पद्मपाणि अवलोकितेश्वर, प्रशान्त तपस्वी और राजपरिवार से लेकर क्रूर व्याघ्र, निर्दय बधिक, साधु वेशधारी धूर्त, बन बनिता आदि सभी तरह के मानव भेद, समाधिमग्न बुद्ध से लेकर प्रणय-क्रीड़ा में रत दम्पत्ति और शृंगार में लगी नारियों तक सफल मानव व्यापार अंकित हैं।"

अजन्ता के चित्रों में मानव की काल्पनिक भावनाओं को विशेष भाव-भंगिमा तथा सौन्दर्य के साथ चित्रित किया गया है। कल्पना तथा सौन्दर्य के समन्वय के साथ, धार्मिक तथा सामाजिक सभी पहलू चित्रों में स्पष्ट हुए हैं। एक डेनिश कला पारखी के शब्दों में अजन्ता की कला भारतीय कला का उच्चतम शिखर है। अन्य विद्वानों ने भी इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इनमें कल्पना और सौन्दर्य, धार्मिकता और सामाजिकता तथा भौतिकता और आध्यात्मिकता का अद्भुत समन्वय है।

— —

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 5

हर्ष काल में भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक दशा
(THE SOCIAL AND CULTURAL CONDITIONS OF INDIA IN THE DAYS OF HARSHA)

भूमिका—

गुप्त वंश के पतन के बाद भारत में चारों ओर अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई और अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये। भारत में एक बार फिर राजनीतिक एकता स्थापित करने वाला वर्द्धन वंश का सम्राट हर्षवर्द्धन था। उसका पिता राजवर्द्धन थानेश्वर के एक छोटे से राज्य का राजा था। पिता की मृत्यु के बाद उसका बड़ा भाई प्रभाकर वर्द्धन गद्दी पर बैठा परन्तु शीघ्र ही वह भी मृत्यु का ग्रास बन गया। तत्पश्चात् सिंहासन की बागडोर हर्ष के हाथ में आई और उसने भारत में पुनः एक बार राजनीतिक और सांस्कृतिक एकता करने का प्रयत्न किया।

———

प्रश्न (1) हर्ष युगीन समाज और संस्कृति के विषय में आप क्या जानते हैं ?

हर्ष की गणना भारत के महान शासकों में की जाती है। देश में पुनः राजनीतिक एकता स्थापित करने वाले के रूप में हर्ष का जितना नाम है उससे कहीं अधिक उसका नाम सांस्कृतिक और सभ्यता के उन्नायक के रूप में है। यहाँ हम हर्ष युग के भारतीय समाज तथा उस युग की सांस्कृतिक उन्नति पर संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं—

हर्ष युगीन समाज

हर्षयुगीन समाज के विषय में निम्नलिखित तत्वों से जानकारी प्राप्त होती है—

(1) **वर्ण व्यवस्था—**हर्ष के समय में भारत में वर्ण व्यवस्था विद्यमान थी। ह्वेनसाँग ने चारों वर्णों के विषय में प्रकाश डाला है। उसके अनुसार इस काल में जाति-पांति के बन्धन कठोर हो चुके थे। ब्राह्मण तथा क्षत्री पवित्र जीवन व्यतीत करते थे। मछुवे, मेहतर और कसाई नगर के बाहर रहते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(2) **वेश भूषा**—इस युग के लोगों की वेश-भूषा सादी थी। वह कमर से बगल तक का भाग एक लम्बे वस्त्र से ढँकते थे। उनके कंधे खुले रहते थे। स्त्रियाँ और पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे। हार, अंगूठी इत्यादि बहुत अधिक मात्रा में प्रचलित थे।

(3) **भोजन**—भारत में शाकाहारी भोजन की प्रथा प्रचलित थी। अधिकांश लोग लहसुन तथा प्याज का भी प्रयोग नहीं करते थे। अन्न, दूध तथा शाक सब्जी ही साधारण लोगों का भोजन था।

(4) **नैतिक स्तर**—नैतिक स्तर से लोग ऊँचे उठ गये थे। चीनी यात्री के वर्णन के अनुसार यहां के लोग सत्यवादी थे और विश्वासघात और धोखेबाजी नहीं करते थे। उनका स्वभाव बहुत सरल और मधुर था। अतिथियों का सम्मान करना वे अपना धर्म समझते थे और ईमानदारी से स्वाभाविक और सरल जीवन व्यतीत करते थे।

(5) **स्त्रियों की दशा**—समाज में स्त्रियों की दशा अच्छी थी। उच्च कुलों की महिलाएँ शिक्षा प्राप्त करती थीं और उनमें पर्दे की प्रथा नहीं थी। अन्तर्जातीय विवाह नहीं होते थे और विधवा-विवाह की प्रथा नहीं थी। सती-प्रथा और बाल विवाह प्रथा विद्यमान थी।

(6) **आर्थिक दशा**—लोगों का आर्थिक स्तर बहुत ऊँचा था। भारत धनधान्य से परिपूर्ण था। विभिन्न प्रकार के उद्योग धंधों का प्रचलन था। ऊनी, सूती, रेशमी वस्त्र बहुत व्यापक मात्रा में तैयार किए जाते थे। ह्वेनसांग ने मिट्टी तथा धातुओं से बनी वस्तुओं का वर्णन किया है। शिल्पी-संघ आर्थिक उन्नति में महत्वपूर्ण योगदान देता था। बनारस, प्रयाग, कन्नौज इत्यादि बड़े-बड़े नगर थे। कहा जाता है कि हर्ष प्रति पांचवें वर्ष अपने राजकोष का समस्त धन भिक्षुओं को दान कर देता था परन्तु फिर भी राजकोष कभी खाली नहीं होता था। इससे यह स्पष्ट है कि आर्थिक दृष्टि से हर्ष कालीन समाज काफी उन्नत दशा में था।

सांस्कृतिक उन्नति

साहित्य, शिक्षा, कला और धर्म सभी क्षेत्रों में हर्ष के युग में अपार उन्नति हुई थी। यहाँ हम इस उन्नति की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं :—

साहित्य एवं शिक्षा—

साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में भी हर्ष के युग में बहुत अधिक परिवर्तन हुए। शिक्षा के क्षेत्र में इस युग में विशेष उन्नति हुई। बौद्ध मठों और धर्म केन्द्रों के साथ विद्या के केन्द्र भी खोले गये। यह केन्द्र अधिकतर कन्नौज, मुंगेर, मानिकपुर, गया में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। नालन्दा विश्वविद्यालय, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हर्ष के काल में बहुत उन्नति कर चुका था। यहां धर्म शिक्षा के अतिरिक्त दर्शन और चिकित्सा आदि का भी ज्ञान कराया जाता था। शिक्षा की प्रणाली तर्क-वितर्क और वाद-विवाद पर आश्रित थी। यहाँ के विद्यार्थियों का स्तर बहुत ऊँचा था। इस विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में डा० मुकर्जी का मत है —

"It was an institution for advanced post graduate study which attracted foreign scholars from countries like Korea, Mongolia, Japan, China, Tukhara, Tibet, Ceylon, as noted by both Yuan Chwang and Itsing."

विभिन्न देशों से आये हुये विद्यार्थियों में चीन के विद्यार्थियों की संख्या बहुत अधिक थी। लगभग 100 चीनी यात्रियों ने यहां आकर शिक्षा प्राप्त की थी। यह नित्य प्रति शिक्षा ग्रहण करते थे।

नालन्दा के अतिरिक्त उज्जैन शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र था। जहाँ ज्योतिष और गणित की शिक्षा विशेष रूप से दी जाती थी। तक्षशिला का भी चिकित्सा की शिक्षा के लिए अलग महत्व था। इन विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी शिक्षा का उचित प्रबन्ध था।

सम्राट हर्ष स्वयं एक नाटक कार और कवि तो था ही, साथ ही साथ वह विद्वानों का आश्रयदाता भी था। सम्राट हर्षवर्द्धन ने तीन नाटकों का सृजन किया था (1) प्रियदर्शिका (2) रत्नावली, (3) नागानन्द।
डा० मुकर्जी का मत है —

"By his liberal patronage of learning Harsha attracted to his court some of the best men of letters of those days."

उसके शासन काल में बाण भट्ट ने 'हर्षचरित' और कादम्बरी' की रचना की। कहा जाता है कि महाकवि भारवि और प्रसिद्ध विद्वान शीलभद्र भी उसके ही शासन काल में हुए।

आचार्य जयसेन भी उसके दरबार में था। मयूर नाम का एक विद्वान जिसने (सूर्य शतक) की रचना की थी, भी हर्ष द्वारा आश्रित था। हरिदत्त भी उसका राज-दरबारी था। हर्ष का दरबार कवियों, दार्शनिकों, विद्वानों, नाटककारों और कलाकारों से परिपूर्ण रहता था। शिक्षा के क्षेत्र में उसके योगदान की चर्चा करते हुये डा० आर० एस० त्रिपाठी ने लिखा है—

"Harsha's claim to the rememberance of history rests not merely on the fact that he constiderably enlarged the

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

boundaries of the Kannauj kingdom, but still more on the enlightened character of his Government and his liberal Patronage of learning."

कला—

भारतीय कला के विकास में हर्षकालीन कला का कोई पृथक स्थान नहीं है। वह गुप्त-युग की कला से सम्बन्धित है। अतः गुप्तकालीन कला के जाज्वल्यमान प्रकाश के सम्मुख वह ठहर नहीं सकी।

हर्ष-कला में कुछ चैत्यों, विहारों और मन्दिरों का निर्माण हुआ। हर्षकालीन कलाकार अजन्ता की चित्रकारी से विशेष रूप से प्रभावित हुए। प्रभाकर वर्द्धन के महल की चित्रकारी और शिल्प पर अमरावती की शिल्पकला और अजन्ता की चित्रकला का प्रभाव है।

हर्षकालीन कला के विषय में विशेष जानकारी नहीं प्राप्त हुई, है। सत्य तो यह है कि यह पता ही नहीं लग पाता है कि कला के क्षेत्र में कौन-कौन से कार्य हर्षवर्द्धन के समय में हुए। कुछ विद्वानों का मत है कि रायपुर जिले के सिरपुर स्थान में ईंटों का बना हुआ 'लक्ष्मण मन्दिर' हर्ष के समय का है परन्तु कुछ विद्वानों ने इसको 9वीं शताब्दी का माना है। कुमार स्वामी ने मुण्डेश्वरी के 'अष्टकोण मन्दिर' को, जो शाहबाद में भगुआ स्थान के समीप बना है, हर्षकालीन माना है।

इस सम्बन्ध में किंचित मात्र भी सन्देह नहीं कि हर्ष काल में कुछ मूर्तियाँ अवश्य बनाई गईं। यह भी कहा जाता है कि सम्राट हर्ष वर्द्धन ने नालन्दा में पीतल की चादर से आच्छादित एक मठ स्थापित किया था। पुड़कोट्टहा राज्य में स्थित सित्तनवासल नामक स्थान में हुई चित्रकारी भी हर्ष-काल की मानी जाती है।

हर्ष के समय में कला के केन्द्र कन्नौज, वल्लभी, उज्जैन, वाराणसी, कांची, आदि थे, जिन्हें बहुत सुन्दरता से सुसज्जित किया गया था। चालुक्य राजाओं में हर्ष कालीन वस्तुकला को सुन्दर माना जाता था। उनके मन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

हर्ष के समय में धातुकला, रंगाई, छपाई की कला और हाथी दाँत की कला का प्रचलन था। बाण ने लिखा है कि राज्यश्री के विवाह के अवसर पर उसके स्वर्णकार गहने प्रस्तुत करने में लगे हुए थे। धातु कला में नक्काशी अधिक मात्रा में थी। हाथी दाँत और लकड़ी के काम के भी कुछ उदाहरण प्राप्त होते हैं। राज्यश्री के विवाह के अवसर पर इस कला के भी कुछ नमूने भेंट किये गए थे। कामरूप के राजा ने जो वस्तुएँ हर्ष के पास भेजी थीं वे भी कला की दृष्टि से बहुत सुन्दर थीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाण ने अपने 'हर्ष-चरित्र' में हर्षकालीन कला तथा शिल्पों का उल्लेख अनेक स्थानों पर किया है।

धर्म

बाँण और ह्वेनसाँग के ग्रन्थों में हर्ष के समय की धार्मिक स्थिति का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

(1) **वैदिक धर्म**—इस युग तक वैदिक धर्म विशेष उन्नति कर चुका था और बुद्ध धर्म धीरे-धीरे पतन की ओर अग्रसर हो चला था गुप्तकाल में जो वैदिक धर्म की उन्नति हुई वह हर्ष काल में आकर और अधिक दृढ़ हो गई।

हिन्दू धर्म अनेक सम्प्रदायों से विभक्त हो गया था। धर्म में कर्मकांडों का विशेष महत्व था। हिन्दू धर्म में भूत, कापालिकों आदि को महत्व दिया जाने लगा था। सांख्य और वैशेषिक दर्शन दार्शनिक क्षेत्र में उथल-पुथल मचा रहा था। कादम्बरी में कुछ प्रमुख सम्प्रदायों का वर्णन किया गया है। इस सम्बन्ध में प्रमुख हैं—

मस्करी, शैव, पाराशरी, पशुपति, भागवत, वर्णी, लोकायंतिक कापिल, काणादि, ऐश्वरकारणिक, धर्मशास्त्री, औपनिषदिक शाब्दिक तथा पाँचरात्रिक एवं पौराणिक।

(अ) **शैव धर्म**—हर्ष काल में शैव-सम्प्रदाय बहुत उन्नत दशा में था। घर-घर में शिव की पूजा होती थी। सम्राट हर्ष भी शिव का उपासक था। भास्कर-वर्मा और शशांक नाम के दो महान राजा शैव धर्म को मानने वाले थे। उड़ीसा में वल्लभी के कुछ राजवंशों ने भी शैव धर्म को ग्रहण किया था। ह्वेनसांग के मतानुसार वाराणसी शैव धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था। वहाँ की एक 100 फीट ऊँची शिव की मूर्ति का वर्णन किया गया है।

शिव की पूजा विभिन्न स्थानों पर कालेश्वर, भद्रेश्वर, आम्राटकेश्वर और महेश्वर आदि विभिन्न रूपों में होती थी। उनके भयानक रूपों में कालेश्वर रूप विशेष महत्वपूर्ण था। शिव के उग्र रूप के उपासकों का एक अलग सम्प्रदाय था जिसे कापालिक सम्प्रदाय कहा जाता है। यह लोग सिर व गले में हड्डियों की माला पहनते थे और पहाड़ों तथा गुफाओं में निवास करते थे। कापालिक यति भैरवाचार्य का वर्णन 'हर्ष-चरित्र' में किया गया है।

(ब) **विष्णु की पूजा**—विष्णु का स्थान शिव के बाद आता था परन्तु विष्णु को कम महत्व नहीं दिया गया। विष्णु के उपासकों के भी अनेक सम्प्रदाय थे जिसमें भागवत सम्प्रदाय विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कृष्ण की लीलाओं का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुणगान लोग व्यापक मात्रा में करते थे। 'कादम्बरी' में भी कृष्ण का उल्लेख किया गया है।

(स) सूर्य-पूजा—वर्द्धनवंश के सम्राट सूर्य के उपासक थे। श्री हर्ष के पिता महाराज प्रभाकरवर्द्धन सूर्य के अनन्य उपासक थे। हर्षवर्द्धन भी अपने जीवन के अन्त तक महात्मा बुद्ध, भगवान शिव और भगवान सूर्य का भक्त रहा। बाण ने उज्जैन के लोगों को सूर्य का उपासक बतलाया है। चीनी यात्री ह्वेनसांग के मतानुसार मूलस्थानपुर में सूर्य का एक प्रसिद्ध मन्दिर था। जिसकी मूर्ति स्वर्ण निर्मित थी और बहुमूल्य पदार्थों से युक्त थी। इस मन्दिर में रोगियों और गरीबों के लिए शर्बत और औषधि का प्रबन्ध किया गया था। विभिन्न देशों से लगभग 1000 यात्री प्रतिदिन इस मन्दिर में पूजा करने आते थे।

(द) शक्ति पूजा—उपर्युक्त देवताओं के अतिरिक्त देवियों की पूजा भी की जाती थी। देवियों में चंडिका, दुर्गा और मातृका आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बाण भट्ट ने दुर्गादेवी का उल्लेख विशेष रूप से किया है। चंडिका देवी को पशुबलि देने और मदिरा चढ़ाने की प्रथा प्रचलित थी।

(य) यज्ञ—पौराणिक देवी-देवताओं की पूजा के साथ-साथ इस युग में वैदिक यज्ञों का भी प्रचलन था। बाण के ग्रन्थों से इस युग के यज्ञवाद का पता चलता है। 'हर्षचरित' में भी यज्ञों के धूम का उल्लेख किया गया है। प्रभाकरवर्द्धन के शासनकाल में अनेक यज्ञ किये गये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज हर्षवर्द्धन के शासनकाल में मीमांसकों और यज्ञ का प्रचलन कम हो चला था।

(र) अन्य लौकिक क्रियायें—वैदिक धर्मानुयायी अन्य लौकिक क्रियाओं को भी सम्पन्न करना अपना धर्म समझते थे। गंगा-स्नान और दान को विशेष महत्व प्रदान किया गया था। गंगा के जल को बहुत पवित्र माना गया था और ऐसा विश्वास था कि इस नदी में स्नान करने से मनुष्य के समस्त पाप धुल जाते हैं।

दान का महत्व तो इतना अधिक था कि प्रति पाँचवें वर्ष सम्राट हर्ष अपना सर्वस्व दान कर देता था। तीर्थ स्थानों को भी महत्व प्रदान किया गया था। प्रयाग, गंगा द्वार (हरिद्वार) और कुरुक्षेत्र प्रसिद्ध तीर्थ स्थान माने जाते थे।

(2) भिक्षु धर्म—हर्ष-काल में हर्ष की धार्मिक सहिष्णुता के फलस्वरूप विभिन्न धर्म के भिक्षुओं का सम्मेलन हुआ। ब्राह्मण भिक्षु, बौद्ध भिक्षु और जैन भिक्षु सभी एक ही साथ घूमते थे। संसार से विरक्त यह भिक्षु अपने-अपने धर्म के प्रचार के लिए प्रयत्नशील रहते थे। परन्तु एक ही स्थान पर रहने और एक ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साथ पर घूमने के फलस्वरूप इनका एक अलग सम्प्रदाय बन गया था । ह्वेनसांग ने भिक्षुओं के अलग सम्प्रदाय का वर्णन किया है ।

(3) **बौद्ध-धर्म**—हर्ष-काल में बौद्ध-धर्म अवनति पर था । यह धर्म महायान और हीनयान दो प्रधान भागों में बँट चुका था और इन विभागों के अन्तर्गत उसमें 18 सम्प्रदाय विद्यमान थे । हीनयानियों और महायानियों में भी भिन्नता थी । ह्वेनसांग ने इस विभिन्नता को प्रदर्शित किया है जिसका अर्थ वाटर्स महोदय ने इस प्रकार लगाया है—"हीनयान सम्प्रदाय को स्थिर खड़े रहना, इधर-उधर घूमने तथा शांतिपूर्ण विचार करने की नीतियाँ महायान मतावलम्बियों की समाधि तथा प्रज्ञा से अधिक भिन्न थी ।"

इत्सिंग ने महायानियों की परिभाषा देते हुए उनमें और हीनयानियों में अन्तर स्पष्ट किया है—"जो बोधिसत्वों की पूजा और महायान सूत्रों का पाठ करते हैं वह महायानी कहे जाते हैं और जो ऐसा नहीं करते हैं वह हीनयानी कहलाते हैं ।"

इस युग में हीनयान की अपेक्षा महायान अधिक प्रसिद्ध था । इस सम्बन्ध में डा० मुकर्जी ने लिखा है—

"Mahayana was more prominent than Hinayana, but follcwers of both schools were found by the Chinese pilgrim to believing together in the same monastery at different centres..."

यद्यपि बौद्ध धर्म अवनत अवस्था में था परन्तु फिर भी यह भारत का मुख्य धर्म था । ह्वेनसांग ने लिखा है कि उसने लगभग 5000 बौद्ध बिहारों का दर्शन किया था । महाबोध और नालन्दा आदि के मठ विशेष रूप से उल्लेखनीय थे । कन्नौज में भी बौद्ध-धर्म की स्थिति हर्ष के प्रोत्साहन के कारण सुधर गई । कपिशा बौद्ध-धर्म का गढ़ माना जाता था । अनेक स्थानों पर हिन्दू और बौद्ध-धर्म साथ-साथ प्रचलित थे ।

हर्ष ने बौद्ध-धर्म के उत्थान के लिए अधिक प्रयास किया । कुछ विद्वानों का मत है कि उसके समय में कन्नौज और प्रयाग के बौद्ध-धर्म सम्मेलन अन्य धर्मों पर बौद्ध-धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए बुलाये गये थे । और इन धार्मिक सम्मेलनों में अन्य धर्मों पर महायान धर्म की विजय जरूर घोषित की गई थी । परन्तु इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता । हाँ यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि हर्ष के प्रयत्नों से मृतप्राय बौद्ध-धर्म पुनः एक बार जीवित हो गया था ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(4) **जैन-धर्म**—बाण ने अपने ग्रन्थ में जैन-धर्म का भी उल्लेख किया है। यह धर्म हर्ष के समय में उत्तरी भारत के कुछ स्थानों पर प्रचलित था। जैन-धर्म श्वेताम्बर और दिगम्बर दो सम्प्रदायों में विभाजित हो गया था ह्वेनसांग ने श्वेताम्बर सम्प्रदाय के जैनियों का जो जीवन प्रस्तुत किया है। बाण के अनुसार हर्ष के दर्शकों में बहुत से जैन क्षपणक थे। ह्वेनसांग का मत है कि जैन-धर्म, बौद्ध-धर्म की अपेक्षा अधिक अवनत दशा में था। आगे चल कर जैन-धर्म दक्षिण भारत में प्रचलित हुआ। पुलकेशिन द्वितीय ने इस धर्म को आश्रय प्रदान किया था।

उपसंहार—

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हर्ष का युग सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति के क्षेत्र में हर्ष की शान्ति प्रिय और सहिष्णु नीति ने विशेष योगदान दिया और उसके प्रयत्नों से ही धर्म, साहित्य और शिक्षा आदि के क्षेत्र में महान् उन्नति हुई।

प्रश्न 2—ह्वेनसांग कौन था ? उसके द्वारा दिये गये भारत के विवरण पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

परिचय—

जन्म एवं शिक्षा—ह्वेनसांग एक अत्यन्त उत्साही और परिश्रमी बौद्ध भिक्षु था। उसका जन्म चीन के होनान्-फू के समीप एक नगर में 605 ई० में हुआ था। उस समय चीन में राजकीय क्रान्ति हो रही थी। अतएव उसके पिता को सरकारी नौकरी छोड़नी पड़ी थी। ह्वेनसांग के पिता ने ह्वेनसांग की शिक्षा पर काफी बल दिया था। उसे बौद्ध मठ में शिक्षा के लिये भेजा गया और 13 वर्ष की आयु में ही वह बौद्ध भिक्षु हो गया।

ख्याति—बौद्ध भिक्षु होने के पश्चात् ह्वेनसांग निरन्तर धार्मिक कृत्यों को करने एवं ज्ञान की अभिवृद्धि में लीन रहा। 20 वर्ष की अवस्था में उसकी ख्याति चारों ओर फैल गयी और वह एक बहुत बड़ा उपदेशक बन गया।

भारत प्रस्थान—ह्वेनसांग ने बौद्ध धर्म से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया। परन्तु उसके मस्तिष्क में शंकायें थीं, जिनका समाधान उसने चीनी सन्तों के द्वारा करवाना चाहा। वे सन्त उसकी शंकाओं के समाधान करने में सफल नहीं हुए, अतएव उसने भारत जाने का निश्चय किया। अपनी यात्रा के लिये उसने सरकार से सहायता की याचना की, परन्तु उसे सहायता नहीं मिली। ह्वेनसांग निराश नहीं हुआ और अपने उद्देश्य के हेतु भारत की ओर चल दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार्ग में कठिनाइयाँ—चीन के गवर्नर ने ह्वेनसांग को सरकार की आज्ञा के बिना देश से बाहर जाने को रोकने के लिए आदेश दिए। उसे सीमा पर रोक लिया गया, परन्तु उसके दृढ़ निश्चय के आगे गवर्नर को झुकना पड़ा। उसे भारत जाने की स्वीकृति दे दी गयी। ह्वेनसांग धीरे-धीरे मरुभूमि को पार करता हुआ कष्टों का सामना करता हुआ काबुल के मार्ग से भारत में प्रविष्ट हुआ। भारत में उसे एक बार डाकुओं का सामना भी करना पड़ा। परन्तु वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु निरन्तर बढ़ता ही रहा।

भारत में आदर—ह्वेनसांग भारत में उत्तरोत्तर घूम कर बौद्ध धर्म का अध्ययन करता रहा। उसने उत्तर में काश्मीर से लेकर दक्षिण में चोल प्रदेश तक सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। वह हर्ष के दरबार में भी गया जहाँ उसका बहुत अधिक आदर हुआ। प्रयाग की एक सभा में उसे बहुत अधिक सम्मान प्रदान किया गया।

ह्वेनसांग का वर्णन

भारत भ्रमण में ह्वेनसांग ने भारत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और शैक्षिक दशा का भली भाँति अवलोकन किया और अपने लेखों में उस दशा का वर्णन किया। उसके लेख भारतीय इतिहास की जानकारी के लिये अनमोल हैं।

(1) राजनीतिक दशा—ह्वेनसांग ने 7वीं शताब्दी के लगभग सभी भारतीय राजाओं का उल्लेख किया है। बहुत से शासकों से वह स्वयं भी मिला था। उसने हर्षवर्द्धन के शासन की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उसने लिखा है—"शासन-व्यवस्था का संचालन उदार सिद्धान्तों पर आधारित है; अतएव उसके सम्पादन में कोई कठिनाई नहीं होती। व्यापारियों को सरकारी रजिस्टर में अपनी आय का ब्योरा दर्ज नहीं कराना पड़ता था और लोगों को बेगार के लिए परेशान नहीं किया जाता।"

ह्वेनसांग ने लिखा है कि साधारण अभियोगों पर कठोर दण्ड दिये जाते थे और दण्ड के फलस्वरूप नागरिकों और ग्रामों में शान्ति थी। परन्तु सड़कें पूर्ण रूप से सुरक्षित न थीं। स्वयं ह्वेनसांग भी डाकुओं के चंगुल में फँस गया था।

सरकारी भूमि को चार भागों में विभाजित किया गया था। पहले भाग की आय से सरकारी व्यय चलता था, दूसरे भाग की आय को कर्मचारियों को जागीरों के रूप में प्रदान किया जाता था। तृतीय भाग की आय खेल तथा विद्या की उन्नति के हेतु सुरक्षित रखी जाती थी और चौथे भाग की आय से विभिन्न सम्प्रदायों को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आर्थिक सहायता दी जाती थी। राज्य-कोष धन-धान्य से पूर्ण था। हर्ष एक प्रजा-वत्सल राजा था जो स्वयं प्रजा के हित का सदैव ध्यान रखता था। उसके शासन-में चारों ओर सुख और शान्ति का साम्राज्य था।

ह्वेनसांग ने हर्ष की सेना के सम्बन्ध में लिखा है कि अराजकता को दूर करने के लिये उसके पास एक विशाल सेना थी जिसके तीन विभाग थे—हाथी, अश्व और पैदल। अश्व सेना पर हर्ष ने विशेष ध्यान दिया था।

(2) सामाजिक दशा—ह्वेनसांग लिखता है, "परम्परागत जाति विभेद के चार वर्ग हैं।" इससे यह स्पष्ट होता है कि हर्ष के काल में जातियों के बन्धन कठोर हो चुके थे। ह्वेनसांग ने क्षत्रियों की बड़ी प्रशंसा की है और यह भी लिखा है कि वैश्यों की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। शूद्रों की दशा शोचनीय थी। जाति-व्यवस्था जटिल हो चुकी थी और छुआछूत का बोलबाला था। बाल-विवाह प्रचलित थे। राज्यश्री का विवाह 12 वर्ष की अवस्था में ही हो गया था। विधवा-विवाह का प्रचलन नहीं था। लोगों का मुख्य भोजन दूध, घी और रोटी था। मांसाहारी लोगों की संख्या बहुत कम थी। लोग लहसुन और प्याज का भी कम प्रयोग करते थे। विद्या और कला कौशल में लोगों की अभिरुचि थी। इस प्रकार ह्वेनसांग के मतानुसार हर्ष-काल का सामाजिक जीवन भी सुख और शान्तिपूर्ण था।

(3) नैतिक स्तर—ह्वेनसांग ने लिखा है कि जन-साधारण का नैतिक स्तर भी अत्यन्त ऊँचा था। उसने लिखा है :—

"...with respect to the ordinary people, although they are naturally light minded, yet they are upright and honourable. In money matters they are without craft, and in administering justice they are considerate."

(4) आर्थिक दशा—जिन-जिन प्रदेशों की ह्वेनसांग ने यात्रा की वहाँ के आर्थिक वैभव को देखकर वह चकाचौंध हो गया। उसने देश की खनिज सम्पत्ति का भी उल्लेख किया है। सौराष्ट्र के वैभव का उल्लेख करते हुये वह लिखता है, "इस स्थान के सभी लोग समुद्र से अपनी जीविका प्राप्त करते हैं।" वल्लभी के विषय में उसने लिखा है, "यहाँ पर कुल 100 घर हैं जिनके पास 100 लाख मुद्रायें हैं। सुदूर भागों के दुर्लभ तथा बहुमूल्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में जमा किये जाते हैं।"

ह्वेनसांग के विवरण से पता चलता है कि उस युग में अधिकांश लोगों की जीविका कृषि पर ही निर्भर थी। उद्योग-धन्धों की उन्नति हो रही थी। ह्वेनसांग ने मिट्टी की बनी प्रतिमाओं आदि का उल्लेख किया है। धातु की बनी हुई अनेक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बुद्ध प्रतिमायें वह अपने साथ ले गया था । भारत के गगनचुम्बी भवनों को देखकर ह्वेनसांग को बड़ा अचम्भा हुआ । इन सबसे स्पष्ट होता है कि उस युग की आर्थिक स्थिति भी बहुत अच्छी थी ।

(5) धार्मिक दशा—धार्मिक दशा के विषय में ह्वेनसांग ने लिखा है कि उस युग में ब्राह्मण धर्म उन्नति पर था और ब्राह्मण साधु बहुत अधिक विद्वान् होते थे । ब्राह्मण धर्म की व्यापकता के फलस्वरूप ही विदेशी इसे ब्राह्मणों का देश कहते थे । ब्राह्मण का चरित्र उज्ज्वल होता था और वे सांसारिक वैभव का परित्याग कर देते थे । अनुष्ठानों पर बहुत अधिक जोर देते थे । काशी और प्रयाग ब्राह्मण धर्म के केन्द्र थे और शिव तथा विष्णु की पूजा काफी अधिक प्रजा करती थी । ब्राह्मण धर्म के साथ ही बौद्ध धर्म भी पनप रहा था । बौद्ध धर्म दो भागों में विभाजित हो चुका था—हीनयान और महायान । परन्तु इन सम्प्रदायों में अधिक विभेद नहीं था और कहीं-कहीं तो दोनों ही सम्प्रदाय के लोग एक ही मठ में रहते थे । कन्नौज के 100 बिहारों में 1,000 साधु थे जो हीनयान और महायान दोनों सम्प्रदायों से सम्बन्धित थे । जैन धर्म पतन की ओर उन्मुख था । राजा सभी धर्मों का आदर करते थे और विद्वानों को धन आदि देते थे ।

(6) शिक्षा—ह्वेनसांग ने नालन्दा विश्वविद्यालय की बहुत अधिक सराहना की है । उसने लिखा है कि इस देश में अनेक उच्चकोटि के शिक्षा केन्द्र थे परन्तु किसी की भी तुलना नालंदा से नहीं की जा सकती थी । उसके शब्दों में, "भारत में इस प्रकार की अन्य सहस्रों (शिक्षण) संस्थायें हैं किन्तु वैभव में नालदा की तुलना उनमें किसी से भी नहीं की जा सकती ।" नालंदा विश्वविद्यालय में चीन और मंगोलिया आदि देशों से अनेक छात्र शिक्षा ग्रहण करने जाते थे और हजारों की संख्या में वहाँ विद्यार्थी अध्ययन करते थे । ह्वेनसांग लिखता है, "यहाँ के छात्रों को जितनी प्रचुर मात्रा में समस्त वस्तुयें उपलब्ध होती हैं, इस बात की आवश्यकता नहीं पड़ती कि चार आवश्यकताओं—भोजन, वस्त्र, बिस्तर और औषधियों की माँग करें ।" गुरु और शिष्य का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ होता था । विश्वविद्यालय में वेद, तर्क-शास्त्र, चिकित्सा-विज्ञान और बौद्ध साहित्य आदि विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती थी । विश्वविद्यालय में परीक्षा लेकर प्रवेश दिया जाता था । जब नालन्दा से कोई विद्यार्थी बाहर आता था तो उसका समाज में बहुत अधिक सम्मान होता था ।

निष्कर्ष—ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा का जो विवरण दिया है वह इतिहास की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है । उसके विवरण की सत्यता की पुष्टि विभिन्न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अभिलेखों द्वारा भी होती है। उसके विवरण से पता चलता है कि उस युग में भारत अत्यन्त समृद्धिशाली था और इस देश की बहुमुखी प्रगति हो रही थी।

प्रश्न (2)—हर्ष काल में नालन्दा के वैभव पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

हर्ष-काल में नालन्दा विश्वविद्यालय चरमोत्कर्ष पर था। हर्ष ने नालन्दा को बहुत अधिक दान दिया था।

इस विश्वविद्यालय का प्राचीन नाम 'नाल' था, जो बिहार के आधुनिक बड़ा गाँव नामक स्थान में स्थित था। कालान्तर में वहाँ अनेक बौद्ध बिहार बने। वास्तव में इस विश्वविद्यालय का निर्माण-कर्त्ता अशोक था परन्तु यहाँ शिक्षण-कार्य अशोक के बहुत समय पश्चात् प्रारम्भ हुआ। डा० मुकर्जी के वर्णन से यह संकेत मिलता है कि चौथी और पाँचवीं शताब्दी में नालन्दा की ख्याति हो चुकी थी। अधिकतर विद्वान् यह मानते हैं कि नालन्दा का इतना अभ्युदय चीनी यात्री फाह्यान के आने के बाद हुआ।

जिस समय ह्वेनसांग भारत आया था उस समय नालन्दा बहुत अधिक उन्नति कर चुका था। ह्वेनसांग के समय में नालन्दा केवल 6 मठों का समूह था जो 6 क्रमानुगत राजाओं द्वारा बनवाये गये थे। इनमें से 5 गुप्त राजा और एक मध्य प्रदेश का राजा माना जाता है। कदाचित् वह हर्ष ही था। नालन्दा में मठों के अतिरिक्त बहुत से स्तूप और बिहार थे, जिनमें बौद्ध तथा बोधिसत्वों की मूर्तियाँ स्थापित की गई थीं। 7वीं शताब्दी के चीनी यात्री इत्सिंग ने नालन्दा में 8 आलयों और 300 कमरों का वर्णन किया है। वास्तव में वास्तुकला और स्थापत्य-कला की दृष्टि से नालन्दा के भवन अत्यन्त सुन्दर थे। कनिंघम ने यहाँ के शिल्प के विषय में अपना मत व्यक्त किया है :—

"Sculptures found here were the finest in all India."

ह्वेनसांग ने लिखा है कि महाराजा हर्ष ने नालन्दा को 100 गाँव दिये थे। यहाँ के विद्यार्थियों की संख्या उसने 10,000 बतलाई है। नालन्दा में चीन, मंगोलिया, कोरिया, तिब्बत आदि के विद्यार्थी पढ़ने आते थे। इसमें प्रवेश के लिए एक परीक्षा देनी होती थी जो बहुत अधिक कठिन होती थी। ह्वेनसांग कहता है कि यहाँ परीक्षा में लगभग 20 प्रतिशत विद्यार्थी सफल होते थे। यहाँ की दशा का वर्णन करते हुए ही-ली ने लिखा है, 'देश के राजा (सम्भवतः हर्ष) पुरोहितों का आदर सम्मान करते हैं, उन्होंने 100 गाँवों की मालगुजारी बिहार को वक्फ कर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रखी है । इन गाँवों के दो सौ गृहस्थ प्रति-दिन कई सौ पिकल (1 पिकल = $133\frac{1}{8}$ पौ०) साधारण चावल और कई सौ कट्टी (1 कट्टी = 160 पौ०) घी और मक्खन दिया करते हैं । अतः यहाँ के विद्यार्थियों को जिन्हें सब वस्तुएँ इतनी प्रचुर मात्रा में मिलती हैं कि चारों आवश्यक वस्तुओं को माँगने के लिए कहीं जाना नहीं पड़ता, उनके विद्याध्ययन की पूर्णता का, जिसके लिए वे आये हैं, यही साधन है ।"

इस विश्वविद्यालय में बौद्ध धर्म की शिक्षा बहुत योग्यता से प्रदान की जाती थी । बौद्ध-धर्म की शिक्षा के अतिरिक्त साहित्य, चिकित्सा, शब्द विद्या और सांख्य इत्यादि का अध्ययन भी यहाँ होता था ।

विश्वविद्यालय का वातावरण बहुत शांतिप्रद था । विद्यार्थी और अध्यापक अध्ययन में लगे रहते थे । यहाँ अनुशासन की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था । विद्यार्थी इतने अनुशासित होते थे कि उनके विषय में एक विद्वान् लिखता है :—

"The students of Nalanda were looked-upon as models by all India."

विश्वविद्यालय में एक विशाल पुस्तकालय था जिसे 'धर्मयज्ञ' के नाम से पुकारा जाता था । विश्वविद्यालय के कुलपति शीलभद्र थे । उसके पहले धर्मपाल नाम का विद्वान् यहाँ का कुलपति रहा था । कुलपति के नीचे एक विहाराध्यक्ष होता था । नालन्दा में लगभग 1510 अध्यापक थे । इनमें से शीलभद्र, धर्मपाल, गुणमति, चन्द्रपाल, स्थिरमति, ज्ञानचन्द्र, कमलशील आदि अत्यन्त प्रसिद्ध थे । यहाँ प्रत्येक विषय के प्रकाण्ड पण्डित शिक्षा प्रदान करते थे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | 6

भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव
(THE IMPACT OF ISLAM ON INDIAN CULTURE)

भूमिका

भारत में इस्लाम का प्रवेश तलवार के बल पर हुआ था और अनेक विद्वानों की यह भ्रांतिपूर्ण धारणा है कि इस्लाम ने भारतीय संस्कृति के विनष्ट होने का मार्ग ही प्रशस्त किया और भारतीय संस्कृति को उसकी कोई भी देन नहीं है। परन्तु यह कथन उचित नहीं है। यद्यपि यह ठीक है कि भारत पर मुसलमानों का जो प्रारम्भिक आक्रमण हुआ उसके फलस्वरूप भारतीय साहित्य, कला और शिक्षा आदि को बहुत बड़ा धक्का लगा परन्तु कालान्तर में इस्लाम धर्म के अनुयायियों ने भारत में शिक्षा, साहित्य, कला और विज्ञान आदि की उन्नति में महान योगदान दिया। इस अध्याय में भारतीय संस्कृति पर पड़ने वाले इस्लाम के प्रभाव की चर्चा संक्षेप में की जायेगी।

———

प्रश्न (1)—भारतीय संस्कृति पर इस्लाम के प्रभाव पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

भारत में इस्लाम धर्म के अनुयायियों का प्रवेश किस समय हुआ यह अत्यन्त विवादास्पद प्रश्न है परन्तु अनेक विद्वान आठवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में भारत में इस्लाम के प्रवेश की तिथि मानते हैं यद्यपि वे भी यह स्वीकार करते हैं कि इसके पूर्व भी इस्लाम धर्म के अनुयायी भारत आते थे। 712 ई० में एक अरब सेनापति मोहम्मद बिन कासिम ने भारत के सिंध प्रान्त पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में ले लिया। उत्तरी भारत में इस्लाम का पदार्पण इसी समय से समझना चाहिये। कालान्तर में महमूद गजनवी और मोहम्मद गोरी के आक्रमण के समय इस्लाम ने भारत में पूरे वेग से प्रवेश किया और सल्तनत काल में इस्लाम के चरण पूर्ण रूप से भारत में जम गये। इसके बाद मुगल काल में इस्लाम हिन्दू धर्म के निकट आया और इन दोनो धर्मों के मतानुयायियों ने एक नवीन संस्कृति को जन्म दिया। यहाँ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम भारतीय सामाजिक और आर्थिक जीवन, धर्म, शिक्षा, साहित्य और कला आदि पर इस्लाम के प्रभाव को संक्षिप्त में स्पष्ट करेंगे।

भारतीय समाज पर इस्लाम का प्रभाव

भारतीय समाज पर इस्लाम धर्म का अत्यन्त व्यापक प्रभाव पड़ा। प्रारम्भ में जब इस्लाम धर्म के मतानुयायियों ने भारत पर आक्रमण किया तो भारतवासियों ने उन्हें हीनदृष्टि से देखा और यहाँ का समाज, उनके रहन-सहन आदि से किंचितमात्र भी प्रभावित नहीं हुआ। कालान्तर में जब यहाँ इस्लाम धर्म के अनुयायियों की सत्ता स्थापित हो गई तो उनके रहन-सहन, वेशभूषा आदि का प्रभाव भारतीयों पर पड़ना स्वाभाविक था। पहले इस्लाम धर्म के अनुयायियों ने समाज को जबर्दस्ती प्रभावित करने का प्रयास किया। जो लोग उनसे सहमत न हुये उनको मौत के घाट उतार दिया गया। कालान्तर में उनकी नीति में परिवर्तन आया और भारतीय समाज पर इस्लाम का प्रभाव अत्यन्त व्यापक मात्रा में हुआ। भारत की भाषा, वेश भूषा रहन-सहन और खान पान आदि पर जो मुस्लिम प्रभाव है वह इतना व्यापक है कि अब तो हिन्दू भी उसे अपना ही मान बैठे हैं। कोई भी हिन्दू, बौद्ध या जैनी अपनी भाषा में आये हुये अरबी और फारसी शब्दों को धड़ाके से बोलता है और उसे यह पता ही नहीं चलता कि ये शब्द उसकी भाषा के हैं या किसी अन्य भाषा के। हमारे रहन-सहन में भी इस्लामी प्रभाव के स्पष्ट दर्शन होते है। पायजामा, सेहरा आदि मुसलमानों की ही देन है। भारतीय समाज के खान-पान में भी इस्लाम के प्रभाव के दर्शन होते हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य में मोदक (लड्डू) और पूप (मालपुआ) आदि बहुत कम मिठाइयों का वर्णन मिलता है। आधुनिक युग की अनेक मिठाइयाँ इस्लाम काल की ईजाद हैं। बालूशाही, बर्फी, हलवा आदि मुसलमानी नाम ही हैं।

इस्लाम के प्रवेश के साथ यदि भारतीय समाज में अनेक कुरीतियां उत्पन्न हुईं तो भारतीय समाज की अनेक कुरीतियों को दूर करने में भी इस्लाम धर्म के अनुयायियों ने योगदान दिया है। भारत में पर्दा प्रथा का उग्र रूप इस्लाम धर्म के प्रवेश के साथ ही देखने को मिलता है। इसके पहले भारत में पर्दा प्रथा उस रूप में विद्यमान न थी जैसी कि मध्य युग में देखने को मिलती है। भारतीय नारी सदैव से ही आदर्श माता, पतिव्रता पत्नी आदि के रूप में पूज्य रही है और सीता और सावित्री के देश में यह आशा भी नहीं की जा सकती थी कि भारतीय नारी केवल भोग विलास की सामग्री मात्र बन कर रह जायेगी। जिस देश में स्वयम्वर की प्रथा रही हो वहां पर्दा प्रथा कल्पना करना एक विचित्र सी बात मालूम होती है। परन्तु यह पर्दा-प्रथा भारतीय नारी समाज में कोढ़ बनी रही और इस पर्दा प्रथा को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उग्र रूप देने का श्रेय इस्लाम धर्म के अनुयायियों को है। इस्लाम ने जहाँ पर्दा प्रथा के उग्र रूप के दर्शन कराये वहां हिन्दुओं को इस बात की प्रेरणा दी कि वे छुआ-छूत को दुर्भावना से दूर रहें। इस्लाम ने भारतीयों में एकता स्थापित करने का कार्य कुछ हद तक अवश्य किया, इसमें किंचितमात्र भी संदेह नहीं है। अति प्राचीन काल से भारत में छुआछूत और खानपान के अलग होने की बातें चली आ रही थीं। मुसलमानों में खानपान की एकता के दर्शन होते हैं और वहाँ छुआछूत का भी उग्र रूप दिखलाई नहीं पड़ता। कुछ प्रगतिशील हिन्दुओं ने इन इस्लाम धर्म के अनुयायियों से प्रेरणा ली और अपने धर्म की कुरीतियों के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाई।

भारतीय धार्मिक जीवन पर इस्लाम का प्रभाव

भारतीय धार्मिक जीवन पर भी इस्लाम का काफी प्रभाव पड़ा। जब इस्लाम धर्म के अनुयायी भारत आये तो पहले तो भारतवासियों ने अपने धर्म को इस्लाम के प्रभाव से मुक्त रखने का प्रयास किया और अनेक ऐसे दृढ़ नियम बना लिये गये जिससे कि धार्मिक जीवन पर विदेशी आक्रमणकारियों का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। कालान्तर में जब भारत में मुसलमानों की सत्ता स्थापित हो गई तो भारत के धार्मिक जीवन पर इस्लाम का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। भारतीय धार्मिक जीवन में सूफियों का प्रवेश इस्लाम के द्वारा ही हुआ। यहां इस्लाम का प्रचार तलवार के बल पर किया गया था। परिणाम यह हुआ कि इस्लाम और हिन्दू धर्म के अनुयायी एक दूसरे को विरोध की निगाह से देखते थे जिससे समाज में अत्यधिक उच्छृंखलता थी। कुछ संत कवियों ने भारतीय धर्म को सुधारने और सामाजिक विषमता को दूर करने का प्रयास किया। इन संत कवियों में कबीर का नाम अत्यन्त गौरव के साथ लिया जाता है। वास्तव में हिन्दुओं और मुसलमानों को निकट लाने का श्रेय बहुत हद तक कबीर को प्राप्त है। कबीर ने धर्म के नाम पर होने वाले संघर्षों की निन्दा की और धर्मों के बाह्य भेदों और रूढ़ियों एवं आडम्बरों की आलोचना की। उन्होंने राम और रहीम की एकता का एक मार्ग प्रशस्त किया और इस प्रकार कबीर एक ऐसे क्रांतिकारी थे जिन्होंने इस्लाम धर्म और हिन्दू धर्म को निकट लाने का प्रयास किया।

भारत के धार्मिक आन्दोलन पर इस्लाम का प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट रूप में देखने को मिलता है। सूफियों द्वारा जिस साहित्य का निर्माण किया गया वह अपने बाह्य रूप में भारतीय है परन्तु उसकी आत्मा इस्लामी है जायसी के साहित्य को भारतीय धार्मिक साहित्य कहें या न कहें परन्तु उन्होंने अपने विचार से धर्म के प्रतिपादन का मार्ग प्रशस्त किया। जायसी एक ओर इस्लाम के अधिक निकट हैं तो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरी ओर हिन्दू धर्म के। आत्मा और परमात्मा के मिलन का जो चित्र जायसी ने खींचा है वह हिन्दू धर्म की महान देन है भारत में एकेश्वरवादी विचारधारा काफ़ी पहले से प्रचलित थी परन्तु उसको बल इस्लाम के द्वारा ही मिला। शंकर और रामानुज के सिद्धान्तों पर यद्यपि इस्लाम का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा है परन्तु लिंगायत मत पर इस्लामी प्रभाव अवश्य है। लिंगायत मत के अनुयायी हिन्दू होते हुये भी जाति भेद को स्वीकार नहीं करते। उनको तलाक और विधवा की इजाजत थी। वे श्रद्धा और पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते और मुर्दे फूंकने के वजाय उन्हें दफनाते थे। वेलगांव, वाजीपुर और धारवाड़ जिलों तथा कोल्हापुर और मैसूर की रियासतों में लिंगायत मत के अनुयायी काफी वड़ी संख्या में पाये जाते थे।

शनैः-शनैः हिन्दू और इस्लाम धर्म में समिश्रण की प्रवृत्ति बढ़ी। हिन्दुओं ने उदारता पूर्वक इस्लाम की अच्छी बातों को अपनाया और मुसलमान हिन्दू दर्शन की गम्भीरता से प्रभावित हुये। अजमेर के शेख मुईन-उद्दीन चिश्ती का मजार मुसलमानों के लिये जितना अधिक पूजनीय है उतना ही अधिक हिन्दुओं के लिये। हिन्दू और मुसलमानों के सामीप्य का प्रभाव यह हुआ कि अनेक ऐसे पंथ चल पड़े जिनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे। सत्यपीर, सत्यनामी, नारायणी सम्प्रदाय ऐसे ही सम्प्रदाय हैं। संक्षेप में भारत के धार्मिक जीवन पर इस्लाम का अत्यन्त व्यापक प्रभाव है और आज तो स्थिति यह हो गई है कि इस्लाम धर्म की अनेक प्रथाओं को हिन्दू अपनी ही प्रथा समझने लगे हैं। अनेक त्योहार इस प्रकार के मनाये जाते हैं जो इस्लाम धर्म के अनुयायियों द्वारा प्रारम्भ किये गये थे। विभिन्न धार्मिक उत्सवों में इस्लाम और हिन्दू धर्म के अनुयायियों का भेद ही समझ में नहीं आता।

भारतीय शिक्षा एवं साहित्य पर इस्लाम का प्रभाव

भारतीय शिक्षा और साहित्य पर इस्लाम का अत्यन्त व्यापक प्रभाव पड़ा। भारत की विभिन्न भाषाओं में अरबी और फारसी शब्द इतनी अधिक संख्या में पाये जाते हैं कि यह बतलाना कठिन हो जाता है कि कोई शब्द किसी भारतीय भाषा का है अथवा अरबी और फारसी का। भारतीय प्राचीन शिक्षा-प्रणाली नैतिक आदर्शों पर स्थापित की गई थी। इस्लामी प्रभाव के कारण इस शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन हुये और आध्यात्मिकता के स्थान पर कुछ भौतिकवादी विचारधारा का भी जन्म हुआ। शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य केवल ज्ञान का प्राप्त करना नहीं बल्कि मनुष्य का सांसारिक क्रिया कलापों में खुल कर भाग लेने के योग्य बनाना है। यद्यपि इस्लामी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिक्षा भी धार्मिक ही रही परन्तु उसमें भौतिकता का भी पुट दिया गया। अनेक भारतीय साहित्यकार इस्लाम धर्म के ग्रन्थों से प्रभावित हुये बिना नहीं रहे। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवियों, यहाँ तक तुलसी और सूर आदि ने भी अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग किया है और इस्लामी मान्यताओं की कुछ छाप उन पर भी पड़ी है। यही नहीं, अनेक मुसलमान कवियों ने भी हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में महान योगदान दिया है। इन मुसलमान कवियों में रहीम और रसखान के नाम अत्यन्त आदर के साथ लिये जाते हैं। कबीर न तो हिन्दू था और न मुसलमान। वह तो केवल राम का बन्दा था और इस लिये उनका साहित्य एक ऐसा साहित्य है जिस पर इस्लामी प्रभाव खोजने के बजाय यदि यह कहा जाय कि वह भारतीय और इस्लामी दोनों प्रकार का साहित्य है तो अधिक उचित होगा। जायसी का साहित्य तो इस्लाम धर्म की मान्यताओं से परिपूर्ण है। जायसी का 'पद्मावत', जो हिन्दी साहित्य का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ माना जाता है, में फारसी की मसनवी शैली का प्रयोग हुआ है। हिन्दी की अनेक नवीन शैलियाँ फारसी और अरबी शैलियों की ऋणी हैं। इस्लाम का प्रभाव केवल हिन्दी साहित्य पर ही नहीं पड़ा बल्कि मराठी और बंगला आदि भाषाओं का साहित्य भी इस्लामी प्रभाव से युक्त है। बंगला भाषा को साहित्यिक जगत में लाने का श्रेय मुसलमानों को ही है। यदि बंगाल के हिन्दू राजा स्वतन्त्र बने रहते तो बंगला भाषा को राजाओं के दरबारों में पहुँचने का श्रेय ही प्राप्त न होता। चौदहवीं शताब्दी में नसीर शाह ने महा भारत का संस्कृत से बंगला में अनुवाद कराया। सम्राट हुसेन शाह ने मलधर वसु से भागवत का बंगला में अनुवाद कराया। मुसलमानों द्वारा संस्कृत ग्रन्थों का बंगला में अनुवाद कराने के अत्यधिक उदाहरण प्राप्त होते हैं। बहमनी बादशाहों ने मराठी को पूरा प्रोत्साहन दिया। अरबी और फारसी संस्कृति और हिन्दी से मिलन के फलस्वरूप ही उर्दू का जन्म हुआ जिसने कालान्तर में भारतीय साहित्य की समृद्धि में महान योगदान दिया। उर्दू भाषा कोई विदेशी भाषा न होकर एक भारतीय भाषा ही है।

वैज्ञानिक प्रभाव

इस्लाम का वैज्ञानिक क्षेत्र पर भी प्रभाव दिखलाई पड़ता है। सामरिक कला में इस्लाम धर्म के अनुयायियों द्वारा नये वैज्ञानिक ढंग को अपनाया गया और भारत में भी उनके द्वारा उसका प्रसार किया गया। मुगलों ने यूरोपीय रण कला एवं बारूद, बन्दूक और तोपों का प्रयोग, तुर्कों और ईरानियों से सीखा और उसका प्रसार उन्होंने भारत में भी किया। युद्ध विद्या और सैन्य-व्यवस्था के क्षेत्र में भारत में नवीन प्रयोगों का श्रेय इस्लाम धर्म को ही प्राप्त है। कागज बनाने की कला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुसलमानों द्वारा ही भारत में लाई गई और इससे विद्या-प्रसार में अत्यधिक सहायता मिली। भारत में प्रचलित चिकित्सा की यूनानी शैली इस्लाम धर्म के अनुयायियों की ही देन है और इसका प्रभाव भारतीय वैद्यक शैली पर अवश्य ही पड़ा है।

कला पर प्रभाव

भारतीय कला इस्लाम की चिर ऋणी है। भारतीय स्थापत्य, शिल्प, संगीत, चित्र कला और उद्यान निर्माण कला आदि को इस्लाम और उसके अनुयायियों की महान देन है। भारत की मध्य युग की स्थापत्य कला में हिन्दू और मुस्लिम कला शैलियों का सुन्दर सामंजस्य देखने को मिलता है और इसे इण्डो-सारसैनिक कला या पाठन कला के नाम से पुकारा जाता है।

प्राचीन भारतीय वास्तु कला में भव्यता के साथ सूक्ष्मता और अलंकारिकता को अधिक महत्व दिया गया था परन्तु मुसलमानों ने भव्यता को ही अधिक महत्व दिया है। अलंकारिकता उन्होंने भारतवासियों से ही सीखी है। एक विद्वान ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है,—"भारत उत्तुंग पर्वतों, विस्तृत मैदानों, दुर्भेद्य जंगलों, प्रचण्ड ऋतुओं और घनी वनस्पतियों का देश है, अतः भारतीय कला में विशालता, स्थूलता और विस्तार पर अधिक बल था। जिस तरह भारतीय जंगलों में असंख्य फूल-पत्तियों से सारी भूमि ढकी रहती है, उसी तरह भारतीय मन्दिरों में कोई चप्पा अलंकरण से खाली नहीं रहता। विस्तार, बाहुल्य और चित्र प्राचुर्य इसकी प्रधान विशेषतायें हैं। इसके विपरीत अरब एक विशाल रेगिस्तान है, जिसमें मीलों तक कोई वनस्पति नहीं दिखाई देती। अतः मुस्लिम कला की विशेषता बड़े-बड़े भवन, ऊँची मीनारें साफ और सादी दीवारें थीं।"

मुसलमान भारत में गुम्बद, मीनार और डांट लेकर आये थे। उन्होंने भारतीयों से तंग स्तम्भ, पंक्तियाँ एवं भवन कला के अन्य अलंकरण ग्रहण किये। मुसलमानों को मेहराब का ज्ञान था और इसलिये उन्हें खम्भों की आवश्यकता नहीं थी, हिन्दुओं को डांट का ज्ञान था और उनके लिये स्तम्भ अनिवार्य था। सल्तनत युग और मुगल युग में भारतीय वास्तु कला और मुस्लिम वास्तु कला का समन्वय हुआ। इस समन्वय के दो कारण थे। पहला यह कि मुस्लिम भवनों के निर्माता भी हिन्दू शिल्पी ही थे जो मुसलमानों की देख रेख में भवन निर्माण करते थे। दूसरा यह कि नये मुसलमान भवन पुराने हिन्दू भवनों के ध्वंसावशेषों की सामग्री से निर्मित किये गये थे। सल्तनत युग के अनेक भवनों पर हिन्दू प्रभाव देखने को मिलता है। इस युग की दिल्ली शैली में कुतुबमीनार एवं अलाई दरवाजे में मुस्लिम तत्वों की प्रधानता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है परन्तु जौनपुरी, बंगला, गुजराती और बीजापुरी शैली में हिन्दू कला की प्रधानता के दर्शन होते हैं। जौनपुर के शर्की सुल्तानों के समस्त कारीगर हिन्दू थे। यही कारण है कि इनके द्वारा बनवाये गये भवनों में विशाल दीवारों, वर्गाकार स्तम्भों और छोटी गैलरियों से स्पष्ट रूप में हिन्दू प्रभाव की सूचना मिलती है। जौनपुर की मसजिद में मुस्लिम कला की एक विशेषता, मीनार, बिल्कुल नहीं है। 1408 ई० में पूर्ण हुई अताला देवी की मसजिद इस कला का सब से सुन्दर उदाहरण है। बंगाल में हिन्दू प्रभाव प्रबल रहा और इसका सब से सुन्दर उदाहरण पाण्डुआ में 1368 ई० में बनवाई गई अदीना मसजिद है। गुजरात, मालवा और बीजापुर की मुस्लिम वास्तु कला भी हिन्दू प्रभाव से ओत-प्रोत है। इस प्रकार सल्तनत काल में वास्तु कला के क्षेत्र में हिन्दू और इस्लामी शैलियों का समन्वय कार्य प्रारम्भ हो गया। मुगलों के शासन की वास्तु कला में ईरानी और भारतीय शैलियों का सामञ्जस्य बड़े सुन्दर ढंग से हुआ है। इस युग के बहुत से नमूनों को देख कर यह बताना ही कठिन हो जाता है कि यह हिन्दू वास्तु कला पर मुस्लिम प्रभाव है अथवा मुस्लिम वास्तु कला पर हिन्दू प्रभाव है। अकबर द्वारा बनवाया गया फतेहपुर सीकरी का भवन, आगरा का जहाँगीरी महल और हुमायूँ के मकबरे में हिन्दू प्रभाव इतना अधिक है कि अनेक विद्वान इन कलाकृतियों के विषय में यह कहते हैं कि यदि उन्हें हिन्दू कला के उत्कृष्ट नमूने कहा जाय तो अनुचित न होगा। हिन्दू मुस्लिम वास्तु कला के सामंजस्य का उत्कृष्ट रूप शाहजहाँ द्वारा बनवाई गई इमारतों में देखने को मिलता है। आगरा के ताजमहल और मोती मसजिद में यह सामंजस्य अत्यन्त प्रखर रूप में दिखलाई पड़ता है।

भारतीय चित्र कला पर भी ईरानी प्रभाव के दर्शन होते हैं। यह ठीक है कि मुगल काल के चित्रों का विषय इस्लामी है परन्तु चित्र कला भारतीय ही है और उस पर इस्लामी प्रभाव अवश्य है। अकबर के दरबार के चित्रकारों में अधिकतर चित्रकार हिन्दू ही थे और उनमें बसावन, लाल और दसवन्त विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन चित्रकारों द्वारा बनाये गये चित्रों में हिन्दू और मुस्लिम शैली का सुन्दर सामंजस्य देखने को मिलता है।

इस्लामी संसर्ग का भारतीय संगीत पर भी अत्यन्त गहरा प्रभाव पड़ा हैं और वह नवीन वाद्य यंत्रों और नवीन रागों से समृद्ध हुआ। प्राचीन भारतीय एवं ईरानी संगीतों के सम्मिश्रण से संगीत की एक नवीन शैली का जन्म हुआ जो इन दोनों ही शैलियों से अधिक उत्कृष्ट और आकर्षक थी। अमीर खुसरो की प्रतिभा से भारतीय संगीत को एक नई दिशा मिली। वह भारत में सितार का प्रणेता माना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाता है। उसने भारत की उत्तरी और दक्षिणी संगीत शैलियों में सामंजस्य स्थापित किया। कव्वाली, जो आधुनिक युग में भी अत्यधिक प्रचलित है को भारत में प्रारम्भ करने का श्रेय भी उसे ही दिया जाता है। जौनपुर के शर्की दरबार की एक महान देन खयाल है। वास्तव में भारत में खयाल का प्रचलन उसी समय से हुआ है। अकबर के दरबार में ईरानी, तूरानी और भारतीय अनेक उत्कृष्ट गवैये थे परन्तु इन सब में से बड़ा गवैया तानसेन था जिसका नाम आज भी अत्यन्त गौरव के साथ लिया जाता है। अमीर खुसरो से मोहम्मद शाह रंगीले के समय तक मुस्लिम दरबारों में भारतीय संगीत को प्रोत्साहन दिया गया और भारतीय संगीत में तराना, ठुमरी, गजल और कव्वाली आदि का प्रचलन किया गया। इस्लाम धर्म के अनुयायियों की भारतीयों को एक महान देन उनकी उद्यान कला है। हेवेल महोदय ने उद्यानों की योजना और निर्माण को भारतीय कलाओं में मुसलमानों की सब से बड़ी देन बतलाया है। मुगलों के आगमन से पूर्व में बगीचे थे परन्तु वे अधिकतर फलों के ही बगीचे थे और वन जैसे होते थे। मुगलों ने भारत में ईरान और तुर्किस्तान की उद्यान कला के अनुरूप बगीचे बनवाये। इन बगीचों में नहरों को ऊँचाई से लाकर 7-8 प्रपात बनाये जाते थे, फव्वारे लगे होते थे, नहर की पटरियों के दोनों ओर फूलों की क्यारियाँ होती थीं और सब से ऊँचे और निचले फव्वारे पर बारादरी होती थी जहाँ से समस्त दृश्य का अवलोकन किया जा सकता था। काश्मीर का शालामार, निशात, अच्छाबल, वैरीनाग और लाहौर के शालामार बगीचे मुगलों ने ही बनवाये थे।

भारत में फैशन को नवीन रूप देने का श्रेय भी इस्लाम धर्म के अनुयायियों को प्राप्त है। नूरजहाँ को फैशन से विशेष प्रेम था और उसने तरह-तरह के आभूषण बनवाये थे। विभिन्न प्रकार के इत्रों और सुगंधित तेलों का प्रचलन भी उसके काल में हुआ था।

उपसंहार—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति को इस्लाम की महान देन है। इस्लाम धर्म के अनुयायियों ने भारतीय समाज को प्रभावित किया, उनके धार्मिक जीवन में परिवर्तन किया, साहित्य की उन्नति में योगदान दिया और कला के क्षेत्र में अत्यधिक प्रभाव डाला। कालान्तर में इस्लामी भारतीय संस्कृतियों के सम्मिलन से एक नवीन संस्कृति का जन्म हुआ जिसकी आत्मा इस्लामी भी है और भारतीय भी। अपने मूल रूप में वह भारतीय संस्कृति है परन्तु उस पर इस्लामी प्रभाव इतना अधिक है कि हम उसे इस्लामी संस्कृति से भिन्न कह ही नहीं सकते।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | 7

मध्यकालीन भारत में धार्मिक आन्दोलन
(RELIGIOUS MOVEMENTS IN MEDIEVAL INDIA)

भूमिका

भारतीय इतिहास का मध्य युग राजनीतिक दृष्टि से जितना महत्वपूर्ण है उतना ही धार्मिक और साहित्य दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इस युग में भक्ति की वह लहर उठी कि उसने समस्त भारतीय जन-जीवन को प्रभावित कर दिया। इस युग में भक्ति आन्दोलन भक्ति जगत में अपना प्रमुख स्थान रखता है और इन भक्तों द्वारा जिस साहित्य का निर्माण किया गया उसका भी विशेष महत्व है।

प्रश्न 1—भक्ति आन्दोलन के प्रमुख कारणों पर प्रकाश डालिए। भक्तों के सामान्य सिद्धान्तों और प्रमुख भक्तों का उल्लेख कीजिए। बतलाइये कि भक्ति आन्दोलन का क्या प्रभाव पड़ा।

मध्य काल में, भारतीय समाज की जो रूपरेखा वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार ढाली गई थी उसमें अनेक दोष आ गये थे। समाज की उच्छृंखलता के फलस्वरूप आडम्बरता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी और धार्मिक मूल्यों का कोई भी महत्व नहीं रह गया था। इन परिस्थितियों में सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन अवश्यम्भावी थे और हुआ भी ऐसा ही। एक ओर मुस्लिम सन्तों ने सूफी मत का प्रचार किया और भक्ति मार्ग का आदर्श रूप रखा गया। धर्म और समाज-सुधार का कार्य इतने व्यापक रूप से किया गया कि सामूहिक प्रयत्नों को विभिन्न विद्वान भक्ति आन्दोलन के नाम से पुकारते हैं।

तत्कालीन सामाजिक दशा

भक्ति आन्दोलन 15 वीं और 16 वीं शताब्दी की सामाजिक दशा का परिणाम था। सल्तनत काल में समाज में अनेक कुरीतियाँ आ गई थीं और इन कुरीतियों को दूर करने के लिये अनेक सन्तों ने बीड़ा उठाया। यहाँ हम समाज की स्थिति का चित्रण संक्षेप में कर रहे हैं :—

(1) हिन्दू-मुस्लिम विरोध—इस युग के समाज में हिन्दू-मुस्लिम विरोध बहुत अधिक मात्रा में विद्यमान था। मुसलमान शासक थे, और हिन्दू शासित।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये गये। अब तक जितनी भी विदेशी जातियाँ आईं वे सब भारतीय समाज में विलीन हो चुकी थीं परन्तु मुसलमानों को भारतीय समाज में विलीन नहीं किया जा सका। डा० विन्सेन्ट स्मिथ ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है :—

"The Mohammedans were not absorbed into the Indian caste system of Hinduism as their foreign predecessors."

—V. A. Smith.

(2) **दास एवं जाति-प्रथा**—समाज में जाति प्रथा अत्यन्त दृढ़ता से विद्यमान थी और भारत में छुआछूत, ऊँच-नीच एवं अन्य सामाजिक कुरीतियाँ विद्यमान थीं।

(3) **स्त्रियों की दयनीय दशा**—सल्तनत-काल में स्त्रियों की दशा भी अत्यन्त दयनीय थी। बहु-विवाह और बाल-विवाह की प्रथा विद्यमान थी। पर्दे की प्रथा और अशिक्षा भी स्त्री जाति की प्रगति का बहुत बड़ा रोड़ा था।

(4) **धार्मिक अव्यवस्था**—सल्तनत-काल में धर्म नाम की कोई वस्तु नहीं बची थी। धर्म के नाम पर अनेक अन्याय किये जाते थे। हिन्दू धर्म में अनेक कुरीतियाँ आ गई थीं और अनेक मत-मतान्तर प्रचलित हो रहे थे। इस्लाम का प्रचार तलवार के जोर पर किया गया था और इसलिए उसमें भी जनता को शान्ति पहुँचाने की क्षमता न थी।

(5) **शासक और शासित की गहरी खाई**—सल्तनत-काल में शासक और शासित के बीच की खाईं अत्यन्त गहरी थी। एक ओर मुसलमानों का सामाजिक जीवन सुखमय था और दूसरी ओर हिन्दू पीसे जा रहे थे। मुसलमानों में भी शासक वर्ग को विशेष सुविधायें प्राप्त थीं। उनमें विलासिता की मात्रा अत्यधिक थी। साधारण मुस्लिम जनता भी सुखी थी।

धार्मिक दशा

(1) **इस्लाम धर्म**—हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि उस युग की धार्मिक दशा भी अच्छी न थी सुल्तानों के आश्रय में इस्लाम धर्म पनप रहा था। परन्तु तलवार के बल पर धर्म का प्रचार करने के फलस्वरूप उसमें अनेक दोष आ गये थे।

(2) **सूफी मत**—जहां एक ओर की दिल्ली की सल्तनत तलवार के सहारे इस्लाम धर्म का प्रचार कर रही थी वहाँ दूसरी ओर मुईनउद्दीन चिश्ती और गेसे आदि फकीर अपनी नैतिकता और नम्रता के सहारे सूफी मत का प्रचार कर रहे थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(3) **भक्ति-आन्दोलन**—सामाजिक और धार्मिक अव्यवस्था के फलस्वरूप कुछ सन्तों ने भवि। के मार्ग को अपनाया। उन्होंने लोगों में भक्ति की भावना जागृत की और उनको सही मार्ग पर ले जाकर उनके दोषों के निवारण का प्रयास किया।

भक्ति-आन्दोलन का प्रादुर्भाव

ऊपर हम इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि भक्ति आन्दोलन सामाजिक और धार्मिक अवस्था का परिणाम था। यहाँ हम संक्षेप में उन प्रमुख कारणों की चर्चा कर रहे हैं जिनके फलस्वरूप भक्ति की लहर देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैल गई।

(1) **आश्रय की खोज**—सल्तनत-काल में मुसलमानों का शासन पूर्ण रूप से दृढ़ हो चुका था और हिन्दुओं का शौर्य और बाहुबल धराशायी हो चुका था। इस स्थिति में उनका ईश्वर की शरण में जाना अनिवार्य था।

(2) **क्रियात्मक शक्ति के नियोजन की आवश्यकता**—पराधीनता के फलस्वरूप हिन्दुओं के पास कोई उपयोगी कार्य नहीं रह गया था और क्रियात्मक शक्ति को नियोजित करने के लिये किसी साधन की आवश्यकता नहीं थी। उन्होंने इस शक्ति को भगवत् भजन में नियोजित कर दिया।

(3) **पराधीनता को भूलने का साधन**—हिन्दुओं को ईश्वर की भक्ति पराधीनता को भूलने का अच्छा साधन प्रतीत हुआ और इसीलिए उन्होंने भक्ति मार्ग को अपना लिया।

(4) **सूफी सम्प्रदाय का प्रभाव**—दिल्ली सल्तनत के विस्तार के साथ सूफी सम्प्रदाय का प्रभाव बढ़ा। जब सूफी महात्माओं के सम्पर्क में आये तो उनके नैतिक विचारों से बहुत अधिक प्रभावित हुए। परिणामस्वरूप उन्होंने भी ईश्वर की एकता और भक्ति पर बल दिया। डा० ईश्वरी प्रसाद ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है :—

"Impressed by the simplicity of the Muslim creed and its insistence upon the oneness of God, these reforms denounced idotary and caste, and preached that true religion consists neither in the sophistrias and dogmas of philosophers and divines nor in the practice of meaningless rituals but in Bhakti or a passionate feeling of love of God."

—**Dr. Ishwari Prasad.**

(5) **हिन्दू धर्म के दोष**—इस युग में हिन्दू धर्म में बहुत अधिक जटिलता आ गई थी। उसमें आडम्बरों का बोलबाला था। साधारण जनता इस धर्म से ऊब चुकी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी । फलस्वरूप उसमें सुधारों का होना आवश्यक था । भक्ति आन्दोलन इन सुधारों का ही परिणाम था ।

(6) **समन्वय की प्रेरणा**—एक लम्बे समय से एक ही स्थान पर रहने के पश्चात् बहुत से हिन्दू और मुसलमान अनुभव करने लग गये थे कि आपसी कटुता और वैमनस्य से कोई लाभ नहीं है । उन्होंने उसको दूर करने का प्रयास किया । हिन्दुओं और मुसलमान दोनों में सन्तों ने एकता लाने के लिए उचित मार्ग ढूँढा । यह मार्ग भक्ति मार्ग था ।

भक्तों के सामान्य सिद्धान्त

रामानन्द, कबीर, चैतन्य, गुरुनानक, निम्बार्काचार्य और वल्लभाचार्य आदि ने भक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया । यद्यपि उनके सिद्धान्तों और शिक्षाओं में पर्याप्त मतभेद था, परन्तु कुछ ऐसी मूल-भूत बातें थीं जिनको सभी भक्त स्वीकार करते थे । यह सिद्धान्त स्वीकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही थे ।

(अ) स्वीकारात्मक सिद्धान्त

(1) **ईश्वर की एकता**—भक्ति-आन्दोलन के सभी दिग्गज इस बात को स्वीकार करते थे कि ईश्वर एक है । उन सब ने ईश्वर को एकता में विश्वास प्रकट किया । यद्यपि लोग विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा करते थे, परन्तु भक्तों ने उसी एक ईश्वर के दर्शन किये ।

(2) **ईश्वर के प्रति अपार प्रेम**—सभी भक्तों ने ईश्वर के प्रेम पर बल दिया । उनका विश्वास था कि भक्ति और ज्ञान के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है और वह ईश्वर के प्रति अपार प्रेम के द्वारा ही हो सकता है ।

(3) **आत्म समर्पण**—सभी सन्तों ने यह शिक्षा दी कि अपने को ईश्वर के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित कर दो और ईश्वर तुम्हारी सहायता करेगा । सांसारिकता में लीन न हो और परम परमात्मा के प्रति अपने जीवन को न्यौछावर कर दो ।

(4) **गुरु की महत्ता**—सभी सन्तों ने गुरु को अत्यधिक महत्व प्रदान किया है । उनका मत है कि गुरु ही ईश्वर प्राप्ति का साधन है । वह भक्त के अज्ञान को दूर करता है और उसमें ज्ञान संचार करता है ।

(5) **हृदय की स्वच्छता**—सभी संतों का यह मत था कि स्वच्छ हृदय के द्वारा ही ईश्वर की प्राप्ति की जा सकती है । वह व्यक्ति जिसका हृदय कलुषित है कभी भी ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता है ।

(6) **मानवतावादी भावना**—सभी सन्त मानवतावादी भावना से प्रभावित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे । उन्होंने विश्व-बन्धुत्व का पाठ पढ़ा था । उनका मत ही था कि समस्त जीव उस एक ही परमात्मा के अंश हैं और हम सब के अन्दर एक ही आत्मा विद्यमान है ।

(ब) नकारात्मक सिद्धान्त

(1) सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार—तत्कालीन समाज में अत्यधिक कुरीतियाँ और भ्रमपूर्ण भावनायें विद्यमान थीं । सभी भक्तों ने प्रचलित अन्ध-विश्वासों की आलोचना की और सामाजिक कुरीतियों का विरोध करके ईश्वर की भक्ति पर बल दिया ।

(2) जातिवाद और वर्ग भेद में विश्वास नहीं—सभी सन्तों ने जाति वाद और वर्ग भेद का विरोध किया । उन्होंने यह मत प्रकट किया कि कोई भी व्यक्ति, चाहे वह नीच ही जाति का क्यों न हो, यदि स्वच्छ हृदय से ईश्वर की भक्ति करता है तो वह सुगमता से ईश्वर को प्राप्त कर सकता है । उनकी दृष्टि में न कोई उच्च था और न कोई निम्न । इन ईश्वर प्रेमियों के लिये ईश्वर की भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ थी ।

(3) किसी विशिष्ट भाषा पर बल नहीं—भक्ति आन्दोलन के पूर्व संस्कृत भाषा में विशाल साहित्य का सृजन हो चुका था और इस भाषा को विशेष महत्व दिया गया था । भक्तों का मत था कि हृदय की भाषा ही सर्वश्रेष्ठ भाषा है । उन्होंने किसी विशेष भाषा पर बल नहीं दिया ।

भक्ति मार्ग की शाखाएँ

भक्तों ने ईश्वर की प्राप्ति के तीन साधन बतलाये हैं—(1) ज्ञान, (2) प्रेम, तथा (3) उपासना । इसी आधार पर भक्तों को हम तीन कोटियों में विभाजित कर सकते हैं—ज्ञान मार्गी, प्रेम मार्गी और भक्ति मार्गी । एक दूसरा भी विभाजन सगुणोपासक और निर्गुणोपासक के आधार पर किया जा सकता है । सगुणोपासक साकार ब्रह्म के उपासक थे । वे मूर्ति में विश्वास करते थे । उनकी दो शाखाएँ थीं-कृष्णोपासक और रामोपासक । यह दोनों ही भक्ति पर विशेष बल देते थे ।

निर्गुणोपासक निराकार ब्रह्म के उपासक थे । वे मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं करते थे । इन निगुर्णोपासक भक्तों की दो शाखाएँ थीं—ज्ञानमार्गी तथा प्रेम-मार्गी । ज्ञानमार्गी ज्ञान को अधिक महत्व ही प्रदान करते थे और प्रेम मार्गी प्रेम को ।

प्रमुख भक्त या संत

(1) रामानुजाचार्य—इनका जन्म 1016 ई० में हुआ था । यह विशिष्टा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वैतवादी थे। यह विष्णु और लक्ष्मी के उपासक थे। उन्होंने सगुण-मार्गी भक्ति का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार ज्ञान और भक्ति के द्वारा ही मोक्ष सम्भव है।

(2) **निम्बार्काचार्य**—यह रामानुज के समकालीन थे। रामानुज की तरह यह भी शंकराचार्य के मत के विरोधी थे। यह कृष्ण के भक्त थे। इनका मत था कि कृष्ण की भक्ति द्वारा ही मोक्ष सम्भव है।

(3) **माधवाचार्य**—1200 ई० में शृंगेरी से थोड़ी दूर पर इनका जन्म हुआ था। इनके अनुसार मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य हरि-दर्शन है। ज्ञान से भक्ति प्राप्त होती है और भक्ति से मोक्ष मिलता है।

(4) **रामानन्द**—रामानन्द का प्रादुर्भाव 14 वीं शताब्दी में उस युग में हुआ जब तुगलक सुल्तानों की भयानक आँधी चल रही थी। परमानन्द वैष्णव थे। वे जाति-प्रथा के विरोधी थे। वे राम सीता की पूजा करते थे और साधारण भाषा में उपदेश देते थे। उत्तर भारत में उनके अनेक अनुयायी हुए।

(5) **वल्लभाचार्य**—15वीं शताब्दी में स्वामी वल्लभाचार्य जी का जन्म तेलंगाना प्रदेश में हुआ। उन्होंने विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया और काशी में बस गये। वह कृष्ण के उपासक थे और विरक्ति को ही मोक्ष का उपाय बतलाते थे। उनका कहना था कि ब्रह्म और आत्मा में कोई अन्तर नहीं है और भक्ति के द्वारा ही आत्मा अपने बन्धनों से छुटकारा पा सकती है।

(6) **चैतन्य महाप्रभु**—जिस युग में वल्लभाचार्य उत्तरी भारत में अपने मत का प्रचार कर रहे थे। उसी युग में बंगाल में चैतन्य महाप्रभु का प्रादुर्भाव हुआ। वह कृष्ण के उपासक थे और जीवात्मा तथा परमात्मा को एक दूसरे से भिन्न मानते हुए उनके सामंजस्य को स्वीकार करते थे। ये जाति-पाँति और ऊँच-नीच के विरोधी थे। बाह्य आडम्बरों और कर्मकाण्डों में विश्वास नहीं करते थे। वे राधा-कृष्ण के उपासक थे। चैतन्य के अनुयायी उन्हें विष्णु का अवतार मानते हैं।

(7) **गुरुनानक**—पंजाब के सन्तों में गुरुनानक का नाम प्रमुख है। वह सिख धर्म के संस्थापक थे। उन्होंने धार्मिक बाह्य आडम्बर, भेदभाव और कर्मकाण्ड की निन्दा की और ईश्वर की एकता पर बल दिया।

(8) **कबीरदास**—यह स्वामी रामानन्द के शिष्य थे और उन्होंने जाति-पाँति का विरोध किया और धार्मिक आडम्बरों की निन्दा की। उन्होंने प्रेम और सहानुभूति को अत्यधिक महत्व दिया। कबीर महान् समाज सुधारक थे।

(9) **मीरा**—मीरा कृष्ण की उपासिका थीं। उन्होंने अत्यन्त सरस पदों की रचना करके भक्ति मार्ग में जनता की अभिरुचि को बढ़ाया और पवित्र प्रेम का आदर्श जनता के सम्मुख रखा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(10) **नामदेव**—दक्षिण के सन्तों में नामदेव का ईश्वर प्रमुख है। उन्होंने ईश्वर की एकता पर बल दिया। उन्होंने मूर्ति-पूजा का विरोध किया और वाह्य आडम्बरों की निन्दा की। ईश्वर की भक्ति को ही वह मोक्ष का साधन मानते थे।

भक्ति आंदोलन का प्रभाव

भक्ति-आन्दोलन के फलस्वरूप भारतीय सामाजिक और राजनीतिक जीवन में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। यहाँ हम इस आन्दोलन के प्रभाव की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं—

(1) **मुस्लिम अत्याचारों में कमी**—सन्तों के उपदेश के फलस्वरूप मुसलमानों ने अत्याचार करना कम कर दिया और वे भी कुछ हद तक धार्मिक दृष्टि से सहिष्णु हो गये। इनमें उदार भावनाओं का संचार हुआ।

(2) **हिन्दुओं में साहस का संचार**—निराशा में डूबी हुई हिन्दू जनता को बल मिला और उसमे अत्याचारों की सहने की शक्ति उत्पन्न हुई।

(3) **वर्गीयता और संकीर्णता पर आघात**—भक्तों ने जाति-पाँति, ऊँच-नीच और भेदभाव की निन्दा की। इससे सामाजिक जीवन की वर्गीयता और संकीर्णता दूर हुई और दलित वर्ग के लोगों को एक नया जीवन मिला।

(3) **आडम्बरों का अभाव और सदाचार पर बल**—भक्तों ने वाह्य आडम्बरों की घोर निन्दा की और सदाचारों पर बल दिया। फलस्वरूप जनता में वाह्य आडम्बरों के प्रति घृणा की भावना का जन्म हुआ और उनका आचरण शुद्ध हुआ।

(4) **हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य**—सन्तों ने ईश्वर की एकता का प्रतिपादन करके हिन्दू मुस्लिम एकता को स्थापित करने का प्रयास किया। बहुत से मुस्लिम संत भी हुए। समाज में उदारता का प्रादुर्भाव हुआ और सद्भावना का संचार हुआ। धर्मों की मौलिक एकता के प्रदर्शन के फलस्वरूप समाज की कटुता बहुत हद तक दूर हुई।

(5) **आत्म गौरव की उत्पत्ति**—सन्तों ने आचरण पर बल देकर जनता में आत्मगौरव और आत्म-सम्मान की भावना का संचार किया।

(6) **प्रान्तीय भाषाओं का विकास**—संतों ने अपने उपदेश प्रायः लोक-भाषा में ही दिया। फलस्वरूप अनेक प्रान्तीय भाषाओं का विकास हुआ। हिन्दी साहित्य का तो इस युग में बहुत अधिक विकास हुआ।

(7) **राष्ट्रीयता की भावना की जागृति**—इस आन्दोलन के फलस्वरूप

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जनता में राष्ट्रीयता की भावना भी जागृत हुई और लोगों में देश-प्रेम की भावना उत्पन्न हुई।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भक्ति-आन्दोलन धार्मिक दृष्टि से जितना महत्वपूर्ण था उतना ही अधिक राजनैतिक और सामाजिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था। भारतीय इतिहास में यह अपने ढंग का अनूठा आंदोलन था। इस आन्दोलन के प्रभाव को व्यक्त करते हुए सर जान मार्शल ने लिखा है।

"Seldom in the history of mankind has the spectacle been witnessed of two civilizations so vast and strongly developed, yet so radically dissimilar as the Mohammedan and Hindu, meeting and mingling together."

—Sir John Marshall.

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | 8

मुगलों की सांस्कृतिक देन
(CULTURAL LEGACY OF THE MOGULS)

भूमिका—

1526 ई० में पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी को पराजित करके बाबर ने भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली। 1530 ई० में बाबर की मृत्यु हो गई और उसके बाद उसका पुत्र हुमायूं सम्राट हुआ। हुमायूं के समय में मुगल साम्राज्य काफी बड़ा था परन्तु शेरशाह सूरी से पराजित होकर हुमायूं ने अपने विशाल भू-भाग को खो दिया और भारत में थोड़े समय के लिए सूरी वंश का सिक्का जम गया। शेरशाह सूरी के बाद हुमायूं ने अपने खोये हुए गौरव को पुनः प्राप्त किया। 1556 ई० में हुमायूं की मृत्यु हो गई और उसके बाद अकबर मुगल वंश के सिंहासन पर बैठा। यह मुगल वंश का सबसे प्रतापी सम्राट था। उसके समय में लगभग समस्त भारत मुगल साम्राज्य में सम्मिलित हो गया। 1605 में अकबर की मृत्यु हो गई और शासन की बागडोर जहाँगीर के हाथ में आयी। जहाँगीर के बाद उसका पुत्र शाहजहाँ सिंहासनारूढ़ हुआ। अकबर से लेकर शाहजहाँ तक का काल सांस्कृतिक उन्नति की दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अपने जीवन के अन्तिम समय में शाहजहाँ अपने पुत्र औरङ्गजेब द्वारा बन्दी बना लिया गया और औरंगजेब के काल में और उसके बाद भारत की राजनीति को मराठों ने बहुत अधिक प्रभावित किया। साथ ही सिक्खों का उत्कर्ष भी हुआ। बहादुरशाह जफर अन्तिम मुगल सम्राट था। 1857 ई० में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम तक वह नाम मात्र का शासक रहा और उसके बाद अंग्रेजों ने उसे रंगून भेज दिया। 1862 ई० में उसकी मृत्यु हो गई तथा मुगल वंश का दीपक सदैव के लिए बुझ गया। वास्तव में मुगल काल के अन्तर्गत बाबर द्वारा इब्राहीम लोदी को पराजित करने से लेकर भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना तक का अध्ययन किया जाता है।

———

प्रश्न (1) मुगल काल में शिक्षा और साहित्य की प्रगति पर प्रकाश डालिये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुगल युग शिक्षा और साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । शिक्षा के क्षेत्र में इस युग में अपार उन्नति हुई । जिस उच्चकोटि का साहित्य इस युग में लिखा गया वह अब प्रशंसनीय है । यहाँ हम शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में मुगल काल में हुई उन्नति की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं ।

शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति

मुगल काल में शिक्षा के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई थी । कुछ मुगल सम्राट अत्यधिक विद्या प्रेमी थे । बाबर, हुमायूं तथा शेरशाह भी अत्यधिक शिक्षित थे । हुमायूं को अध्ययन का बहुत अधिक चाव था । कहा जाता है कि युद्ध के समय में भी वह पुस्तकों को पढ़ा करता था । उसने एक पुस्तकालय की भी स्थापना करवाई थी । अकबर यद्यपि पढ़ा-लिखा न था परन्तु उसने अनेक विद्यालयों की स्थापना करवायी थी । फतेहपुर सीकरी और दिल्ली आदि नगरों में मदरसे खुलवा कर और शिक्षा प्रणाली और पाठ्यक्रम में सुधार कर अकबर ने महान् कार्य किया था । जहाँगीर और शाहजहाँ को भी शिक्षा से प्रेम था । औरंगजेब की कट्टर नीति ने हिन्दुओं की शिक्षा पर कुठाराघात किया, परन्तु इस काल में मुसलमान बालकों को शिक्षा का प्रोत्साहन मिला । उत्तर कालीन मुगल शासकों ने भी शिक्षा के क्षेत्र में महान कार्य किया ।

शिक्षा के उद्देश्य—मुगल काल में शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य थे—(1) भारत में मुगल साम्राज्य को दृढ़ करना एवं (2) ज्ञान का विस्तार करना, (3) अन्य (3) अनुयायियों के मध्य इस्लाम धर्म का प्रचार करना, (4) व्यक्ति को अत्यधिक सांसारिकता से दूर करना, (2) देश के निवासियों के मध्य मतभेदों को दूर करना ।

मुगलकाल में शिक्षा की ओर बहुत ध्यान दिया गया था । यद्यपि उस समय कोई भी ऐसा विभाग न था, जो शिक्षा के विशेष प्रचार का प्रयास करता ।

मुगल-कालीन शिक्षा व्यवस्था का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है ।

(1) मकतब—शिक्षा का प्रारम्भ मकतब से होता था । प्रत्येक मस्जिद के साथ एक मकतब होता था । इन मकतबों में इस्लाम धर्म की शिक्षा दी जाती थी । उपनयन संस्कार की भाँति मुस्लिम युग में भी शिक्षा का प्रारम्भ 'बिस्मिल्लाह' संस्कार से किया जाता था । बालक को चार वर्ष, चार माह और चार दिन का होने पर नये वस्त्र पहिनाये जाते थे, और वह मौलवी के पास जाता था । मौलवी उसे कुरान समझाता था । इस प्रकार बालक की शिक्षा का आरम्भ होता था ।

बालक को लिपि का ज्ञान सर्वप्रथम कराया जाता था । इसके बाद उसे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुरान का तीसवाँ पाठ पढ़ाया जाता था। छात्रों में नैतिकता के लिए उन्हें गुलिस्ताँ और बोस्ताँ की शिक्षा दी जाती थी। गणित, पत्रकला, बातचीत का ढंग भी पाठ्य-क्रम में आता था। सिकन्दर नामा, लैला, मजनू आदि काव्य भी पढ़ाये जाते थे। शाहजादों के लिए पाठ्यक्रम अलग था। उन्हें न्याय और कानून की भी शिक्षा दी जाती थी। धार्मिक शिक्षा पर भी जोर दिया जाता था।

(2) **मदरसा**--प्रारम्भिक शिक्षा के बाद विद्यार्थी मदरसे जाता था। नगर के धनी लोग मदरसों के लिए दान देते थे। मदरसों में योग्य शिक्षक रखे जाते थे। मदरसों में दो प्रकार की शिक्षा दी जाती थी—(1) धार्मिक एवं (2) सांसारिक। धार्मिक पाठ्यक्रम में कुरान का अध्ययन, इस्लामी कानून का अध्ययन आदि विषय रखे गये थे। सांसारिक पाठ्यक्रम में अरबी, फारसी, व्याकरण, गणित, साहित्य। भूगोल, इतिहास, यूनानी चिकित्सा, तर्कशास्त्र, कृषि, ज्योतिष इत्यादि विषय पढ़ाये जाते थे। अकबर के शासन में भौतिक विज्ञान, शरीर विज्ञान, गृह विज्ञान आदि विषय भी पढ़ाये जाते थे। अरबी भाषा के ही द्वारा शिक्षा दी जाती थी।

(3) **अध्ययन विधि**—मदरसों तथा मकतबों में पढ़ाने का ढंग प्रायः मौखिक था। शिक्षक अपने-अपने विषयों पर भाषण देते थे। वे छात्रों के प्रश्नों का उत्तर भी देते थे। धर्म, तर्क शास्त्र इत्यादि के पढ़ने में तर्क प्रणाली को अपनाया जाता था। मकतबों में लड़कों को कलमा रटाया जाता था। लेखन कला पर अधिक जोर दिया जाता था।

(4) **गुरु शिष्य सम्बन्ध**—गुरु-शिष्य सम्बन्ध बहुत अच्छे थे। छात्र अपने गुरुओं का आदर करते थे और उनकी आज्ञा को मानते थे। गुरु वर्ग भी आवश्यकता पड़ने पर छात्रों की मदद करता था।

(5) **मुगल कालीन स्त्री शिक्षा**—स्त्री शिक्षा को अधिक महत्व नहीं दिया जाता था, क्योंकि उन्हें अधिक स्वतन्त्रता नहीं थी। उच्च कुल के लोग बालिकाओं को अवश्य पढ़ाते थे। अमीर लोगों के घरों में स्त्रियों की शिक्षा के लिये स्त्री शिक्षक भी नियुक्त की जाती थीं। अनेक मुसलमान स्त्रियों ने साहित्य के क्षेत्र में योगदान दिया। गुलबदन ने "हुमायूँ नामा" पुस्तक लिखी थी। इसके अतिरिक्त सलीम सुल्ताना, जेबुन्निसां, नूरजहां, मुमताज महल आदि भी अत्यन्त शिक्षित महिलायें थीं। मध्यम वर्ग के लोगों की स्त्रियाँ अधिकांशतया बिना पढ़ी रहती थी। निर्धन वर्ग की स्त्रियाँ भी अशिक्षित रहती थीं।

शिक्षा केन्द्र—इस युग में शिक्षा के दो केन्द्र थे—(1) दिल्ली एवं (2) आगरा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(1) दिल्ली केन्द्र—हुमायूँ ने दिल्ली में एक मदरसा बनवाया था जिसमें भूगोल और ज्योतिष पढ़ाई जाती थी। जहाँगीर ने अपने पूर्वजों द्वारा बनवाये गए मदरसों की मरम्मत करवाई थी। शाहजहाँ ने भी जामा मस्जिद के पास एक मदरसा बनवाया था।

(2) आगरा केन्द्र—सिकन्दर लोदी ने आगरे की नींव डाली थी। इसे शिक्षा से बड़ी रुचि थी। इसने आगरे में अनेक मदरसे खुलवाये थे। कुछ समय बाद आगरा ज्ञान एक बड़ा केन्द्र हो गया था। दूर-दूर से विद्यार्थी यहाँ ज्ञान पाने के लिए आते थे। अकबर ने आगरे में शिक्षा का विशेष प्रबन्ध किया। उसने फतेहपुर सीकरी में बहुत से मदरसे बनवाये थे। शाहजहाँ के काल में जब कोई व्यक्ति मर जाता था जिसका कोई उत्तराधिकारी न होता तो उसकी सम्पत्ति मदरसे को दी जाती थी। जहाँगीर ने अनेक मदरसों का जीर्णोद्धार किया था। शाहजहाँ ने भी अनेक मदरसे बनवाये थे।

साहित्य

मुगल शासन में विभिन्न भाषाओं के साहित्य की अपार उन्नति हुई थी।

(अ) फारसी साहित्य

(1) **बाबर एवं हुमायूं का काल**—बाबर ने तुर्की भाषा में अपनी आत्म-कथा लिखी थी। हुमायूँ भी बड़ा विद्वान था। उसे लिखने का बहुत अधिक शौक था। हुमायूँ की बहन ने 'हुमायूँ नामा' ग्रन्थ की रचना की थी। हुमायूँ के एक नौकर जौहर ने 'तजकिराते वाकयत्' नामक ग्रन्थ लिखा था। शेरशाह को भी साहित्य से बहुत ही प्रेम था। शेरशाह साहित्यकारों तथा विद्वानों को सदा श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। उसके शासन काल में साहित्य की अपार उन्नति हुई थी।

(2) **अकबर का काल**—अकबर यद्यपि स्वयं अशिक्षित था, फिर भी उसके यहाँ साहित्यकारों को आश्रय मिलता था। वह साहित्यकारों का बहुत आदर किया करता था। अकबर के संरक्षण में भारतीय साहित्य का बहुत अधिक विकास हुआ। अकबर के शासन में एक अनुवाद विभाग भी खोला गया था। इस विभाग के अन्तर्गत अनेक भाषाओं के ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद कराया गया था। इसके अलावा इस काल में कई ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना में भी हुई। फारसी भाषा में उच्च कोटि का साहित्य इस काल में लिखा गया। इस काल में अनूदित और मौलिक दोनों ही प्रकार के ग्रन्थ रचे गए, जिनकी चर्चा यहाँ की जा रही है :—

(अ) **अनुवादित ग्रन्थ**—अकबर के समय में संस्कृत, अरबी तथा अन्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक भाषाओं का फारसी भाषा में अनुवाद किया गया। अनुवादकों में अब्दुल रहीम खानखाना, फैजी, नकवी खाँ, अबुल फजल, बदायूँनी, इब्राहीम सरहिन्दी आदि मुख्य हैं। इस काल में निम्नलिखित ग्रन्थों का अनुवाद किया गया।

(1) महाभारत—सभी अनुवादकों के द्वारा इसका अनुवाद किया गया।

(2) रामायण—बदायूँनी ने अनुवाद किया।

(3) अथर्ववेद—बदायूँनी और इब्राहीम सरहिन्दी के द्वारा अनुवादित।

(4) राजतरंगिणी—मौलाना शाहमुहम्मद शाहबादी द्वारा अनुवाद किया गया।

(5) लीलावती—फैजी द्वारा अनुवादित।

(6) ताजब—मुकम्मल खाँ द्वारा अनुवादित।

(7) नल-दमयन्ती—फैजी द्वारा अनुवादित।

(8) कालिय-दमन—अबुल फजल द्वारा अनुवादित।

(9) तुजक-ए-बाबरी—अब्दुल रहीम खानखाना द्वारा अनुवादित।

(10) बाइबिल और कुरान।

(आ) मौलिक रचनायें—इस काल में अनेक लेखकों ने फारसी भाषा में मौलिक रचनायें लिखी हैं। अकबर का दरबार फारसी भाषा के कवियों से सुशोभित रहता था। उनमें से निम्न प्रसिद्ध थे :—

(1) गिजाली—इन्होंने 'मिरातुल कायनात नक्शे वार्दाद' और 'इसरोर अत्तूव' ग्रन्थ लिखा था। यह राजकवि थे।

(2) फैजी—यह अबुल फजल का भाई और शेख मुबारक का पुत्र था। इनके रचित ग्रन्थों में 'मसनवी', 'नलोदमन', 'मरकंज अदवार', 'मेवादिलकलाप' 'सवातुल इल्हाम' हैं।

(3) मुहम्मद हुसेन नाजिरी—इन्होंने उच्चकोटि की गजलें लिखी हैं।

(4) शीराजे का सैयद जमालुद्दीन उर्फी—वह कसीदे की शुद्ध रचना करते थे।

(इ) ऐतिहासिक रचनायें—अकबर के शासन में अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना हुई। ऐतिहासिक ग्रन्थों के लेखकों में अबुल फजल का नाम उल्लेखनीय है। इन पुस्तकों में निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं :—

(1) अबुल फजल की 'आइने अकबरी' और 'अकबरनामा।'

(2) बदायूँनी द्वारा रचित 'मुन्तखब उतवारीख।'

(3) मुल्लादाउनी द्वारा रचित 'तारीखे अल्फी।'

(4) निजामुद्दीन अहमद द्वारा रचित 'तबकाते अकबरी।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपर्युक्त ग्रन्थों में अबुल फजल द्वारा रचित 'अकबर नामा' भाषा तथा शैली की दृष्टि के एक सुन्दर ग्रन्थ है। इसमें भारतीय परम्पराओं का सुन्दर चित्र खींचा गया है। 'आइने अकबरी' ग्रन्थ में तत्कालीन राजनीतिक तथा सैनिक दशा का सुन्दर चित्र खींचा गया है। वदायूँनी द्वारा रचित ग्रन्थ में अकबर की धार्मिक नीति की कटु आलोचना की गई है, यह अकबर की मृत्यु के बाद सामने आया और इसमें विरोधी पक्ष के दृष्टिकोण का विवरण मिलता है।

(3) **जहाँगीर का काल**—जहाँगीर एक विद्वान सम्राट था। उसने अपने पिता की भांति साहित्य को प्रोत्साहित किया। जहाँगीर ने अपनी आत्मकथा 'तुजुके जहाँगीरी' लिखी है। नूरजहाँ तथा जहाँगीर को कविता करने का भी विशेष शौक था। इस समय के प्रसिद्ध विद्वान गयासबेग, नकीब खाँ, नियामतउल्ला देहलवी और मुताविद खाँ आदि थे। जहाँगीर के शासन में कुछ ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे गए। ख्वाजा कामगार ने 'मासीर-ए-जहाँगीरी' ग्रन्थ लिखा। मोविदा खाँ ने 'इकबाल नामा-ए-जहाँगीरी' ग्रन्थ लिखा। मुहम्मद कासिम फरिस्ता ने 'तारीखे फरिस्ता' लिखा।

(4) **शाहजहाँ का काल**—शाहजहाँ के शासन काल में साहित्य की बहुत प्रगति हुई। शाहजहाँ स्वयं एक उच्चकोटि का विद्वान था। वह विद्वानों का बहुत आदर करता था। उसके काल के 'ऐतिहासिक ग्रन्थों के अतिरिक्त अनुवाद, काव्य और दर्शन शास्त्र ग्रन्थ लिखे गये।

(अ) **ऐतिहासिक रचनायें**—शाहजहाँ के काल में निम्नलिखित प्रमुख इतिहासकारों ने निम्नलिखित ग्रन्थ लिखे :—(1) अब्दुल हमीद लाहौरी ने 'पादशाह नामा' ग्रन्थ लिखा, (2) इनियात खाँ ने 'शाहजहाँ नामा' ग्रन्थ की रचना की, (3) मिर्जा अमीन कजनीवी ने 'पादशाह नामा' लिखा, (4) जलालुद्दीन तबतताई ने 'पादशाह नामा' ग्रन्थ लिखा, (5) मुहम्मद ताहिर अश्ना ने 'मुल्लखख्वास' नामक ग्रन्थ लिखा, (6) मुहम्मद सादिक ने 'शाहजहाँ नामा' लिखा, (7) मुहम्मद सालिह ने 'अमल सालिहे' नामक ग्रन्थ लिखा।

(ब) **काव्य**—शाहजहाँ के शासन में अनेक कवि हुए जिनमें निम्न मुख्य हैं—अब्दुल तालिग, कलीम, हाजी, मुहम्मद जान और गिलानी।

(स) **अनुवादित ग्रन्थ**—शाहजहाँ के समय के कुछ धार्मिक ग्रन्थों का दाराशिकोह द्वारा अनुवाद करवाया गया था। उसने भगवत गीता, उपनिषद, योग वशिष्ठ आदि का फारसी में अनुवाद करवाया।

(द) **धार्मिक तथा दार्शनिक ग्रन्थ**—शाहजहाँ के काल में अनेक धार्मिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा दार्शनिक ग्रन्थों की रचना की गई। शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोह तथा मोहिन फानी ने धार्मिक ग्रन्थ लिखे जो उस समय बहुत प्रसिद्ध हुए।

(5) **औरंगजेब का काल**—औरङ्गजेब बहुत विद्वान था। वह फारसी का बहुत अच्छा ज्ञाता था। परन्तु उसने साहित्य के प्रोत्साहन में कोई विशेष योग नहीं दिया। उस समय ग्रन्थों की रचना पर प्रतिबन्ध लगा दिया था परन्तु फिर भी कुछ ग्रन्थ लिखे गये। इस काल के प्रसिद्ध विद्वानों में खाफी खाँ मुख्य हैं जिन्होंने 'मुन्तखब्बुललुबाल' ग्रन्थ लिखा है। औरङ्गजेब ने 'फतवा ए-आलमगीरी' ग्रन्थ का का संकलन भी कराया था।

(ब) हिन्दी साहित्य

मुगल काल में हिन्दी साहित्य का बहुत अधिक विकास हुआ। अकबर को काव्य से विशेष प्रेम था। उसके दरबार में अनेक विद्वान रहते थे। भगवान दास, टोडरमल, बीरबल, राजा मानसिंह आदि अकबर के दरबार की शोभा बढ़ाते थे। गंग कवि तथा अब्दुर्रहीम खानखाना भी इसी युग में हुए थे। रहीम अकबर के दरबार में थे। वे कृष्ण के बड़े भक्त थे। इन्होंने रहीम दोहावली, बरवै नायिका भेद, शृंगार, सोरठा आदि ग्रन्थ लिखे। रहीम ब्रज तथा अवधी भाषा पर समान अधिकार रखते थे।

मुगल काल में सूरदास तथा तुलसीदास नामक दो महान कवि हुए। सूरदास के सूरसागर, सूरसारावली तथा साहित्य लहरी आदि मुख्य ग्रन्थ हैं। सूरदास कृष्ण भक्त कवि थे। सूर ने ब्रजभाषा का सजीव काव्य प्रस्तुत किया है। तुलसीदास ने रामचरित मानस, विनय पत्रिका, कवितावली, गीतावली, दोहावली, आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। तुलसीदास ने राम का आदर्श चरित्र भारतीय समाज के बीच रखा। सर जार्ज ग्रियर्सन (Sir George Grierson) ने तुलसी के प्रति अपने उद्गार निम्न शब्दों में प्रकट किये हैं :—

"One of the greatest reformers and one of the greatest poet that India has produceds.'

भक्त माल के लिखने वाले नाभादास, विट्ठलदास, परमानन्ददास आदि कवि भी इसी काल में आते हैं। केशवदास, भूषण, सेनापति, मतिराम, बिहारी आदि कवि भी इसी काल में हुए।

(स) अन्य साहित्य

(1) **संस्कृत साहित्य**—कुछ महत्वपूर्ण संस्कत ग्रन्थ भी इसी काल में लिखे गये। रूप गोस्वामी ने 'विदग्धमाधव' जगन्नाथ पण्डित ने 'गंगा लहरी' ग्रन्थ लिखे।

(2) **उर्दू साहित्य**—अकबर के काल में नूरी आलमपूरी, मुहम्मद अफजल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आदि उर्दू कवि थे । चन्द्रभान पण्डित, बहादुरशाह, मिर्जा गालिब आदि प्रमुख कवि भी मुगल काल में हुए । बीजापुर तथा गोलकुण्डा के शासकों ने उर्दू को विशेष प्रोत्साहन दिया । वली नाम का विद्वान भी इसी समय हुआ । मुहम्मद तथा शाह-हाशिम आदि अन्य विद्वान भी इसी काल में हुए ।

(3) **मराठी साहित्य**—मराठी साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ । श्रीधर स्वामी ने 'हरि विजय', 'राम विजय' तथा 'पाण्डव विजय', सन्त रामदास ने 'दासबोध', रघुनाथ पण्डित ने 'नल-दमयन्ती स्वयम्वर' ग्रन्थ लिखे । दासोपन्त, मुक्तेश्वर आदि भी मराठों के मुख्य साहित्यकार थे ।

(4) **गुजराती साहित्य**—अरवा गुजराती का प्रसिद्ध कवि था । इसने अनेक काव्यों की ही रचना की । इसके अतिरिक्त प्रेमानन्द भी अपने गीतों के लिये प्रख्यात थे ।

(5) **बंगला साहित्य**—बंगला में कृष्ण विषयक साहित्य की प्रमुखता रही । काशीराम ने "महाभारत" का अनुवाद किया । मुकुन्दराम चक्रवर्ती इस काल के प्रमुख कवि थे । उन्होंने "कवि कंकण चण्डो" ग्रन्थ लिखा । चैतन्य महाप्रभु का बंगाल में बहुत आदर किया जाता था । वृन्दावनदास, कृष्णदास, कविराज, नरहरि, चक्रवर्ती आदि इस काल के अन्य बंगला साहित्यकार थे ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुगल-काल में साहित्य क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई । मुगलों का काल ही हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग है ।

प्रश्न—(2) मुगलकालीन कलात्मक उन्नति के विषय में आप क्या जानते हैं ?

"कला की उन्नति की दृष्टि से मुगल काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग था ।" इस कथन की विवेचना कीजिये ।

मुगल सम्राट अत्यन्त कला प्रेमी थे । उनके संरक्षण में विभिन्न कलाओं का विकास हुआ था । लगभग सभी मुगल सम्राटों ने कला को प्रोत्साहन दिया । केवल औरंगजेब ही एक ऐसा सम्राट था । जिसके शासन काल में कला के क्षेत्र में उन्नति ; नहीं हुई । मुगल काल में जिन कलाओं ने विशेष उन्नति की थी । वे निम्नलिखित हैं :-

(1) स्थापत्य कला (Architecture)
(2) चित्र-कला (Painting)
(3) संगीत कला (Music)

स्थापत्य कला

मुगलों का स्थापत्य कला से विशेष प्रेम था । उन्होंने स्थापत्य कला के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रोत्साहन में अत्यधिक योगदान दिया। इस काल की स्थापत्य कला को न तो पूर्ण-रूपेण मुस्लिम स्थापत्य कला ही कहा जा सकता है और न भारतीय ही। इस कला मे मध्य एशिया, दक्षिण पूर्वी एशिया तथा भारतीय स्थापत्य कला का समन्वय दिखाई देता है। कुछ विद्वानों का कथन है कि मुगलकालीन स्थापत्य कला एक विदेशी कला है जिस पर भारतीय कला का कोई प्रभाव नहीं दिखाई देता। परन्तु यह मत उचित नहीं प्रतीत होता।

(1) बाबर कालीन स्थापत्य—बाबर को भवन बनवाने का बहुत अधिक शौक था। उसने पानीपत में 'काबुली मस्जिद' का निर्माण करवाया था। रुहेलखण्ड में 'जामा मस्जिद' भी उसने ही बनवाई थी। अयोध्या की 'बाबरी मस्जिद' भी उसी के समय में बनवाई गई। बाबर ने आगरा में भवन बनाने के लिए 780 व्यक्ति नियुक्त किये थे। उसने बयाना, ग्वालियर, सीकरी तथा धौलपुर नगरों में सुन्दर इमारतें बनवाई थीं।

(2) हुमायूं और शेरशाह युगीन स्थापत्य—हुमायूं के द्वारा बनवाई दो मस्जिदें, जो आगरे तथा हिसार में स्थित हैं, अत्यन्त सादी हैं। इनका विशेष महत्व नहीं हैं।" 'दीनपनाह' नगर हुमायूं द्वारा बसाया गया था।

शेरशाह सूरी एक महान निर्माता था। इसके द्वारा बनवाई इमारतों से हिन्दू तथा मुस्लिम शैली का समन्वय प्राप्त होता है। सहसराम में शेरशाह का मकबरा, जो हिन्दू शैली से प्रभावित है, एक कृत्रिम झील के बीच स्थित है। यह दूर से एक मन्दिर प्रतीत होता है। डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव का मत है—"शेरशाह का यह मकबरा स्थापत्य कला के विकास के इतिहास में तुगलक सुल्तानों के समय की भारी तथा भद्दी इमारतों और शाहजहाँ की बनवाई हुई सुन्दर इमारतों के बीच की कड़ी है।" दिल्ली में 'किले-ए-कुहना' नाम की मस्जिद भी उसी काल की बनी हुई है। यह दूर से देखने में मन्दिर सी ज्ञात होती है। इस मस्जिद में मीनार नहीं है। गुम्वद के ऊपर शिव डमरू का रूप दिखाई देता है।

(3) अकबर-कालीन स्थापत्य—अकबर को स्थापत्य कला से बहुत प्रेम था। उसके शासन में सुख-शान्ति वर्तमान थी। इस कारण सांस्कृतिक उन्नति हो रही थी। अकबर द्वारा बनवाई इमारतों में फारसी तथा भारतीय शैलियों का समन्वय स्पष्ट रूप से दिखाई देता है और कुछ इमारतें तो पूर्णतया भारतीय प्रतीत होती हैं। आमेर दुर्ग, जहाँगीरी महल, और सीकरी इमारतों को देखने से प्रतीत होता है कि जैसे इन्हें किसी राजकुमार ने बनवाया हो। अकबर के शासन के प्रारम्भिक काल में दिल्ली हुमायूं का मकबरा बनना प्रारम्भ हुआ जो सन् 1569 ई० में बनकर तैयार हुआ था। इसका बाहरी भाग फारस की शैली के अनुरूप हैं किन्तु निचला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाग भारतीय है । अकबर ने फतेहपुर सीकरी में सुन्दर महल बनवाये । सीकरी की इमारतों में जोधाबाई का महल बहुत सुन्दर है । सीकरी के विषय में लेनपूल ने लिखा है :—

"Nothing sadder or more beautiful exists in India than the deserted city, the silent witness of a vanished dream."

गुजरात विजय के बाद अकबर ने 1576 ई० में बुलन्द दरवाजा को बनवाया था । सीकरी में बना दीवाने खास भी बहुत सुन्दर इमारत है । इसका निर्माण भारतीय शैली के आधार पर किया गया था । भारतीय शैली के अनुरूप इसके मध्य में कमल का फूल और सिंहासन है । सीकरी स्थित पंचमहल पर बौद्ध कालीन कला का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है । अन्य सुन्दर इमारतों में जामा मस्जिद है जिसे फर्गुसन ने 'Romance of Stone' कहा है । इन महलों के अतिरिक्त अकबर ने आगरे के पास सिकन्दरे में अपना मकबरा बनवाने की योजना बनाई थी । उसने इलाहाबाद में एक दुर्ग भी बनवाया था जो लगभग चालीस वर्ष में बनकर तैयार हुआ था ।

जहाँगीरकालीन स्थापत्य—जहाँगीर को भी अपने पिता की भांति वस्तु कला में विशेष रुचि थी । उसने सिकन्दरा में सुन्दर मकबरे का निर्माण करवाया अकबर को इसी के अन्दर दफनाया गया था । अकबर की कब्र के पास एक छोटा स्तम्भ दिया रखने के लिये बनवाया गया था । मकबरे के द्वार पर चार मीनारें बहुत सुन्दर हैं । इस मकबरे को देखकर मुगल सम्राटों के हृदय की विशालता का परिचय मिलता है । नूरजहाँ ने एतमाद्-उद्-दौला का मकबरा अपने पिता की स्मृति में बनवाया था । यह इमारत श्वेत संगमरमर पत्थर की बनी हुई है । यह एक आकर्षण उदाहरण है । यह राजपूत शैली से प्रभावित है । इसकी मीनारें छोटी-छोटी हैं । इसके विषय में पर्सी ब्राऊन (Percy Brown) ने लिखा है :—

"Whether regarded as an architectural composition of matchless refinement, as an example of applied art displaying rare craftsmanship, or as an artistic symbol of passionate devotion, the tomb of Itmad-ud-daula expresses in every part of it the high aesthetic ideals that prevailed among the Mughals at the time."

—Percy Brown.

(5) शाहजहाँ-कालीन स्थापत्य—मुगल-कालीन निर्माताओं में शाहजहां का महत्वपूर्ण स्थान है । उसका राज्य काल स्थापत्य-कला की दृष्टि से स्वर्ण-काल कहलाता है । शाहजहां द्वारा निर्मित भवनों में दुर्गों की संख्या अधिक है । उसमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोमलता, शुद्धता तथा सुन्दरता के दर्शन होते हैं। यद्यपि उनमें अकबर की भाँति मौलिकता नहीं है।

शाहजहाँ ने 1654 में आगरे के किले में मोती मस्जिद बनवाई थी। इसके अन्दर महराबों और स्तम्भों में हिन्दू-शैली का प्रयोग हुआ है। यह मस्जिद वस्तु-कला की दृष्टि से विशेष स्थान रखती है। देहली की विशाल जामा मस्जिद भी शाहजहाँ ने बनवाई थी।

शाहजहाँ ने अति गौरवपूर्ण इमारत ताजमहल का निर्माण अपनी प्रेमिका मुमताज की स्मृति में कराया था। उसने मुमताज के सौन्दर्य को ताजमहल के रूप में साकार किया था। सुन्दरता, मनोरमता, अलंकारिता आदि की दृष्टि से यह संसार की उत्कृष्ट कृति है। अनेक विद्वानों ने इसकी रचना-शैली पर स्पेन, इटली, फ्रेन्च आदि प्रभाव व्यक्त किये हैं। परन्तु ताज किसी पाश्चात्य कला का उदाहरण नहीं है। ताज महल के विषय में फर्गुसन ने लिखा है :—

"Taj Mahal at Agra is almost the only tomb that retains its grandeur in anything like its pristine beauty, and there is not perhaps in the whole world a scene where nature and art so successfully combine to produce a perfect work of art as within the precincts of the far-famed masoleum."

—Fergusson.

विभिन्न विद्वानों ने इसे "संगमरमर का स्वप्न" और "प्रकृति सुन्दरी के गाल पर उभरा हुआ अश्रु" के नाम से पुकारा है।

ताज 22 फुट ऊँचे चबूतरे पर बना है जिसकी लम्बाई-चौड़ाई 186 फीट है। इसमें पाँच गुम्बदें हैं। चौकोर चबूतरों के कोनों पर चार मीनारें हैं। हर मीनार की ऊँचाई 137 फीट है।

दिल्ली का लाल किला भी शाहजहाँ ने बनवाया था। इसमें दीवाने खास अत्यन्त कला पूर्ण है। अन्दर की सजावट दर्शनीय है। शाहजहाँ ने 'तख्ते ताऊस' के निर्माण में 1 करोड़ से भी अधिक रुपया व्यय किया था।

(6) औरंगजेब-कालीन स्थापत्य—औरंगजेब को स्थापत्य-कला से जरा भी प्रेम न था। उसने कला को कोई भी प्रोत्साहन नहीं दिया बल्कि हिन्दुओं द्वारा बनवाये गये अनेक सुन्दर मन्दिरों को नष्ट करवा दिया। उसने कुछ मस्जिदें दिल्ली तथा लाहौर में बनवाई थीं। परन्तु वे सभी उसके पूर्वजों की इमारतों से निम्न स्तर की थीं। डा० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार :—

"Aurangzeb was positively against it and ordered the

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

statues at Agra and Delhi to be broken to piecss and the stone elephants at Fatehpur Sikri and Agra to be defaced and damaged. The art therefore disappeared for want of patronage."

—Dr. A. L. Srivastva.

चित्रकला

मुगल-काल में चित्रकला की भी बहुत प्रगति हुई। मुगल-काल की चित्रकला के स्रोत के सम्बन्ध में सत्यकेतु विद्यालंकार ने स्पष्ट किया है—"मुगलों की चित्रकला का उद्‌भव पर्शिया में हुआ था। पर पर्शिया की कला से जो चित्रकला मुगलों द्वारा भारत में प्रविष्ट हुई वह विशुद्ध पर्शियन नहीं थी। जब मंगोल लोगों ने पार्शिया को जीतकर उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया तो वे अपने साथ एक ऐसी चित्रकला को उस देश में ले गये जो बौद्ध, बैक्ट्रियन और मंगोलियन प्रभाव के सम्मिश्रण का परिणाम थी।"

इस प्रकार मुगल-चित्रकला का रूप मिश्रित था। कुछ विद्वानों के अनुसार मुगल-कालीन चित्रकला पर चीनी प्रभाव पड़ा है।

(1) बाबर-कालीन चित्रकला—बाबर चित्रकला का बड़ा प्रेमी था। वह अपने साथ बिहजाद की चित्रकला को लाया था। बिहजाद तैमूरी चित्रकला के कलाकार थे। तैमूरी कला पर चीनी प्रभाव दिखाई देता है। यह कला सादगी लिये हुए है। आगे इस कला में सूफी रहस्य भावना और प्रेम का समन्वय होने लगा। बाबर-कालीन चित्रकला में तैमूरी प्रभाव स्पष्टतः दिखाई देता है। प्रकृति के चित्र इस कला में विशेष रूप से पाये जाते हैं।

(2) हुमायूँ-कालीन चित्रकला—बाबर की भाँति हुमायूं को भी चित्रकला से विशेष प्रेम था। हुमायूं के शासन में चित्रकला की बहुत प्रगति हुई। हुमायूँ जब भारत छोड़कर पर्शिया पहुँचा था तब उस पर वहाँ के चित्रकारों का प्रभाव पड़ा। वह जब भारत लौटा तो अपने साथ सैयद अली तबरीजी तथा ख्वाजा अब्दुल समद नाम के दो चित्रकारों को लाया था। वे चित्रकार बिहजाद कला से प्रभावित थे। इन कलाकारों ने 'दास्ताने अमीर इमदाहे' नामक ग्रन्थ को चित्रित किया था।

(3) अकबर-कालीन चित्रकला—अकबर को अपने पिता के समान चित्रकला से बहुत प्रेम था। उसने प्रसिद्ध फारसी चित्रकारों से शिक्षा प्राप्त की थी। उसके शासन-काल में चित्रकला से विदेशीपन समाप्त होने लगा था और उसका पूर्ण भारतीय रूप सामने आने लगा था। अकबर के दरबार में बहुत अच्छे-अच्छे चित्रकार आने लगे थे। इन चित्रकारों में हिन्दू चित्रकारों की संख्या अधिक थी।

"दास्ताने-अमीर-हमजा तारीखे': "खानदानी-तैमूरिया" और 'बादशाहनामा'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के चित्रों को देखकर मुगल चित्रकला के गौरव का पता चलता है। अकबर ने फतेहपुर सीकरी के महल के दरवाजों पर अनेक सुन्दर चित्र बनवाये थे। अबुल फजल ने अकबर के दरबार के चित्रकारों की प्रशंसा करते हुए लिखा है :—

"अकबर के दरबार में सौ से अधिक निपुण एवं प्रसिद्ध चित्रकार थे। इनमें हिन्दुओं की संख्या अधिक थी क्योंकि उनके चित्र आशातीत अच्छे होते थे। वास्तव में उनके समान संसार में बहुत कम चित्रकार थे।"

अकबर के दरबार में प्रमुख हिन्दू चित्रकारों में दसवन्त, बसावन, जगन्नाथ, लाल, केसू, ताराचन्द आदि प्रसिद्ध थे। अकबर ने चित्रकला की उन्नति के लिए अब्दुल समद की अध्यक्षता में एक विभाग भी खोला।

(4) जहाँगीर-कालीन चित्रकला—जहाँगीर को भी चित्रकला से प्रेम था। वह चित्रकारों का संरक्षक और आश्रयदाता कहा जाता था। वह चित्रों को देखकर चित्रकारों का नाम बता देता था। जहाँगीर ने 'तुजुके जहाँगीर में लिखा है :—

"यदि अनेक कलाकारों द्वारा बनाये गए चित्र मेरे सामने लाये जायँ, तो मैं प्रत्येक कलाकार की चित्रकारी अलग-अलग बता दूँगा। यदि एक ही चित्र अनेक चित्रकारों द्वारा बनाया जाय तो भी मैं उस एक चित्र में भिन्न अंगों के बनाने वालों का नाम बता दूँगा।"

जहाँगीर के दरबार में अनेक चित्रकार थे उस समय हिरात और फारस के चित्रकार अबुल हसन, मुहम्मद नादिर, मुहम्मद मुराद तथा उत्सद मन्सूर प्रसिद्ध थे। हिन्दू चित्रकारों में विशनदास, मनोहर, तुलसी, माधव और गोबर्धन बहुत प्रसिद्ध थे। अगूकीजा उसके काल का प्रसिद्ध चित्रकार था। उसे 'बदरूजमान' की उपाधि प्राप्त थी।

(5) शाहजहाँ कालीन चित्रकला—शाहजहाँ को चित्रकला की अपेक्षा स्थापत्य-कला के अधिक प्रेम था। उसके काल में हाशिम, अनूप चित्र तथा चित्रमणि आदि चित्रकार हुए। इस समय की कला में महलों की छतों को रंगीन रंगों से सजाया जाता था। इनमें बेल बूटे बनाये जाते थे। इनमें बहुमूल्य रंग प्रयोग में लाये जाते थे। कुछ विद्वानों के अनुसार शाहजहाँ के समय के चित्र चित्रकला की दृष्टि से अधिक उत्तम नहीं थे। उस समय के चित्रों में अलंकरण अधिक बढ़ गया था शाहजहाँ ने अपने दरबार में चित्रकारों को विशेष आदर न दिया। अनेक चित्रकार उसके राज्य में बेकार हो गये थे। ये बेरोजगार चित्रकार राजपूताने में चित्र बनाने लगे थे। शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोह को चित्रकला से विशेष प्रेम था और उसी के कारण कुछ चित्रकार दरबार में आश्रय पाते रहे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(6) **औरंगजेब-कालीन चित्रकला** —औरंगजेब एक कट्टर मुसलमान था। उसे चित्रकला से घृणा थी। उसके काल में चित्रकला का विनाश हो गया था। कहा जाता है कि अकबर ने मकबरे के चित्रों पर सफेदी करवा दी थी तथा बाजापुर के महल की चित्रकारी को नष्ट कर दिया था। दिल्ली तथा आगरे के चित्रकार देश के अन्य भागों में भागने लगे थे। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् प्रान्तीय सूबेदार ने चित्रकला का संरक्षण प्रदान किया। राजपूताने में इस काल की विशेष उन्नति हुई।

(7) **राजपूत-शैली**—मुगल काल में यह शैली राजस्थान तथा मध्य प्रदेश में प्रचलित थी। जयपुर में यह शैली पर्याप्त विकसित थी। राजपूत चित्रकला विशुद्ध भारतीय थी। उस पर मुगल कला का कोई प्रभाव न पड़ा। जयपुर के अलावा यह यह शैली उदयपुर, बीकानेर, जोधपुर, किशनगढ़, मालवा में भी विकसित हुई। राजपूत शैली में ग्राम्य जीवन, कृष्ण लीला नायिका भेद, रथयात्रा, पौराणिक कथाओं आदि के चित्र अंकित किये गये हैं। राजपूत चित्रकार कृष्ण की लीलाओं को कुशलतापूर्वक अंकित करते थे। राजपूत-शैली के विषय में श्री विद्यार्थी ने लिखा है,"अन्य भारतीय कलाओं की भाँति राजपूत कला भी अन्तरात्मा की तह तक पहुँचती है। कलाकार जितना अपनी आंखों से देखता उसी को चित्रित करने से संतुष्ट नहीं होता। उसके अन्तःस्तल आन्तरिक जगत में अन्य स्वरूप, दृश्य एवं स्वप्न होते हैं। इन्हीं को वह अपनी लेखनी से चित्रित करने का प्रयास करता है और इसीलिये उसकी चित्रकारिता में एवं मुगल चित्रकारिता में अन्तर है। कारण मुगल चित्रकारिता केवल दृश्य जगत से सम्बन्धित है।"

राजपूत-शैली से मिलते-जुलते चित्र पंजाब की हिमालय की तराई में चित्रित किये गये। इसमें भगवान कृष्ण की लीलायें, बहुत सुन्दरता से अंकित की गई हैं। इस शैली में रामायण तथा महाभारत की कथायें भी चित्रित की गई हैं।

संगीत-कला

मुगल सम्राटों ने संगीत की उन्नति में बहुत योगदान दिया था। औरंगजेब को छोड़कर सभी मुगल सम्राटों को इस कला से बहुत प्रेम था।

(1) **बाबर और हुमायूं-कालीन संगीत-कला**—बाबर संगीत-मर्मज्ञ था। उसने संगीत से सम्बन्धित एक पुस्तक भी लिखी थी। 'बाबरनामा' में उसने हिरात के प्रसिद्ध गायकों का उल्लेख किया है। हुमायूं भी इस कला से प्रेम रखता था। वह सोमवार और बुद्धवार को संगीत सुना करता था। माण्डू-विजय के बाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसने बच्चू नामक संगीतज्ञ को, जो एक कैदी था, बुलवाया था। अन्त में प्रसन्न होकर उसे मुक्त कर दिया था और दरबारी संगीतज्ञों में स्थान दे दिया था। उसके समय में 'अहले मुराद' नामक संस्था में संगीतकारों का जमघट रहता था।

(2) अकबर-कालीन संगीत-कला—अकबर संगीत का बहुत प्रेमी था। वह एक उच्च कोटि का गायक था। उसने दूसरे देशों से भी प्रसिद्ध गायकों को अपने दरबार में बुलाया था। अबुल फजल ने लिखा है कि अकबर के दरबार में गायकों की संख्या बहुत अधिक थी। इन गायकों में हिन्दू, ईरानी, तूरानी यथा काश्मीरी स्त्री-पुरुष सम्मिलित थे। ये संगीतज्ञ सात भागों में बँटे हुये थे। प्रत्येक वर्ग सप्ताह में एक बार सम्राट का मनोरंजन करता था। अकबर के दरबार में 36 प्रसिद्ध गायक थे। इन संगीतकारा में तानसेन और बाजबहादुर उल्लेखनीय हैं। इसके समय के अन्य गायकों में बाबा रामदास, बैजू बावरा और सूरदास प्रसिद्ध थे।

(3) जहाँगीर-कालीन संगीत-कला—जहाँगीर का संगीत से अपार प्रेम था। उसके दरबार में उच्च कोटि के संगीतज्ञ निवास करते थे। उसके दरबार में स्त्री गायिकायें भी मौजूद थीं। उसके दरबार के 6 गायक अत्यन्त प्रसिद्ध थे।

(4) शाहजहाँ-कालीन संगीत-कला—शाहजहाँ भी संगीत-कला का प्रेमी था। उसके दरबार में संगीतज्ञों को आश्रय मिलता था। शाहजहाँ स्वयं संगीत का ज्ञाता था। उसकी आवाज अत्यन्त सरस और आकर्षक थी। जिस समय वह गाता था सुनने वाले आनन्द विभोर हो जाते थे। वह रात्रि के समय गाना सुना करता था। अपने दरबार के जगन्नाथ नामक संगीतकार के गायन से वह इतना प्रसन्न हुआ था कि उसने उसे पुरस्कार के रूप में उसके वजन भर सोना प्रदान किया था। महापात्र लाल खाँ, गुणसमुद्र और रामदास जैसे श्रेष्ठ संगीतकार भी उसके दरबार में विराजमान थे।

(5) औरंगजेब-कालीन संगीत-कला—औरंगजेब को शासन के प्रारम्भिक काल में गायन से प्रेम था किन्तु उम्र बढ़ने के साथ उसकी संगीत से अरुचि हो गई थी। उसने गाना सुनना और गायकों को संरक्षण देना भी बन्द कर दिया। फलस्वरूप संगीतकला का ह्रास हुआ। कहा जाता है कि औरंगजेब के समय संगीतज्ञों ने संगीत की अर्थी भी निकाली थी। उसकी अरुचि के कारण बहुत से संगीतज्ञ दूसरे प्रदेशों को चले गये थे और छोटे-छोटे राजाओं के यहाँ आश्रय प्राप्त करने लगे थे।

सुलेख

सुलेख भी एक ललित-कला समझी जाती थी। मुगल-काल में स्थापत्य-कला, चित्रकला और संगीत-कला के साथ ही इस कला को भी प्रोत्साहन मिला।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर यद्यपि शिक्षित न था फिर भी उसने इस कला को प्रोत्साहन दिया था। उसके दरबार में बहुत से अच्छे कलाकार मौजूद थे। अबुल फजल के अनुसार उसके दरबार में आठ प्रकार की सुलेख प्रचलित थी। अकबर "नसतालीख" नामक सुलेख को बहुत पसन्द करता था। उसके दरबार में मुहम्मद हुसेन नामक बहुत अच्छा सुलेखक था जिसे "जरी कलम" की उपाधि मिली थी।

जहाँगीर ने भी सुलेख लिखने वालों को अपने यहाँ स्थान दिया था। शाहजहाँ को भी इस कला से प्रेम था। उसके दरबार में मीर हासिम नामक प्रसिद्ध सुलेखक विद्यमान था। औरङ्गजेब एक अच्छा सुलेखक था। औरंगजेब के पुस्तकालय का अध्यक्ष जवाहर रकम भी एक अच्छा सुलेखक था। शाही मुहरें खोदने, भवन और समाधियों पर कुरान की आयतें लिखने और चित्रों को आकर्षक बनाने के लिए सुलेखन कला को ग्रहण किया जाता था। "बाबरनामा" और "बादशाहनामा" आदि में इस कला के विकास का पूर्ण परिचय मिलता है।

इस प्रकार मुगल-काल में कला के क्षेत्र में महान् उन्नति हुई। मुगल सम्राटों ने कला की जो महान् कृतियाँ इस देश को समर्पित कीं। उनके लिए यह देश उनका चिरऋणी रहेगा। एक विद्वान् ने अत्यन्त भावुक होकर लिखा है, "जब कभी "कला" का नामक हमारे सम्मुख आता है तो मुगलिया गौरव बरबस हमारी आँखों के सम्मुख कौंध जाता है और मुगल कलाकृतियाँ नाच उठती हैं।"

प्रश्न 3—भारतीय संस्कृति को मुगल युग की क्या देन है ?

भारतीय संस्कृति के उत्थान की दृष्टि से मुगल युग अपना विशेष स्थान रखता है। भारतीय संस्कृति को इस युग की महान देन है। यहाँ हम विभिन्न क्षेत्रों में इस युग के देन की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं।

(1) भारत में राजनीतिक एकता की स्थापना में मुगल शासन से बहुत अधिक सहायता मिली। मुगलों ने भारत के एक बहुत बड़े भू-भाग पर अपना शासन स्थापित करके राजनीतिक एकता की स्थापना की और राष्ट्रीय एकता का मैदान तैयार किया।

(2) राजनीतिक एकता की स्थापना के साथ ही मुगलों के शासन में देश में सांस्कृतिक एकता का भी विकास हुआ। मुगल शासन में समस्त कार्य फारसी भाषा में होता था और सरकार से सम्बन्ध रखने वाले हिन्दू तथा मुसलमान सब इस भाषा को जानते थे। इस भाषा ने सांस्कृतिक एकता की स्थापना में योगदान दिया। मुगलों ने समस्त प्रान्तों में एक सी शासन-व्यवस्था को लागू किया जिससे सांस्कृतिक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एकता को बढ़ावा मिला। विभिन्न प्रान्तीय कर्मचारियों की एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में बदलीं की जाती थी। इससे भी विभिन्न प्रान्तों के मध्य निकट सम्बन्ध स्थापित होता था। मुगलों के इन प्रयासों से देश में एकता की अनुभूति हुई।

(3) मुगल युग के धार्मिक आन्दलनों ने भी भारतीय संस्कृति की उन्नति में बहुत अधिक योगदान दिया। संत महात्माओं और फकीरों ने एकता की अनुभूति को बढ़ाया है। साथ ही धर्म के क्षेत्र में भी अनेक प्रयास किये गये और इन प्रयासों के फलस्वरूप भारत में विभिन्न धर्मों का तेजी से उत्थान हुआ।

(4) मुगल बादशाहों ने पर्शिया और अन्य मुसलमान देशों से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित किया। इन देशों के बहुत से विद्वान इस युग में भारत आये। भारत से सम्पर्क के फलस्वरूप मुसलमान देशों को भारतीय साहित्य, ज्योतिष, गणित और चिकित्सा आदि से परिचय प्राप्त हुआ और यहाँ की संस्कृति का प्रसार विभिन्न मुसलमान देशों में हुआ।

(5) मुगलों के शासन में हिन्दू और इस्लाम धर्म एक दूसरे के निकट आ गये। सल्तनत में हिन्दू और मुसलमान धर्म एक दूसरे के विरोधी से प्रतीत होते थे और उन दोनों के अनुयायियों के मध्य एक गहरी खाईं थी। मुगल काल में यह खाईं पटने लगी और परिणाम यह हुआ कि इस्लाम और हिन्दू दोनों ही धर्मों की उन्नति हुई।

(6) भारत की वेष भूषा, रहन-सहन और खान पान पर भी मुगलों का प्रभाव पड़ा। भारत की पोशाक में पायजामा, शेरवानी आदि का प्रवेश हुआ और हिन्दू भी निस्संकोच इसे पहनने लगे। मुगल बादशाहों के समस्त दरबारियों की पोशाक एक सी थी। शिवाजी तक की पोशाक भी मुस्लिम और उमरावों की पोशाक के सदृश थी। भारतीयों के आमोद-प्रमोद के तरीकों में परिवर्तन हुआ। बाज द्वारा पक्षियों का शिकार करना, बटेरें लड़ाना और ताश खेलना आदि अनेक बातें मुगलों के साथ ही भारत आईं। हिकमत और यूनानी चिकित्सा पद्धति भी मुसलमानों के साथ भारत आईं और हिन्दू भी इसे सीखने में प्रवृत्त हुये। बालूशाही, कलाकन्द, गुलाबजामुन, बर्फी आदि अनेक मिठाइयों से भारतीय मुसलमान युग से पूर्व अपरिचित थे। इन मिठाइयों के नाम विदेशी हैं। भारत के खान-पान में मिठाइयों का समावेश मुसलमानों के फलस्वरूप ही हुआ।

(7) मुगलों की विभिन्न भारतीय भाषाओं और उनकी लिपियों की भी महान देन है। हिन्दी, बंगला, मराठी आदि अनेक भारतीय भाषाओं में बहुत से शब्द इसी युग में प्रविष्ट हुये और शनैः-शनैः वे भारतीय भाषाओं के अंग बन गये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर्शियन लिपि के प्रयोग के फलस्वरूप भारत म एक नई लिपि का प्रचलन हुआ जो शनैः-शनैः उत्तरी भारत की प्रधान लिपि बन गई। हिन्दी लिखने के लिये भी इस लिपि का प्रयोग आरम्भ हुआ और इसके फलस्वरूप हिन्दी की एक शैली का विकास हुआ जिसे हम उर्दू के नाम से पुकारते हैं।

(8) साहित्य और कला की प्रगति में मुगलों ने विशेष योगदान दिया और इन क्षेत्रों में मुगलों ने जो कार्य किया उसकी चर्चा हम इस अध्याय के प्रश्न (1) और (2) में विस्तार से कर चुके हैं, अतएव उसका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक नहीं है।

उपसंहार—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि मुगल-काल में इस्लाम और हिन्दू धर्म के सम्पर्क के कारण एक ऐसी संस्कृति का जन्म हुआ जो विशुद्ध रूप से न तो हिन्दू थी और न विशुद्ध रूप से मुसलमान। वास्तव में हिन्दू और मुसलमान संस्कृतियों का मिलन मुगल युग की महान देन है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | 9

1206 से 1707 तक का भारतीय जन जीवन
(THE LIFE AND THE CONDITION OF PEOPLE IN INDIA FROM 1206 A. D. TO 1707 A. D.)

भूमिका—

1206 से 1707 ई० के मध्य भारत में मुसलमानों का शासन रहा। इसलिये इस अध्याय को हम मुसलमान काल में भारतीय जन-जीवन के नाम से भी पुकार सकते हैं। मुसलमान काल के इतिहास को मोटे तौर पर दो रूपों में बाँटा गया है—(1) सल्तनत-कालीन इतिहास और (2) मुगलकालीन इतिहास। 1206 ई० में मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का सुल्तान बना और इस अवधि से 1526 ई० तक के युग को दिल्ली सल्तनत के युग के नाम से पुकारा जाता है और इसके बाद के मुसलमान इतिहास को मुगल युग के नाम से पुकारा जाता है। इस अध्याय में सल्तनत काल और मुगल काल के भारतीय जन-जीवन पर संक्षेप में प्रकाश डाला जायगा।

प्रश्न (1) सल्तनत युग के भारतीय जन-जीवन पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

सल्तनत युग के भारतीय सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन के विषय में आप क्या जानते हैं?

दिल्ली सल्तनत का युग भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना का प्रारम्भिक युग था। यह युग राजनीतिक दृष्टि से जितना अधिक महत्वपूर्ण है उतना ही अधिक सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इस युग के भारतीय जन-जीवन की चर्चा यहां संक्षेप में की जा सकती है।

सामाजिक जीवन

(1) हिन्दुओं तथा मुसलमानों में पृथकता—सल्तनत-काल में हिन्दू

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और मुसलमानों के बीच गहरी खाईं बनी हुई थी। हर्षवर्द्धन की मृत्यु के पश्चात् का हिन्दू-साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। राजपूत काल में मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण किया और यहाँ अपना साम्राज्य स्थापित किया। इसके पूर्व भारत में अनेक जातियां आई थीं और सभी यहाँ के समाज में घुल-मिल गई थी। परन्तु मुसलमानों के साथ ऐसा न हुआ। मुसलमान विजेता एक ओर अपने को हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ समझते थे। दूसरी ओर हिन्दू मुसलमानों को म्लेच्छ कहते थे। उन्हें अपनी सभ्यता और संस्कृति पर गर्व था और इसलिये मुसलमानों को सदैव नीची निगाह से देखते थे। इस कारण सल्तनत-काल में हिन्दू और मुसलमानों में वैमनस्य बना रहा। वे सदैव एक दूसरे से अलग रहने का प्रयास करते थे।

(2) मुस्लिम समाज—मुस्लिम समाज दो वर्गों में विभाजित था। एक वर्ग योद्धाओं का और दूसरा वर्ग मुल्लाओं और उलेमाओं का था। योद्धा-वर्ग खान, मलिक, अमीर, सिपहसालार आदि अन्य उपवर्गों में विभाजित था। उलेमाओं का समाज में विशेष मान था। सुल्तान पर भी उनका असर रहता था। अलाउद्दीन ने उलेमाओं को शासन के लिये बहुत घातक समझा इसलिये उन्हें सदैव राजनीति से अलग रखा। मोहम्मद तुगलक ने भी उनके प्रभाव पर नियंत्रण लगाया परन्तु फीरोज उलेमाओं के हाथ की कठपुतली था।

मुस्लिम समाज में मध्यम वर्ग नहीं था। उलेमा, अफगान और अन्य योग्य व्यक्ति उच्च वर्ग के थे। उन्हें विशेष अधिकार और सुविधा में प्राप्त थीं।

सल्तनत के प्रारम्भिक काल में मुसलमान अत्यधिक परिश्रमी, उत्साही, धर्मशील और चरित्रवान थे परन्तु धीरे-धीरे उनसे ये गुण दूर होते गये। उच्च वर्ग के लोग मद्यपान और व्यभिचार में पड़ गये और उत्तरोत्तर नैतिक पतन होता गया। अमीरों और सुल्तानों के हरम में अनेक स्त्रियां रहने लगी। तलाक की प्रथा और वैवाहिक सम्बन्ध विच्छेद बहुत अधिक मात्रा में होने लगी।

मुसलमानों में दास-प्रथा भी प्रचलित थी। कुछ दास अत्यन्त प्रतिभाशाली और योग्य होते थे परन्तु कालान्तर में यह प्रथा मुसलमानों के लिए घातक सिद्ध हुई।

(3) हिन्दू समाज— मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं की दशा शोचनीय थी। यद्यपि आरम्भ में हिन्दू आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त अच्छे थे परन्तु मुसलमानों ने उन पर भांति-भांति के अत्याचार किये।

राजनीतिक तथा सामाजिक दोनों क्षेत्रों में हिन्दुओं को अपार हानि सहन करनी पड़ी थी। उन्हे उच्च सरकारी पद नहीं दिये गये थे। उन्हें समय-समय पर अपमानित होना पड़ता था। जो हिन्दू इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं करते थे उन पर जजिया नामक कर लगता था। हिन्दू लोग बलात मुसलमान बनाये जाते थे। इस्लाम

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का विरोध करने पर उन्हें दण्ड दिया जाता था। बर्नी के अनुसार कोई भी हिन्दू अपना सिर उठाकर नहीं चल सकता था। चौधरी लोग घोड़े पर चढ़कर या हथियार लेकर बाहर नहीं निकल सकते थे। हिन्दुओं की शोचनीय दशा होने के कारण उनकी स्त्रियां मुसलमानों के घरों में विभिन्न कार्य करती थी। पर्दे की प्रथा भी हिन्दू समाज में बढ़ती जा रही थी। जाति-प्रथा तथा बाल-हत्या आदि के दोष भी बढ़ते जा रहे थे। इस काल में हिन्दुओं की दशा ब्रिटिश-काल से भी बुरी थी। डा० आशीर्वादीलाल ने लिखा है—

"The British rule, according to them, was bad because it exploited the people economically, the Turkish rule was worse as it made unbecoming in roads on the people's religion and honour."

(4) स्त्रियों की दशा—स्त्री का स्थान पुरुष की अपेक्षा निम्न समझा जाता था। पुत्रवती स्त्री को कुटुम्ब में आदर की दृष्टि से देखा जाता था। यद्यपि वह घर के बन्धन में रखी जाती थी। तुर्क लोग स्त्रियों को आजादी देने के पक्ष में थे। पारसी स्त्रियाँ अधिक स्वतन्त्र थीं। मुस्लिम स्त्रियों को आजादी कम प्राप्त थी। रजिया एक रण चतुर थी जिसकी शिक्षा की ओर बहुत ध्यान दिया गया था। मुसलमान स्त्रियों की शिक्षा पर भी बल देते थें।

(क) पर्दा प्रथा—मुस्लिम समाज में पर्दा का रिवाज अधिक था। हिन्दुओं को स्त्रियों के अपहरण का डर बना रहता था। ग्रामीण स्त्रियों में परदे का रिवाज कम था। पर्दा व्यक्ति के सम्मान का प्रतीक माना जाता था।

(ख) बाल-विवाह—तुर्की सरदार किसी सुन्दर स्त्री को देखते ही उठा ले जाते थे। अतः हिन्दुओं में बाल विवाह की प्रथा जन्म ले चुकी थी। हिन्दू लोग ईश्वर पर विश्वास करते थे। उनका नैतिक दृष्टिकोण बड़ा उदार था। बहु-विवाह मुसलमानों में अधिक होते थे।

(ग) सती-प्रथा—हिन्दुओं में सती-प्रथा का प्रचलन था। हिन्दुओं के उच्च वर्ग में उसका विशेष स्थान था। इब्नबतूता ने सती-प्रथा का वर्णन निम्न शब्दों में किया है, "पति की मृत्यु के उपरान्त पत्नी को अपने आप जला डालना बड़ा ही प्रशंसनीय कार्य समझा जाता था किन्तु यह अनिवार्य नहीं था। जब कोई विधवा अपने आप को जला डालती है तो उसके घर वालों का सम्मान बढ़ जाता है और वह पति-भक्ति के लिए प्रसिद्ध हो जाती है। जो विधवा अपने आपको नहीं जलाती है उसे पीले वस्त्र धारण करने पड़ते हैं और वह बड़ा दुःखी जीवन व्यतीत करती हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पति के अभाव के कारण लोग उससे घृणा करते हैं किन्तु वह जलने के लिये विवश नहीं की जाती है।

(घ) जौहर—जौहर भारतीय वीरत्व की भावना का अमूल्य प्रतीक है। राजपूतों में जौहर प्रथा प्रचलित थी। राजपूत जिस समय रण भूमि में न्यौछावर हो जाते थे उस समय उनकी वीरांगनायें हंसते-हँसते अपने आपको अग्नि में समर्पित कर देती थीं। कम्पिल के राजा की रानियों ने इसी जौहर का उदाहरण प्रस्तुत किया था।

(5) वस्त्र—सल्तनत-काल में विभिन्न वर्गों के लोग अलग-अलग तरह के पोशाक पहनते थे। अमीर लोग सिर पर 'कुलाह' पहनते थे। वे कमीज और लम्बा कोट भी धारण करते थे। राजपूत कानों में बालियाँ पहनते थे। ब्राह्मण रेशमी किनारे की धोती पहनते थे और तिलक लगाते थे। वे यज्ञोपवीत भी धारण करते थे।

स्त्रियाँ लहँगा, दुपट्टा पहनती थीं। वे चोली पहनती थीं और पुरुष चादर का भी प्रयोग करते थे।

(6) शृङ्गार—सल्तनत-काल में स्त्री और पुरुष दोनों ही शृंगार प्रेमी थे। स्त्रियाँ नेत्रों में काजल, मांग में सिन्दूर तथा हाथों में मेंहदी लगाती थीं। शीश नाक, कान, भुजा, अंगुली, कटि आदि में तरह-तरह के आभूषण धारण किये जाते थे। चन्दन, हार और तेल आदि का भी प्रयोग होता था।

आर्थिक दशा

तुर्कों के आक्रमण से पूर्व भारत एक समृद्धिशाली देश था। विदेशियों ने देश की अतुल सम्पत्ति देखकर आक्रमण किये थे। भारत में शासन स्थापित करने से पूर्व मुसलमानों ने देश की सम्पत्ति को खूब लूटा था। महमूद गजनवी ने राज-कोष तथा मन्दिरों को लूटा था। उसके लगातार आक्रमणों का देश की अर्थ-व्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा था। देश के व्यापार नष्ट हो गये थे। महमूद गजनवी का एकमात्र उद्देश्य धन लूटना था। जब मुसलमान देश पर शासन करने लगे, तब भी राज्य विस्तार की ओर ही उनका ध्यान गया। उन्होंने आर्थिक सुधारों की ओर विशेष ध्यान न दिया था। बलबन ने सर्वप्रथम आन्तरिक सुरक्षा की ओर ध्यान दिया था। उसे अपने कार्य में बहुत सफलता मिली। बलबन के बाद अलाउद्दीन खिलजी ने आर्थिक सुव्यवस्था की ओर ध्यान दिया। सुधारों के परिणाम-स्वरूप वस्तुओं के दाम गिरे तथा लोगों का जीवन सरल बन गया। उस समय हिन्दुओं पर अनेक टैक्स

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगाये गये जिससे उनका जीवन दूभर हो गया था। अलाउद्दीन के बाद आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। मुहम्मद-बिन-तुगलक ने इस ओर ध्यान दिया, किन्तु उसकी आयोजनायें असफल सिद्ध हुईं। अकाल के कारण आर्थिक दशा और भी खराब हो गयी। फीरोज तुगलक ने सिंचाई की समुचित व्यवस्था की थी जिससे कृषि की पर्याप्त उन्नति हुई। तैमूर के आक्रमण के बाद कृषि तथा व्यापार को बड़ा धक्का लगा। सारांश यह है कि राजनीतिक अस्थिरता तथा परिवर्तनों से दिल्ली के सुल्तान किसी निश्चित आर्थिक नीति का पालन न कर सके।

कृषि—सल्तनत-काल में कृषि का उद्योग प्रधान था। अन्न का उत्पादन यथेष्ट होता था। वस्तुयें सस्ती बिकती थीं। अलाउद्दीन के शासन में धान पाँच जीतल प्रतिमन बिकता था। यह गेहूँ साढ़े सात जीतल प्रतिमन था। जो 4 जीतल प्रतिमन बिकता था। 1388 ई० तक देश की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी। 14 वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में आर्थिक कठिनाई हो गई थी।

किसान दो फसलें उगाते थे। दाल, गेहूँ, ज्वार, जौ, मटर, गन्ना, चावल और तिलहन मुख्य उपज थी। कपास की खेती अधिक होती थी। मार्कोपोलो के कथनानुसार इस समय कपास के 6 कदम ऊँचे पौधे होते थे। फलों के बाग लगाये गये थे। अंगूर, सेव, आम, नारंगी, छुआरा, अंजीर की बहुतायत थी। सुल्तानों को बाग लगाने का बड़ा शौक था। फीरोज तुगलक ने दिल्ली के आस-पास 1200 बाग लगाये थे।

विदेशों से व्यापार—सल्तनत-काल में विदेशों से व्यापार किया जाता था। मार्कोपोलो गुजरात के बारे में लिखता है, 'पीपर, अदरक तथा नील आदि की उपज बड़े मात्रा में की जाती थी। स्थानीय कलाकारों द्वारा लाल नीले चमड़े की चटाइयाँ बुनी जाती थीं और सोने चाँदी के तारों से जानवरों और पक्षियों की तस्वीरें बनवाई जाती थीं।

सिल्क और रुई के उद्योग अत्यन्त प्रचलित थे और इनका सामान विदेशों में भेजा जाता था।

मुस्लिम आक्रमण से आन्तरिक व्यापार छिन्न-भिन्न हो गया था। शान्ति स्थापना के साथ व्यापार की उन्नति होती गई। बलबन के साहसिक कार्यों से व्यापार की अपार उन्नति हुई।

विदेशों से व्यापार स्थल तथा जल दोनों मार्गों से होता था। पूर्वी द्वीप समूह, चीन, लंका तथा यूरोप आदि देशों से वस्तुओं का निर्यात तथा आयात होता था। सोना, मखमल, चाँदी तथा शराब का आयात किया जाता था। दासों का आयात

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी प्रमुख था। विदेशों में भेजी जाने वाली वस्तुओं में अफीम, वस्त्र, मसाले व शक्कर प्रमुख थी। वस्तुओं का निर्यात, आयात की तुलना में अधिक होता था।

अफीफ के कथनानुसार सर्वसाधारण के घर अनाज, घोड़े तथा अन्य आराम की वस्तुओं से भरे रहते थे। सोने चाँदी का देश में अभाव न था। खाने-पीने की चीजों के दाम बहुत कम थे। परन्तु फिर भी देश का विशाल समूह दरिद्रता का जीवन व्यतीत करता था।

रहन-सहन—सुल्तान लोग साज- सज्जा से रहते थे। फीरोज तुगलक के शासन में एक जोड़ी जूता 70,000 टंका का मिलता था। शादी के झंडों पर 80,000 टंका वार्षिक व्यय किया जाता था। कालीनों पर 2,00,000 टंका वार्षिक व्यय किया जाता था। सुल्तान जब घूमने जाते थे तो लाखों रूपया व्यय करते थे। अफसरों को वेतन उनके व्यक्तित्व के अनुसार दिया जाता था। मुहम्मद तुगलक के नायक को ईराक का एक बड़ा प्रान्त वेतन के रूप में प्राप्त हुआ था। अलाउद्दीन के राजत्व काल में एक सैनिक को 234 टंका वार्षिक वेतन दिया जाता था। एक गरीब तथा एक अमीर व्यक्ति के रहन-सहन में बड़ा अन्तर था।

धार्मिक जीवन

(1) भारत में इस्लाम का प्रचार—भारत में मुस्लिम सत्ता इस्लाम के सिद्धान्तों के आधार पर स्थापित हुई थी। इस्लाम धर्म की सरलता तथा स्पष्टता से उसका व्यापक प्रभाव पड़ा। मुसलमानों ने भारत में राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर धर्म प्रचार प्रारम्भ किया। राजनीतिक स्वतंत्रता खो जाने के साथ हिन्दू निर्बल होते गये। मुसलमानों ने अनेक हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन के लिये बाध्य किया था और बहुत से हिन्दुओं ने आर्थिक कठिनाई अथवा भयभीत होकर इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया था। हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया जाता था। जो मुसलमान बन जाते थे वे कर से मुक्त कर दिये जाते थे। हिन्दुओं को उच्च पद भी नहीं दिये जाते थे। इस्लाम धर्म हिन्दू जाति प्रथा के कारण और अधिक पनपा।

(2) हिन्दुओं तथा मुसलमानों की समीपता—प्रारम्भ में हिन्दू तथा मुसलमान एक दूसरे से अलग रहे किन्तु एक स्थान पर रहने के कारण उनमें सहानुभूति तथा सद्भावना का विकास हुआ। वे एक दूसरे को समझने लगे जिससे आपस में घृणा कम होने लगी थी। न हिन्दू मुसलमानों से अलग रह सकते थे और न मुसलमान हिन्दुओं से। अनेक मुसलमानों ने हिन्दू स्त्रियों से विवाह सम्बन्ध कर लिये थे। इन हिन्दू स्त्रियों के रीति-रिवाजों का प्रभाव मुस्लिम जीवन पर भी पड़ा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुल्तान भी हिन्दुओं की विशाल जनसंख्या की उपेक्षा नहीं कर सकते थे। मुसलमान शासकों ने हिन्दू राजगीरों से मन्दिर आदि बनवाये थे। उनकी कला पर हिन्दू कला का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। हिन्दू मुस्लिम कला के सम्मिश्रण से एक नई कला का जन्म हुआ था।

(3) सूफी मत और सूफी संत—भारत में इस्लाम धर्म से प्रवेश के सूफी मत्त का भी प्रचलन हुआ। ये लोग रहस्यवादी थे जिनका जीवन सादा और सरल था। ईश्वर की प्राप्ति इनका लक्ष्य था। ईश्वर प्रेम इनका संदेश था। सूफी सम्प्रदाय का भारत में वहुत व्यापक प्रसार हुआ। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों सूफी सम्प्रदाय से प्रभावित हुये। डा० ताराचन्द का कथन है :—

"What wonder then that the conception of Nirvan, the discipline of the Eightfold path, the practice of yoga and the acquaintance of miraculous powers were appropriated in Islam under the names of 'Fana', 'Tariqa' or 'Saluk', 'Maraqabah' and "Karamat".

सूफी सन्तों में मुईनुद्दीन चिश्ती का नाम प्रमुख है। इनका जन्म 1142 ई० के मध्य-पश्चिम में हुआ था। आप शेख अब्दुल कादिर जिलानी के शिष्य थे जिन्होंने 'चिश्ती' सम्प्रदाय चलाया था। ये अपने मत के प्रचार के लिये भारत आये। 1166 ई० में अजमेर में स्थायी रूप से रहने लगे। बाबा फरीदुद्दीन अन्य संत थे जिनका जन्म काबुल के एक राजवंश में हुआ था। धन वैभव त्याग कर ये भी सन्त हो गये। ये मुल्तान से दिल्ली जाने वाली सड़क पर कुटी बनाकर रहने लगे थे। इनके उपदेशों का प्रभाव हिन्दू तथा मुसलमान दोनों पर पड़ा था। 1265 ई० में इनका परलोकवास हुआ। गेसू दराज अन्य सूफी महात्मा थे। आप लम्बे बालों के कारण प्रसिद्ध थे। आपका जन्म दिल्ली में हुआ था। आप बहमनी राज्य में आकर निवास करने लगे थे। गेसू दराज ने लगभग 175 पुस्तकों की रचना की थी। सन् 1422 ई० में आपका स्वर्गवास हो गया।

जीली आदर्शवादी सूफी प्रचारक थे। जीली के सूफी मत पर वेदान्त का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। ईश्वर के दो रूप हैं एक जात तथा दूसरा सिफत। जात को निर्गुण तथा सिफत को सगुण कहा गया है। जात और सिफत वास्तव में दो भिन्न वस्तुयें नहीं है किन्तु अज्ञान के कारण व्यक्ति इन दोनों रूपों में अन्तर समझता है। सत्य को हक कहा गया है। ईश्वर का रूप प्रेममय कहा गया है। अतः सूफी आशिक और माशूक कहा गया है। सूफी अपने इश्क में तड़पता है। यही फना कहलाता है। प्रत्येक सूफी ईश्वर में अपनी आत्मा को विलीन करना चाहता है। जो सूफी 'वसाल' मार्ग पर चलता हुआ 'फना' की ओर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बढ़ता है। यदि साधना के मार्ग में अच्छा गुरु नहीं मिलता है तो शैतान 'इमाम' हो जाता है अतः गुरु अथवा इनाम वह आधार है जिसके चारो ओर सूफी धर्म घूमता है। जलालुद्दीन रूमी ने नाच तथा गाकर ईश्वर की साधना में लिप्त होने का ढंग स्पष्ट किया था। डा० ताराचन्द का कथन है :—

"Sufism was a religion of intense devotion, love was its passion, poetry song and dance its worship; and passing away in God its ideal."

निर्गुण धर्म दार्शनिक तथा प्रचारक सूफी धर्म का प्रचार करते थे। उपदेशक गुरु की महत्ता पर बहुत बल देते थे। सूफी फकीर अल्लाह के रहस्यों को ढूंढ़ा करते थे। उन्हें संसार की छोटी चीज में खुदा का नूर दिखाई देता था। सूफी धर्म हिन्दू वेदान्त से बहुत मिलता जुलता है।

(4) भक्ति आन्दोलन

इसकी चर्चा हमने अध्याय…6 के प्रश्न (1) के अन्तर्गत की है।

साहित्यिक एवं कलात्मक उन्नति

सल्तनत काल में विभिन्न भाषाओं के साहित्य की उन्नति हुई। सुल्तान ने फारसी और अरबी साहित्यकारों को आश्रय प्रदान किया। इन साहित्यकारों में अलबरूनी, हैं अमीर खुसरो, मीर हसन देहलवी, अब्दुल्ला-बीन-माहिम, बड़े चाचा आदि प्रमुख हैं संस्कृत साहित्यकारों में कल्हण, जयदेव, सायण आदि प्रसिद्ध हैं। हिन्दी के विद्वानों में चन्दवरदाई, विद्यापति, कुतुबन, मंझन आदि के नाम प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त इस युग में मराठी, तेलगू और अन्य भाषाओं के साहित्य की भी उन्नति हुई।

कला के क्षेत्र में मुस्लिम आक्रमण के पूर्व भारत अत्यधिक उन्नति कर चुका था। सल्तनत काल के सुल्तानों में में दास वंश का सुल्तान इल्तुतमिश अत्यन्त कला-प्रेमी था। कुतुबमीनार और दिल्ली में एक मस्जिद बनवाने का कार्य प्रारम्भ किया था। उसकी इमारतों में कुवुतुन इस्लाम, अढ़ाई दिन का झोपड़ा, अलाई दरवाजा आदि प्रमुख हैं। खिलजी वंश के शासकों में अलाउद्दीन खिलजी, स्थापत्य कला का महान प्रेमी था। उसने सीरी का किला, हजार सेतून, हौज खास आदि बनवाई थी। फीरोज तुगलक भी स्थापत्य कला के प्रेमी थे। उसने फीरोजाबाद नगर बनवाया और फतेहाबाद हिसार और जौनपुर आदि नगर बसाने का श्रेय इसी को प्राप्त है।

सिकन्दर लोदी ने बड़े खां और छोटे खाँ के मकबरे बनवाये। विभिन्न प्रान्तों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के राजाओं ने भी कलात्मक प्रगति में योगदान दिया। जौनपुर, बंगाल, मारुडू आदि के शासकों ने कला की प्रगति में योगदान दिया।

दक्षिण के बहमनी राज्य के सुल्तान और विजय नगर साम्राज्य के हिन्दू राजाओं की महान कलात्मक देन हैं। अहमदनगर और बीदर नगर के बसाने का श्रेय बहमनी राज्य के सुल्तानों को दुर्ग बनवाने का किला उन्होंने बनवाया। गुलबर्गा बीदर की मस्जिदें भी प्रसिद्ध हैं। विजयनगर राज्य के शासकों में कृष्णदेव राय महान कला प्रेमी था। उसके द्वारा बनवाया गया बिट्ठल मन्दिर विशेष प्रसिद्ध है। दूसरी महत्वपूर्ण इमारतें 'कुम्भलगढ़ का किला' और जयपुर में स्थिति राना 'कुम्भा का जय-स्तम्भ' है।

प्रश्न (2) मुगलकालीन भारतीय जन-जीवन पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

मुगलकालीन सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन के विषय में आप क्या जानते हैं?

1526 ई० में पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी को पराजित करके बाबर ने भारत में मुगल शासन की नींव डाली। मुगलों का शासन भारत में इस्लामी संस्कृति के इतिहास का अत्यन्त महत्वपूर्ण युग है। साथ ही इस युग का महत्व इस दृष्टि से भी है कि इस युग में भारतीय और इस्लामी संस्कृति का सम्मिश्रण भी हुआ तथा भारतीय जन-जीवन पर स्पष्ट रूप से मुस्लिम प्रभाव पड़ा। मुसलमानों ने भी हिन्दुओं की अनेक रीतियों को अपनाया। दो संस्कृतियों के सम्मिलन के इस युग के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन की चर्चा यहाँ की जा रही है।

सामाजिक जीवन

(1) समाज का विभाजन—अध्ययन की सुविधा के लिये मुगल-कालीन समाज को तीन कोटियों में विभाजित किया जा सकता है :—

(क) हिन्दू समाज—हिन्दू समाज की संख्या अन्य जातियों से अधिक थी। हिन्दू समाज अनेक जातियों में विभाजित था। राजपूतों, ब्राह्मणों, कायस्थों और वैश्यों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। ब्राह्मण अध्यापन और पुरोहिती का कार्य करते थे। राजपूत सेना में भरती होते थे। राजनीतिक सत्ता राजपूतों को प्राप्त थी। राजपूत युद्ध प्रिय थे। वे सनों में भी उच्च पदों पर नियुक्त थे। वैश्य उद्योगों में लगे हुए थे।

जाति-बन्धन और भी कठोर बन गये थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्यों में परस्पर विवाह वर्जित थे। कायस्थ लेखन-कार्य करते थे। शूद्र पूर्व की भांति पिछड़े

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुये थे। बंगाल के आस-पास अधिकांश शूद्र मुसलमान बना लिये गये थे। गुजरात के नागर ब्राह्मण फारसी ज्ञान के कारण उच्च पद पर पहुँच गये थे। अनेक उप-जातियाँ भी सामने आ गई थीं।

(ख) मुस्लिम समाज—मुसलमानों का एक भाग शासक वर्ग के साथ था, जो व्यापार आदि के उद्देश्य से भारत आये थे। इनकी संख्या कम थी। दूसरे वे मुसलमान थे जो हिन्दुओं से परिवर्तित हो गये थे। धर्म परिवर्तित मुसलमानों की संख्या अधिक थी। मुगल शासक उच्च पदों पर केवल विदेशी मुसलमानों को नियुक्त करते और वे ही दरबार में अधिक सम्मान प्राप्त करते थे। विदेशी मुसलमान समुद्र तट पर भी बस गये थे, जहाँ से वे व्यापार करते थे। बीजापुर, गोलकुण्डा आदि नगरों के दरबारों में मुसलमानों को उच्च पद प्राप्त थे।

मुस्लिम समाज भी वर्गों में विभाजित था। मुसलमानों के चार वर्ग थे—(1) सुन्नी, (2) शिया, (3) बौहरे, (4) खांजे। सुन्नी मुसलमान कट्टर होते थे। मुगल शासक सुन्नी थे और धार्मिक पक्षपात करते थे। ये सुन्नी हिन्दू तथा शिया लोगों से घृणा करते थे। सुन्नी लोगों की संख्या अधिक थी मुसलमानों के विभिन्न वर्गों में संघर्ष भी हो जाया करता था।

(ग) विदेशी जातियाँ—अनेक विदेशी जातियां जैसे चीनी, अंग्रेज, पुर्तगाली, पारसी आदि भारत में आकर रहने लगी थीं। पारसी व्यापार करते थे। पुर्तगाली लोग १५७६ ई० में पूर्वी बंगाल आये और बस्तियों में बस गये। मुगल सम्राट इनके किसी कार्य में बाधा नहीं डालते थे।

अधिकतर सम्राट हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के साथ सद्व्यवहार दिखलाते थे। इस कारण इन दोनों के बीच वैमनस्य और ईर्ष्या की भावना कम हो गई थी। ये लोग एक दूसरे के उत्सवों में भाग लेते थे। राजपूत और मुगलों में विवाह सम्बन्ध भी स्थापित हुये थे। औरंगजेब की असहिष्णु नीति के कारण इन धर्मों के बीच मतभेद अवश्य उत्पन्न हो गया था, फिर भी वे पूर्ण रूपेण एक दूसरे से अलग नहीं हो सके। मुसलमानों ने हिन्दुओं के धार्मिक तथा साहित्यिक गुणों को भी ग्रहण कर लिया था। उन्होंने हिन्दुओं की पुस्तकों का फारसी भाषा में अनुवाद कराया था।

(2) वर्ग-भेद—समाज में तीनों ही वर्ग विद्यमान थे।

(क) उच्चवर्ग—उच्च वर्ग में सम्राट और राज्य के उच्चकोटि के मनसबदार आते थे। इन लोगों का जीवन-स्तर बहुत ऊँचा था और इन्हें राज्य के द्वारा विशेष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिकार प्राप्त थे। इन लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। इस वर्ग में धन-धान्य की पूर्णता पाई जाती थी। धन की अधिकता के कारण अधिकांश लोग भोग-विलास में लिप्त रहते थे। मुगलों के यहां यह नियम था कि मृत्यु के बाद उच्च राजकीय पदाधिकारियों की सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार हो जाता था। इस कारण प्रत्येक पदाधिकारी इस सम्पति को अपने जीवन में ही व्यय करना चाहता था। इस वर्ग के लोगों का जीवन मदिरापान और स्त्री-संसर्ग में व्यतीत होता था। अमीरों के महलों में अनेक स्त्रियाँ रहती थीं। पैलसर्ट ने उच्च वर्ग के लोगों के महलों के विषय में लिखा है :—

"The Mahals of the rich were adorned internally with luxurious sensuality, wanton and rockless festivity, superfluous pomp, inflated pride and ornamental daintiness."

इस वर्ग के लोग साधारण लोगों के नीची दृष्टि से देखते थे। इस वर्ग के लोग वीर और कुशल-प्रवन्धक होने के अतिरिक्त विद्या तथा कला प्रेमी भी होते थे। वे उत्तम भोजन करते थे और अच्छे वस्त्र धारण करते थे। संगीत और नृत्य आदि में उनकी विशेष अभिरुचि रहती थी।

(ख) मध्यम वर्ग—मध्यम वर्ग में व्यापारी लोग या अन्य मध्यमवर्गीय राजकीय पदाधिकारो आते थे। इन लोगों के जीवन में सरलता और सादगी थी। यद्यपि इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी, परन्तु लोग मदिरापान तथा भोग-विलास में लिप्त नहीं रहते थे। इन लोगों का जीवन ठाट-वाट रहित होता था। पश्चिमी तट के व्यापारी अधिक सम्पन्न होते थे। अतः उनमें कुछ दुर्व्यसनों का प्रभाव दिखाई पड़ता था।

(ग) निम्न वर्ग—निम्न वर्ग में मजदूर, छोटे-छोटे व्यापारी तथा अन्य कर्मचारी आते थे। इन लोगों का जीवन सरल तथा साधारण होता था। इन्हें आवश्यक वस्तुओं का भी अभाव रहता था। इनका जीवन दासों के जीवन की तरह था। निम्न वर्ग की अवस्था बहुत दयनीय थी। इन लोगों का समाज में आदर-सम्मान नहीं था। ये लोग नंगे रहते थे तथा घास-फूस के मकानों में जीवन व्यतीत करते थे। ये भाग्यवादी होते थे। अतः इतनी दयनीय अवस्था होने पर भी कभी विद्रोह नहीं करते थे। साधारण समय में इन्हें भोजन मिल जाया करता था। डा० सरकार तथा दत्त ने निम्न वर्ग के लोगों की दशा का वर्णन करते हुए लिखा है :—

"The workmen received low wages, they were subject to the oppressions of the nobles and the royal officers and were sometimes forced to work for them receiving insuffi-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

cient remuneration or nothing at all in return. They lived on poor food, and took one meal a day for which they got nothing but a little Khichri made of green pulse mixed with rice. Their houses were built of mud with that ched roofs and contained no furniture at all, except some earthen pot and their humble beds. Peons or servants were available in large numbers. They received low wage but were allowed the customary commission for desturi, and very few of them served their masters honestly."

(2) **स्त्रियों की दशा**—मुगल-काल में स्त्रियों की दशा बहुत अच्छी नहीं थी। उच्च वर्ग के लोग स्त्रियों को केवल भोग-विलास की सामग्री समझते थे। ये स्त्रियां अपने पति की इच्छानुकूल कार्य करती थीं। इनका समय मकान के घेरे में व्यतीत होता था। इन्हें किसी प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त न थी। पर्दा प्रथा प्रचलित थी। वेश्यावृत्ति का भी प्रचार था। हिन्दुओं के बीच सती-प्रथा भी प्रचलित थी। अकबर ने सती-प्रथा को रोकने का प्रत्यन किया परन्तु सफल न हो सका। बाल-विवाह और दहेज भी समाज में विद्यमान थे। कन्याओं का विवाह उनके माता पिता की इच्छानुसार होता था। अपवादस्वरूप इस काल में कुछ स्त्रियां ऐसी भी हुई हैं, जो सुशिक्षिता थीं। इन स्त्रियों में अकबर की माँ हमीदा बानू बेगम तथा नूरजहाँ इत्यादि प्रसिद्ध हैं। बहु-विवाह की प्रथा भी समाज में प्रचलित थी।

(4) **वस्त्र**—उच्च तथा मध्यम वर्ग के लोग अंगरखा चूड़ीदार पैजामा धारण करते थे। धनवान तथा निर्धन सभी सिर पर साफा बांधते थे। कुछ लोग कन्धे पर अंगौछा और दुपट्टा धारण करते थे। साधारण परिवार के लोग धोती और कुर्ता पहनते थे। गरीब मुलमान पैजामा और लम्बा कुर्ता पहनते थे। मुगल राजा शृंगार-प्रिय होने के कारण कीमती वस्त्र पहनते थे। हिन्दू लोग अंगरखे का बन्द बाईं ओर और मुसलमान दाईं ओर बांधते थे।

मुसलमान स्त्रियां चूड़ीदार पैजामा तथा हिन्दू स्त्रियां साड़ी पहनती थीं। घाँघरा और जाकट पहनने का भी रिवाज था। स्त्रियां सिरों पर दुपट्टा डालती थीं। देश के उत्तर पश्चिम प्रान्तों में कुलाह और काश्मीरी टोपियां पहनी जाती थीं। अनेक प्रकार के जूतों और मोजों का भी प्रचलन था।

(3) **शृंगार**—शरीर की स्वच्छता हेतु दाल, मैदे और रीठे आदि का साबुन बनाया जाता था। खिजाब तथा अन्य प्रकार की दवाइयां भी प्रचलित थीं। स्त्रियां सुगन्धित लेपों को प्रयोग में लाती थीं। चन्दन के लेप का भी व्यवहार होता था। स्त्रियां पैरों में महावर, आंखों में सुरमा और हाथों में मेंहदी लगाती थीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दू लोग पान भी खाते थे। इत्र के साथ सुगन्धित तेल भी प्रयोग में लाये जाते थे। स्त्रियां आभूषण धारण करती थीं। कुछ स्त्रियां लिपिस्टिक का प्रयोग करती थीं। मालिश, उबटन, स्नान, पाउडर आदि का भी प्रयोग किया जाता था। स्वास्थ्य रक्षा के लिये शारीरिक स्वच्छता पर भी ध्यान दिया जाता था।

(6) **भोजन**—प्रायः हिन्दू तथा मुसलमान दोनों का भोजन समान था। मुसलमान मांस का प्रयोग अधिकतर करते थे। अधिकांश हिन्दू शाकाहारी थे। मद्रास, गुजरात, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों के हिन्दू लोग मांस से घृणा करते थे। जहाँगीर ने पशु-वध और पक्षी-वध पर रोक भी लगाई थी। उच्च श्रेणी के लोग स्वच्छ और स्वादपूर्ण भोजन करते थे। ये लोग भोजन में मांस, पुलाव और अन्य स्वादिष्ट वस्तुओं का प्रयोग करते थे। यद्यपि मुसलमान जाति को शराब पीना वर्जित था। फिर भी मुगल सम्राट शराब पीते थे। विभिन्न फलों आदि के अचार और मुरब्बे भी प्रयोग में लाये जाते थे। शाकाहारी हिन्दू मक्खन, साग-भाजी, चावल-रोटी और दाल आदि का प्रयोग करते थे। हिन्दू लोग रसोई की पवित्रता की ओर विशेष ध्यान देते थे। हिन्दू बाजार की बनी चीजों का प्रयोग नहीं करते थे। इसके विपरीत हिन्दू पीतल और तांबे और चांदी के बर्तनों का प्रयोग करते थे। राजपूत लोग अफीम और शराब का भी प्रयोग करते थे। बहुत से हिन्दू भांग भी पीते थे। जहांगीर के शासन में तम्बाकू का प्रचलन हो गया था।

(7) **मनोरंजन**—भारत में मनोरंजन तथा आमोद-प्रमोद का बहुत प्राचीन काल से प्रचलन रहा है। प्राचीन काल में भी विभिन्न प्रकार के खेल कूद तथा मनोरंजन होते रहे हैं। मुगल काल में भी देशवासी खेल-कूद के प्रेमी थे। उच्च तथा मध्यम श्रेणी के लोग शतरंज, ताश, चौपड़ और बल्ले के खेल खेलते थे। मैदान में शिकार, जानवरों की लड़ाई और चौगान आदि खेल भी प्रचलित थे। कुश्ती और बाजीगर के खेल नगरों और गांवों में प्रचलित थे। आंख-मिचौनी, लपक डंडा आदि का भी प्रचलन था। उच्च वर्ग के लोग नाच-गाने के शौकीन थे। उच्च घरों की स्त्रियां नाच गाने के साथ ही नाटक आदि में भी भाग लेती थीं। प्रायः सभी मुगल सम्राट शिकार प्रेमी थे। अकबर ने शिकार खेलने के एक नये ढंग के 'कमरघ' का प्रचलन किया था। यह प्रथा बाद में बहुत लोकप्रिय बन गई। अधिकांशतः गेंडा, चीते आदि का शिकार किया जाता था। हाथी का शिकार राजा ही कर सकता था। नौका-विहार भी मनोरंजन का एक साधन था। इसके अतिरिक्त राजा महाराजाओं को बागवानी का भी शौक था।

मेले तथा उत्सव भी मनोरंजन के साधन थे। देश के विभिन्न भागों में मेले

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगा करते थे। मेला तथा उत्सवों में लोग आपस में मिलते-जुलते थे और आनन्द मनाते थे। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के अलग-अलग मेलों तथा उत्सवों का प्रचलन था। इन मेलों तथा उत्सवों में साधारण जनता भी भाग लेती थीं। मुगल दरबार में अनेक उत्सवों का प्रचलन था। नौरोज, राजकुमारों के जन्म दिन, बसन्त, दशहरा, दीपावली, ईद, बारावफात और शुबरात आदि त्योहार मनाये जाते थे। इन त्योहारों के अवसर पर दरबार विशेष रूप से सजाया जाता था। इन अवसरों पर दावतों और नाच-गाने आदि का भी प्रबन्ध किया जाता था। अकबर ने मनोरंजन हेतु एक मीना बाजार लगवाई थी जिसमें देश की सुन्दर स्त्रियां दुकान लगाती थीं। इस बाजार में साधारण जनता का प्रवेश नहीं हो सकता था।

हिन्दुओं के तीर्थ-स्थानों में भी बड़े-बड़े मेले लगा करते थे जिनमें हरद्वार, मथुरा, प्रयाग, नीमसार, गढ़मुक्तेश्वर, कुरुक्षेत्र और उज्जैन के मेले प्रसिद्ध थे। यह मेले धार्मिक और सामाजिक हुआ करते थे। मुसलमानों के मुख्य तीर्थ अजमेर, पानीपत और सरहिन्द आदि थे। इनमें भी वार्षिक मेले लगते थे जिनमें देश के कोने-कोने से लोग एकत्र होते थे।

(8) **सामाजिक दोष**—हिन्दू तथा मुसलमान दोनों धर्मों में सामाजिक दोष विद्यमान थे। धार्मिक अन्ध-विश्वास दोनों धर्मों में पाया जाता था। ज्योतिष और जादू-टोना में उनका विश्वास था। मदिरा-पान के अतिरिक्त व्यभिचार की भी समाज में कमी नहीं थी। शिक्षा की ओर कोई विशेष ध्यान न दिये जाने के कारण हिन्दुओं का मानसिक और नैतिक विकास रुक गया था। हिन्दुओं में सती प्रथा, बाल-विवाह इत्यादि बुराइयाँ वर्तमान थीं। समाज में भीख माँगने की प्रथा जोरों से प्रचलित थी। वास्तव में मुगलों के काल में भारतीयों का मानसिक तथा नैतिक पतन हो गया था।

आर्थिक जीवन

मुगल काल के सम्बन्ध में जो कुछ भी विवरण प्राप्त होता है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उस युग में सामान्य जनता का स्तर बहुत ऊँचा था। खाद्यान्नों की प्रचुरता थी और चीजों के दाम बहुत कम थे। भार, माप, तौल तथा मुद्रा आदि में सुधार भी किया गया था। बाबर और हुमायूँ के समय की आर्थिक दशा के विषय में बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। इतना अवश्य ज्ञात होता है कि भारत की आर्थिक सम्पन्नता को देखकर ही बाबर ने इस देश पर आक्रमण किया था और प्रचुर मात्रा में धन प्राप्त किया था। परन्तु अपनी उदारता के फलस्वरूप उसने हुमायूँ के लिए रिक्त राजकोष छोड़ा था। शेरशाह ने आर्थिक सुधार किये थे जिससे साधारण जनता के जीवन में परिवर्तन हुआ था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अकबर ने अपनी नीति से देश में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित की थी। उसके युग से देश की आर्थिक प्रगति पुनः आरम्भ हो गई थी। जहाँगीर और शाहजहाँ के काल में राजकोष धन-धान्य से पूर्ण रहा। साधारण जनता के स्तर में विशेष परिवर्तन नहीं आया परन्तु जनता की आर्थिक स्थिति बहुत खराब नहीं थी। किन्तु औरंगजेब के शासन में उसकी नीति के कारण जनता में असन्तोष बढ़ गया था और आर्थिक स्थिति डांवाडोल होती गई।

आर्थिक दृष्टि से उस युग की जनता को चार भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत सम्राट तथा उच्च पदाधिकारी आते हैं। द्वितीय श्रेणी में बड़े-बड़े व्यापारी और मध्य वर्ग के कर्मचारी आते हैं। तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत छोटे राज्य-कर्मचारी तथा छोटे दूकानदार आते हैं तथा चतुर्थ श्रेणी में मजदूर, किसान और कारीगर आते हैं।

(1) कृषि—देश की अधिकांश जनता कृषि पर निर्भर थी। बाबर और हुमायूं का काल संस्थापन का काल था अतः कृषि पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। शेरशाह तथा अकबर ने कृषि की उन्नति के लिये अनेक सुधार किये जिससे किसानों की दशा बहुत सुधर गई। इनके द्वारा स्थापित कृषि-व्यवस्था उत्तम थी। अकबर के बाद अन्य मुगल सम्राटों ने भी उसे कायम रखा। खेती करने का ढंग आजकल जैसा था। गेहूँ, जौ, चना, उर्द, अरहर, मटर, तिलहन तथा दालों के अलावा गन्ना, नील, पोस्ता आदि भी उपजाया जाता था। नील की खेती उत्तर भारत और दक्षिण भारत के अनेक भागों में होती थी। चावल तथा गन्ना बंगाल में उत्पन्न होता था। सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तम्बाकू की भी खेती की जाने लगी। कभी-कभी अनावृष्टि के फलस्वरूप अकाल भी पड़ता था। शाहजहाँ के काल में एक भीषण अकाल पड़ा था। इसका वर्णन करते हुए अब्दुल हमीद लाहौरी ने लिखा है "......एक-रोटी रोटी के लिए लोग अपना जीवन बेचने के लिए तैयार थे। परन्तु कोई खरीदार न था। जो लोग सदा दान दिया करते थे वे लोग भोजन के लिये दूसरों के सामने हाथ फैलाते थे ····भुखमरी इस सीमा तक पहुँच चुकी थी कि लोग एक दूसरे को भी खाने लगे, यहाँ तक कि बच्चों को भी। मरे लोगों की संख्या इतनी बढ़ गई कि सड़कें तक रुक गईं।"

(2) उद्योग-धन्धे—इस समय मछली पकड़ने, नमक, अफीम, शराब आदि का उद्योग भी होता था। लोहा देश के कई भागों में पाया जाता था, जिससे कृषि के औजार, हथियार तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र बनाये जाते थे। सोना पंजाब तथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुमायूँ पर्वत पर प्राप्त होता था । फतेहपुर सीकरी तथा राजस्थान में लाल पत्थर बहुतायत से प्राप्त होता था । गोलकुण्डा में हीरे की खान थी ।

कपास की खेती देश में अधिक की जाती थी जिससे सूती उद्योग की अवस्था उन्नत थी । पटना, जौनपुर, बनारस, आगरा, बिहार आदि में कपड़े बनाने का कार्य प्रमुख रूप से होता था । एक विद्वान् ने स्पष्ट किया है—"सूती कपड़ा बनाना इस देश का असंदिग्ध रूप से प्रधान उद्योग था । जो देश के किसी एक ही क्षेत्र में सीमित न था । समूचा देश इस उद्योग में हाथ बँटा रहा था । फिर भी विशेष प्रकार के कपड़े कुछ विशेष क्षेत्रों ही में बनाये जाते थे । मध्य भारत में चंदेरी का बारीक कपड़ा, मछली पट्टम की छींट, सूरत के फीते, वाराणसी की जरी और ढाके की मलमल बहुत मशहूर थी । उसकी बड़ी माँग थी । भारत में प्रत्येक किस्म का कपड़ा बुनकर तैयार किया जाता था । इस कपड़े की अधिकतर खपत मध्य पूर्व मलाया, जावा आदि पूर्वी देशों में होती थी जिससे यहाँ का व्यापार बढ़ता था ।"

रंगसाजी का काम भी प्रमुख था । अयोध्या और खानदेश में सुनहरा कपड़ा प्रचुर मात्रा में बनता था । बंगाल में रेशमी कपड़े बनाये जाते थे । ढाके की मलमल प्रसिद्ध थी । मुल्तान में रंग बिरंगी कालीनें बनाई जाती थीं । काश्मीर में ऊनी तथा रेशमी कालीन बनते थे । पंजाब और उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त देश के अन्य भागों में कढ़ाई का अच्छा काम होता था । बरार, बुरहानपुर, अहमदाबाद में छाप बनते थे । जोनपुर, फतेहपुर सीकरी और अलवर में कम्बल बनाये जाते थे । देश के कई भागों में युद्ध-सामग्री भी बनायी जाती थी । इसके मुख्य केन्द्र पंजाब तथा गुजरात थे । जोनपुर तथा गुजरात में सुगन्धित तेल बनाये जाते थे । इस समय कागज का भी प्रचलन हो गया । काश्मीर तथा स्यालकोट में कागज के कारखाने बन गये । बीदर में सोना-चांदी का अच्छा सामान बनाया जाता था । कांच के सामान के लिये फतेहपुर सीकरी, बिहार और बरार प्रदेश प्रसिद्ध थे । दक्षिण भारत में मोती निकालने का काम भी किया जाता था । अन्य जीवनोपयोगी वस्तुयें भी बनाई जाती थीं ।

(3) व्यापार—मुगलों के समय में व्यापार की बहुत उन्नति हुई थी । इस समय आन्तरिक व्यापार के साथ विदेशों का व्यापार भी बहुत उन्नत अवस्था में था । सूती कपड़ा चन्दन, छींट, रेशम, नील, काली, मिर्च, हाथी दांत का सामान विदेशों को जाता था । आयात की हुई वस्तुओं में ताँबा, टीन, जस्ता, सोना, चाँदी, शराब, शीशे की वस्तुयें, घोड़े आदि प्रमुख थे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुगल शासकों ने व्यापार बढ़ाने के उद्देश्य से रास्तों की सुरक्षा की ओर भी ध्यान दिया था। उन्होंने सड़कों के किनारे वृक्ष लगवाये थे और सरांय भी बनवाई थी। व्यापार एवं अन्य उद्योग के बढ़ने से सरकारी आय में वृद्धि हुई थी। भारत में लकड़ी के अलावा धातु का काम भी अच्छा होता था।

(4) समृद्धिशाली औद्योगिक नगर—व्यापार तथा उद्योग धन्धों के बढ़ने के साथ औद्योगिक नगरों का भी महत्व बढ़ गया था। ये नगर समृद्धिशाली हो गये थे। सूर वंश के शासन में लाहौर की अपार उन्नति हुई थी। इरस्किन ने शेरशाह और इस्लाम शाह के समय में लाहौर की उन्नति के विषय में लिखा है :—

"Lahore was a large and flourshing city, the centre of rich trade, and amply flourished with every useful and costly production of the time."

टैरी नेपंजा ने लिखा है—"यह अत्यन्त बड़ा तथा उपजाऊ प्रदेश है। इसका प्रधान नगर लाहौर है जिसमें मनुष्य तथा धन की बहुलता है। यह नगर व्यापारिक केन्द्र है और व्यापारिक दृष्टि से इसका महत्व बहुत अधिक है।" लाहौर के अलावा खानदेश में .बुरहानपुर नगर भी प्रसिद्ध था। अहमदाबाद की बड़ाई करते हुए अबुलफजल ने कहा है कि यह नगर बहुत ही समृद्धिशाली है। इन नगरों के अतिरिक्त बनारस, पटना, राजमहल, ढाका आदि पूर्वी भारत के प्रसिद्ध नगर थे। काबुल भी इस समय प्रग त कर रहा है।

(5) सामान्य दशा—मुगल-काल में सामान्य आर्थिक दशा अच्छी थी। वस्तुओं का मूल्य बहुत कम था। साधारण व्यक्ति अपनी आवश्यकता की वस्तुयें एकत्र कर सकता था। यद्यपि निम्न वर्ग की आर्थिक दशा उन्नत नहीं थी फिर भी वह आसानी से अपना पेट भर लेते थे। अबुलफजल ने मजदूरों को कम वेतन वाला बताया है। उसने उस समय की वस्तुओं के मूल्य की सूची विस्तार से दी। साधारण मजदूरों को प्रति दिन दो दाम (आजकल का 4।5 आना) मिलता था। कुशल मजदूरों को सात दाम (आजकल के तीन आने) मिलता था।

परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि सम्पत्ति का वितरण ठीक नहीं था। उच्च वर्ग के पास अपार सम्पत्ति थी और निम्न वर्ग के पास बहुत कम। परन्तु सम्पत्ति का यह बँटवारा दुखदाई इसलिये प्रतीत नहीं होता था कि दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली चीजें भी सस्ती थीं।

औरंगजेब के काल से सामान्य जीवन की आर्थिक स्थिति शोचनीय होती रही। चारों ओर अशान्ति और कलह होती थी। इसका असर व्यापार के ऊपर पड़ा। एक विद्वान ने स्पष्ट किया है :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"The incessant wars of the reign, bankruptcy of the administration and exhaustion of the exchequer, made maintenance of peace rather impossible, and consequently agriculture, industries and trade were so badly affected that for sometime trade came almost to a stand-still."

व्यापार की अवनति के कारण आर्थिक स्थिति का डावांडोल हो जाना स्वाभाविक ही था। औरंगजेब के पश्चात् उसके उत्तरधिकारियों के शासन-काल में सामान्य आर्थिक दशा विगड़ गई। नादिर शाह और अहमद शाह अब्दाली के आक्रमणों ने देश की आर्थिक स्थिति को और खराव कर दिया। मरहठों ने भी छापे मार कर जनता के धन को लूटा और इस प्रकार सामान्य जनता त्रस्त होती गई।

धार्मिक जीवन

(1) **इस्लाम धर्म**—मुगल-काल में इस्लाम धर्म को राज्य-धर्म होने का गौरव प्राप्त था। अकबर को छोड़कर सभी शासक इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों का कट्टरता से पालन करते रहे। राज्य-धर्म होने के कारण इस्लाम धर्म को बहुत अधिक बढ़ावा मिला। इस धर्म के अनुयायियों को विशेष प्रकार की सुविधायें प्रदान की गईं जिसके फलस्वरूप लोग इस धर्म की ओर आकर्षित हुए। कुछ सम्राटों ने तलवार के जोर पर भी इस धर्म के प्रचार का प्रयास किया।

समाज में मुल्लाओं और शेखों का विशेष सम्मान होता था और उन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाता था। धर्म की कट्टरता पर विशेष बल दिया जाता था। नमाज, व्रत आदि का बहुत अधिक महत्व था। इस्लाम धर्म की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसमें सभी अनुयायियों को समान अधिकार प्राप्त थे। कालान्तर में इस धर्म में दिखावों और आडम्बरों का वोलबाला हो गया।

(2) **वैष्णव धर्म**—16 वीं शताब्दी धार्मिक आन्दोलनों का युग माना जाता है। इस समय हिन्दुओं में भक्ति आन्दोलन का जोर होने लगा जिसका आरम्भ दिल्ली सल्तनत के अन्तिम दिनों में हो गया था। इस काल में उत्तरी भारत में मीरावाई, सूरदास जैसे कृष्णोपासक तथा तुलसीदास जैसे रामोपासक हुए। बंगाल में चैतन्य महा प्रभु और दक्षिण में एकनाथ ने धर्म का प्रचार किया। एकनाथ ने स्त्रियों एवं शूद्रों के लिये मोक्ष का मार्ग खोल दिया। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त तुकाराम ने भी धर्म का व्यापक प्रचार किया। शिवाजी के गुरु रामदास ने वैष्णव धर्म का प्रचार-किया।

मुगल-काल में हिन्दू धर्म में अनेक कुरीतियाँ आ गई थीं,। इसमें बाह्य

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आडम्बरों और दिखावों का बोल-बाला था। भक्त कवियों ने आडम्बरों से दूर रह कर शुद्ध हृदय से जनता को भक्ति करने का आदेश दिया। छुआछूत के बन्धनों को छोड़कर एक साथ ईश्वर की आराधना पर बल दिया। लाल दासियों ने राम-नाम पर और धर्म-दासियों ने आचरण की शुद्धता पर बल दिया।

(3) **सिक्ख धर्म**—मुगल काल के अन्तिम चरण में सिक्ख धर्म भी उन्नति कर गया। इस धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक थे। उन्होंने मूर्ति-पूजा का विरोध किया और निराकार ब्रह्म की उपासना पर बल दिया। इस धर्म का प्रचार विशेष कर पंजाब में हुआ। 17 वीं और 18 वीं शताब्दी तक यह धर्म विकास की चरम सीमा तक पहुँच चुका था।

(4) **धार्मिक सहिष्णुता**—मुगल-काल में धार्मिक सहिष्णुता और असहिष्णुता दोनों के ही दर्शन हुए। धार्मिक आन्दोलनों के फलस्वरूप जनता में सहिष्णुता की भावना आई। एक विद्वान ने ठीक ही लिखा :—

"The sixteenth century is a century of religious revival in the history of the world...India experienced an awakening that quickened her progress and vitalized her national life. The dominant note of this awakening was love and liberalism...with glorious ideals it inspired the Hindus and Muslims alike,and they forgot for a time their trivialities..."

मुगल सम्राटों पर भी सन्तों का प्रभाव पड़ा और शेरशाह तथा अकबर जैसे सम्राटों ने धार्मिक सहिष्णुता की नीति को अपनाया। उन्होंने हिन्दुओं को पूजा-पाठ की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की और उनके मन्दिरों को नष्ट नहीं होने दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि अकबर के काल में गो-हत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। यह भी आभास मिलता है कि कट्टर पंथियों की धर्मान्धता तथा विचार संकीर्णता के फलस्वरूप अकबर इस्लाम धर्म से विमुख हो गया था। अकबर का धार्मिक विचार विकास की अन्तिम सीमा पर दीन इलाही के रूप में स्पष्ट हुआ। दीन इलाही अकबर के धार्मिक समन्वय का भगीरथ प्रयास था।

(4) **धार्मिक असहिष्णुता**—मुगल-काल में धार्मिक आदोलनों के फलस्वरूप जब विभिन्न धर्मानुयायी एक दूसरे के निकट आ रहे थे तो कट्टर पंथियों ने धार्मिक असहिष्णुता को प्रोत्साहन दिया। प्रारम्भिक मुगल सम्राट बाबर एवं हुमायूँ कट्टर सुन्नी मुसलमान थे परन्तु इन्होंने धर्म के नाम पर हिन्दुओं का रक्त नहीं बहाया। जहांगीर के युग में भी असहिष्णुता की नीति नहीं अपनाई गई।

शाहजहां के काल से धार्मिक असहिष्णुता का सूत्रपात हुआ परन्तु इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

असहिष्णुता का विकसित रूप औरंगजेब के काल में ही देखने को मिला। औरंगजेब एक ऐसा शासक था जिसकी हिन्दू विरोधी नीति इतिहास की एक बहुचर्चित सामग्री बन गई है। औरंगजेब ने केवल हिन्दू मन्दिरों को नष्ट ही नहीं किया वरन् हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के कर लगाये और भाँति-भाँति के अत्याचार किये। औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता की नीति मुगल साम्राज्य के लिये बड़ी घातक सिद्ध हुई और इस विशाल साम्राज्य के पतन का कारण बनी।

उपसंहार—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि मुगल युग का भारतीय जन-जीवन सल्तनत युग की अपेक्षा अधिक अच्छा था और इस युग में सामाजिक ईर्ष्या, धार्मिक संघर्ष और आपसी भेद भाव का वह उग्र रूप देखने को नहीं मिलता जो सल्तनत काल में देखने को मिलता है। आर्थिक उन्नति और कलात्मक वैभव की दृष्टि से भी यह युग अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | 10

भारत में ब्रिटिश आधिपत्य का विस्तार और आधुनिक भारत का निर्माण

(THE EXPANSION OF BRITISH DOMINATION IN INDIA AND THE MAKING OF MODERN INDIA)

भूमिका

मुगल युग के बाद के भारतीय इतिहास को हम ब्रिटिश युग के नाम से पुकारते हैं। 1498 ई० में वास्कोडिगामा नामक एक पुर्तगीज यात्री समुद्री मार्ग से सबसे पहले भारत पहुँचने में सफल हुआ था। इसके बाद अन्य विदेशी यात्री भी भारत आये। 16वीं और 17 वीं शताब्दी में भारत में प्रतापी मुगल साम्राज्य के अधः पतन के बाद भारत की राजनीतिक स्थिति इस प्रकार की हो गई कि विदेशी शक्तियों ने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास किया और अंग्रेज भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने में सफल हो गये।

—·—

प्रश्न—(1) भारत में ब्रिटिश आधिपत्य के विस्तार का संक्षिप्त वर्णन कीजिये और भारतीय इतिहास के आधुनिक युग के प्रारम्भ पर संक्षेप में प्रकाश डालिए। भारत के आधुनिक युग के सूत्रपात में ब्रिटिश शासन से क्या प्राप्ति हुई।

भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना और उसका विस्तार

18 वीं शताब्दी में भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ अच्छी न थीं। मुगल साम्राज्य अपने खण्डहरों पर खड़ा हँस रहा था। देश में अनेक छोटे-छोटे राज्य पुनः स्थापित हो गये थे। विदेशी शक्तियों ने इस स्थिति का लाभ उठाया और अपने व्यापक क्षेत्र को निरंतर बढ़ाने तथा अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयास प्रारम्भ किया। इन विदेशी शक्तियों में ब्रिटिश, पुर्तगाल और फ्रेञ्च प्रमुख थे। इनमें आपस में पहले संघर्ष हुए और इस संघर्ष में अंग्रेजों को सफलता प्राप्त हुई। बंगाल में अंग्रेजों का आधिपत्य सा स्थापित हो गया। प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला की पराजय के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बाद भारत में ब्रिटिश सत्ता के पैर जमने लगे। यहाँ अंग्रेजी शासन की नींव डालने का श्रेय लार्ड क्लाइव को प्राप्त है। लार्ड क्लाइव के बाद वारेन हेस्टिंग्स ईस्ट इंडिया कम्पनी का गवर्नर जनरल बन कर आया और उसने भी शनैः शनैः अंग्रेजी राज्य के विस्तार का प्रयास किया। वारेन हेस्टिंग्स 1772 से 1785 ई० तक भारत में रहा। इस के बाद लार्ड कार्नवालिस, सर जॉन शोर, लार्ड मिन्टो क्रमशः ईस्ट इंडिया कम्पनी के गवर्नर जनरल बने। लार्ड कार्नवालिस और लार्ड मिन्टो ने भी ईस्ट इंडिया कम्पनी के साम्राज्य के विस्तार में योगदान दिया। 1813 ई० में लार्ड मिण्टो के इंग्लैण्ड वापस लौटने के पश्चात् लार्ड हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल बना। वह यहाँ 1823 ई० तक रहा और 1823 ई० से 1828 ई० तक लार्ड एमहर्स्ट ईस्ट इंडिया कम्पनी का गवर्नर जनरल बना और उसके बाद उसकी बागडोर लार्ड विलियम बेंटिक ने सँभाली। बेंटिक के काल में भी ईस्ट इंडिया कम्पनी के साम्राज्य का विस्तार हुआ और 1835 ई० में वह स्वदेश वापस लौट गया। 1837 ई० से 1842 ई० तक लार्ड आकलैण्ड, लार्ड एलिनबरा, लार्ड हार्डिञ्ज आदि यहां के गवर्नर जनरल बने और उन्होंने भी ब्रिटिश सत्ता का विस्तार किया। ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तारकों में लार्ड डलहौजी, का नाम अत्यन्त गौरव से लिया जाता है। वह विस्तारवादी नीति का समर्थक था। 1848 ई० में वह भारत का गवर्नर जनरल बना और उसने अनेक क्षेत्रों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया। गोद-निषेध प्रथा द्वारा उसने अनेक राजाओं के राज्यों का अपहरण किया और उसके क्रिया कलापों के फलस्वरूप ही 1857 ई० की क्रान्ति हुई। उस समय भारत का गवर्नर जनरल लार्ड कैनिंग था। इस स्वतन्त्रता संग्राम के बाद ब्रिटिश सम्राज्ञी ने भारत की सत्ता ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथों से अपने हाथों में ले ली। यहाँ का वायसराय इंग्लैण्ड की महारानी के रूप में शासन करने लगा। लार्ड कर्जन के बाद 1862 ई० में लार्ड एलगिन प्रथम भारत का वायसराय बना और 1880 ई० तक यहाँ सर जान लारेन्स (1864-1869), लार्ड मेयो (1869-1872), लार्ड नार्थब्रुक (1872-76), और लार्ड लिटन (1876 1884) वायसराय बने। 1880 से 1899 ई० तक लार्ड रिपन (1884-1888), लार्ड लैन्सडाउन (1888-1893) और लार्ड एलगिन द्वितीय (1894-1899) वायसराय बने। 1891 से 1905 ई० तक लार्ड कर्जन भारत का वायसराय रहा उसने भी ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार प्रयास किया। 1905 से 1947 ई० तक लार्ड मिन्टो (1905-1910), लार्ड हार्डिग द्वितीय (1910-1916), लार्ड चेम्सफोर्ड (1916-1919), लार्ड रीडिञ्ज (1921-26), लार्ड इरविन (1926-1931), लार्ड विलिंगडन (1931-36), लार्ड लिनलिथगो (1936-44), लार्ड वेवेल (1944-47)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एवं लार्ड माउण्टबेटेन (1947) ने भारत में ब्रिटिश सम्राट के वायसराय का पद धारण किया। वास्तव में भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना का कार्य लार्ड डलहौजी के समय में ही समाप्तप्राय सा हो चुका था और विभिन्न वायसरायों ने उसके सुदृढ़ीकरण का ही प्रयास किया। ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तारकों में लार्ड क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्स, कार्नवालिस, लार्ड वेलेजली, लार्ड हार्डिंज और लार्ड डल-हौजी के नाम गर्व से लिये जाते हैं। 1947 ई० में भारत से ब्रिटिश साम्राज्य का अन्त हुआ और भारत पुनः स्वतन्त्र हुआ।

भारतीय इतिहास का आधुनिक युग

इतिहास के नवयुग का सूत्रपात—18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संसार के इतिहास में आधुनिक युग का सूत्रपात होता है। इसका प्रारम्भ यूरोप से हुआ था जहाँ पहले व्यावसायिक क्रान्ति हुई तथा बाद में राजनीतिक क्रान्ति। 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि यूरोपियन देशों का आर्थिक जीवन वैसा ही था जैसा कि लगभग 2000 वर्ष पूर्व सिकन्दर और सीजर के जमाने में था। पुराने ढंग से खेती होती थी और छोटे-छोटे उद्योग प्रचलित थे। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप यूरोप के आर्थिक जीवन में बड़े क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए और व्यावसायिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप मानव श्रम की बचत हुई और जल, कोयला, भाप और बिजली यांत्रिक शक्ति के काम आने लगे और राजनीति शास्त्र की प्रक्रियाओं का आविष्कार हुआ। इस व्यावसायिक क्रान्ति के फलस्वरूप वहाँ के आर्थिक जीवन में महान परिवर्तन हुए और यह आधुनिक युग की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। 18वीं शताब्दी के अन्तिम चरण 1789 ई० में फ्रांस में राज्यक्रांति का परिणाम यह हुआ कि यूरोप के विभिन्न देशों में स्वेच्छाचारी और निरंकुश राजाओं का अन्त हुआ तथा लोकतंत्रवाद का नारा बुलन्द हुआ। परिणाम यह हुआ कि रीति-रिवाज, धर्म आदि के प्रति मानव के दृष्टिकोणों में अन्तर आया और मानवीय मूल्यों को प्रमुखता प्रदान की गई।

व्यवसायीकरण और राज्यक्रांति के बाद यूरोप के इतिहास में आधुनिक युग का प्रारंभ होता है। यूरोप के विचार एवं वैज्ञानिक आविष्कार केवल यहीं तक सीमित नहीं रह सके बल्कि अन्य देशों में भी उनका विस्तार हुआ। 18वीं शताब्दी के अनेक वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण पश्चिमी यूरोप के हाथों में ऐसे साधन आ गये कि इंग्लैण्ड, फ्रांस और हालैण्ड आदि पाश्चात्य देश एशिया एवं अफ्रीका के विभिन्न प्रदेशों में अपना आधिपत्य स्थापित करने में सफल हुये। 19वीं शताब्दी के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मध्य भाग तक एशिया के अधिकांश प्रदेश पाश्चात्य देशों के प्रभाव व आधिपत्य में आ चुके थे भारत में ब्रिटिश सत्ता पहले ही स्थापित हो चुकी थी। 1757 ई० में प्लासी के युद्ध के बाद भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई। 1857 ई० तक अंग्रेजों को अपनी सारी शक्ति यहाँ अपनी सत्ता स्थापित करने में लगानी पड़ी। 19 वीं शताब्दी के मध्य भाग तक भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव दृढ़ हो चुकी थी।

भारत में आधुनिक युग का प्रारम्भ— ब्रिटिश शासन के परिणामस्वरूप ही भारत में एक नवीन युग का प्रारम्भ हुआ जिसे कि हम आधुनिक युग के नाम से पुकारते हैं। जैसे कि व्यवसायिक एवं राज्यक्रान्ति के फलस्वरूप यूरोप में एक नवीन युग का सूत्रपात हुआ और उसके फलस्वरूप वहाँ अधिक उन्नति हुई उसी प्रकार ब्रिटिश शासन में भारत में भी व्यावसायिक, राजनीतिक और धार्मिक सुधारों का प्रादुर्भाव हुआ। इन सुधारों के फलस्वरूप भारत में भी आधुनिकता का समावेश हुआ। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि भारत में आधुनिक युग का सूत्रपात अंग्रेजों के बिना नहीं होता। यह ठीक है कि भारत के आधुनिकीकरण में अंग्रेजों ने योगदान दिया परन्तु यदि यहाँ अंग्रेजों का राज्य न होता तो यहाँ आधुनिकीकरण होता ही नहीं, यह कहना उचित नहीं है। जापान कभी भी किसी पाश्चात्य देश के आधीन नहीं रहा था, और 19वीं शताब्दी के मध्य भाग तक वहाँ वैसी ही दशा थी जैसे कि 18 वीं शताब्दी में भारत में थी। परन्तु जब जापानियों ने यह अनुभव किया कि ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पाश्चात्य देशों से यह बहुत पीछे रह गये हैं तो उन्होंने अपनी उन्नति के लिए अथक प्रयास किया और 50 वर्ष के थोड़े से समय में ही वे यूरोपियनों के समकक्ष हो गये। यह ठीक है कि भारत की परिस्थितियाँ जापान से बहुत भिन्न थीं और यहाँ छोटे-छोटे राज्यों के फलस्वरूप उतनी तेजी से उन्नति करना सम्भव नहीं था जितनी तेजी से जापान ने की परन्तु केवल इस आधार पर ही यह नहीं कहा जा सकता कि भारत के औद्योगीकरण का श्रेय केवल अंग्रेजों को ही प्राप्त है। चीन में किसी विदेशी राज्य-शक्ति का शासन नहीं स्थापित हुआ था और वहाँ की राजनीतिक स्थिति भी वैसी ही थी जैसे कि ब्रिटिश शासन के पूर्व भारत की थी फिर भी चीन आधुनिक युग में ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में काफी उन्नति कर गया है। सत्य तो यह है कि आधुनिकीकरण की जो लहर चली थी उसे रोकना सम्भव ही न था। भारत में चाहे अंग्रेजों का राज्य होता या न होता उसका आधुनिकीकरण अवश्य ही होता। अंग्रेजों का राज्य कायम न होने पर भी यहाँ उन ज्ञान विज्ञानों का प्रवेश अवश्य हो जाता जो इंग्लैंड और फ्रांस में प्रोद्भूत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुआ और उसके फलस्वरूप यहाँ भी नवयुग और आधुनिकता का प्रारम्भ अवश्य हो जाता। परन्तु यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि भारत में अंग्रेजों के शासन ने पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान के प्रवेश में महान योगदान दिया और जो कार्य अंग्रेजों के शासन के बिना यहाँ काफी समय में होता वह अत्यन्त अल्प काल में हो गया। आधुनिक युग में भारत का जो व्यवसायीकरण दिखलाई पड़ता है उसका बहुत कुछ श्रेय अंग्रेजों को दिया जाना चाहिए। ब्रिटिश शासन में ही वे प्रवृत्तियाँ बलवती हुईं जिनके फलस्वरूप भारत में व्यावसायिक और राजनीतिक जगत में क्रान्ति उत्पन्न हुई। यह कहना कि अंग्रेजों ने जान-बूझ कर इन प्रवृत्तियों के विकास पर बल दिया, उचित नहीं है। अंग्रेजों की आर्थिक नीति सदैव यह रही है कि भारत इंग्लैंड की आर्थिक समृद्धि का स्रोत बना रहे। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने बंगाल के वाणिज्य और व्यवसाय को नष्ट करने का हर सम्भव प्रयास किया जिससे कि इंग्लैंड के कारखानों में तैयार किया गया माल भारत में आसानी से बिक सके। 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक अंग्रेजों का यह प्रयास रहा कि भारत में कल-कारखाने न खोले जायं और इस देश का आर्थिक जीवन इसी प्रकार का बना रहे तथा यहाँ का कच्चा माल सस्ती कीमत पर इंग्लैण्ड को प्राप्त होता रहे और मंहगा बना-बनाया माल भारत आकर बिके। परन्तु अंग्रेजों के इन प्रयत्नों के बावजूद यह सम्भव नहीं था कि यूरोप के व्यवसायी करण का प्रभाव भारत पर न पड़े। 19 वीं शताब्दी के अन्त तक भारत में कल कारखानों की स्थापना का कार्य प्रारम्भ हो गया और 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण के स्वदेशी आन्दोलन ने यहां के व्यवसायीकरण में महान योगदान दिया।

ब्रिटिश शासन के फलस्वरूप भारत में आधुनिक युग के सूत्रपात में सहायता—यह ठीक है कि यदि भारत में ब्रिटिश शासन न होता तो भी भारत में आधुनिक युग का प्रारम्भ अवश्य होता परन्तु इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं कि ब्रिटिश शासन के फलस्वरूप भारत में आधुनिक युग के सूत्रपात में सहायता अवश्य प्राप्त हुई। यहाँ हम इस सहायता को संक्षेप में स्पष्ट कर रहे हैं—

(1) ब्रिटिश युग में सम्पूर्ण भारत राजनीतिक एकता के सूत्र में बँध गया। मुगल सम्राट औरङ्गजेब की मृत्यु के पश्चात् भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये थे। अंग्रेजों ने इन विभिन्न राज्यों को अपने अधिकार में करके भारत में एक केन्द्रीय शक्तिशाली सरकार की स्थापना की और यहाँ राजनीतिक एकता का सूत्रपात हुआ। इस राजनीतिक एकता के फलस्वरूप आधुनिकीकरण में सहायता प्राप्त हुई।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(2) ब्रिटिश शासन में भारत में विदेशी शक्तियों के इस प्रकार के आक्रमण नहीं हुए कि देश की शान्ति-व्यवस्था को खतरा उत्पन्न होता। 20 वीं शताब्दी के महायुद्धों के अवसर पर भी भारत विदेशी शक्तियों द्वारा त्रस्त नहीं किया गया। क्योंकि अंग्रेजों द्वारा संगठित भारतीय सेना और ब्रिटेन की सामुद्रिक शक्ति इस देश की रक्षा के लिए सदैव तत्पर थी। विदेशी शक्तियों के आक्रमण के न होने के कारण देश के आधुनिकीकरण में तीव्रता आई।

(3) अँग्रेजों ने सम्पूर्ण भारत में एक सुव्यवस्थित और सुसंगठित सरकार की स्थापना करके वही कार्य किया जो लुई 14 वें ने फ्रांस में तथा हेनरी अष्टम ने इंग्लैण्ड में किया था। अंग्रेजों के पूर्व भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित थे और वे निरन्तर युद्ध किया करते थे। शक्तिशाली केन्द्रीय शासन के अभाव में राज्य में शान्ति-व्यवस्था कायम नहीं रह सकती थी। इस स्थिति का अन्त करके अंग्रेजों ने भारत में एक सुव्यवस्थित केन्द्रीय सरकार की स्थापना की जिससे इस देश में नवयुग के सूत्रपात में बहुत अधिक सहायता प्राप्त हुई।

(4) लार्ड मैकाले के प्रयत्नों के फलस्वरूप भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बनायी गयी। अंग्रेजी भाषा के प्रचलन के परिणाम स्वरूप साधारण जनता को विवश होकर अंग्रेजी सीखना पड़ा क्योंकि समस्त कार्य अँग्रेजी में ही होने लगा। अंग्रेजी के प्रवेश के कारण उन समस्त ज्ञान-विज्ञानों एवं विचार धाराओं के स्रोत भारत के लिए खुल गये जिनका विकास उस युग में इंग्लैण्ड एवं यूरोप के अन्य देशों में हो रहा था। अंग्रेजी भाषा ने भारत की वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक उन्नति में महान योगदान दिया। यदि इस भाषा का ज्ञान भारतीयों को न होता तो पाश्चात्य जगत की वैज्ञानिक एवं व्यवसायिक उन्नति के विषय में भारतीयों को जानकारी प्राप्त न होती। यही नहीं राष्ट्रीयता, लोकतंत्रवाद और समाजवाद आदि के विचार भी भारत में अंग्रेजी पढ़े-लिखे व्यक्तियों द्वारा प्रसारित किये गये। अंग्रेजी भाषा के कारण ही भारत के अन्य देशों से सम्बन्ध स्थापित हुए और भारत का आधुनिकीकरण तेजी से प्रारम्भ हुआ।

(5) भारत में अपनी शासन सत्ता को बनाये रखने के लिए अंग्रेजों ने भारतीय सैनिक शक्ति से सहायता ली। इस विशाल देश में शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए और विदेशी आक्रमणों से रक्षा के लिए केवल अंग्रेजी सेना ही पर्याप्त नहीं थी। इस कारण अंग्रेज भारतीय सेना पर बहुत हद तक निर्भर रहे। देश में शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए तथा विदेशी आक्रमणों से रक्षा के लिए यह आवश्यक था कि भारतीय सैनिक भी नवीनतम अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हों। परिणाम यह हुआ कि भारतीय सैनिक भी शस्त्र-संचालन और युद्ध नीति के सभी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधुनिकतम तरीकों से अवगत हो गये और इस प्रकार भारत के आधुनिकीकरण में योगदान मिला।

यूरोप के आधुनिकीकरण एवं भारत के आधुनिकीकरण में अन्तर— यह ठीक है कि भारत में 'आधुनिकता' एवं 'नवीन युग' के सूत्रपात में अंग्रेजों ने योगदान दिया परन्तु भारत में नवीन युग का सूत्रपात यूरोपीय देशों की भांति नहीं हुआ। यूरोप में आधुनिकता के विकास में काफी समय लगा। 13वीं शताब्दी से ही यूरोप में ऐसे विचारक उत्पन्न हुए जो बुद्धि स्वातंत्र्य एवं वैज्ञानिक विधि से सत्य की खोज के पक्षपाती थे, जिनमें बेकन (1210-92) कार्पनिकस (1473-1543) और गैलिलियो आदि प्राचीन विचारकों के नाम उल्लेखनीय हैं। 15वीं शताब्दी में यूरोप में धार्मिक सुधार का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जिससे ईसाई चर्च का आधिपत्य काफी हद तक शिथिल हो गया और इससे धार्मिक नव चेतना और अनुपम स्फूर्ति उत्पन्न हुई। यूरोप में बुद्धि-स्वातंत्र्य एवं वैज्ञानिक खोज की परम्परा काफी समय तक चली और 18वीं शताब्दी की व्यावसायिक क्रान्ति के पहले एक लम्बी चौड़ी भूमिका बँधी हुई है। इंग्लैण्ड की 17वीं शताब्दी के राज्यक्रान्ति और फ्रांस की 18वीं शताब्दी की राज्यक्रान्ति ने यूरोप में लोकतंत्रवाद और राष्ट्रीय प्रवृत्तियों को जन्म दिया। इस प्रकार यूरोप के आधुनिकीकरण में काफी समय लगा। भारत के इतिहास में नवयुग के सूत्रपात में इतना अधिक समय न लगा और न विभिन्न कालों में ही विभिन्न प्रवृत्तियों के दर्शन हुए। अंग्रेजों के आधिपत्य के कारण अकस्मात ही भारत में 19वीं शताब्दी में ज्ञान-विज्ञान का प्रसार हुआ। 1823 ई० में भारत में रेलवे का प्रयोग प्रारम्भ हुआ और नई एवं पक्की सड़कों के कारण स्थल मार्ग के उन्नति का प्रसार हुआ। नवीन नहरों के द्वारा कृषि की उन्नति में सहायता मिली। रेलवे, पोस्ट आफिस, तार आदि के प्रयोग से भारत के आर्थिक जीवन में परिवर्तन प्रारम्भ हुए और बाद में लोहा, कोयला, जूट एवं वस्त्र आदि के कारखानों द्वारा व्यवसायिक क्रांति के चिह्न प्रकट होने लगे।

अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप भारतीयों ने यह जाना कि वे ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पाश्चात्य देशों से कितना पीछे हैं। कुछ भारतीय इस स्थिति में यह सोच कर संतुष्ट रह गये कि पाश्चात्य लोगों ने जो कुछ सीखा है वह भारतीयों से ही सीखा है क्योंकि भारतीय धार्मिक ग्रन्थों में अनेक ज्ञान-विज्ञान की बात लिखी है परन्तु कुछ भारतीय ऐसे भी हुए कि उन्होंने अतीत की ओर न देखकर वर्तमान को सुधारने में ही अपना कल्याण समझा। उन्होंने यह सोचा कि हमें अपनी शक्ति पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की जानकारी प्राप्त करने में लगानी चाहिए और पुराने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शास्त्रों को कण्ठाग्र करने मात्र से कोई लाभ नहीं है। पाश्चात्य संस्कृति के फलस्वरूप ही भारत में विभिन्न सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों का भी सूत्रपात हुआ। पुरानी रूढ़ियाँ टूटती गईं और अनेक ऐसे नवीन सिद्धान्तों का प्रचलन हुआ जो नवयुग की विचारधारा के अनुकूल थे। इस नवीनता और आधुनिकता की प्रवृत्ति ने ही भारतवासियों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न की और उनमें राष्ट्रीयता एवं लोकतंत्र की विचारधारा का समावेश हुआ। इस विचारधारा ने ही भारतवासियों को अंग्रेजों से संघर्ष करने के हेतु प्रेरित किया और फलस्वरूप 1947 ई० में भारत ब्रिटिश शासन से स्वतंत्र हो गया।

भारत में ब्रिटिश शासन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता आधुनिक युग की प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव और उनकी सलफलता ही है। ब्रिटिश युग के राजनीतिक इतिहास का भारतवासियों के लिए इतना अधिक महत्व नहीं है जितना अधिक उस युग की औद्योगिक एवं व्यावसायिक उन्नति का महत्व है। भारत में पुनर्जागरण, धार्मिक सुधार, व्यावसायिक क्रान्ति और लोकतंत्रवादी विचारधारा का श्री गणेश ब्रिटिश युग में ही हुआ और इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारत में आधुनिक युग का सूत्रपात अंग्रेजों के शासन काल में हुआ है।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 11

भारत का स्वतन्त्रता संग्राम
(INDIA'S FREEDOM STRUGGLE)

भूमिका

किसी भी स्वतंत्रता प्रेमी-जाति को परतंत्रता को बेड़ियों में अधिक समय तक नहीं जकड़ा जा सकता है। भारतीय स्वतंत्रता-प्रेमी जाति के लोग हैं। यही कारण था कि भारतीय अधिक समय तक विदेशी दासता के चंगुल में न फँसे रहे और उन्होंने अपनी स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए निरन्तर संघर्ष किया। इस अध्याय में हम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

प्रश्न (1) 1857 ई० की क्रान्ति का वर्णन कीजिये और बतलाइये कि क्या वह वास्तव में भारत की स्वतन्त्रता के लिए लड़ा जाने वाला पहला स्वतन्त्रता संग्राम था।

1857 वर्ष भारतीय इतिहास में अपना प्रमुख स्थान रखता है। इस वर्ष भारतीयों ने पहली बार ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ने का प्रयास किया। यद्यपि इसके पूर्व भी इस क्षेत्र में कुछ प्रयास हुये थे परन्तु वे नगण्य से हैं। ब्रिटिश साम्राज्य के विरोध का स्पष्ट रूप हमें 1857 ई० की क्रान्ति में देखने को मिलता है।

क्रान्ति के प्रमुख कारण

(क) राजनीतिक कारण—सन् 1857 की क्रान्ति के निम्नलिखित प्रमुख राजनीतिक कारण थे :—

(1) अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति—भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना सन् 1757 की क्रान्ति के बाद हुई थी। 1757 के० प्लासी के युद्ध ने ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाली थी। इसी समय से अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति प्रारम्भ हुई और डलहौजी के समय में वह अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी।

(2) देशी राज्यों की बाह्य नीति पर अंग्रेजों का नियंत्रण—ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित न होने वाले देशी राज्यों की बाह्य नीति पर अंग्रेजों का पूर्ण नियन्त्रण रखने के लिये वहाँ पर एक अंग्रेजी रेजीडेण्ट रखा गया जो उनकी बाह्य नीति के साथ ही आन्तरिक मामलों में भी हस्तक्षेप करता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(3) **वेलेजली द्वारा प्रारम्भ की गयी सहायक सन्धि**—इस सन्धि के फलस्वरूप देशी राज्यों को अंग्रेज सेना अपने ही खर्चे पर अपने राज्य में रखनी पड़ती थी। अंग्रेज गवर्नर जनरलों ने इन राज्यों को पहले ही इतना खोखला कर दिया था कि वे उस सेना का व्यय सहन करने में असमर्थ थे। इससे देशी राज्यों की जनता में असन्तोष और विद्रोह की भावना का होना स्वाभाविक था।

(4) **डलहौजी की राज्य हड़पने की नीति की चरम सीमा**—यद्यपि सभी ब्रिटिश शासक साम्राज्यवादी नीति के समर्थक थे परन्तु डलहौजी ने इस दिशा में आवश्यकता से अधिक कदम उठाये। फलस्वरूप, देशी राज्यों में विद्रोह की भावना बढ़ती जा रही थी। डलहौजी की 'गोद-निषेध नीति' ने बहुत से राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया। उसकी राज्य हड़पने की नीति का भाजन सतारा, नागपुर और झांसी जैसे शक्तिशाली राज्य भी बने। परिणाम यह हुआ कि नागपुर और सतारा के मरहठे भडक उठे और झांसी की रानी लक्ष्मी बाई गर्जना कर उठी।

(5) **पेन्शनों व पदवियों का बन्द किया जाना**—ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों की पेन्शनों और पदवियों को समाप्त कर दिया, फलस्वरूप बहुत से भारतीय नरेश ब्रिटिश सरकार के विरोधी हो गये।

(6) **जमींदारों की जमींदारियों पर अधिकार**—ये जमींदार अपने क्षेत्र के राजा से कम अधिकार नहीं रखते थे परन्तु इनकी जमीदारियां छिन जाने पर इनमें असन्तोष की भावना फैल गयी।

(7) **पदाधिकारियों की पदच्युति**—जिन देशी राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया वहाँ के बड़े-बड़े पदाधिकारियों को पदच्युत कर दिया गया। साथ ही उन राज्यों की सेना में भी छँटनी कर दी गयी। फलस्वरूप, बहुत से पदाधिकारी और जवान बेकार हो गये और ब्रिटिश सरकार के घोर शत्रु बन गये।

(8) **अत्याचार के फलस्वरूप हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य भावना**—अब तक मुस्लिम शासक हिन्दुओं को डाह की निगाह से देखते थे और हिन्दू-मुसलमान के बीच की खाईं बहुत गहरी थी। परन्तु जब अंग्रेजों ने हिन्दू और मुसलमान दोनों पर ही अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया। गांव वालों को सताया जाने लगा, स्त्रियों का अपहरण होने लगा और अदालतों में अन्याय होने लगा तो हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही ने अंग्रेजों के विरोध में आवाज उठायी। उन दोनों का लक्ष्य एक होने के कारण उनमें एकता की भावना आ गयी और सबने संगठित होकर इस आन्दोलन को चलाया।

(ख) **धार्मिक कारण**—सन् 1857 के विद्रोह में धार्मिक कारणों ने बहुत बड़ा योग दिया। यहाँ संक्षेप में इन धार्मिक कारणों का विवेचन किया जा रहा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(1) हिन्दुओं का ईसाई बनाया जाना—यद्यपि अंग्रेज धार्मिक दृष्टि से उदार थे परन्तु अंग्रेज मिशनरियों ने ईसाई धर्म को प्रचलित करने का प्रयास किया। अनेक हिन्दुओं को ईसाई बनाया गया और उन्हें ऊंचे-ऊंचे पद प्रदान किये गये। यह कार्य अंग्रेजों ने खुलकर किया और ईसाई बनाने के रहस्य को उन्होंने छिपा कर नहीं रखा। ईसाई धर्म के इस प्रकार के प्रचार से हिन्दू क्षुब्ध हो उठे और बहुत से हिन्दू सम्प्रदायों ने अंग्रेजी सरकार के विरोध का बीड़ा उठाया।

(2) धर्म-परिवर्तन पर भी जायदाद पर अधिकार—लार्ड विलियम बेंटिक की इस घोषणा ने कि हिन्दू धर्म छोड़कर आने वाले पुत्र का अपने पिता की जायदाद पर अधिकार रहेगा, हिन्दुओं में असन्तोष की भावना व्याप्त कर दी थी। ईसाई धर्म स्वीकार करने पर भी हिन्दू पिता की जायदाद पर पुत्र का हक भारतीयों की दृष्टि में अनुचित था।

(3) गोद-निषेध प्रथा—हिन्दुओं का यह विचार है कि बिना पुत्र की प्राप्ति के मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती थी वे किसी दूसरे का पुत्र गोद ले लेते थे। यह उनके धर्म का अंग था। परन्तु डलहौजी द्वारा गोद लेने की प्रथा का निषेध कर दिये जाने पर बहुत से हिन्दू पुत्र-रत्न से वंचित हो गये। अतएव उनमें इस बात का विरोध होना स्वाभाविक ही था।

(4) अधार्मिक शिक्षा-पद्धति—भारतीय, अंग्रेजों द्वारा प्रचलित शिक्षा प्रणाली को अधार्मिक मानते थे। उन्हें अपने बच्चों को मिशनरी स्कूलों में भेजना पड़ता था वहाँ ईसाई धर्म की शिक्षा प्रदान की जाती थी। बहुत से भारतवासी इस शिक्षा को अपने धर्म पर कुठाराघात समझते थे।

(5) कारागारों में अपना पात्र रखने का निषेध—ब्रिटिश सरकार ने इस बात का निषेध कर दिया था कि कारागारों में अपना-अपना जलपात्र रखा जाय। हिन्दू लोग जिस जल-पात्र में मुसलमानों और ईसाइयों ने जल-ग्रहण किया हो, किस प्रकार जल-ग्रहण कर सकते थे? अतः इस कारण भी उनमें विद्रोह की भावना थी।

(6) चर्बी वाले कारतूसों का प्रचलन—ब्रिटिश सरकार ने ऐसे कारतूसों का प्रचलन किया जिनको चिकना करने के हेतु चर्बी का प्रयोग किया जाता था। यह विश्वास था कि यह चर्बी गाय और सुअर की होती है और इस प्रकार अंग्रेज हिन्दुओं और मुसलमानों को धर्म भ्रष्ट करना चाहते हैं।

भारतीयों का अन्ध विश्वास—भारतीय जनता का यह अन्ध-विश्वास था कि अंग्रेज सरकार रेल, तार और डाक आदि की व्यवस्था करके उनके धर्म पर ठेस पहुँचा रही है। इस कारण से बहुत से भारतीय अंग्रेजों के विरोधी हो गये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ग) सामाजिक कारण—ब्रिटिश साम्राज्य के फलस्वरूप भारतीयों की सामाजिक परम्पराओं में बड़े विप्लवकारी परिवर्तन हुए जिससे भारतीय क्षुब्ध हो उठे। विद्रोह के कुछ प्रमुख सामाजिक कारण निम्नलिखित थे—

(1) अँग्रेजों द्वारा भारतीयों को नीची निगाह से देखा जाना—अंग्रेज शासक भारतवासियों को सदैव नीची निगाह से देखते थे। गोरों और कालों के लिये अलग-अलग व्यवस्थायें थीं। एक गोरा 50 भारतवासियों को जिधर चाहता खदेड़ देता।

(2) अँग्रेजों की असामाजिकता—अंग्रेज अपने मतलब के लिए भले ही मृदुभाषी बन जाते हों परन्तु उन्होंने भारतवासियों के बीच में घुलना-मिलना उचित नहीं समझा। बहुत से भारतवासियों को ऊँचे-ऊँचे पदों से हटा कर उनका अपमान किया। इस कारण भी भारतीयों में असन्तोष व्याप्त हो गया।

(3) बाल विवाह आदि प्रथाओं पर रोक—अंग्रेजों ने भारतीयों की बाल-विवाह और सती आदि प्रथाओं पर रोक लगाकर भी उनमें असन्तोष उत्पन्न कर दिया।

(4) भारतीय रीति-रिवाजों की उपेक्षा—अंग्रेजों ने भारतीय रीति-रिवाजों की सदैव उपेक्षा की। मुसलमानों के शासन-काल में हिन्दू और मुसलमान अपने धार्मिक त्योहारों को एक साथ मनाते थे। परन्तु अंग्रेजों ने इन सब बातों पर अपनी दृष्टि नहीं डाली। फलस्वरूप, भारतीय असंतुष्ट हो गये।

(5) भारतीय भाषा और साहित्य का उचित सम्मान नहीं—यद्यपि यह कहना ठीक है कि कुछ अंग्रेजों ने भारतीय भाषाओं और साहित्य का गहन अध्ययन किया परन्तु अधिकतर अंग्रेजों का सदैव यही प्रयत्न रहा कि भारतीयों पर पाश्चात्य भाषा को लादा जाय और पाश्चात्य साहित्य को पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। अपनी भाषा और साहित्य का यह अपमान देखकर अनेक भारतवासी क्षुब्ध हो गये।

(6) प्राचीन शिक्षा प्रणाली का बहिष्कार—अंग्रेजों ने भारतवर्ष की उस शिक्षा-प्रणाली का, जो प्राचीन-काल से चली आ रही थी बहिष्कार करके नवीन शिक्षा-प्रणाली को अपनाया। भारतीय अपनी प्राचीन शिक्षा-प्रणाली को छोड़ने को तत्पर नहीं थे और इस कारण भी उन्होंने ब्रिटिश सरकार का विरोध किया।

(7) अँग्रेजों द्वारा भारतीयों को पाश्चात्य संस्कृति में रँगना—अंग्रेजों ने भारतवासियों को अपनी संस्कृति में रंगकर भारतवासियों का ही एक ऐसा वर्ग उत्पन्न कर दिया जो स्वयं भारतीय संस्कृति के विरोधी थे। अतएव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपनी संस्कृति पर गर्व करने वाले भारतवासियों द्वारा इसका विरोध किया जाना स्वाभाविक था।

(घ) **आर्थिक कारण**—आर्थिक कारणों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) **भारतीय धन का ब्रिटेन में उपयोग**—भारतवर्ष पर अनेक विदेशी आक्रमण हुए परन्तु भारतीय धन का विदेशों में प्रयोग बहुत कम मात्रा में हुआ। मुसलमानों ने भारतीयों का धन लेकर उसका उपयोग भारतवर्ष में ही किया। परन्तु अंग्रेजों ने भारत के धन का उपयोग भारत में कम और विदेशों में अधिक किया। इसलिये भारतवासियों में असंतोष व्याप्त हो गया।

(2) **अत्यधिक आर्थिक शोषण**—अंग्रेजों ने राजनीतिक दृष्टि से भारतवासियों का जितना शोषण किया था उतना ही शोषण उन्होंने आर्थिक दृष्टि से भी किया। किसानों को तरह-तरह से सताया गया और भारतवर्ष में आर्थिक विषमता बढ़ती ही गयी।

(3) **भारतीय उद्योग-धन्धों की हानि**—इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति के बाद भारत इंग्लैण्ड में बने माल की बिक्री का बहुत बड़ा केन्द्र हो गया और भारत का कच्चा माल इंग्लैण्ड जाने लगा। फलस्वरूप, भारतीय उद्योग-धन्धों को बहुत बड़ी ठेस पहुँची और इन उद्योगों के समाप्त हो जाने पर बेकारी की बहुत बड़ी समस्या उत्पन्न हो गयी।

(4) **कृषकों पर अत्यधिक बोझ**—भारतीय उद्योग-धन्धों के समाप्त हो जाने पर भारतीय कृषकों के लिये खेती के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं रह गया। किसानों की वृद्धि हो जाने पर भूमि का मूल्य भी अधिक हो गया और कृषक वर्ग ऋण के बोझ से दबने लगा। फलस्वरूप, किसानों में असन्तोष व्याप्त हो गया।

(5) **आर्थिक नीति के कारण बेकारी**—अंग्रेजी सरकार की आर्थिक नीति के कारण बहुत से व्यक्ति बेकार हो गये। सरकार ने भी उन्हें कार्य में लगाना अपना उत्तरदायित्व नहीं समझा, अतएव बेकार व्यक्ति सरकार को घृणा की निगाह से देखने लगे।

(6) **जमींदारों और ताल्लुकेदारों पर अत्याचार**—ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बहुत से जमींदारों और ताल्लुकेदारों के अधिकार यह कह कर छीन लिये कि वे जनता पर अत्याचार कर रहे हैं। परन्तु जनता कम्पनी के बजाय जमींदारों और ताल्लुकेदारों के शासन में रहना अधिक उचित समझती थी। अतः एक ओर तो जनता ब्रिटिश सरकार की विरोधी हो गयी और दूसरी ओर ताल्लुकेदार और जमींदार।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ङ) **सैनिक कारण**—इस विद्रोह के निम्नलिखित सैनिक कारण थे :—

(1) **उच्च पदों पर केवल अंग्रेजों का ही आसीन होना**—सेना के उच्च पदों पर केवल अंग्रेजों की नियुक्ति होती थी। भारतीय सैनिकों को केवल निम्न पदों पर ही नियुक्त किया जाता था। उन्हें उच्चपदों के योग्य नहीं समझा जाता था। इसे भारतीय सैनिकों ने अपना अपमान समझा और जब कभी उन्होने इसके विरोध में आवाज उठायी, उन्हें दबा दिया गया।

(2) **वेतन की असमानता**—भारतीय और अंग्रेज सैनिकों के वेतन में भी असमानता थी। अंग्रेज सैनिकों को बहुत अधिक वेतन दिया जाता था जब कि भारतीय सैनिकों को कम।

(3) **भारतीय सैनिकों के प्रति अंग्रेजों का अविश्वास**—भारतीय सैनिकों को सदैव आशंका की दृष्टि से देखा जाता था। अंग्रेज अफसर उनको सदैव शक की निगाह से देखते थे। उनके साथ, अफसरों का व्यवहार भी अच्छा न होता था।

(4) **भारतीय सैनिकों के साथ अभद्र व्यवहार**—अंग्रेज अफसर भारतीय सैनिकों से सदैव गाली से बात करते थे। वह उन्हें पशु-तुल्य समझते थे। युद्ध में मरने के लिए भारतीय सैनिकों को सदैव आगे रखा जाता था।

(5) **पाश्चात्य सैनिक नियम**—पाश्चात्य सैनिक नियमों के पूर्णतया पालन के कारण भारतीय हिन्दू सैनिकों में विद्रोह की भावना ने जन्म लिया। उदाहरण के लिए भारतीय हिन्दू सैनिकों को इच्छानुसार माला पहनने और तिलक लगाने का अधिकार नहीं था। मुसलमान सैनिक दाढ़ी नहीं रख सकते थे।

(6) **देशी नरेशों द्वारा सेना में असन्तोष का प्रचार**—वे देशी नरेश, जो किसी न किसी रूप में अंग्रेजों द्वारा सताये गये थे, भारतीय सेना में अंग्रेजों के विरुद्ध बहुत प्रचार कर रहे थे। वे भारतीय सैनिकों को भड़काने का प्रयत्न करते थे।

(7) **सेना में अनुशासन की शिथिलता**—सेना में अनुशासन की कमी सर्वत्र दिखायी देती थी। इस कमी का कारण यह था कि बड़े-बड़े अंग्रेज सैनिक पदाधिकारी राजनीतिक पदों पर नियुक्त थे और राजनीति में फँस जाने के फलस्वरूप वे सेना का संगठन सुचारु रूप से नहीं कर पाते थे।

(8) **सन् 1856 का सर्विस इंटेलिजेन्स ऐक्ट**—लार्ड कैनिंग द्वारा घोषित इस ऐक्ट के अनुसार भारतीय सैनिकों को अनिवार्य रूप से विदेशों में जाने का नियम बना दिया गया। भारतीय सैनिक जल-यात्रा को अपने धर्म के विरुद्ध मानते थे, अतः उनका विरोध करना स्वाभाविक था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(9) बहुत सी सेना का विदेशों में होना—भारत में रहने वाली बहुत सी अंग्रेज सेना मध्य-एशिया, चीन और यूरोप में थी, अतः विद्रोहियों के लिए यह अनुकूल अवसर था।

(10) सेना की छटनी—अंग्रेज गवर्नर जनरलों द्वारा सेना में छटनी कर दी गयी। बहुत से सैनिक नौकरी से निकाल दिये गये। ये सैनिक भी ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध थे और भारतीयों को विद्रोह के लिए भड़का रहे थे।

(च) तत्कालीन कारण—विद्रोह का तत्कालीन कारण चर्बी से युक्त कारतूसें थीं। एक नियम के अनुसार सिपाहियों को कारतूसों को दाँतों से काटना पड़ता था। ऐसा कहा जाता है कि कारतूस की चर्बी गाय और सुअर के मांस की थी। जैसे ही यह बात भारतीय सैनिकों में प्रचलित हुई, विद्रोह की अग्नि भड़कने लगी। यद्यपि अंग्रेज सरकार ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि वह चर्बी गाय और सुअर की नहीं है परन्तु सैनिक इसको मानने के लिये तैयार न हुए। सत्य भी यह है कि वह सुअर और गाय के मांस की ही थी। लार्ड राबर्ट्स ने अपनी पुस्तक में इस तथ्य को इन शब्दों में स्वीकार किया है—

"The researches of Mr. Forest in the records of the Government of India prove that the lubricating mixture used in preparing the cartridge was actually composed of the objectionable ingredients, cow's fats and laid the incredible disregard of the soldier's religious prejudices were displaced in the manufacture of the cartridge."

इस कारण से भारतीय सैनिक असन्तुष्ट तो थे ही परन्तु वे चुप थे। एक दिन ऐसी घटना हो गयी कि विद्रोह की चिनगारी भड़क उठी। कहा जाता है कि जनवरी 1857 में दमदम छावनी में एक ब्राह्मण ने अपना लोटा अन्य सैनिकों को अपवित्रता के कारण न छूने दिया। अन्य सैनिकों ने इस पर कहा कि अब ब्राह्मणों को इस उच्चता के अधिकार से वंचित होना पड़ेगा, क्योंकि सरकार ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने लिए कारतूसों में गाय और सुअर की चर्बी लगा दी है। उनका यह कहना था कि सैनिकों में विद्रोह की चिनगारी फैल गयी और मंगल पाण्डे नामक एक सैनिक इस भारतीय स्वतन्त्रता के संग्राम में पहला शहीद हुआ। उसकी कुर्बानी व्यर्थ न गयी और यह विद्रोह की ज्वाला समस्त देश में व्याप्त हो गयी।

इस विद्रोह के अन्य कारण कुछ भी रहे हों, परन्तु इसमें किंचित मात्र भी संदेह नहीं कि यह विद्रोह अंग्रेजी शासकों की बर्बरता के कारण हुआ। फ्लोरा ए० स्टील के यह मार्मिक शब्द बिल्कुल ठीक ही हैं कि—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"गदर का सबसे महान् कारण अंग्रेजों का अज्ञान था। वे एक ऐसे मानवीय ज्वालामुखी की चोटी पर आराम से बैठे हुए थे जो सभी लक्षणों के अनुसार फटने वाला ही था।

क्रान्ति का प्रारम्भ एवं विस्तार

(1) मंगल पाण्डे द्वारा सूत्रपात—29 मार्च 1857 को मंगल पाण्डे नामक एक ब्राह्मण सैनिक ने एक अंग्रेज व्यक्ति को गोली मारकर इस क्रान्ति का श्री गणेश किया। मगल पाण्डे को 8 अप्रेल 1857 को फांसी दे दी गयी।

(2) मेरठ में विद्रोह—मेरठ की छावनी कलकत्ते की छावनी से छोटी थी। मंगल पाण्डे की घटना ने सैनिकों में रोष की भावना उत्पन्न कर दी। 10 मई 1857 को मेरठ में विद्रोह हुआ और अनेक अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया गया और अनेक बन्दी मुक्त कर दिये गये।

(3) दिल्ली पर अधिकार और आस-पास के नगरों में विद्रोह—विद्रोही सेना 11 मई 1857 को मेरठ से दिल्ली पहुँची। दिल्ली में विद्रोहियों का स्वागत हुआ और क्रान्तिकारियों ने मुगल सम्राट बहादुरशाह को अपना नेता बना कर दिल्ली को स्वाधीन घोषित कर दिया। दिल्ली के आस-पास अलीगढ़, इटावा, इटावा, मथुरा, मैनपुरी, रुहेलखण्ड और मुजफ्फरनगर आदि में भी क्रान्ति भड़क उठी। अनेक बन्दी जेलों से छुड़ा लिये गये। बहुत से अंग्रेज मौत के घाट उतार दिये गये और 15 जून 1857 ई० तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सत्ता समाप्त कर दी गई तथा प्रत्येक स्थान पर मुगल सम्राट का शासन स्थापित हो गया।

(4) कानपुर एवं अन्य स्थानों पर विद्रोह—दिल्ली का असर कानपुर पर भी पड़ा और कानपुर में नाना साहब ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। झांसी में झांसी की रानी, मध्य भारत में तात्याँ टोपे और बिहार में कुँवरसिंह ने क्रान्ति का नेतृत्व किया। पंजाब, राजस्थान, बम्बई, हैदराबाद और काश्मीर आदि प्रदेश क्रान्ति से अलग रहे।

(5) क्रान्ति का दमन—अंग्रेजों ने क्रान्ति को बहुत शीघ्रता से कुचला। क्रान्ति के दमन में गोरखा सैनिकों ने अंग्रेजों की बहुत अधिक मदद की। सबसे पहले दिल्ली पर अधिकार किया गया और बहादुरशाह के दो पुत्रों और एक पौत्र का सिर काट दिया गया। बहादुरशाह को रंगून भेज दिया गया। जहाँ सन् 1863 में उसकी मृत्यु हो गयी। दिल्ली के बाद अंग्रेजों ने बनारस, इलाहाबाद और कानपुर को भी अपने अधिकार में कर लिया। 23 फरवरी 1958 तक कानपुर की क्रान्ति पूर्ण रूप से कुचली जा चुकी थी। अवध में जो क्रान्ति हुई उसको भी बड़ी निर्दयता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्वक कुचल दिया गया और लखनऊ का भी पतन हो गया। झांसी की रानी, कुँवरसिंह, तात्याँ टोपे आदि शहीद हुए एवं 1857 की क्रान्ति असफल हुई। यह क्रान्ति स्वतन्त्रता के इतिहास में पहला अध्याय थी।

क्रान्ति की असफलता के कारण

सन् 1857 में क्रान्ति कारियों को सफलता क्यों नहीं मिली, यह एक बड़ा पेचीदा प्रश्न है। इस क्रान्ति की विफलता के अनेक कारण थे परन्तु मुख्य कारणों का ही यहाँ विवेचन किया जा रहा है :—

(1) विद्रोह का सीमित होना—क्रान्ति की विफलता का सबसे प्रमुख कारण यह था कि यह क्रान्ति देशव्यापी न होकर देश के कुछ ही भागों में सीमित रही। नर्मदा नदी के दक्षिण भाग पर इस क्रान्ति का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। क्रान्ति की ज्वाला केवल अवध, दिल्ली, मेरठ, बिहार, झाँसी और उत्तरी भारत में ही प्रज्ज्वलित हुई। राजपूताना और पंजाब आदि स्थानों में यह चिनगारी नहीं सुलगी। बंगाल में भी पूर्ण शान्ति थी।

(2) देशी नरेशों की ब्रिटिश शासन के प्रति वफादारी—क्रान्ति की असफलता का दूसरा प्रमुख कारण यह था कि झांसी की रानी, अवध के ताल्लुकेदारों और कुछ अन्य छोटे सरदारों को छोड़कर अन्य नरेशों ने अंग्रेजों का साथ दिया।

(3) नेतृत्व का अभाव—क्रान्तिकारियों की सेना में योग्य नेतृत्व का अभाव था। झाँसी की रानी अवश्य योग्य संचालक थी। परन्तु उसे भी सेनाओं के संचालन का अनुभव प्राप्त नहीं था। इसके साथ उसे सब सेनाओं का अध्यक्ष नहीं बनाया गया था।

(4) स्वार्थ की भावना—सन् 1857 का विद्रोह एक सामूहिक विद्रोह नहीं था। सभी सेनाओं का अपना-अपना स्वार्थ था। मुसलमानों का नेतृत्व बहादुरशाह और हिन्दुओं का नेतृत्व नाना साहब तथा झांसी की रानी ने किया। सभी के अपने अलग-अलग स्वार्थ थे, फलस्वरूप युद्ध संगठित रूप से न हो सका।

(5) बंगाली सेनाओं का व्यक्तिगत चरित्र—बंगाली सैनिक बहुत अधिक घमंडी होते थे। अतएव भारत के विभिन्न प्रान्तो में जनता उन्हें घृणा की दृष्टि से देखती थी।

(6) अंग्रेजों की साधन-सम्पन्नता—यह अंग्रेजी सेना का सौभाग्य था कि उसके पास लारेन्स, हैवेलाक, निकलसन तथा एडवर्डस जैसे महान सेनानी थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनकी सेनायें भी आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से सम्पन्न थीं। अतः वे विद्रोह का दमन करने में सफल हो सके।

(7) अंग्रेजों के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ—सन् 1857 में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ अंग्रेजों के अनुकूल थीं। चीन तथा क्रीमिया के युद्ध समाप्त हो चुके थे, अतएव अंग्रेज जितनी सेना चाहते विदेशों से भारत ला सकते थे। फारस भी पराजित हो चुका और विद्रोहियों का विश्व के अन्य देशों से कोई सम्बन्ध नहीं था।

(8) अंग्रेजों को आवागमन की सुविधायें प्राप्त होना— लार्ड डलहौजी ने अपने शासन काल में रेल, तार तथा डाक की उचित व्यवस्था कर दी थी। अतः अंग्रेज सैनिक एक स्थान से दूसरे स्थान पर सुगमता से आ जा सकते थे।

(9) सामुद्रिक मार्गों पर अंग्रेजों का पूर्ण नियन्त्रण—सामुद्रिक मार्गों पर अंग्रेजों का पूर्ण नियन्त्रण था जिससे उनकी सेनायें आसानी से आ जा सकती थीं।

(10) देश में अराजकता की स्थिति—यद्यपि क्रान्तिकारियों ने अपना आन्दोलन अंग्रेजों के विरोध में ही चलाया था, परन्तु बहुत से गुण्डे और बदमाश भी आन्दोलन में शामिल हो गये। उन्होंने अंग्रेजों को लूटने के बजाय भारतीय जनता को ही लूटना प्रारम्भ कर दिया। फलस्वरूप बहुत से भारतीय लोग भी आन्दोलनकारियों के विरोध में हो गये।

(11) क्रान्ति में कृषक वर्ग का सहयोग नहीं—सन् 1857 की क्रान्ति नगरों तक ही सीमित रही। क्रान्तिकारियों ने ग्रामों में जाकर कृषक वर्ग का सहयोग लेने का प्रयास नहीं किया।

(12) समय ने क्रान्तिकारियों का साथ नहीं दिया—क्रान्तिकारियों की सफलता की आशा इसी बात में निहित थी कि उनकी शीघ्र विजय पर विजय होती जाय। परन्तु तत्कालीन प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण ऐसा न हो सका और अपनी शक्ति को संचित कर लिया।

(13) अंग्रेजों का घृणित प्रचार और फलस्वरूप देशद्रोहियों का सहयोग—अंग्रेजों ने जनता के बीच बहुत अधिक घृणित प्रचार किया। यह प्रचार उनकी कलापूर्ण राजनीति का स्पष्ट प्रमाण है। इस प्रचार के फलस्वरूप भारतवासियों में फूट उत्पन्न हो गयी। एक भाई दूसरे भाई को सन्देह की निगाह से देखने लगा।

यद्यपि क्रान्ति में भारतीय असफल रहे परन्तु क्रान्ति के बड़े भीषण परिणाम हुये। ग्रिफिन के अनुसार, भारत में 1857 के विद्रोह से बढ़कर कोई भाग्यशाली घटना नहीं घटी। उसने भारतीय आकाश के अनेक बादलों को हटा दिया। उसने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक सुस्त एवं पेटू सेना को भंग कर दिया...उसने एक अनुन्नत, स्वार्थी एवं व्यापारिक शासन व्यवस्था के स्थान पर एक सुदृढ़ शासन की स्थापना की।'

रशब्रुक विलियम्स के मतानुसार—"एक रक्त की नदी ने, कम से कम उत्तरी भारत में तो जातियों को अलग-अलग कर दिया, तथा उस पर पुल पाटना एक कठिन कार्य ही था।"

संक्षेप में क्रान्ति के निम्नलिखित परिणाम हुए—

(1) कम्पनी के शासन का अन्त—सन् 1857 की क्रान्ति के फलस्वरूप ही सन् 1858 के एक ऐक्ट के द्वारा भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन नहीं रहा। यहाँ का शासन ब्रिटेन के अधीन हो गया।

(2) गवर्नर जनरल की उपाधियों में परिवर्तन—अब गवर्नर जनरल को अपने अधीन क्षेत्रों में गवर्नर जनरल के नाम से पुकारा जाता था। परन्तु राजाओं से सम्बन्ध स्थापित करते समय वह गवर्नर जनरल न कहलाकर वाइसराय कहलाता था।

(3) भारतीय रियासतों के प्रति ब्रिटिश नीति में परिवर्तन—इस क्रान्ति के फलस्वरूप भारतीय रियासतों के प्रति ब्रिटिश नीति में भी परिवर्तन हुआ। सन् 1858 की घोषणा के फलस्वरूप इन रियासतों के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण को अपनाया गया।

(4) जनता के प्रति निश्चित नीति—इस क्रान्ति के फलस्वरूप ब्रिटिश राज्य की जनता के प्रति नीति और भी अधिक स्पष्ट हो गयी। अब तक ब्रिटिश अधिकारी असावधान थे परन्तु इस क्रान्ति के फलस्वरूप वे सावधान हो गये। महारानी विक्टोरिया ने 1858 में घोषणा की...'हम अपने अधीनस्थ अधिकारियों एवं कर्मचारियों को इस बात की आज्ञा देते हैं कि वे हमारे किसी भी प्रजाजन के धार्मिक विश्वासों अथवा उपासना में हस्तक्षेप करने से सदैव दूर रहें, अन्यथा उन्हें हमारा कोपभाजन बनना पड़ेगा।"

(5) सेना में परिवर्तन—इस विद्रोह के फलस्वरूप सेना में यह परिवर्तन किया। गया कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेना को तोड़ दिया गया और उसे सरकारी सेना में मिला दिया गया। इस सेना को सम्राट की सेना कहा जाता था। सेना में भारतीय सैनिकों की संख्या कम कर दी गयी और अंग्रेज सैनिकों की संख्या बहुत अधिक बढ़ा दी गयी।

(6) केन्द्रीय प्रशासन—पिट के भारतीय कानूनों ने इंग्लैण्ड में दोहरे नियंत्रण की स्थापना कर दी थी। डाइरेक्टर और नियंत्रण बोर्ड की अलग-अलग नियुक्तियाँ होती थीं। इस क्रान्ति के पश्चात् इन दोनों विभागों को समाप्त कर दिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया । इसके साथ ही वाइसराय पर नियंत्रण रखने के लिये भारत मन्त्री या सचिव एवं भारतीय कौंसिल की स्थापना की गयी ।

(7) **भारतीय यूरोपीय विरोध में वृद्धि**—सन् 1857 की क्रान्ति ने भारतीय और यूरोपीयों की खाईं को और अधिक चौड़ा कर दिया । घृणा की भावना बढ़ गयी । अंग्रेज भारतीयों से और अधिक घृणा करने लगे ।

(8) **हिन्दुओं और मुसलमानों में प्रबल विरोध**—इस क्रान्ति के फलस्वरूप हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की खाई भी और अधिक गहरी हो गयी । सन् 1857 के विद्रोह की असफलता के फलस्वरूप इन दोनों में गलतफहमी उत्पन्न हो गयी ।

(9) **मुस्लिम पुनर्जागरण पर चोट**—दिल्ली में विकसित होने वाले मुस्लिम पुनर्जागरण पर विद्रोह के फलस्वरूप एक गहरा धक्का लगा । सी० एफ० एण्ड्रूज के शब्दों में विकसित होने वाले आध्यात्मिक जीवन को इससे जो घातक धक्का लगा, उसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है । दिल्ली में विद्या के पुनरुद्धार का कार्य ढीला पड़ता गया । ऐसी स्थिति से अब तक भी छुटकारा नहीं नहीं मिला ।" हिन्दुओं के पुनर्जागरण का केन्द्र कलकत्ता होने के फलस्वरूप उस पर इतना व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा ।

(10) **विदेशी नीति में परिवर्तन**—इस विद्रोह के फलस्वरूप भारतीय विदेशी नीति में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ । भारत पर इंग्लैण्ड का और अधिक नियन्त्रण हो गया । भारतीय विदेशी नीति यूरोपीय राजनीति के साथ जुड़ गयी ।

(11) **भारत में आन्तरिक विकास के प्रति रुचि**—इस विद्रोह के कारण वाह्य नीति की अपेक्षा आन्तरिक विकास की ओर रुचि का केन्द्र परिवर्तित हो गया ।

प्रश्न—क्या 1857 की क्रान्ति को स्वतन्त्रता संग्राम की संज्ञा दी जा सकती है ।

1857 की घटना के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं । कुछ इसे सैनिक विद्रोह मानते हैं, कुछ मुस्लिम-सत्ता की पुनर्स्थापना का अन्तिम प्रयास और कुछ 'राष्ट्रीय विप्लव' या स्वतन्त्रता संग्राम ।

(क) **क्या यह विप्लव सैनिक विद्रोह था ?**—कुछ विचारकों का मत है कि 1857 की क्रान्ति एक सैनिक विद्रोह मात्र थी । इस विद्रोह को राजाओं का सहयोग नहीं मिला और साथ ही सम्पूर्ण जनता भी इस विद्रोह के साथ न थी । सर जान सोले ने बड़े स्पष्ट शब्दों में लिखा है, 'यह पूर्णतया अन्तर्राष्ट्रीय विद्रोह था

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिसका न कोई देशीय नेता था और न जिसको सम्पूर्ण जनता का समर्थन प्राप्त था।'

इस विद्रोह का संचालन किसी संगठित योजना द्वारा नहीं हुआ और सेना की एक छोटी सी टुकड़ी ने ही इसका दमन कर दिया। पी० ई० राबर्ट्स ने लिखा है, 'यह केवल एक सैनिक विद्रोह था जिसका तत्कालीन कारण कारतूस वाली घटना थी। इसका किसी पूर्वगामी षड्यन्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं था। यद्यपि बाद में असन्तुष्ट व्यक्तियों ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये इससे लाभ उठाया।'

टामसन और गैरेट लिखते हैं, 'भारतीय साहस और भारतीय योग्यता के लिये यह प्रशंसा की बात नहीं है कि वह 1957 की घटना को संगठित राष्ट्रीय आन्दोलन माने। इसके नेतागण बिल्कुल असफल थे।'

सर जान लारेन्स के अनुसार—

"The Mutiny had its origin in the army and that its proximate cause was the cartridge affair and nothing else."

—Sir John Lawrence.

आलोचना—यह कहना है कि 1857 का स्वतन्त्रता संग्राम पूर्ण रूप से सैनिक विद्रोह मात्र था, उचित नहीं है, क्योंकि इस विद्रोह में केवल सैनिकों ने ही भाग नहीं लिया बल्कि असंतोष की भावना सैनिकों के अतिरिक्त ग्रामीण जनता में भी व्याप्त थी। विन्सेन्ट स्मिथ ने लिखा है, 'यह विद्रोह मुख्य रूप से बंगाल की सेना का विद्रोह था, किन्तु यह सैनिकों तक ही सीमित न रहा और शीघ्र ही इसका प्रसार जनता तक हो गया। जनता में असन्तोष और बेचैनी फैली ही थी, अतः जन-साधारण ने विद्रोहियों का साथ दिया।' सेना का लक्ष्य केवल अपनी स्थिति का सुधार ही नहीं वरन् भारत की परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त कराना हो गया था। इसलिये इसे केवल सैनिक विद्रोह कहना उचित नहीं।

(ख) क्या यह विद्रोह मुस्लिम सत्ता की पुनर्स्थापना का प्रयास मात्र था ?—जेम्स आउट्रम का मत है कि 1857 की क्रान्ति मुस्लिम सत्ता की पुनर्स्थापना का प्रयास मात्र थी। इसका उद्देश्य दिल्ली के मुगल बादशाह को पुनः सिंहासनरूढ़ करना था। डा० सेन ने भी लिखा है, "यद्यपि इसका प्रारम्भ धार्मिक मनोभावनाओं के संघर्ष के रूप में हुआ था परन्तु वह स्वतन्त्रता संग्राम के रूप में समाप्त हुआ, क्योंकि इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि विद्रोही विदेशी सरकार से मुक्त होना चाहते थे और पुरानी व्यवस्था लाना चाहते थे जिसका अध्यक्ष दिल्ली का बादशाह था।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आलोचना—उपर्युक्त विचार पूर्णतया निराधार है क्योंकि इस क्रान्ति में हिन्दुओं और मुसलमानों ने साथ-साथ भाग लिया। झांसी की रानी, नाना साहब, तात्याँ टोपे, कुंवर सिंह आदि हिन्दुओं ने इस विद्रोह में खुलकर भाग लिया। इस लिए इसे केवल मुस्लिम सत्ता की पुनर्स्थापना का प्रयास मात्र नहीं कहा जा सकता। विन्सेन्ट स्मिथ का मत है, "उन लोगों ने जिनका अनुभव केवल दिल्ली तक ही सीमित था, गलती से यह मान लिया कि यह विद्रोह एक मुस्लिम षड़यन्त्र मात्र था। परन्तु अन्य स्थानों पर यह विद्रोह अधिक था और मुस्लिम विद्रोह कम।" इन परिस्थितियों में यह कहना कि यह विद्रोह मुस्लिम सत्ता की पुनर्स्थापना के लिए ही किया गया था, उचित नहीं है।

(ग) क्या यह स्वतन्त्रता संग्राम या राष्ट्रीय विप्लव था? —कुछ विद्वानों का मत है कि अंग्रेजों के शासन ने भारतीय जनता को बहुत अधिक विपन्न बना दिया था और भारतीयों का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक शोषण भी बहुत अधिक मात्रा में हुआ था। फलस्वरूप उनमें राष्ट्रीय भावना जाग्रत हुई और 1857 का विद्रोह राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम था। 1857 में भारतीय जनता ने अपनी स्वतन्त्रता के लिए विद्रोह किया था। इस विद्रोह में सैनिकों और जनता दोनों ने ही खुलकर भाग लिया। कुछ विद्वान यह कहते हैं कि आरंभ में यह सैनिक विद्रोह मात्र था परंतु बाद में इसने स्वतन्त्रता संग्राम का रूप ले लिया। अशोक मेहता ने लिखा है, 1857 का विद्रोह केवल सैनिक विद्रोह न होकर एक सामाजिक ज्वालामुखी का विस्फोट था जिससे दबी हुई शक्तियों ने अभिव्यक्ति प्राप्त की। इस विस्फोट के बाद सारी सामाजिक स्थिति बदल गई,विद्रोह के घाव बहुत गम्भीर थे। "अनेक भारतीय नेताओं ने इसे स्वतन्त्रता संग्राम के नाम से पुकारा है। डा० वृन्दावन लाल वर्मा ने 1947 में एक लेख लिखा था, उसमें उन्होंने इस आन्दोलन को एक राष्ट्रीय आन्दोलन माना था। अपने मत की पुष्टि में उन्होंने जस्टिस मेकार्थी का यह कथन प्रकाशित किया—

"It was the rebellion of native race against English power."

श्री सावरकर, जयचन्द विद्यालंकार, पं० जवाहरलाल नेहरू आदि भारतीय नेताओं ने भी इसे स्वतन्त्रता आन्दोलन माना है। पं० जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है, 'यह केवल एक सैनिक विद्रोह ही नहीं था। यह भारत में शीघ्र ही फैल गया तथा इसने जन विद्रोह और स्वाधीनता के संग्राम का रूप धारण किया।'

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"It was much more than a military mutiny, and it spread rapidly and assumed the character of popular rebellion and a war of Indian Independence."

—Jawahar Lal Nehru.

आलोचना—उपर्युक्त विचार की भी कुछ विद्वानों ने बड़ी तीखी आलोचना की है। उनका कथन है कि यह राष्ट्रीय विप्लव नहीं था क्योंकि यह केवल कुछ ही स्थानों तक सीमित रहा। देश के प्रमुख राजाओं ने जनता का साथ न देकर अंग्रेजों का साथ दिया। अधिकांश भारतीय सैनिक अंग्रेजों के प्रति वफादार रहे और वे ही राजा इस विद्रोह में सम्मिलित हुये जिनके राज्य को अंग्रेजों ने अपने राज्य में मिला लिया था। आर० सी० मजूमदार ने लिखा है, 'इसने भारतीय विप्लव का रूप कभी भी धारण नहीं किया बल्कि यह एक ही स्थान पर सीमित एवं संगठित था।"

निष्कर्ष—उपर्युक्त विचारधाराओं में सब में कुछ न कुछ सत्यता विद्यमान है, परन्तु कोई भी विचारधारा पूर्ण रूप से सत्य नहीं है। इसे न केवल सैनिक विद्रोह ही कहा जा सकता है और मुस्लिम सत्ता का प्रयास मात्र बतलाया जा सकता है और न इसे पूर्ण स्वाधीनता संग्राम की ही संज्ञा दी जा सकती है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि आरम्भ में यह सैनिक क्रान्ति थी, परन्तु कालान्तर में इसने स्वतन्त्रता-संग्राम का रूप धारण कर लिया। यद्यपि सभी राजाओं ने और भारत की सम्पूर्ण जनता ने इस संग्राम में भाग न लिया परन्तु आंशिक रूप से यह आजादी की लड़ाई ही थी। इस विद्रोह ने वह मार्ग प्रशस्त कर दिया कि आगे चलकर भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना जागृत हुई और अंग्रेजों से निरन्तर लोहा लेते हुए उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्त की। इसे भले ही सैनिक विद्रोह मात्र कहा जाय परन्तु आधुनिक भारत का प्रत्येक नागरिक इसमें अपने स्वतन्त्रता की चिनगारी सुलगती हुई देखता है।

———

प्रश्न (2) भारत में राजनीतिक जागृत के कारणों का संक्षिप्त परिचय दीजिये और राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास पर प्रकाश डालिये।

15, अगस्त, 1947 को भारत स्वतन्त्र हुआ। अनेक वर्षों की गुलामी के बाद हमने स्वतंत्र भारत में सांस ली और राष्ट्र-निर्माण की ओर अग्रसर होने का संकल्प किया। हमारी गुलामी का मूल कारण हममें राजनीतिक जागृति का अभाव था। जब देश में राजनीतिक जागृति आई तभी स्वतंत्रता-आन्दोलन ने जोर पकड़ा और फलस्वरूप भारत स्वतन्त्र हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजनीतिक जागृति के कारण

भारत की राजनीतिक जागृत्ति के अनेक कारण थे । इनमें से प्रमुख कारणों की चर्चा हम यहाँ संक्षेप में कर रहे हैं—

(1) राजनीतिक एकता की स्थापना—ब्रिटिशकाल में भारत में बहुत समय बाद राजनीतिक एकता की स्थापना हुई और काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और आसाम से लेकर द्वारिका तक भारत एकता के सूत्र में बंध गया ।

(2) अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव—देश में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में अंग्रेजी शिक्षा ने भी योगदान दिया । देश में बोली जाने वाली विभिन्न भाषाओं के फलस्वरूप राजनीतिक जागृति उत्पन्न नहीं हो रही थी । अंग्रेजी भाषा ने इस कार्य को पूरा किया । इस भाषा के माध्यम से हमने विदेशों के बारे में जानकारी प्राप्त की और यह जाना कि दुनिया के देश किस प्रकार स्वतंत्र हुए ।

(3) पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव—पश्चिमी सभ्यता के फलस्वरूप भारतवासियों ने यह जाना कि अपने रहन-सहन को ऊंचा उठाना अत्यन्त आवश्यक है । इस स्तर को ऊंचा उठाने के लिए स्वतंत्रता की प्राप्ति आवश्यक समझी गई ।

(4) भारतवासियों का विदेशियों से सम्बन्ध—भारतवासियों का विदेशियों से सम्बन्ध भी भारत में राजनीतिक जागृति का एक कारण बना । अंग्रेजी पढ़े हुए भारतीय जब विदशों में गए तब उन्हें अपने देशवासियों और अन्य देश के रहने वालों की प्रगति का अन्तर समझ में आया । इन नवयुवकों ने यह जाना कि हमारी अवनति का मूल कारण परतंत्रता है । अतएव उन्होंने भारत को स्वतन्त्र कराने की प्रतिज्ञा की और भारत आकर राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात किया ।

(5) 19 वीं शताब्दी के सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन—19 वीं शताब्दी के धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों, ब्रह्म समाज, आर्य समाज और थियोसाफिकल सोसाइटी आदि ने देश में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में महान् योगदान दिया । इन आन्दोलनों के फलस्वरूप भारतवासियों के विचारों में स्वतंत्रता आई और वे प्रगतिशील बने । स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्रीमती ऐनी बेसेन्ट और स्वामी विवेकानन्द ने भारतवासियों में आत्म सम्मान की भावना का जागरण किया और राष्ट्रीय जागृति के बीज बोये ।

(6) 1857 का स्वतन्त्रता संग्राम—1857 के स्वतन्त्रता संग्राम को भारतीय भूले नहीं थे । उन्होंने विदेशी सरकार द्वारा किये गये अत्याचारों को अपनी आंखों से देखा था । फलस्वरूप उनके दिल में आग भभक रही थी और वे किसी भी प्रकार विदेशियों से मुक्ति पाना चाहते थे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(7) **आर्थिक असन्तोष एवं बढ़ती हुई गरीबी**—आरम्भ से ही अंग्रेजों ने ऐसी आर्थिक नीति अपनाई थी कि इस देश का अधिक से अधिक धन उनके देश जाता रहे। हमारे व्यापार और उद्योग-धंधों को नष्ट करने का हर सम्भव प्रयास किया गया था। फलस्वरूप, देश की आर्थिक स्थिति गिरती जा रही थी और यहाँ की जनता बहुत अधिक गरीब होती जा रही थी। इन परिस्थितियों में असंतोष की लहर दौड़ जाना स्वाभाविक था।

(8) **समाचार पत्रों का प्रचलन एवं साहित्यिक प्रगति**—अंग्रेजी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के समाचार-पत्रों और भारतीय भाषाओं के साहित्य ने देश में राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न करने में भी योगदान दिया। बंकिम, टैगोर, रजनीकान्त जैन और प्रेमचन्द आदि साहित्यकारों ने भारतीय जनता को जगाया। देश के विभिन्न प्रान्तों में अनेक ऐसे समाचार-पत्र निकाले गए जिन्होंने भारतीय जनता में स्वतंत्रता की आग भड़का दी।

(9) **यातायात के साधनों की वृद्धि**—यातायात के साधनों के फलस्वरूप समस्त भारत एक सूत्र में बँध गया और यह सम्भव हो गया कि विभिन्न प्रान्तों के लोग एक स्थान पर एकत्रित हो सकें। राष्ट्र के नेताओं को भी अपने प्रचार में सुविधा प्राप्त हुई और वे विभिन्न स्थानों पर घूम-घूमकर जनता में राजनीतिक चेतना उत्पन्न कर सके।

(10) **अंग्रेजों के अत्याचार**—अंग्रेजों के अत्याचारों ने भी भारतीय जनता में राजनीतिक चेतना उत्पन्न की। 1887 के दिल्ली दरबार के समय किया गया अपव्यय 1883 में एलबर्ट बिल द्वारा किए गए पक्षपात और स्वतन्त्रता-प्रेमियों पर किए गए अत्याचारों को भारतीय भूल न सके और उन्होंने विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने में ही अपना हित समझा।

(11) **इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना**—सन् 1885 में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। आरंभ में इस संस्था का उद्देश्य देश में ब्रिटिश सरकार की नीतियों में सुधार करना था परंतु कालान्तर में इस संस्था का नेतृत्व जिन लोगों के हाथ में आया उन्होंने देश के स्वतन्त्रता की आग भड़का दी और जनता में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न की।

(12) **पड़ोसी देशों में राजनीतिक जागृति**—जिस समय उपर्युक्त कारणों से भारत में विदेशी सरकार के विरुद्ध असन्तोष की लहर दौड़ रही थी उसी समय कुछ पड़ोसी देशों में बड़े क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। ऐबीसीनिया जैसे छोटे से देश ने इटली को हरा दिया। 1904 में एक युद्ध में रूसियों को जापानियों के हाथों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुँह की खानी पड़ी , यूनान और टर्की आदि में स्वतन्त्रता संग्राम हुए । इन घटनाओं के फलस्वरूप भारतवासियों की समझ में यह आ गया कि अंग्रेजों को देश से निकालना असम्भव नहीं है, केवल आवश्यकता इस बात की है कि वे एक होकर इस कार्य में जुट जायँ । इस भावना ने भी देश में राजनीतिक और राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न कर दी ।

राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास

राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रथम संगठित प्रयास सन् 1857 में किया गया । सन् 1857 के स्वतन्त्रता आन्दोलन के पश्चात् भारतवासियों में धीरे-धीरे यह भावना प्रबल होती गई कि शीघ्र ही उन्हें अंग्रेजों के दमन-चक्र से छुटकारा पाना चाहिये । सन् 1885 में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई और इसके कुछ समय बाद भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को एक नई गति मिली । अन्त में यह आन्दोलन इतना उग्र हो गया कि विदेशी सरकार को घुटने टेकने पड़े और भारत स्वतन्त्र हुआ । अध्ययन की सुविधा के लिए हम राष्ट्रीय आन्दोलन को निम्नलिखित रूप में रख सकते हैं—

(1) प्रारंभिक काल..........................सन् 1857 से सन् 1885 तक ।
(2) कांग्रेस का प्रथम काल...............सन् 1885 से सन् 1905 तक ।
(3) कांग्रेस का द्वितीय काल ....सन् 1906 से सन् 1915 तक ।
(4) कांग्रेस का तृतीयकाल.................सन् 1916 से सन् 1923 तक ।
(5) कांग्रेस का चतुर्थ काल...............सन् 1929 से सन् 1938 तक ।
(6) कांग्रेस का पंचम काल...............सन् 1939 से सन् 1947 तक ।
(7) स्वाधीन भारत.......................सन् 1947 से अब तक ।

(1) प्रारम्भिक काल (सन् 1857 से सन् 1885 तक)

प्रथम स्वाधीनता संग्राम—सन् 1857 से ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध पहला संयुक्त मोर्चा स्थापित किया गया । वास्तव में यह पहला प्रयास था कि जब भारतवासियों ने एक होकर विदेशी शासन के विरुद्ध आवाज उठाई थी । यह स्वतन्त्रता आन्दोलन असफल हुआ और हजारों भारतीय फांसी के फन्दे पर लटका दिये गए । आन्दोलन दबा अवश्य दिया गया परंतु स्वतन्त्रता की चिनगारी लग गई ।

(2) **स्थानीय संस्थाओं का निर्माण**—स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात् अंग्रेजों ने "फूट डालो और शासन करो" की नीति अपनाई परंतु वे राष्ट्रीयता की बढ़ती हुई भावना को न रोक सके । अनेक स्थानों पर स्थानीय संस्थाओं की स्थापना हुई जिनके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

द्वारा लोगों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई। स्थानीय संस्थाओं में "इण्डियन एशोसिएशन," "मद्रास महाजन सभा" और "ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन" आदि प्रमुख हैं।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म—28 दिसम्बर सन 1825 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ। इस संस्था की स्थापना भारतीय सिविल सर्विस के अवकाश प्राप्त सदस्य श्री ए० ओ० ह्यूम द्वारा तत्कालीन पूर्वी भारत के वाइसराय लार्ड डफरिन की सलाह से की गई। प्रारंभ में यह संस्था कुछ बड़े-बड़े वकीलों, बैरिस्टरों, जमींदारों, और व्यापारियों के हाथ में थी, जिनका कार्य ब्रिटिश सरकार की सहायता करना था। आरंभ में इसका उद्देश्य राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना नहीं था। इस सम्बन्ध में लाला लाजपत राय ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है—

"But one thing is clear that the Congress was started mere with the object of saving the British Empire from danger than with that of winning Political liberty for India."

कांग्रेस का प्रथम विकास काल (सन् 1885 से सन् 1905 तक

(1) प्रारम्भिक अधिवेशन और मांगें—आरम्भ में कांग्रेस ने आवेदन और प्रार्थनाओं का आश्रय लिया। कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन बम्बई में श्री उमेश चन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में हुआ। दूसरा अधिवेशन दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में कलकत्ते में हुआ। तीसरा अधिवेशन मद्रास में श्री बदरुद्दीन तैयब की अध्यक्षता में हुआ। 1888 में इलाहाबाद में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और 1889 में बम्बई में। बम्बई अधिवेशन में, जिसकी अध्यक्षता श्री वेडरन बर्न ने की, ब्रिटिश सरकार से यह मांग की गई कि भारतीयों को सेना, सिविल सर्विस और धारा सभाओं में अधिक स्थान दिए जायँ तथा उन्हें उच्च सरकारी नौकरियां प्राप्त करने की सुविधा प्रदान की जाय।

(2) इण्डियन काउन्सिल ऐक्ट (सन् 1892)—कांग्रेस के सुधारों की माँग के फलस्वरूप 1892 का इण्डियन काउन्सिल ऐक्ट पारित किया गया, जिसके अनुसार विश्वविद्यालय, नगर महापालिकाओं, जिला बोर्डों आदि को विधान परिषदों के कुछ सदस्य चुनने का अधिकार प्राप्त हुआ। यह चुनाव अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली द्वारा चुनने की व्यवस्था थी और सदस्यों को परिषद् में प्रश्न पूछने और बजट पर बहस करने का अधिकार नहीं था। अतएव देश के नेताओं ने इसकी आलोचना की। श्री डब्लू० सी० बनर्जी ने आवाज लगाई—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"That act does not profess to give us much. We must go on our agitation and not stop until we get what we all think and believe and what we have a right to get."

इस अधिनियम के विषय में श्री मदन मोहन मालवीय ने कहा है कि इस अधिनियम के द्वारा भारतवासियों को देश के प्रशासन में दखल देने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं हुआ।

(3) वंग विभाजन—19 वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में महाराष्ट्र में लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में राजनीतिक चेतना उत्पन्न हो चुकी थी। इसी बीच 1897 का दुर्भिक्ष पड़ा और उसके तुरन्त बाद बम्बई प्रेसीडेन्सी में ताउन का प्रकोप हुआ। जनता के सरकारी नीतियों के खिलाफ आवाज उठाई। जुलाई 1905 में बंगाल विभाजन की घोषणा की गई जिससे जनता और अधिक क्षुब्ध हो गई।

इस घोषणा के फलस्वरूप चारों तरफ आग सी लग गई और स्वदेशी आन्दोलन ने जोर पकड़ा। अँग्रेजों ने दमनकारी नीति का आश्रय लिया। परन्तु आग बढ़ती ही गई। जुलाई 1905 में बंगाल विभाजन की घोषणा की गई जिसने चारों ओर हलचल मचा दी।

(3) कांग्रेस का द्वितीय विकास काल (सन् 1906 से सन् 1915 तक)

(1) कांग्रेस की नीति में परिवर्तन—सन् 1885 से सन् 1925 तक का काल प्रार्थनाओं, अपीलों और विशुद्ध वैधानिकवाद का काल था। इस समय तक कांग्रेस के नेताओं का अग्रेजों की न्यायप्रियता और लोकतन्त्रात्मक भावना में विश्वास था। यद्यपि कलकत्ता कारपोरेशन ऐक्ट, 1889, इण्डियन कौंसिल ऐक्ट 1892 और इण्डियन युनिवर्सिटीज ऐक्ट से जनता सन्तुष्ट नहीं थी फिर भी कांग्रेस के नेता प्रार्थनाओं और अपीलों की नीति का अनुसरण करते रहे। सन् 1905 के वंग-विभाजन की घोषणा एक ऐसा विस्फोट था जिसने कांग्रेस के कुछ नेताओं को अपनी नीति में परिवर्तन करने को वाध्य कर दिया। श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने कहा है—

"यह घोषणा एक बम के गोले की भाँति गिरी। हमें ऐसा लगा कि हम अपमानित, विक्षिप्त और प्रवंचित किये गये हैं।"

इस विभाजन के फलस्वरूप चारों तरफ का वातावरण उग्र हो गया। ब्रिटिश सरकार के दमनकारी नीति के फलस्वरूप कांग्रेस में उग्रदलीय सदस्य बढ़ते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गये और उन्होंने प्रार्थना का मार्ग छोड़ कर आन्दोलन का मार्ग अपनाया। दादा भाई नौरोजी के सभापतित्व में हुए 1906 के कलकत्ता अधिवेशन में लाला लाजपत-राय, श्री बाल गंगाधर तिलक और विपिन चन्द्र पाल ने यह प्रस्ताव रखा कि स्वदेशी आन्दोलन को अपनाया जाय, राष्ट्रीय शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाय और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया जाय। यद्यपि कांग्रेस के बहुत से सदस्य इससे सहमत नहीं थे परन्तु उन्हें झुकना पड़ा। यह अधिवेशन कांग्रेस की नीतियों में परिवर्तन का द्योतक था।

6717

(2) **कांग्रेस में फूट**—1907 में सूरत में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में कांग्रेस में फूट पड़ गई। गरम दल के नेता जिनमें, लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक और विपिन चन्द्र पाल प्रमुख थे। ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आन्दोलनात्मक रवैया अपनाने की मांग कर रहे थे। नरम दल के नेता जिनमें श्री गोपाल कृष्ण गोखले, श्री फीरोजशाह मेहता, श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी और पण्डित मदनमोहन मालवीय प्रमुख थे, शान्ति एवं वैधानिक तरीकों को अपनाने के पक्षपाती थे। दोनों दलों मे मतभेद इतना अधिक बढ़ा कि गरम दल वालों को कांग्रेस से बाहर निकाल दिया गया और तब से 10 वर्ष तक कांग्रेस पर पूर्ण रूप से नरम दल वालों का अधिकार रहा। इस फूट को बढ़ाने का ब्रिटिश सरकार ने पूर्ण प्रयत्न किया। उसने गरम दल वालों को मिन्टोमार्ले के सुधारों का प्रलोभन देकर अपनी ओर मिला लिया और नरम दल वालों पर अत्याचार प्रारम्भ किए। तिलक को माण्डले जेल भेज दिया गया, लाजपत राय को बिना मुकदमा चलाये अमेरिका भेज दिया गया और विपिन चन्द पाल को 6 मास का कठोर कारावास का दण्ड दिया गया।

(3) **मुस्लिम साम्प्रदायिकता का प्रारम्भ**—अंग्रेजों ने सदैव से ही "फूट डालो और शासन करो" की नीति का अनुसरण किया। उन्होंने मुसलमानों को हिन्दुओं से अलग रखने का प्रयास किया। यह देश का दुर्भाग्य ही था कि सर सैयद अहमद खां जैसे नेता भी राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग रहे और उन्होंने मुसलमानों को आन्दोलन से अलग रखा। 1 अक्टूबर, 1906 को श्री आगा खाँ के नेतृत्व में तत्कालीन वाइसराय लार्ड मिण्टो से मुसलमानों का एक विशिष्ट मण्डल मिला जिसमें उनके लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र के अतिरिक्त स्थानों की माँग की गयी। वास्तव में यह सब कार्य लार्ड मिण्टो के इशारे पर ही हुए थे अतएव उसने उनको तुरन्त अनुमति दे दी। 6 दिसम्बर, 1906 को इन्हीं सदस्यों ने 'भारतीय मुस्लिम लीग' की स्थापना की जिसने ब्रिटिश सरकार के प्रति अपनी वफादारी व्यक्त की और राष्ट्रीय आन्दोलन पर कुठाराघात करना प्रारम्भ किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(4) **मिण्टो-मार्ले सुधार**—1909 ई० में मिन्टो-मार्ले सुधारों की घोषणा की गई। इन सुधारों के अनुसार काउंसिल के सदस्यों की संख्या में वृद्धि कर दी गई तथा साम्प्रदायिक निर्वाचनों की प्रथा का प्रारम्भ हुआ। काउंसिल के सदस्यों को प्रश्न पूछने तथा प्रस्ताव रखने का अधिकार प्रदान किया गया। इन सुधारों के फलस्वरूप भारतीयों को कोई महत्वपूर्ण शक्ति नहीं प्रदान की गई थी। ब्रिटिश सरकार हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच की खाई को गहरा करने में अवश्य ही पूर्ण सफल हुई।

(5) **आपसी फूट**—इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 1906 ई० से लेकर 1915 ई० तक का युग आपसी फूट का युग था। हिन्दुओं और मुसलमानों में मतभेद उत्पन्न हुआ और कांग्रेस के गरम दल वालों में फूट पड़ी। परन्तु राष्ट्रीय आन्दोलन का वेग न रुका। कांग्रेस के बाहर हिंसा में विश्वास रखने वाले क्रान्तिकारियों का जन्म हुआ जिन्होंने लड़कर, मरकर स्वतन्त्रता को प्राप्त करना अपना ध्येय बनाया।

(4) कांग्रेस का तृतीय विकास काल (1916 से 1928 तक)

(1) **लीग-कांग्रेस समझौता**—1916 में लखनऊ में मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच में एक समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार कांग्रेस ने कुछ हद तक पृथक निर्वाचन के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया।

(2) **उग्रवादी दल का कांग्रेस में पुनः प्रवेश**—1916 से लखनऊ के सम्मेलन में गरम और नरम दल वालों का मतभेद दूर हो गया और गरम दल वाले पुनः नरम दल में सम्मिलित हो गये। इस सम्मेलन के फलस्वरूप कांग्रेस को नई चेतना मिली। इसी सम्मेलन में लोगमान्य तिलक ने स्वराज्य सम्बन्धी प्रस्ताव रखा जो बहुमत से पारित हो गया। अंग्रेजी सरकार से भारत में उत्तरदायी शासन की मांग की गई।

(3) **होम रूल आन्दोलन**—1916 में बाल गंगाधर तिलक ने बम्बई में और श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने मद्रास में होम लीग की स्थापना की। तिलक ने 'केसरी' और 'मरहटा' नामक पत्रों की सहायता से इस आन्दोलन का प्रचार किया। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने भी 'कामन वील' और 'न्यू इण्डिया' नामक दो पत्रों की मदद से आन्दोलन के वेग को तीव्र बनाया। इस आन्दोलन के फल स्वरूप श्रीमती ऐनी बेसेन्ट और उनके दो सहयोगियों को गिरफ्तार कर लिया गया और तिलक की जमानत मांगी गई। फलस्वरूप, जनता में घोर असन्तोष व्याप्त हो गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(4) महात्मा गाँधी का आगमन—इसी समय भारतीय राजनीति में एक ऐसे महापुरुष का आगमन हुआ जिसने देश की हवा को ही बदल दिया। यह महापुरुष थे महात्मा गांधी। दक्षिणी अफ्रीका के सत्याग्रह से लौटने के बाद उन्होंने भारत आकर कांग्रेस में नई जान फूँक दी। 1920 में लोकमान्य तिलक, जिनका नारा था, 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है', की मृत्यु हो गई और तब से महात्मा गांधी भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के सर्वेसर्वा बन गये।

(5) सन् 1917 की घोषणा—प्रथम महायुद्ध सन् 1914 में प्रारम्भ हुआ। अंग्रेजों तथा मित्र राष्ट्रों ने यह घोषणा की कि वह युद्ध स्वतन्त्रता, जनतन्त्र और नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए लड़ रहे है। इस युद्ध में महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेसियों ने ब्रिटिश सरकार का साथ दिया और भारतीय सैनिकों ने इस युद्ध में अद्भुत वीरता का परिचय दिया। परन्तु इसी बीच ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन दबाना प्रारम्भ कर दिया। जनता क्षुब्ध हो गई और जगह-जगह षड़यंत्र प्रारम्भ हुए। फलस्वरूप, ब्रिटिश सरकार ने 1917 में यह घोषणा की कि वह भारत को आंशिक स्वराज्य दे देगी।

(6) माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार और कांग्रेस में पुनः फूट—1917 में भारत सचिव माण्टेग्यू तथा तत्कालीन वाइसराय ने समस्त भारत का भ्रमण करके यह सुधार योजना प्रस्तुत की। इस योजना के अनुसार विधान सभा के अधिकार बढ़ा दिये और प्रान्तों में दोहरी शासन-प्रणाली स्थापित की गई। इन सुधारों को 1919 के ऐक्ट के रूप में पारित कर दिया गया। कांग्रेस के गरम दल वालों ने इन सुधारों को स्वीकार कर लिया परन्तु नरमदल वालों ने उनकी तीखी आलोचना की। परिणामस्वरूप, कुछ नरम दल वाले कांग्रेस से अलग हो गये और उन्होंने भारतीय उदार दल संघ की स्थापना की।

(7) रोलेट ऐक्ट, खिलाफत आन्दोलन और जलियानवाला बाग का हत्या काण्ड—भारतवासी दिन प्रतिदिन स्वतन्त्रता के आन्दोलन को तेज कर रहे थे। इस राष्ट्रीय आन्दोलन के दमन के हेतु रोलेट ऐक्ट पारित किया गया। इस ऐक्ट के अनुसार सरकार को यह अधिकार दिया गया कि वह राजद्रोहात्मक हलचलों का सख्ती से दमन कर सकती है और किसी भी व्यक्ति को बिना वारण्ट के गिरफ्तार कर सकती है। इस ऐक्ट का तीव्र विरोध हुआ। उसे बिना अपील, बिना वकील तथा बिना दलील का कानून कहा गया। महात्मा गांधी ने 30 मार्च, 1919 को इस ऐक्ट के खिलाफ देश-व्यापी आन्दोलन आरम्भ कर दिया।

मुसलमानों ने भी रोलेट ऐक्ट के विरुद्ध कांग्रेस का साथ दिया। इसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुख्य कारण यह था कि मुसलमान खिलाफत के प्रश्न पर अंग्रेजों की नीति से क्षुब्ध थे। अंग्रेजों ने टर्की के प्रथम युद्ध के पश्चात् मुसलमान खलीफा को गद्दी से उतार दिया था। कांग्रेस ने हिंदुओं और मुसलमानों को मिलाने का यह स्वर्ण अवसर समझा। रोलेट ऐक्ट के विरोध के साथ ही खिलाफत का प्रश्न भी जोड़ दिया गया। इस आन्दोलन के बड़े भयंकर परिणाम हुए। महात्मा गाँधी ने अहिंसात्मक आन्दोलन छेड़ा परन्तु कई स्थानों पर हिंसात्मक घटनायें हुईं। दिल्ली, कलकत्ता, लाहौर और अमृतसर में अनेक हिंसात्मक घटनायें हुईं। पंजाब में अंग्रेज अधिकारी जनता के आन्दोलन से घबड़ा उठे और उन्होंने 10 अप्रैल को डाक्टर सत्यपाल और डा० किचलू को गिरफ्तार कर लिया। फलस्वरूप, जनता भड़क उठी और उसने उनकी गिरफ्तारी के विरुद्ध एक जुलूस निकाला। जब दल की पुलिस से मुठभेड़ हुई तब 5 यूरोपियन मौत के घाट उतार दिए गए। नेताओं की गिरफ्तारी के विरुद्ध 17 अप्रैल, 1919 को जलियाना वाला बाग में एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया जिसमें लगभग 20 हजार व्यक्ति सम्मिलित हुए। जनरल डायर ने इस सभा को गैर कानूनी घोषित कर दिया और अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलवानी शुरू कर दीं। फलस्वरूप 309 व्यक्ति मारे गए और 1200 व्यक्ति से अधिक जख्मी हुए। लोगों पर तरह-तरह के अत्याचार शुरू किए गए और पंजाब में मार्शल ला लागू कर दिया गया। इस हत्याकाण्ड की प्रतिक्रिया समस्त देश में हुई और चारों तरफ क्रोध और प्रतिकार की भावना बढ़ती गई। महात्मा गाँधी ने ब्रिटिश सरकार से माँग की कि वह पंजाब के हत्याकाण्ड की जाँच करे। उसकी जाँच हुई परन्तु जनरल डायर के अपराध पर लीपा-पोती कर दी गई।

(8) **असहयोग आन्दोलन**—20 अगस्त, 1920 को महात्मा गांधी ने समस्त देश में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन में तीन बातें प्रमुख थीं।

(1) काउन्सिल का बहिष्कार।
(2) न्यायालयों का बहिष्कार।
(3) विद्यालयों का बहिष्कार।

इनके अतिरिक्त सरकारी पदों, उपाधियों, दरबारों और विदेशी सामान के बहिष्कार की भी बात कही गई थी। मुसलमानों ने भी इस आन्दोलन में भाग लिया और समस्त देश में हिन्दू मुस्लिम एकता का बिगुल बज गया। असहयोग आन्दोलन ने अत्यन्त तीव्र रूप धारण किया। हजारों विद्यार्थियों ने अपने विद्यालय छोड़ दिए। राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना हुई। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खादी एवं स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग बढ़ गया। खिलाफत सम्मेलनों में मुसलमानों ने ब्रिटिश सरकार की नौकरी करना हराम घोषित कर दिया। यह आन्दोलन कितना व्यापक था इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। इस आन्दोलन के विषय में डा० राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है :—

"Never before in the history of India since its connection with Britain, had popular indignation and popular enthusiasm been greater. Never before during this long period had the country secured the loving and ungrudging services of so many of persons."

(9) प्रिन्स आफ वेल्स का भारत आगमन और उनका विरोध—1921-22 में प्रिन्स आफ वेल्स भारत आये। उनका स्वागत भारत में 'प्रिन्स आफ वेल्स वापस जाओ' के नारों से हुआ। देश में हड़तालें हुई और नारे लगाए गए तथा सम्प्रदायिक दंगे भी प्रारम्भ हो गये।

(10) चौरीचौरा काण्ड और सत्याग्रह का स्थगन—5 फरवरी, 1922 को एक ऐसी घटना घटी जिसके फलस्वरूप महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आन्दोलन को स्थगित कर दिया। चौरीचौरा गाँव में कांग्रेस का एक जुलूस निकल रहा था। पुलिस ने उसे रोकना चाहा। प्रदर्शनकारियों ने जोश में आकर एक थाने में आग लगा दी जिसके फलस्वरूप एक दरोगा और 21 सिपाही जीवित भस्म हो गए। गांधी जी इस हिंसात्मक घटना से क्षुब्ध हो गए और उन्होंने आन्दोलन को स्थगित कर दिया। ऐसे समय में जब 23 हजार व्यक्ति जेल जा चुके थे और जनता स्वराज्य प्राप्ति का स्वप्न देख रही थी, आन्दोलन को स्थगित कर देना गांधी जी का एक विचित्र कार्य था। पं० मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपत राय जैसे नेताओं ने गांधी जी के इस कार्य की तीव्र आलोचना की और बहुत से गांधी भक्त लोग भी गांधी विरोधी हो गए। बंगाल और महाराष्ट्र में तो गांधी की बहुत अधिक आलोचना हुई।

(11) गांधी को कारावास दण्ड और साम्प्रदायिकता का बोलबाला—ब्रिटिश सरकार ने यह देखा कि गांधी जी की लोकप्रियता काफी कम हो गई है, अतएव उन्हें 13 मार्च, 1922 को कारवास का दण्ड दिया गया जिसके फलस्वरूप भारत के समस्त राजनीतिक क्षेत्र में उदासी छा गई। इसी काल में हिन्दू महासभा की स्थापना हुई और मुस्लिम लीग का नेतृत्व मिस्टर जिन्ना के हाथ में आ गया। परिणाम स्वरूप, साम्प्रदायिकता का बोलबाला हो गया तथा हिन्दू और मुसलमानों के बीच भयंकर रक्तपात हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(12) कांग्रेस का काउन्सिल में प्रवेश—कांग्रेस के नेताओं ने साम्प्रदायिक झगड़ों से जनता को बचाने के लिए काउन्सिल में प्रवेश का कार्यक्रम बनाया। इन नेताओं में प्रमुख थे—मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चितरञ्जन दास। इस निर्णय के फलस्वरूप भी कांग्रेस में दो दल हो गए। एक दल काउन्सिल में प्रवेश का पक्षपाती था और दूसरा विरोधी। परिणाम यह हुआ कि नेहरू और दास ने मिलकर अपनी एक पार्टी बना ली और इस बात का प्रचार किया कि चुनाव में भाग लेकर विधान सभा में जाना चाहिए। बाद में कांग्रेस के अन्य नेताओं ने भी उनका साथ दिया। इस पार्टी को काउन्सिल प्रवेश के कार्यक्रम में बहुत अधिक सफलता मिली और उनके बहुत से सदस्य प्रान्तों की धारा सभाओं में पहुँच गए। श्री विट्ठल भाई पटेल केन्द्रीय असेम्बली के अध्यक्ष बने। 1925 ई० में देश बन्धु चितरंजन दास की मृत्यु हो गई और उनकी मृत्यु से स्वराज्य पार्टी को बहुत बड़ा धक्का लगा। देश में साम्प्रदायिक दंगे प्रारम्भ हो गए और 1926 में काउन्सिल के चुनाव में स्वराज्य पार्टी को पहले की सी सफलता नहीं मिली।

साइमन कमीशन का आगमन—1927 में भारत के शासन-सम्बन्धी सुधारों की जाँच करने के हेतु साइमन कमीशन भारत आया। इस कमीशन के आगमन के फलस्वरूप देश में राजनीतिक चेतना की लहर पुनः तेजी से व्याप्त हो गई। जगह-जगह कमीशन के सदस्यों को काले झण्डे दिखाये हुए। इसी समय अंग्रेजों ने भारतवासियों से यह कहा कि तुम एक होकर अपनी माँग को हमारे सामने रखो। अंग्रेज जानते थे कि हिन्दू और मुसलमान कभी भी एक नहीं हो सकते। भारतीयों ने अंग्रेजों की इसी चुनौती को स्वीकार किया।

(10) सर्वदल सम्मेलन और नेहरू रिपोर्ट—कांग्रेस के नेताओं ने अंग्रेजों की चुनौती को स्वीकार करते हुए लखनऊ में सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन किया। हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में बनाई गई समिति की रिपोर्ट को सरकार के सामने रखा। यह रिपोर्ट "नेहरू-रिपोर्ट" के नाम से प्रसिद्ध है। ब्रिटिश सरकार ने नेहरू रिपोर्ट की एक भी सिफारिश नहीं मानी।

(4) कांग्रेस का चतुर्थ विकास काल (1929 से 1938 तक)

(1) लाहौर अधिवेशन—कांग्रेस का चतुर्थ विकास-काल वह काल था जिसमें भारत के लिए पूर्ण स्वाधीनता की माँग की गई। 1929 में लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में पहली बार पूर्ण स्वराज्य या स्वतन्त्रता का लक्ष्य बनाने की घोषणा की गई। अधिवेशन के निर्णयानुसार 26 जनवरी,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1930 को समस्त देश में पहला स्वतन्त्रता दिवस मनाया गया और यह निश्चय किया गया कि जब तक पूर्ण स्वराज्य की घोषणा नहीं की जाती, भारतवासी चैन से नहीं बैठेंगे।

(2) 1930 का सविनय अवज्ञा आन्दोलन—पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा के फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनों को नया जीवन मिला। ब्रिटिश सरकार भारतीयों की इस माँग को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी और दमन का चक्र चलाये जा रही थी, जिसके फलस्वरूप 14 फरवरी, 1930 को साबरमती के आश्रम में कांग्रेस की एक बैठक में महात्मा गांधी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने का अधिकार दिया गया। 12 मार्च, 1930 को अपने 79 चुने हुए साथियों के साथ नमक कानून भंग करने के लिए महात्मा गांधी ने डांडी यात्रा की। 6 अप्रैल को उन्होंने नमक का कानून भंग किया। समस्त देश में नमक कानून तोड़े गए। अनेक स्थानों पर गोलियाँ चलीं। शोलापुर में मार्शल ला लगा दिया गया। कांग्रेस कमेटियों को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया और महात्मा गांधी सहित लगभग एक लाख व्यक्तियों को जेल में ठूँस दिया गया।

(3) गाँधी-इरविन समझौता—इस आन्दोलन के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार हिल गई और सर तेज वहादुर सप्रू तथा डाक्टर जयकर आदि के प्रयत्नों के फलस्वरूप 31 मार्च, 1931 को गांधी-इरविन समझौता हुआ जिसके परिणाम-स्वरूप राजनीतिक बंदियों को जेलों से मुक्त कर दिया गया और महात्मा गांधी द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए लन्दन गये।

(4) पुनः असहयोग आन्दोलन—दूसरे गोलमेज सम्मेलन में कोई उचित निर्णय न हो सका। इसका मुख्य कार्य यह था कि ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच फूट पैदा करने के लिए ही यह सम्मेलन बुलाया था, किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए नहीं। महात्मा गांधी खाली हाथ भारत आये तो यहाँ अंग्रेजों का दमन-चक्र पूर्ण रूप से चल रहा था। हजारों भारतीय जेल के सीखचों में बन्द किये जा रहे थे। महात्मा गांधी ने वाइसराय से मिलने के लिए प्रयत्न किया परन्तु उन्हें गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। कांग्रेस को गैर-कानूनी करार दे दिया गया और देश में अनेक काले कानून लागू हो गए।

(5) पूना समझौता– 1932 में महात्मा गांधी जब जेल में थे तो ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधान मन्त्री रैमजे मेक्डानल्ड ने एक साम्प्रदायिक निर्णय दिया जिसके फलस्वरूप 'नर्वाचन में अछूतों को हिन्दुओं से विलग करके उनके लिए अलग सीटों की व्यवस्था की। जब महात्मा गांधी ने यह सुना तो उन्होंने जेल में ही आमरण

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनशन शुरू कर दिया जिसके फलस्वरूप हरिजन एवं हिन्दू नेता महात्मा गांधी से मिले और दोनों के मध्य एक समझौता हुआ। इस समझौते के अनुसार हरिजन हिन्दू समाज के अन्दर ही रहे। तत्पश्चात् गांधी ने अस्पृश्यता के कलंक को दूर करने के लिए 21 दिन का एक और व्रत रखा। 8 मई, 1933 को महात्मा गांधी जेल से मुक्त हुए और उसके एक वर्ष बाद उन्होंने अवज्ञा आन्दोलन वापस ले लिया।

(6) **1935 का अधिवेशन और आम चुनाव**—1935 में ब्रिटिश सरकार ने एक नया अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्र में द्वन्द्व शासन-प्रणाली और प्रान्तों में विशेषाधिकार युक्त उत्तरदायी शासन की योजना बनायी गई। 1937 में जब आम चुनाव हुए तो कांग्रेस ने उसमें भाग लिया और 6 प्रान्तों में उसे पूर्ण बहुमत मिला तथा दो प्रान्तों में वह प्रान्तीय धारा सभा में सबसे बड़ा दल बना। 6 राज्यों में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बने और दो राज्यों में उसकी मिली-जुली सरकारें बनीं। काँग्रेसी मंत्रियों ने लोक-कल्याण की दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण कार्य किये।

5—कांग्रेस का पंचम विकास काल

(1) **द्वितीय महायुद्ध और कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों का त्याग-पत्र**—1939 में द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया और ब्रिटिश सरकार ने पुनः भारतवासियों को युद्ध की अग्नि में झोंक दिया। फलस्वरूप रुष्ट होकर कांग्रेस मन्त्रियों ने त्याग-पत्र दे दिया। नवम्बर, 1940 में कांग्रेस ने फिर से पुनः "वैयक्तिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन" छेड़ दिया।

(2) **क्रिप्स मिशन**—मार्च 1941 में स्टैफोर्ड क्रिप्स ब्रिटिश सरकार की ओर से भारत आये और उन्होंने कांग्रेसी नेताओं से यह वायदा किया कि यदि वे युद्ध में ब्रिटिश सरकार का साथ देंगे तो युद्ध के पश्चात् उनके आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जायगा। कांग्रेस के नेताओं ने युद्ध के बाद की शर्त स्वीकार नहीं की और समझौता वार्ता टूट गई।

(3) **1942 का "भारत छोड़ो" आन्दोलन**—क्रिप्स मिशन की असफलता के पश्चात् कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन में "भारत छोड़ो" आन्दोलन और "करो या मरो" आन्दोलन पारित किये गए। इस प्रस्ताव के पश्चात् समस्त देश में ब्रिटिश अत्याचारों का ताण्डव नृत्य प्रारम्भ हो गया। हजारों व्यक्तियों को भारतीय रक्षा कानून के अन्तर्गत जेल में बन्द कर दिया गया और देश के सभी बड़े-बड़े नेताओं को वन्दी बना लिया गया। महात्मा गांधी को आगा खाँ के महल में नजर बन्द रखा गया। ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों के कारण महात्मा गांधी ने जेल में 21

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिन का अनशन किया। देश में रोष का वातावरण उत्पन्न हो गया और महात्मा गांधी के छोड़े जाने के लिए जोरदार आवाज उठाई गई। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने यह बात नहीं मानी।

(4) **बंगाल का भीषण दुर्भिक्ष**—1941 में बंगाल में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा जिसके फलस्वरूप लगभग 30 लाख व्यक्ति मर गए। लोग सड़कों पर मरते रहे और अनाज गोदामों में बन्द रहा। इस दुर्भिक्ष से ब्रिटिश सरकार के निकम्मेपन की पूर्ण जानकारी हो गई।

(5) **आजाद हिन्द फौज का संगठन**—1942 में जब सुभाष चन्द्र बोस जेल से बाहर निकले तो वह अपने घर एकान्तवास के लिए चले गए। एक दिन वह काबुल होते हुए जर्मनी पहुँच गए। 1941 में वह एक पनडुब्बी से जापान पहुँचे और टोजो सरकार से मिलकर उन्होंने सिंगापुर और बर्मा म आजाद हिन्द फाज का संगठन किया तथा अपनी एक अस्थायी सरकार बनायी जिसे 9 राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया। मार्च, 1944 में उनकी सेनाएँ मनीपुर की रियासत इम्फाल पर चढ़ आईं, दुर्भाग्यवश नेताजी को असफलता मिली। नेताजी तो अन्तर्ध्यान हो गए परन्तु दिल्ली के लाल किले में आजाद हिन्द फौज के वीर सेनानियों कर्नल शाहनवाज, सहगल और ढिल्लन पर मुकदमा चला जिससे देश में जोश की भावना फैल गई। नेताजी कहाँ गए यह अब भी विवादास्पद प्रश्न है।

(6) **शिमला कान्फ्रेंस और वेवेल योजना**—1946 के जन-आन्दोलन के पश्चात् ब्रिटिश सरकार यह पूर्ण रूप से समझ गई कि अब बिना भारतीयों से समझौता किए काम न चलेगा। फलस्वरूप तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड वेवेल ने जून 1945 में एक योजना के अनुसार कांग्रेस से समझौता की बात चलाई। भारतीय नेताओं का सम्मेलन बुलाया गया। लार्ड वेवेल अपनी कार्यकारिणी में 6 हिन्दू तथा 5 मुसलमानों को रखने के लिए तैयार हो गए परन्तु नामों पर समझौता कांग्रेस और मुस्लिम लीग को ही करना था। लीग और कांग्रेस में इस तथ्य पर समझौता न हो सका और इस कारण शिमला सम्मेलन असफल रहा।

(7) **कैबिनट मिशन**—दूसरे महायुद्ध के पश्चात् ब्रिटेन में जो आम चुनाव हुआ उसमें मजदूर दल की विजय हुई और ब्रिटिश सरकार ने मार्च 1946 में कैबिनट मिशन भारत भेजा।

कैबिनट मिशन ने भारत के सभी प्रान्तों को तीन भागों में संगठित करने, सम्पूर्ण देश के लिये एक संविधान सभा की व्यवस्था करने और अन्तरिम उन्नति के लिये एक अन्तरिम सरकार की व्यवस्था करने का प्रस्ताव रखा। नवम्बर,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1946 में कैबिनट मिशन योजना के अनुसार संविधान सभा के लिये चुनाव हुआ जिसमें कांग्रेस को 205 और मुस्लिम लीग को केवल 73 सीटें मिलीं। पंडित नेहरू के नेतृत्व में 2 सितम्बर 1946 को एक अन्तरिम सरकार की स्थापना की गई, जिसमें पहले मुस्लिम लीग सम्मिलित नहीं हुई परन्तु बाद में उसके 5 सदस्य भी सरकार में सम्मिलित हो गये।

(8) **साम्प्रदायिकता का ताण्डव नृत्य**—मुस्लिम लीग की मांग स्वतंत्र पाकिस्तान की थी। इस माँग को पूरा करने के लिये उसने 16 अगस्त, 1946 को प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस मनाने का निश्चय किया। कलकत्ता और नोआखाली में भीषण नरसंहार हुआ और देश में मुस्लिम साम्प्रदायिकता का ताण्डव नृत्य देखने को मिला। कांग्रेस की सतर्कता के फलस्वरूप अधिक उपद्रव न हो सका।

(9) **देश की स्वतंत्रता और भारत का विभाजन**—मार्च, 1947 में लार्ड वेवेल के स्थान पर माउण्ट बेटेन भारत के गवर्नर जनरल बनकर आये। उन्होंने कांग्रेस और लीग के नेताओं से वार्ता करके 3 जून को उनके सम्मुख एक नई योजना रखी। इस योजना में देश का विभाजन और स्वाधीनता की बात थी। देश का विभाजन अत्यन्त दुर्भाग्य पूर्ण था परंतु उसको स्वीकार करने के अतिरिक्त कांग्रेस के पास कोई दूसरा चारा न था क्योंकि मिस्टर जिन्ना और मुस्लिम लीग के अन्य सदस्य पाकिस्तान बनाने के लिये दृढ़ संकल्प थे। योजना स्वीकार की गई और फलस्वरूप 15 अगस्त 1947 को भारत की स्वतंत्रता घोषित कर दी गयी परन्तु उसके दो टुकड़े कर दिये गये।

स्वाधीन भारत(1947 से अब तक)

(1) **भारतीय स्वाधीनता अधिनियम**—भारतीय स्वाधीनता के फलस्वरूप भारत को स्वतंत्र किया गया परन्तु इसके दो खण्ड हो गये। देश की स्वाधीनता के पश्चात् ही भारत पर अनेक कठिनाइयाँ टूट पड़ी। शरणार्थियों की समस्या और देशी रियासतों की समस्या यह दो समस्यायें थीं जिनको देश के कर्णधारों ने बड़ी सावधानी से समाधान किया।

21 जून, 1947 को लार्ड माउन्टबेटन के स्थान पर चक्रवर्ती राजगोपालाचारी को भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया।

भारतीय संविधान का निर्माण—भारतीय संविधान 26 नवम्बर, 1949 को पारित किया गया और 26 जनवरी, 1950 से वह समस्त देश में लागू हो गया। इस संविधान के अनुसार भारत में एक ऐसे गणराज्य की स्थापना की गई जिसमें सब को समान राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकार प्राप्त हुए।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(3) संविधान निर्माण के पश्चात्—भारतीय संविधान के लागू होने के बाद देश में और अधिक राजनीतिक चेतना उत्पन्न करने के अनेक प्रयास किये गए और आज का भारतवासी राजनीतिक दृष्टि से बहुत अधिक सचेष्ट है।

देशवासियों में कितनी अधिक राष्ट्रीयता की भावना है उसका परिचय चीन और पाकिस्तान युद्ध के समय लगा। परन्तु देश में साम्प्रदायिकता, जातीयता, प्राथमिकता, भाषावादिता और भ्रष्टाचार आदि ऐसी कुरीतियाँ व्याप्त हैं जो हमारी राष्ट्रीय विचारधारा को कुण्ठित किये डाल रही हैं। इन कुरीतियों को शीघ्रातिशीघ्र दूर करके अपने देश को गौरवशाली बनाना है। इसके लिए हमें देशवासियों में सच्चे रूप से राजनीतिक चेतना उत्पन्न करनी होगी और उनका ध्यान अतीत की ओर दिलाकर उनमें मिल जुल कर काम करने की भावना उत्पन्न करनी होगी तथा प्रत्येक भारतवासी को यह संकल्प करना होगा, "मैं रहूँ या न रहूँ, मेरा देश उन्नति करता रहे। मेरा कुछ नहीं है जो कुछ है वह मेरे देश का है जिस स्वतन्त्रता की प्राप्ति हमारे नेताओं ने अपने खून से की है उसे हमें सुरक्षित रखना है और आगे बढ़ना है।"

प्रश्न 3—महात्मा गांधी के 1920 ई० के असहयोग आन्दोलन के विषय में आप क्या जानते हैं ?

भारतीय स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष 1919 ई० से काफी तेज हुआ। 1925 ई० में महात्मा गांधी दक्षिणी अफ्रीका से भारत आये और तब से भारत में स्वतन्त्रता आन्दोलन ने गांधी युग का सूत्रपात किया।

असहयोग आन्दोलन की घोषणा—सन् 1920 ई० में असहयोग आन्दोलन की स्वीकृति के लिए कांग्रेस महासमिति का एक विशेष अधिवेशन कलकत्ते में बुलाया गया। इस अधिवेशन का सभापतित्व लाला लाजपत राय कर रहे थे। अधिवेशन में महात्मा गांधी ने एक प्रस्ताव रखा जिसमें कहा गया था कि "ब्रिटिश सरकार ने खिलाफत के बारे में दिये गये अपने बचनों का पालन नहीं किया और न केवल पंजाब के निर्दोषी लोगों की अत्याचारी अधिकारियों से रक्षा की बल्कि उनकी बर्बरतापूर्ण कार्यवाहियों को क्षमा भी कर दिया। इसलिए कांग्रेस का यह विचार है कि भारत में कोई सन्तोष नहीं हो सकता जब तक कि ये दोनों गलतियां ठीक न कर दी जायँ और भविष्य में ऐसी गलतियों की पुनरावृत्ति को रोकने तथा राष्ट्रीय सम्मान को प्रदर्शित करने के लिए सबसे प्रभावशाली तरीका यह है कि "स्वराज्य की स्थापना की जाय।" प्रस्ताव में आगे कहा गया—"भारत के लोगों के पास अब इसके सिवाय और कोई चारा बाकी नहीं रहा कि वे महात्मा गांधी द्वारा बताये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुए प्रगतिशील अहिंसात्मक आन्दोलन को स्वीकार करें और तब तक चलायें जब तक ऊपर कही हुई गलतियाँ ठीक न हो जायँ और स्वराज्य की स्थापना न हो जाय।

दिसम्बर सन् 1920 के नागपुर के अधिवेशन में उपर्युक्त प्रस्ताव का पुनः समर्थन किया गया और कांग्रेस संगठन में कुछ परिवर्तन किये गये। इस अधिवेशन में यह घोषित कर दिया गया कि कांग्रेस का लक्ष्य स्वराज्य है, स्वशासन नहीं।

असहयोग आन्दोलन का कार्यक्रम

(1) उपाधियों का आत्म समर्पण (लौटाया जाना) तथा अवैतनिक पदों से त्याग-पत्र, स्थानीय निकायों से नामांकित सीटों का त्याग,

(2) सरकारी दरबारों, सरकारी और गैर-सरकारी उत्सवों में उपस्थित होने से इन्कारी,

(3) सरकारी और सरकारी सहायता-प्राप्त स्कूलों और कालेजों में बच्चों को न भेजना और धीरे-धीरे उनका बहिष्कार तथा उनके स्थान पर राष्ट्रीय स्कूलों और कालिजों की स्थापना,

(4) मुकदमें बाजों एवं वकीलों द्वारा ब्रिटिश न्यायालयों का बहिष्कार और उनके स्थान पर व्यक्तिगत झगड़ों के निबटारे के लिए पंच निर्णय न्यायालयों की स्थापना, सैनिक, क्लर्की तथा मजदूरों द्वारा मैसोपटामिया में रंगरूट की सेनाओं को अर्पित करने से इन्कार करना,

(5) सुधरी हुई परिषदों के चुनावों में उम्मीदवारों का अपना नाम वापस लेना और,

(6) विदेश वस्तुओं का बहिष्कार।

उपर्युक्त कार्यक्रम के अतिरिक्त कांग्रेस ने कुछ रचनात्मक कार्यक्रमों को भी अपनाया था। वे निम्नलिखित थे :—

(1) राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थायें खोलना और उनमें बच्चों को पढ़ाना।

(2) सरकारी न्यायालयों के बजाय अपने न्यायालय स्थापित करना, जहाँ पंच झगड़ों का फैसला करें।

(3) चर्खे के प्रचलन को प्रोत्साहित कर घर-घर में चर्खा चलवाना और सूत कतवाना।

(4) छुआछूत को दूर करना।

(5) हिन्दू-मुस्लिम एकता को दृढ़ बनाना या साम्प्रदायिक एकता, मद्य-निषेध, खादी प्रचार ग्रामोद्योग, प्रौढ़-शिक्षा, नई तालीम, ग्राम स्वच्छता, नारी तथा हरिजनों द्वारा, राष्ट्र-भाषा प्रचार आदि कुछ महत्वपूर्ण कार्यक्रम था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आन्दोलन की प्रगति—आन्दोलन के प्रारम्भ होते ही महात्मा ने समस्त देश का दौरा किया और अपनी उपाधियाँ वापिस करने का आग्रह किया। सरकारी उत्सवों और समारोहों का बहिष्कार किया गया। कई राष्ट्रीय शिक्षा संस्थायें खोली गयीं जिनमें काशी विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, दिल्ली का जामियाँ मिलिया और लाहौर का नेशनल कालेज मुख्य थे। अनेक विद्यार्थियों ने अपनी पढ़ाई छोड़ी तथा बकीलों ने वकालत छोड़कर देश-सेवा का व्रत ले लिया। इनमें मोतीलाल नेहरू, जवाहर लाल, नेहरू, राजेन्द्रप्रसाद के नाम उल्लेखनीय हैं। सेठ जमुनादास बजाज ने वकीलों को गुजारे के तौर पर 1 लाख रुपया दिया। हिन्दू और मुसलमान दोनों में अपूर्व एकता के दर्शन हुए और सभी ने आन्दोलन में खुलकर भाग लिया। विधान-मण्डलों का बहिष्कार किया गया और कोई भी कांग्रेसी विधान मण्डल के चुनाव के लिए नहीं खड़ा हुआ। मतदान केन्द्रों पर भी बहुत थोड़े लोग गये। सन् 1919 के सुधारों का उद्‌घाटन करने के लिए ड्यूक आफ कन्नौट जहाँ-जहाँ गया, वहाँ-वहाँ हड़तालें हुईं। हजारों चर्खे बनवाये गये और विदेशी कपड़ों की होलियाँ जलायी गईं। तिलक स्वराज्य फण्ड में बहुत अधिक धन जमा किया गया। अनेक लोगों ने अपनी उपाधियाँ वापिस कर दीं और महात्मा गांधी ने अपनी कैसरे हिन्द की उपाधि वापिस कर दी।

सन् 1921 में प्रिंस आफ वेल्स भारत आने वाले थे। कांग्रेस ने उनके आगमन का बहिष्कार करने का निर्णय किया। इस पर ब्रिटिश सरकार रुष्ट हो गयी और महात्मा गांधी को छोड़कर सभी नेताओं को जेल में ठूँस दिया गया। 17 नवम्बर 1921 को प्रिन्स आफ वेलस बम्बई आये परन्तु वहाँ उस दिन हड़ताल रखी गयी।

सन् 1921 के अहमदाबाद के कांग्रेस अधिवेशन में यह निश्चय किया गया कि असहयोग आन्दोलन को तेज किया जाय और आन्दोलन के समस्त अधिकार महात्मा गांधी को दे दिये गये। अधिवेशन में महात्मा गांधी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन जारी करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया। महात्मा गांधी ने लार्ड रीडिंग को एक पत्र में सूचित किया कि वह कर न देने का आन्दोलन शीघ्र ही शुरू करेंगे, यदि सरकार की नीति में परिवर्तन न हुआ। 5 फरवरी 1922 की घटना ने आन्दोलन को हिंसात्मक रूप दे दिया। चौरीचौरा (जिला गोरखपुर, यू० पी०) में एक भीड़ ने एक पुलिस चौकी में आग लगा दी जिससे 21 सिपाही और एक-सब-इन्सपेक्टर मर गये। इस हिंसात्मक कार्य के फलस्वरूप महात्मा गांधी ने आन्दोलन वापिस ले लिया। आन्दोलन के एकदम से वापिस होने के कारण राज-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गोपालाचारी, मोतीलाल नेहरू, शौकतअली और लाला लाजपत राय असन्तुष्ट हो गये और गांधीजी की लोकप्रियता भी कम हो गयी। सरकार ने इसका लाभ उठाया और 10 मार्च 1922 को उन्हें गिरफ्तार करके 6 वर्ष की कैद दे दी। परन्तु बीमारी के कारण उन्हें 5 फरवरी 1924 को छोड़ दिया गया।

वास्तव में आन्दोलन को इतनी जल्दी बन्द कर देना महात्मा गांधी की बहुत बड़ी भूल थी। महात्मा गांधी ने इसे हिमालय पर्वताकार गल्ती(Himalayan Blunder) कहा इससे भारतीय जनता के हृदय पर कड़ा आघात हुआ। न तो देश में साम्प्रदायिक एकता स्थापित रह सकी और न ब्रिटिश सरकार अपने पथ से डिगी।

आन्दोलन का महत्व—इस असहयोग आन्दोलन का सबसे अधिक महत्व इसीलिए है कि यह पहला अवसर था कि भारतीय जनता ने प्रार्थना-पत्रों की नीति को छोड़कर एक कड़ा कदम उठाया था। जनता ने यह सिद्ध कर दिया कि अब वह विदेशियों के अत्याचारों को सहन के लिए तैयार नहीं। यह आन्दोलन केवल शहर के पढ़े-लिखे लोगों तक ही सीमित न रहकर ग्रामीण आम जनता के बीच में प्रवेश कर गया और इस प्रकार सम्पूर्ण देश में राष्ट्रीयता की लहर दौड़ गयी। यह सब गांधी जी के व्यक्तित्व का प्रभाव था।

इस आन्दोलन का एक लाभ यह भी हुआ कि अब तक जनता जेल आदि से डरती थी परन्तु आन्दोलन के बाद जनता में निर्भीकता आ गयी। सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने में अब उसे भय नहीं रहा। सार्वजनिक सभायें करके सरकार की आलोचना करना दिन-प्रतिदिन का कार्य हो गया।

महात्मा गांधी ने इस आन्दोलन को शान्तिमय ढंग से चलाया था परन्तु विदेशियों ने उन पर अत्याचार किया। अहिंसात्मक आन्दोलन उसी समय से देश के लिए एक सबल अस्त्र बन गया जो आगे चलकर विदेशियों को बाहर निकालने में सफल हो गया।

इस आन्दोलन का एक लाभ यह भी हुआ कि सरकार भी जब तक आन्दोलन चलता रहा, कम-से-कम तब तक सुधारों की ओर दृष्टिपात करती रही।

आन्दोलन ने एक रचनात्मक कार्यक्रम देश को समर्पित किया। खादी पहनना, चर्खा कातना, राष्ट्रीय शिक्षा सस्थायें चलाना ऐसे रचनात्मक कार्य थे जिन्होंने देश को बहुत अधिक लाभान्वित किया। राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं ने बड़े-बड़े देश भक्तों को उत्पन्न किया। सुभाषचन्द्र बोस ने इस आन्दोलन की सफलताओं को निम्नलिखित ढंग से वर्णित किया है—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"1921 के वर्ष ने देश को निस्सन्देह एक सुव्यवस्थित पार्टी का संगठन प्रदान किया। इससे पूर्व कांग्रेस एक वैधानिक दल और मुख्यतया बात करने वाली संस्था थी। महात्मा जी ने इसे नया विधान दिया और देश-व्यापी बनाया। उन्होंने इसे क्रान्तिकारी संगठन में भी तबदील कर दिया। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक एक जैसे नारे लगाये जाने लगे, एक जैसी नीति और एक जैसी विचारा-धारा हर जगह दिखाई देने लगी। अंग्रेज भाषा का महत्व जाता रहा और कांग्रेस ने हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया। खादी सब कांग्रेसियों की नियमित पोशाक बन गयी। प्रो० कूप लैण्ड ने इस आन्दोलन के विषय में लिखा है—

"Gandhi had done what Tilak failed to do. He had converted the nationalist movement into a revolutionary movement. He had taught to pursue the goal of India's freedom not by constitutional pressure on the government, still less by discussion and agreement, but by force, none the less force though it was meant to be non-violent. And he had also made the movement popular. It has hitherto been confined to the urban intelligentia, Gandhi's personality had deeply stirred the countryside."

प्रश्न 4—1942 के "भारत छोड़ो" आन्दोलन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

भारतीय स्वतन्त्रता के इतिहास में द्वितीय महायुद्ध से लेकर 1946 तक का काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सन् 1942 ई० में मि० क्रिप्स भारत से वापस इंग्लैण्ड गये और उनकी योजना असफल रही। क्रिप्स योजना की असफलता के तुरन्त बाद कांग्रेस की कार्यकारिणी ने यह प्रस्ताव पारित कर दिया कि अँग्रेज भारत छोड़ दें। हरिजन में महात्मा गांधी ने लिखा था—

"Whatever the consequences.. to India, her real safety and of Britain's too lie in an orderly and timely British withdrawal from India."

कांग्रेस ने अपने प्रस्ताव में कहा था कि भारत की समस्त शासन सत्ता को भारतीयों के समर्पित कर दिया जाय। कांग्रेस का कहना यह नहीं था कि सम्पूर्ण अँग्रेज जाति भारत छोड़ दे बल्कि उसका मत था कि शासन का समस्त भार भारतीयों के हाथों में आ जाय। 8 अगस्त 1942, के बम्बई अधिवेशन में इस प्रस्ताव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर स्वीकृति प्रदान की गयी। महात्मा गाँधी ने घोषणा की, "यह हमारा निर्णय है कि या तो हम सफल होंगे अथवा मर जायेंगे। भारत के लिए स्वतन्त्रता प्राप्ति करने के लिए यह मेरा अन्तिम प्रयास है। हम अँग्रेजों को भारत से बाहर निकालना नहीं चाहते वरन् चाहते हैं कि अँग्रेज अधिकारी भारत को तुरन्त स्वतन्त्र घोषित कर दें।"

8 अगस्त, 1942 को जो प्रस्ताव किया गया उसका सार नीचे दिया जाता है। "भारत में ब्रिटिश शासन का तुरन्त ही अन्त होना चाहिए जो कि भारत और मित्र राष्ट्रों की सफलता के लिए आवश्यक है। इस शासन का जारी रहना भारत को निरन्तर गिरा रहा है और देश अपनी प्रतिरक्षा के लिए कमजोर होता जा रहा है। फासिस्टवाद के विरुद्ध सफलता पुराने उद्देश्यों, नीतियों व उपायों से चिपके रहने पर नहीं प्राप्त हो सकती है। भारत की स्वतन्त्रता से ही ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्रों को आंका जायगा। स्वतन्त्र भारत इस सफलता को अवश्य प्राप्त करेगा क्योंकि यह अपने सभी साधनों को स्वतंत्रता के लिए लगा देगा तथा यह अभी तक फासिस्टवाद, नाजीवाद और साम्राज्यवाद का चिह्न बना हुआ है, तुरन्त स्वतन्त्रता की प्राप्ति ही, भावी वायदे नहीं, युद्ध के रूप को वदल सकती है। अतएव अखिल भारतीय कांग्रेस समिति अत्यधिक जोरदार शब्दों में भारत से ब्रिटिश सत्ता के हट जाने की माँग करती है।"

इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने यह एक ऐसा कदम उठाया जिसने विदेशी सत्ता को हिला दिया।

सरकार की कार्यवाही—गाँधी जी का मत था कि सरकार ने इस सम्बन्ध में तुरन्त कार्यवाही नहीं क्योंकि जिस शान्तिपूर्ण ढंग से काग्रेस अधिवेशन में इसका प्रस्ताव पारित किया गया था उससे यह स्पष्ट था कि कांग्रेस कोई हिंसात्मक आन्दोलन छेड़ने जा रही है। परन्तु भारत की सरकार—जो कांग्रेस की प्रत्येक चाल का निरीक्षण कर रही थी – ने कुछ ऐसे कार्य किये जिससे सारा देश भड़क उठा। 9 अगस्त 1942 को गांधी जी एवं कांग्रेस को कार्यकारिणी के समस्त सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया। गांधीजी को पूना के आगा खां महल में नजरबन्द रखा गया और अन्य सदस्यों को अहमद नगर के किले में बन्द कर दिया गया। कांग्रेस को अवैध संस्था घोषित कर दिया गया और सम्पूर्ण भारत के उसके दफ्तरों पर कब्जा कर लिया गया।

अगस्त की क्रान्ति और उसका दमन—भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं की गिरफ्तारी के कारण सम्पूर्ण देश में क्रोध की लहर दौड़ गयी। सारा भारत विदेशी सत्ता को समाप्त कर देने के लिए एक साथ खड़ा हो गया। अनेक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थानों पर हड़तालें हुई । अहमदाबाद, बम्बई, दिल्ली, मद्रास, और अमृतसर में सारा कारोबार बन्द हो गया । विद्यार्थियों ने विभिन्न स्थानों पर जुलूस निकाले और सामूहिक प्रदर्शन किये । परन्तु यह सारा आन्दोलन बड़ी शान्तिपूर्वक चला । सरकार ने जनता के प्रदर्शनों को सख्ती से दबाना चाहा । फलस्वरूप जनता भी उग्र हो उठी और सारे देश में हिंसात्मक घटनायें फैल गयीं । दिल्ली में पुलिस ने 47 स्थानों पर 11 और 12 अगस्त के बीच गोली चलाई । उत्तर प्रदेश में 9 और 21 अगस्त के बीच 29 बार गोली चली । अन्य स्थानों पर भी गोली चली । भारतीय सचिव के अनुसार 9 अगस्त 1942 से 30 नवम्बर 1942 तक 1028 व्यक्ति मारे गये और 3215 घायल हुए, 60 हजार व्यक्तियों को बन्दी बनाया गया । परन्तु यह संख्या वास्तविकता से कहीं कम थी । लगभग 28 लाख रूपया दण्ड के रूप में वसूल गया ।

सरकारी अधिकारी की सूचना के अनुसार क्रुद्ध जनता ने 250 रेलवे स्टेशनों को नष्ट कर दिया । 500 डाकखानों पर आक्रमण किया और 150 थानों को लूट लिया गया । कुल मिलाकर सरकार को 538 बार गोली चलानी पड़ी । लगभग 26,000 व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया । बिहार तथा उत्तर प्रदेश में कई हफ्तों तक रेलों का आना-जाना बन्द रहा । कुछ भागों जैसे बलिया आदि में भारत सरकार की प्रभुता को समाप्त करके राष्ट्रीय सरकार की स्थापना कर दी गयी और अन्त में भारत सरकार को सेनायें भेजकर इन्हें फिर अंग्रेजी शासन में मिलाना पड़ा ।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ ही अन्य राजनीतिक दलों ने भी 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भाग लिया । हिन्दू महासभा ने भी भारत आन्दोलन का समर्थन किया परन्तु उसके स्वयंसेवक जेल नहीं गये । सोशलिस्ट पार्टी ने खुलकर कांग्रेस का समर्थन किया । समाजवादी दल के नेता श्री जय प्रकाश नारायण, डा० राममनोहर लोहिया आदि ने विदेशी सरकार का खुलकर विरोध किया । जयप्रकाश नारायण हजारी बाग जेल से फरार हो गये और श्रीमती अरुणा आसफ अली ने छिपे रूप में आन्दोलन को चलाया । कुछ राजनीतिक दलों ने इस आन्दोलन में कांग्रेस का साथ नहीं दिया जिसमें सबसे आगे मुस्लिम लीग थी । मुस्लिम लीग तो राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं के बन्दी बना लिये जाने पर प्रसन्न ही हुई थी । मुस्लिम लीग के नेता मिस्टर जिन्ना ने इस आन्दोलन की निन्दा की थी और इसे बड़ा खतरनाक बताया था ।

आन्दोलन की असफलता—'भारत छोड़ो' आन्दोलन बहुत थोड़े समय तक चला परन्तु यह बहुत अधिक व्यापक था । अगस्त के अन्त तक आन्दोलन की रीढ़ टूट चुकी थी, परन्तु छुटपुट दंगे हो रहे थे । इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि यद्यपि आन्दोलन अंग्रेजी सरकार की क्रूरता के फलस्वरूप दब गया परन्तु भारतीयों के रोष की चिनगारियां बहुत समय तक चलती रहीं। भारतीय इस आन्दोलन के पश्चात् पूर्ण रूप से विदेशियों को भारत से निकालने के लिए दृढ़ संकल्प हो गये। उन्होंने डोमिनियन स्टेट्स आदि की बात करना बन्द कर दिया और अब केवल उनका एक ही नारा रह गया। 'अंग्रेज अत्याचारी भारत छोड़ो।' इस आन्दोलन के सम्बन्ध में डाक्टर ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है—

"The August revolution was a revolt of the people against tyranny and oppression and can be compared with the fall of Bastile in the History of France, of the October Revolution of Russia...It was a curious mixture of violence and non-violence. Its sustaining impulse was hatred of British as rulers of the land. Its objective was 'Quit India' and methods were violence and sabotaging the administrative mochinery. It was symbolic of new confidence and a new stature that the people had attained."

—Dr. Ishwari Prasad.

डा० अम्बाप्रसाद ने सन् 1942 की जन-क्रान्ति को असफल बताया है। विद्रोह की असफलता के तीन मुख्य कारण उत्तरदायी थे—(1) क्रान्ति के संगठन और आयोग में कमियां, (2) सरकारी सेवाओं की सरकार के प्रति बफादारी और (3) सरकार की कई गुनी शक्ति।

उपसंहार—1942 ई० का आन्दोलन सफल नहीं रहा परन्तु इस आंदोलन ने वह पृष्ठभूमि तैयार कर दी कि भारतीयों की स्वतन्त्रता की मांग निरन्तर बढ़ती गई और अंग्रेजों को बाध्य होकर 1947 ई० भारत छोड़ देना पड़ा।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | 12

भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य प्रभाव
(THE IMPACT OF WEST ON INDIAN CULTURE)

भूमिका—भारतीय संस्कृति संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है और इसने अति प्राचीन काल में पाश्चात्य देशों पर अपना प्रभाव डाला। कालांतर में भारत में मुसलमानों एवं अंग्रेजों का साम्राज्य स्थापित है। सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से बीसवीं शताब्दी तक पाश्चात्य जगत ने भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया। इस अध्याय में भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य प्रभाव की चर्चा की जावेगी।

———

प्रश्न—(1) भारतीय संस्कृति पर पड़ने वाले पाश्चात्य प्रभाव को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

भारत में मध्य युग में प्राचीन प्रगतिशील धाराओं ने एक नवीन रूप धारण कर लिया और यहाँ की हिन्दू संस्कृति की वह चेतना जिसके आधार पर भारत ने समस्त विश्व का पथ-प्रदर्शन किया था, शनैः-शनैः समाप्त होती जा रही थी। हिन्दू धर्म की व्यापकता क्षीण हो चुकी थी परन्तु मुगल काल तक भारत की प्राचीन परम्पराएँ विभिन्न क्षेत्रों में किसी न किसी रूप में बनी रहीं थीं। मुगल शासन के अधः पतन के पश्चात् भारतीय संस्कृति और सभ्यता भी पतन की ओर उन्मुख हो गई। भारतीय साहित्य, ललितकला, दर्शन, गणित आदि की शिक्षण संस्थाएँ आदि सभी अवनति के गड्ढे में गिर गईं। समाज में अनेक कुप्रथाओं एवं अन्ध-विश्वासों आदि का बोलबाला हो गया। भारतीय संस्कृति जो अपने उदार दृष्टिकोण के कारण समस्त विश्व में विख्यात थी, रूढ़िवादी भारतवासियों से त्रस्त हो कर स्वयं कराह उठी। यह संस्कृति अपनी यौवना और प्रौढ़ावस्था को प्राप्त करके वृद्धावस्था में पहुँच गई। राजनीतिक क्षेत्र में दुर्दशा आ गई थी। समस्त भारत छोटे छोटे राज्यों में बंट चुका था और ये स्वतन्त्र राजा निरन्तर संघर्ष किया करते थे। इस राजनीतिक दुर्दशा का प्रभाव समाज और संस्कृति पर पड़ना स्वाभाविक था। किसी केन्द्रीय दृढ़ शक्ति के अभाव में समाज इधर-उधर भटकता हुआ दिखलाई पड़ रहा था और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहां की संस्कृति अपने प्राचीन गौरव को पूर्ण रूप से खो चुकी थी। ऐसे समय में पाश्चात्य देशों ने भारत के रंगमंच पर अपना नाटक प्रारम्भ किया। इसके परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति की वह धारा जो अत्यन्त क्षीण हो चुकी थी पश्चिम से बहने वाली धारा में विलीन सी होने लगी। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के साथ ही समस्त सामाजिक वातावरण में उथल-पुथल मच गई और भारत की प्राचीन परम्पराएं समाप्त होती गईं। हम अपने को भूल गये और शनैः-शनैः विदेशी संस्कृति में पूर्णतया रंगते गये। हमारी प्राचीन धारणाएँ; विश्वास परम्पराएँ एवं प्रथाएँ हिल उठीं और हमारा प्राचीन ढांचा धराशायी होने लगा। भारतीय मस्तिष्क शनैः-शनैः बदलने लगा। बंगाल में धर्म परिवर्तन की वह लहर उठी कि अनेक भारतवासियों ने अपने धर्म का परित्याग कर दिया। पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध के सम्मुख हम अपने मार्ग से विचलित हो गये और अपने गौरवमय इतिहास को छोड़ कर पश्चिम की ओर देखने लगे। विवेकशून्य होकर हमने पश्चिम का अन्धानुकरण प्रारम्भ कर दिया। हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पाश्चात्य विचारों के दर्शन होने लगे। ऐसे समय में कुछ महापुरुषों ने भारतीय संस्कृति के उद्धार का बीड़ा उठाया और उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप वह आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है परन्तु इसमे किंचित मात्र भी सन्देह नहीं है कि हमारी संस्कृति पर पाश्चात्य प्रभाव बहुत अधिक पड़ा है। यहां हम भारतीय संस्कृति पर पड़ने वाले पाश्चात्य प्रभाव को सक्षेप में स्पष्ट कर रहे हैं—

भारतीय समाज पर प्रभाव— पाश्चात्य जगत ने हमारे सामाजिक जीवन में गहरी छाप डाली। भारतीय समाज पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप स्पष्ट रूप से दो गुटों में बँट गया— (1) रुढ़ि वादी और (2) प्रगतिशील। रुढ़िवादी अतीत को दुहाई देते हुए समस्त आधुनिक परिवर्तन को रोकना चाहते थे परन्तु प्रगतिशील तत्व समाज की कुरीतियों को समाप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प थे और उनका विचार था कि बहु-विवाह, दास-प्रथा, पर्दा-प्रथा विधवा-विवाह का न होना आदि प्रथायें जो भारत में विद्यमान हैं उन्हें समाप्त ही किया जाना चाहिए। यह प्रगतिशील तत्व जाति-प्रथा का भी घोर विरोधी था। भारतीय मानसिक जगत में दिभिन्न परम्पराओं और प्रथाओं को लेकर इतना अधिक विरोधाभास कभी भी उत्पन्न नहीं हुआ था। यह ठीक है कि भारतीय समाज में अति प्राचीन काल से ही रूढ़िवादी और प्रगतिशील दो विचारधाराओं के व्यक्ति विद्यमान थे परन्तु प्रगतिशील भी कुछ न कुछ रूढ़ियों में अवश्य ही विश्वास करते थे साथ ही रुढ़िवादी भी प्रगतिशीलो से किसी न किसी रूप में अवश्य ही प्रभावित होते थे। पाश्चात्य प्रभाव के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फलस्वरूप भारतीय समाज स्पष्ट रूप से 2 गुटों में बँट गया है। एक गुट ऐसा है जो संसार में होने वाले परिवर्तनों की ओर से अपनी आँखे मूँदे हुए बैठा है और अपनी पुरातनपन्थी प्रथाओं को ही अपनाये हुए है। इस वर्ग पर पाश्चात्य विचार-धारा का प्रभाव अधिक नहीं पड़ा है। दूसरा वर्ग ऐसा है जो पाश्चात्य विचार धारा से अत्यधिक प्रभावित हुआ है और संसार में दूसरों के साथ बहने के लिए प्रयत्नशील है। सौभाग्यवश पाश्चात्य प्रभाव बढ़ने के बाद शनैः-शनैः रूढ़िवादी वर्ग समाप्त होता जा रहा है और आज प्रगतिशील पनप रहा है। पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप ही भारतीय समाज से अनेक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया गया। राजा राम मोहन राय ने सब से पहले सती प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई और वह गैर कानूनी करार दे दी गई। यहाँ दास प्रथा और सती प्रथा का पूर्ण रूप से अन्त हो चुका है।

पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप भारतीय समाज में चेतना उत्पन्न ही नहीं हुई बल्कि भारतीयों के आचार-विचार, खान-पान और रहन-सहन आदि में भी परिवर्तन हुआ है। भारतीय बहुत हद तक पाश्चात्य भोजन की ओर झुकते जा रहे हैं। हमारी वेश-भूषा पाश्चात्य ढंग की हो गई। कोट और पतलून ने हमें इतना अधिक प्रभावित कर दिया है कि हम धोती और कुरते को धीरे-धीरे भुलाते जा रहे हैं। हमारे विचारों में पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध स्पष्ट दिखाई पड़ती है तथा हमारा रहन-सहन काफी हद तक पाश्चात्य ढंग का हो रहा है।

पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव भारत की नारी जाति पर भी पड़ा। मुगल काल में भारतीय नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई थी और वह केवल पुरुषों की भोग-विलास की सामग्री मात्र बन गई थी। पाश्चात्य प्रभाव के परिणामस्वरूप स्त्रियों में शिक्षा का तेजी से प्रसार हुआ और शिक्षित महिलाओं ने परदे को तिलांजलि दे दी और वे पुरुषों से समान अधिकार माँगने लगीं। इस क्षेत्र में उन्हें पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई और आज स्थिति यह है कि भारतीय नारी को वही राजनीतिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त है जो कि भारतीय पुरुषों को प्राप्त है।

भारत के आर्थिक जीवन पर प्रभाव

भारत के आर्थिक जीवन पर भी पाश्चात्य प्रभाव के दर्शन होते हैं। अति प्राचीन काल से भारत का मुख्य उद्यम कृषि रहा है। मुगल शासन के अन्त तक भारतीय कृषि की दशा अत्यन्त हीन होती गई थी। यह स्थिति ब्रिटिश काल में भी बनी रही। परन्तु भारतीय कृषि पर हम पाश्चात्य प्रभाव अवश्य ही रखते हैं। भारतीय कृषि पुरातन पंथी थी। यहाँ का किसान नवीन यंत्रों को अपनाने के लिए कभी भी तैयार नहीं था। पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप ही हम आधुनिक कृषि

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जगत में नवीन यंत्रों के दर्शन करते हैं और आज कृषि के क्षेत्र में जो नये-नये प्रयोग हो रहे हैं उसका बहुत कुछ श्रेय पाश्चात्य विद्वानों को ही है।

पाश्चात्य देशों के लोग भारत में व्यापार करने आये थे और यही कारण था कि जितने भी विदेशी यहाँ आये उन्होंने यहाँ पर अपनी अत्यधिक मण्डियाँ स्थापित करने का प्रयास किया। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के कारण भारतीय प्राचीन उद्योग-धन्धों को बहुत बड़ा धक्का लगा। अंग्रेजों ने जिस प्रकार की नीति का अनुसरण किया उससे भारत को अपार आर्थिक कष्ट भुगतने पड़े। उद्योग-धन्धों का पतन हुआ और समस्त जनसंख्या का भार कृषि पर ही आ पड़ा। यहाँ के कुटीर उद्योग नष्ट होने लगे। भारत का कच्चा माल विदेशों को जाने लगा और वहाँ से बना-बनाया माल भारत आकर बिकने लगा। परिणाम यह हुआ कि औद्योगिक क्षेत्र में भारतीय खोखले होते गए। परन्तु यह स्थिति बहुत अधिक दिनों तक न चली। देश में नव जागरण की धारा फैलने के कारण यहाँ के आर्थिक जीवन में भी नवीन उत्कर्ष के दर्शन हुए। जापान और अमेरिका में अब तेजी से औद्योगीकरण हुआ और वे देखते ही देखते यूरोपीय देशों के साथ आ गये तो उसका प्रभाव भारत के लोगों पर भी अवश्य ही पड़ा। पाश्चात्य प्रभाव के परिणामस्वरूप भारत के उद्योगपति शनैः-शनैः औद्योगीकरण की ओर बढ़ने लगे। भारत के कुटीर उद्योगों के स्थान पर बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना का कार्य प्रारम्भ हुआ। पाश्चात्य प्रभाव के कारण ही हम भारत में आधुनिक युग में औद्योगीकरण का अत्यन्त भव्य रूप देखते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीयों ने औद्योगीकरण की ओर तेजी से प्रगति की है। यद्यपि अंग्रेज यह नहीं चाहते थे कि हम इस रूप में प्रगति कर पावें। और भारत में उद्योगों की स्थापना उन्होंने केवल अपने ही हित साधन के लिए की थी परन्तु कालान्तर में यह भारतीयों के लिए वरदान सिद्ध हुई।

जिस समय पश्चिमी व्यापारी यहाँ आये तो यहाँ का व्यापार काफी उन्नति की स्थिति में था। शनैः-शनैः पाश्चात्य व्यापारियों ने भारत की सभी मण्डियों को अपनी सत्ता में ले लिया और यहाँ के व्यापार पर उनका पूर्ण आधिपत्य स्थापित हो गया। भारत केवल कच्चे माल की उपज करने वाला केन्द्र बन कर रह गया और पक्का माल विदेशों से बनकर यहाँ आने लगा। अपनी सुविधा के लिए पाश्चात्य शासकों ने यहाँ बैंकिंग प्रणाली आदि की स्थापना की। परन्तु विदेशी दासता से मुक्त होने के पश्चात् भारतीयों ने पाश्चात्य जगत को जो कुछ दिया था उससे कहीं अधिक उनसे सीख लिया है। आज भारत में व्यापार की जो विभिन्न प्रणालियाँ प्रचलित हैं उनमें पाश्चात्य प्रभाव अवश्य ही देखने को मिलते हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यूरोप में घटित होने वाली आर्थिक घटनाओं का प्रभाव भारतीय जन-जीवन पर पड़ा है। समाजवाद और साम्यवाद की विचारधारा हमने पाश्चात्य देशों से ही ग्रहण की है और आज हम अपने आर्थिक ढाँचे को बदलने के लिए समाजवाद और साम्यवाद की दुहाई देने लगे हैं। रूस की क्रान्ति ने भारत पर अत्यन्त स्पष्ट प्रभाव डाला। भारत में श्रमजीवियों की दशा सुधारने के लिए हड़तालें होने लगीं और उनके आन्दोलनों के चलाने के लिए अनेक संघों का निर्माण हुआ। 1920 ई० के बाद श्रमिकों और कृषकों की माँगें दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली गयीं और शोषित वर्ग ने शोषण के विरुद्ध आवाज उठाना प्रारम्भ कर दिया। जीवन के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुए और शोषित वर्ग एवं शासक वर्ग के मध्य संघर्ष उत्पन्न हो गया। मार्क्स और ऐंजिल्स आदि के विचारों ने भारत की काया पलटने में महान् योगदान दिया। सामाजिक समानता और न्याय की माँग तीव्र होने लगी और यह नारा बुलन्द किया गया कि 'जो उत्पन्न करता है उसी का उस पर हक होना चाहिए' आज के भारतीय आर्थिक जीवन में जो एक क्रान्ति की लहर हम देख रहे हैं उस लहर को उत्पन्न करने का श्रेय पाश्चात्य विचारकों को ही है।

(अ) भारतीय धर्म पर प्रभाव

धार्मिक क्षेत्र में भी भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य प्रभाव के दर्शन होते हैं। पाश्चात्य प्रभाव के कारण ही धर्म में व्याप्त अनेक रूढ़ियों का अन्त हुआ और अन्धविश्वासों का स्थान तर्क एवं विवेक ने ले लिया। बुद्धिवादी विचारधारा ने धार्मिक क्षेत्र में हलचल उत्पन्न कर दी। पाश्चात्य प्रभाव के कारण ही भारतीय धर्म में श्रद्धा का स्थान विवेक ने ले लिया। धार्मिक क्रियाओं और कर्म-काण्डों पर आघात हुआ। पुरोहित वर्ग की धार्मिक ठेकेदारी हिल उठी और भौतिकवाद का प्रादुर्भाव हुआ। प्रत्येक धार्मिक तत्व को तर्क की कसौटी पर कसा गया और साधारण जनता में वही सिद्धान्त प्रचलित होने लगे जो तर्क की कसौटी पर खरे उतरते थे। भारतवासी हिन्दू धर्म के कर्मकाण्डों और व्यर्थ की क्रिया विधियों से इतना अधिक ऊब गये कि वे उनसे छुटकारा पाना चाहते थे। यही कारण था कि उन्होंने पाश्चात्य दर्शन का स्वागत किया। केवल यही नहीं, अनेक हिन्दू धर्म के अनुयायियों ने हिन्दू धर्म को छोड़कर ईसाई धर्म को अपना लिया।

19वीं शताब्दी के धार्मिक पुनर्जागरण पर भी हमें पाश्चात्य प्रभाव के दर्शन होते हैं। जब हिन्दू धर्म के महापुरुषों ने यह देखा कि इस धर्म के कर्मकाण्डों और धार्मिक ठेकेदारों से ऊब कर बहुत से हिन्दू ईसाई धर्म को स्वीकार करते जा रहे हैं तथा धर्म के नाम पर समाज में अनेक बुराइयाँ व्याप्त हो गई हैं तो उन्होंने धार्मिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुधारों का बीड़ा उठाया। राजा राम मोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना की जिसका उद्देश्य जाति-प्रथा और बहु-विवाह का खण्डन करना एवं धार्मिक सुधार करना था। दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज को चलाया जिसने शुद्धि आन्दोलनों को जन्म दिया। आर्य समाज में हिन्दू धर्म के कर्मकाण्डों का प्रयोग करके ईसाई धर्म की सादगी को अपनाया गया। परिणाम यह हुआ कि हिन्दू धर्म में नवीन शक्ति का संचार हुआ और पतन के गर्त में पड़े हुए हिन्दू धर्म की रक्षा हुई। दयानन्द सरस्वती के आर्य समाज ने अनेक हिन्दुओं को अपने धर्म परिवर्तन से रोका। दयानन्द सरस्वती ने समय की आवाज को परखा था और वे जान गये वे कि सैकड़ों हरिजन अपने पुरातन धर्म से ऊब कर ईसाई धर्म की ओर केवल इसलिए बढ़ते जा रहे हैं कि वे अपने धर्म के ढकोसलों से ऊब चुके हैं। ईसाई धर्म और पाश्चात्य संस्कृति की अच्छी बातों को ग्रहण करके राजा राम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती आदि महापुरुषों ने हिन्दू धर्म को एक नवीन रूप प्रदान किया जिससे कि यह धर्म पतन के गर्त में गिरने से बच गया।

भारतीय शिक्षा पर प्रभाव

पाश्चात्य सम्पर्क के कारण भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में पूर्ण रूप से परिवर्तन हुए। ईसाई धर्म प्रचारकों ने भारत में शिक्षा के प्रसार में महान् योगदान दिया। अनेक स्थानों पर शिक्षण केन्द्र खोले गये। जब ब्रिटिश सरकार को अपनी आवश्यकतानुसार अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों की आवश्यकता हुई तो उसने अंग्रेजी के प्रसार का कार्य प्रारम्भ किया। लार्ड मैकाले के प्रयत्नों से भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बनी और उसके बाद से अंग्रेजी शिक्षा देने वाली शिक्षा संस्थाओं में निरन्तर वृद्धि होती गई। इसके पूर्व भारत में मुख्य रूप से अरबी और फारसी और संस्कृत आदि भाषाओं का प्रचार था परन्तु पाश्चात्य प्रभाव के कारण शिक्षा के माध्यम को अंग्रेजी बनाया गया। अंग्रेजी शिक्षा के अत्यन्त दूरगामी प्रभाव पड़े और समाज में शिक्षित और अशिक्षित का भेद-भाव उत्पन्न हुआ और दोनों वर्गों की खाई गहरी होती गई। जो लोग अंग्रेजी पढ़े-लिखे होते थे उन्हें उचित सम्मान नहीं प्राप्त होता था। अंग्रेजी शिक्षा के परिणामस्वरूप ही भारत में मध्यम वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ और कालान्तर में इस वर्ग ने ही राजनीतिक आन्दोलनों में महत्वपूर्ण योगदान दिया। भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति में इस वर्ग का जितना अधिक योगदान है उतना अधिक अन्य किसी वर्ग का नहीं।

पाश्चात्य प्रभाव के कारण ही आज भी हम अंग्रेजी के मोह को नहीं छोड़ पाये हैं और भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त किये हुए 28 वर्ष हुए हैं परन्तु फिर भी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भारत की अपनी कोई राष्ट्र भाषा नहीं है। हिन्दी को केवल राज भाषा का पद प्राप्त करने का गौरव ही प्राप्त हुआ है। यद्यपि यह उचित नहीं है परन्तु इतना अवश्य स्वीकार किया जावेगा कि ज्ञान-विज्ञान के प्रसार में अंग्रेजी भाषा ने महान योगदान दिया है।

भारतीय साहित्य पर प्रभाव

भारत की विभिन्न भाषाओं के साहित्य पर भी अंग्रेजी और पाश्चात्य विचारों का प्रभाव देखने को मिलता है। विभिन्न भाषाओं का साहित्य पाश्चात्य प्रभाव में रंगा हुआ दिखलाई पड़ता है। हिन्दी, बंगाली, मराठी तामिल और तेलगू आदि सभी भाषाओं के साहित्य पर पाश्चात्य विचार धारा की छाप है। सभी भाषाओं के साहित्यकारों ने पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा ग्रहण की है। अंग्रेजी पढ़ने से भारत की पहुँच केवल अंग्रेजी साहित्य तक ही नहीं हुई बल्कि यूरोप की अन्य भाषाओं के ग्रन्थों के पढ़ने का अवसर भी भारत के साहित्यकारों और पढ़े-लिखे को मिला। इन विभिन्न ग्रन्थों के अध्ययन के फलस्वरूप भारतीय साहित्यकार नवीन प्रगतिशील विचारों से अवगत हुए और उन्होंने इन विचारों का भारत में प्रसार किया। स्वतन्त्रता, समानता आदि सिद्धान्तों ने भारतीय मस्तिष्क में महान क्रान्ति उत्पन्न कर दी। देश के राजनीतिक आन्दोलनों में जिन नेताओं ने भाग लिया उनके विचार पश्चिमी विचारों से बहुत मिलते-जुलते थे। उन्होंने यूरोप के नेताओं के धर्म को अपनाया और अपने आन्दोलनों को पश्चिमी ढंग से चलाने का प्रयास किया। इन विचारधाराओं का प्रभाव हमारे साहित्यिक क्षेत्र में भी पड़ा। यूरोपीय ग्रन्थों से ली गई सामग्री भारतीय साहित्य में आती गई और वास्तव में भारत का आधुनिक गद्य साहित्य अंग्रेजी साहित्यिक ग्रन्थों के अनुवाद से प्रारम्भ होता है। हिन्दी में गद्य साहित्य का आरम्भ करने का श्रेय पाश्चात्य मिशनरियों को ही है। गद्य साहित्य के अतिरिक्त काव्य, नाटक, उपन्यास आदि पर भी पाश्चात्य संस्कृति का गहरा प्रभाव है। हिन्दी के नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव के स्पष्ट दर्शन होते हैं और हमारे नाटककारों ने यूरोप के नाटककारों का अनुसरण करने का प्रयास किया है। बर्नार्डशा, गाल्सवर्दी, आदि की शैली को अपनाने का प्रयास हिन्दी के अनेक नाटककारों ने किया है। लक्ष्मी नारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, कैलाश भटनागर आदि के नाटकों में पाश्चात्य प्रभाव अत्यन्त प्रखर रूप से देखने को मिल रहा है।

हिन्दी में उपन्यास और छोटी कहानियों के सृजन में भी पाश्चात्य साहित्य का विशेष प्रभाव है। आरम्भ में हिन्दी में अनेक अंग्रेजी उपन्यासों का अनुवाद किया गया और कालान्तर में मौलिक उपन्यासों की रचना हुई। हिन्दी के मौलिक उपन्यासों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के विषय, शैली और विचार धारा आदि पर भी पाश्चात्य प्रभाव देखने को मिलता है। समालोचना साहित्य भी पाश्चात्य प्रभाव से बचा नहीं है। काव्य क्षेत्र में भी पाश्चात्य प्रभाव है। सॉनेट (Sonnet) का अनुसरण करके चतुर्दशपदी लिखी गई। ब्लैंकवर्स (Blankverse) की तरह 'अतुकांत कविता' लिखी गई और 'ओड' (Ode) की तरह के गीत लिखे गये। अंग्रेजी लिरिक्स (Lyrics) की तरह की हिन्दी कविता भी लिखी गई। आधुनिक युग के अनेक कवियों पर पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव के दर्शन होते हैं। हिन्दी का छायावादी काव्य अंग्रेजी के रोमांटिक काव्य से पूर्णतया प्रभावित है।

पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव केवल हिन्दी भाषा के साहित्य पर ही नहीं पड़ा बल्कि अन्य भाषाओं के साहित्य को भी पाश्चात्य विचारधारा और साहित्य ने प्रभावित किया। बंगला पर पाश्चात्य प्रभाव सबसे अधिक पड़ा। मराठी, तेलगू और और तामिल साहित्य भी पाश्चात्य प्रभाव से रहित नहीं है। प्रादेशिक भाषाओं की उन्नति में ईसाई धर्म के प्रचारकों एवं पादरियों ने महान योगदान दिया। उन्होंने अपने धर्म का प्रचार करने हेतु प्रादेशिक भाषाओं का अध्ययन किया और इन भाषाओं के कोष आदि बनाये। इन भाषाओं का इतिहास भी पाश्चात्य विद्वानों ने लिखा। विभिन्न भाषाओं के मुद्रणालय स्थापित करने का श्रेय भी ईसाई मिशनरियों को प्राप्त है। 1848 ई० में गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी (Gujrat Vernacular Society) की स्थापना हुई और मराठी भाषा की उन्नति में पादरियों ने विशेष योगदान दिया। 1857 ई० में कलकत्ता में 'रायल एशियाटिक सोसाइटी (Royal Asiatic Society) की स्थापना हुई जिसने कि भारतीय साहित्यिक जगत पर अपना प्रभाव डाला।

संस्कृत भाषा एवं साहित्य को भी पाश्चात्य विद्वानों की महान देन है। संस्कृत के अनेक बहुमूल्य ग्रन्थ पाश्चात्य विद्वानों के कारण ही प्रबुद्धजनों के सामने आये। चार्ल्स विल्किस, सर विलियम जोन्स, कोल ब्रुक्स और मैक्समूलर आदि विद्वानों ने संस्कृत भाषा का गहन अध्ययन किया और अनेक संस्कृत ग्रन्थों का अंग्रेजी में अनुवाद किया। विलियम जोन्स जो कि कलकत्ते की सुप्रीमकोर्ट का न्यायाधीश था, ने 'बंगाल एशियाटिक सोसाइटी' की स्थापना की जिसका उद्देश्य पूर्वी ज्ञान की खोज करना था। पाश्चात्य विद्वानों के निरन्तर परिश्रम के फलस्वरूप भारत के अनेक ग्रन्थ प्रकाश में आये और वह साहित्य जिसको स्वयं भारतवासी भूल गये थे, उनके सम्मुख फिर से प्रस्तुत हुआ। परिणाम यह हुआ कि पाश्चात्य विचारों को अपना कर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भारतीय भावनाओं का भी आदर होने लगा और प्राचीन एवं अर्वाचीन विचार-धाराओं का समन्वय स्थापित हुआ। वास्तव में साहित्यिक क्षेत्र में प्राचीन और अर्वाचीन विचारधाराओं का समन्वय स्थापित करने का श्रेय पाश्चात्य विद्वानों को ही है।

विज्ञान पर प्रभाव

भारतीय वैज्ञानिक प्रगति में पाश्चात्य जगत की महान देन है। मध्य युग में भारत में विज्ञान की प्रगति शून्य हो चुकी थी परन्तु पश्चिम के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप भारत वासियों ने यह समझा कि यूरोप की तीव्र प्रगति का मुख्य कारण इसका विज्ञान एवं अन्वेषण कार्य ही है। वैज्ञानिक आविष्कारों के यूरोप की काया-पलट कर दी है। वैज्ञानिक प्रगतिशील दृष्टिकोण के कारण यूरोप से अन्धविश्वासों का अन्त हो चुका है और वहाँ धार्मिक बन्धन एवं सामाजिक कुरीतियाँ समाप्त सी हो चुकी हैं। इस प्रगति को देख कर भारतीयों के मन में भी पाश्चात्य जगत के विज्ञान के प्रति आकर्षण उत्पन्न हुआ और उन्होंने यह अनुभव किया कि वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा भारत की कायापलट कर देना अत्यन्त आवश्यक है। पश्चिम के सम्पर्क के कारण भारत में विज्ञान की अपार उन्नति हुई। अन्वेषण एवं अनुसंधान के महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किए गए। भारत में वैज्ञानिक शिक्षण संस्थाओं का प्रारम्भ हुआ और विश्वविद्यालयों में विज्ञान की शिक्षा की विशेष व्यवस्था की गई।

स्वतन्त्र भारत में भी जो वैज्ञानिक प्रगति हो रही है उसमें पाश्चात्य देशों का महान योगदान है। यहाँ जो बड़े-बड़े बाँध बन रहे हैं और भारत का औद्योगी-करण तेजी से होता जा रहा है उसमें पाश्चात्य जगत ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पाश्चात्य शिक्षा के परिणामस्वरूप ही भारत सर जे० सी० बोस, सर सी० वी० रमन, पी० सी० रे, डा० भाभा और डा० खुराना जैसे वैज्ञानिक का जन्म देने में सफल हुआ है।

ललित कलाओं पर प्रभाव

अति प्राचीन काल में भारत में ललित कलाओं की विशेष उन्नति हुई थी। मौर्य और गुप्त काल में भारतीय कला का उज्ज्वल रूप देखने को मिला था। इसके बाद मुगल सम्राटों ने भी वास्तुकला के विकास में महान योगदान दिया था। आधुनिक युग में भारतवासी अपनी वास्तुकला, चित्रकला, संगीत कला को भूल से गये थे परन्तु सिस्टर निवेदिता, हैवेल, फर्ग्युसन और स्टुअर्ट आदि विद्वानों के प्रयासों से भारतवासियों ने अपने कलात्मक गौरव को फिर से जाना और उन्हें भारतीय कला की उज्वल परम्पराओं को एक बार फिर से जानने का अवसर प्राप्त हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मार्शल, पर्सी ब्राउन, स्मिथ, आदि विद्वानों ने भारत की महानता को सबके सम्मुख रखा। पाश्चात्य विद्वानों ने यहाँ के अनेक शिलालेखों की खोज की और उन पर लिखी हुई बातों का विश्लेषण किया। अनेक स्थानों की खुदाई करके ऐतिहासिक घटनाएँ और प्राचीन भारतीय कला को प्रकाश में लाने का श्रेय पाश्चात्य विद्वानों को है। आधुनिक भारतीय कला-कृतियों पर भी पाश्चात्य प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट रूप में हमें देखने को मिलता है। आधुनिक भारतीय शिल्पकला और चित्र कला पाश्चात्य रंग में काफी रंग सी गई है और आज भारतवर्ष में अनेक वैसे चित्र बनने लगे हैं जैसे कि पाश्चात्य देशों में बनते हैं। भारतीय संगीत भी पाश्चात्य प्रभाव से रहित नहीं है। संगीत की अनेक धुनें पाश्चात्य संगीत से ग्रहण की गई हैं। भारत का चित्रपट जगत पाश्चात्य देशों का अधिक ऋणी है। फोटोग्राफी के भाँति-भाँति के ढंग विदेशों से ही भारत में आये हैं और आधुनिक चलचित्र जगत पर पाश्चात्य प्रभाव अत्यन्त व्यापक मात्रा में देखने को मिलता है

उपसंहार—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारत के सांस्कृतिक जीवन में पाश्चात्य प्रभाव अत्यधिक पड़ा है। यह प्रभाव केवल नगरों में ही देखने को नहीं मिलता बल्कि भारतीय ग्रामों में भी देखने को मिलता है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों के आविष्कारों ने भारत में भी स्थान और समय की दूरी को बहुत कम कर दिया है। परिणाम यह हुआ है कि अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार ग्रामों में भी हुआ है। भारतवासियों के जीवन स्तर को बदलने का श्रेय भी पाश्चात्य जगत को है। प्राचीन परम्पराओं, विचारधाराओं एवं दृष्टिकोणों में महान अन्तर आ गया है और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में बड़े क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। पाश्चात्य प्रभाव के कारण ही भारत में आधुनिकता और पुनर्जागरण आया और अनेक क्रान्तिकारी विचारधाराएँ उत्पन्न हुईं। अत्यन्त संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति पाश्चात्य जगत की अत्यन्त ऋणी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय 13

आधुनिक भारत में पुनर्जागरण
(THE RENAISSANCE IN THE MODERN INDIA)

भूमिका

19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक एक प्रकार से भारत में विदेशी सभ्यता पूर्ण रूप से स्थापित हो चुकी थी। 19 वीं शताब्दी और 20 वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और 20 वीं शताब्दी का प्रारम्भिक युग भारतीय इतिहास में अपना प्रमुख स्थान रखता है। इस युग में भारतीयों का पुनर्जागरण हुआ और उनके राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। इस अध्याय में आधुनिक भारत के पुनर्जागरण पर संक्षेप में प्रकाश डाला जायगा।

प्रश्न (1) 19 वीं शताब्दी के सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों के प्रमुख कारणों का संक्षिप्त परिचय दीजिए और बतलाइए कि उनका भारतीय समाज पर क्या प्रभाव पड़ा ?

19 वीं शताब्दी में देश में अनेक सामाजिक तथा धार्मिक सुधार के आन्दोलन सामने आये। इन सुधारकों ने सामाजिक रूढ़ियों तथा धार्मिक परम्पराओं के विरुद्ध आवाज उठाई। पाश्चात्य विचारधारा का भी प्रभाव तत्कालीन विचारकों पर पड़ा परिणामस्वरूप अनेक सुधारवादी संस्थाओं ने इस देश में जन्म लिया। ईसाई प्रचारक अपने धर्म प्रचार में व्यस्त थे। धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं में ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, राम कृष्ण मिशन तथा थियोसोफिकल सोसाइटी का विशेष स्थान है। राजा राम मोहनराय ने ब्रह्म समाज नामक संस्था को धार्मिक सुधार के लिये बनाया था। आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानन्द सरस्वती ने की। हिन्दू धर्म को पुनर्जागृति का सन्देश रामकृष्ण परमहंस ने दिया।

आन्दोलन के कारण

19 वीं शताब्दी में जो धार्मिक आन्दोलन हुए उनके निम्नलिखित कारण थे :—

(1) **हिन्दू धर्म और समाज में कुप्रथाओं का बोलबाला**—उस युग में हिन्दू धर्म और समाज में अनेक कुरीतियां उत्पन्न हो गई थीं और ऐसा आभास होने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगा था कि हिन्दू धर्म सदैव के लिए समाप्त हो जायेगा तथा हिन्दू जनता कभी भी अपना सिर न उठा सकेगी। इन परिस्थितियों में हिन्दुओं का जागृत होना स्वाभाविक था। धर्म और समाज को परिष्कृत किये बिना हिन्दू कभी भी उन्नति नहीं कर सकते थे।

(2) अंग्रेजी शासन का प्रभाव—समाज सुधार के क्षेत्र में अंग्रेजी शासन का भी महान प्रभाव पड़ा। आरम्भ में अंग्रेज भारतीय समाज के दोषों की ओर से उदासीन रहे, कालान्तर में उन्होंने भी समाज-सुधार के क्षेत्र में अभिरुचि दिखलाई और बाल-हत्या, सती-प्रथा आदि सामाजिक दोषों को दूर करने का प्रयास किया।

(3) पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव—अंग्रेजों की शासन व्यवस्था के फलस्वरूप भारतीय जनता पर पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव पड़ा। इस कारण उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया और उनके अज्ञान का शनैः शनैः विनाश हुआ। उनमें चेतना की भावना उत्पन्न हुई और फलस्वरूप धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन हुए।

(4) अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव—भारतीय नवयुवकों पर अंग्रेजी शिक्षा का भी प्रभाव पड़ा। अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप भारतीयों के दृष्टिकोणों में परिवर्तन हुआ, पढ़े लिखे लोगों की विचार-संकीर्णता दूर हुई और उनके दृष्टिकोण उदार एवं व्यापक बन गये। शनैः शनैः उनकी रूढ़िवादिता और अन्धविश्वास की भावना समाप्त होती गयी।

(5) ईसाई धर्म के प्रचार का प्रभाव—भारत में सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों का सबसे प्रमुख कारण ईसाई धर्म का प्रचार था। भारत में अंग्रेजी शासन दृढ़ होने के पश्चात् ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म का प्रचार बड़ी तेजी से प्रारम्भ किया। ईसाई धर्म अत्यन्त सरल था और इसमें आडम्बरता नहीं थी। फलस्वरूप अनेक भारतवासी ईसाई धर्म की ओर उन्मुख हुए। इससे हिन्दुओं की भी आँखें खुलीं और उन्होंने भी अपने धर्म की कुरीतियों को दूर करने और उसके प्रचार का बीड़ा उठाया।

(6) वैज्ञानिक प्रगति का प्रभाव—19 वीं शताब्दी में यूरोप में अत्यधिक वैज्ञानिक प्रगति हुई, इसका प्रभाव भारत पर भी पड़ा और भारतीय जनता में भी चेतना उत्पन्न हुई। विज्ञान की प्रगति ने अन्धविश्वास और रूढ़िवादिता को दूर करने में महान् योगदान दिया।

(7) राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव—1857 ई० में भारतवासियों में राष्ट्रीय चेतना का सूत्रपात हुआ था। इसके बाद यह चेतना दिन-प्रतिदिन बलवती होती गयी और इसके फलस्वरूप सामाजिक और धार्मिक चेतना का भी प्रादुर्भाव हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(8) **महान सुधारकों का जन्म**—19 वीं शताब्दी में सौभाग्य से हिन्दुओं में ऐसे महान् सुधारकों और उपदेशकों का जन्म हुआ जिन्होंने अपनी विचारधारा और वाणी के द्वारा भारतीय जनता को जागृत करने में महान योगदान दिया। वे सुधारक भारतीय संस्कृति के महान उपासक थे और इसलिए उन्होंने हिन्दू धर्म को सुधारने और भारतीय समाज की कुरीतियों को दूर करने का बीड़ा उठाया।

हिन्दुओं के धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन

जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है कि 19वीं शताब्दी में हिन्दू धर्म पतन के गर्त में गिर गया था और हिन्दू समाज में अनेक कुरीतियाँ व्याप्त हो गई थीं। इस समय राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द आदि महापुरुषों का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने विभिन्न मतों का प्रचलन करके हिन्दू धर्म के गौरव को पुनः ऊँचा उठाने में और समाज को सुधारने का बीड़ा उठाया। हिन्दुओं के विभिन्न धार्मिक आन्दोलनों का उल्लेख यहाँ संक्षेप में किया जा रहा है :—

ब्रह्म समाज

सामान्य परिचय—आधुनिक धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों में ब्रह्म समाज का विशिष्ट स्थान है। इस आन्दोलन के प्रवर्तक राजा राम मोहन राय थे। इनका जन्म एक बंगाली ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वह पाश्चात्य सभ्यता से बहुत अधिक प्रभावित थे और उन्हें अरबी, फारसी, संस्कृत तथा अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान था। हिन्दू धर्म की कुरीतियों को दूर करने के हेतु सन् 1828 ई० में उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की जिसकी प्रथम बैठक 20 अगस्त, 1828 को कलकत्ता में हुई। राजा राम मोहन राय हिन्दू धर्म में प्रचलित जाति-पाँति, छुआछूत, मूर्ति-पूजा, बहु-विवाह, सती-प्रथा आदि को दूर करना चाहते थे और अनेक हिन्दुओं को, जिनको अपने धर्म से श्रद्धा न थी, धर्म की ओर उन्मुख करना चाहते थे। उनका मत था कि वैदिक धर्म अत्यन्त पवित्र, शुद्ध, सरल और अनुकरणीय है और उसी वैदिक विचार-धारा को ही उन्होंने अपने ब्रह्म समाज में स्थान दिया।

सिद्धान्त—ब्रह्म समाज के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(1) परमात्मा एक है और वह सम्पूर्ण सद्‌गुणों का केन्द्र एवं भण्डार है।

(2) वह सृष्टि का रचयिता और संरक्षक है।

(3) वह न कभी जन्म लेता है और न कभी देह धारण करता है।

(4) वह केवल प्रार्थना सुनता है और उसे स्वीकार करता है।

(5) जीवात्मा अमर है और वह अपने कर्मों के हेतु परमात्मा के प्रति उत्तरदायी है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(6) सभी जातियों के लोगों को ईश्वर को पूजा करने का अधिकार है। उसकी पूजा एवं भक्ति के हेतु मन्दिर में जाने तथा अन्य आडम्बर करने को कोई आवश्यकता नहीं है।

(7) परमात्मा की पूजा शुद्ध आत्मा से होनी चाहिए।

(8) मनुष्य को पाप का त्याग करना चाहिए और सभी धर्मों से सत्य को ग्रहण करना चाहिए।

(9) ईश्वर पापियों और पुण्यात्माओं को उनके कर्म के अनुसार दण्ड देता है।

(10) किसी पुस्तक को दैवीय नहीं मानना चाहिए क्योंकि कोई भी पुस्तक त्रुटि रहित नहीं होती।

(11) ईश्वर मानकर किसी वस्तु की पूजा नहीं करनी चाहिए।

(12) मनुष्य को प्रज्ञा, परोपकार और पवित्रता द्वारा ईश्वर को भक्ति में लीन हो जाना चाहिए क्योंकि यही सच्चा मोक्ष है।

योगदान—ब्रह्म समाज का भारतीय समाज और हिन्दू धर्म को महान योगदान है। राजाराम मोहन राय ने हिन्दू धर्म के वास्तविक स्वरूप को जनता के सम्मुख रखा और धर्म को नवीनता की कसौटी पर कसने का प्रयास किया। यही कारण है कि सुभाषचन्द्र बोस ने उन्हें एक युगदूत के नाम से पुकारा है। उन्होंने लिखा है :—

"Raja Ram Mohan Rai stood as the apostle of religious revival ..Raja Ram Mohan Rai, therefore stands against the dawn of the awakening in India as the prophet of the new age."

धार्मिक चेतना के साथ ही राजा राम मोहन राय ने सामाजिक सुधार का जो बीड़ा उठाया वह भी चिरस्मरणीय रहेगा। उन्होंने सती-प्रथा को बन्द करने का प्रयास किया और भ्रूण-हत्या, बलि-प्रथा आदि के विरुद्ध आवाज लगाई। पं० जवाहर लाल नेहरू ने उनके विषय में लिखा है :—

"वे केवल एक विद्वान और अन्वेषक ही नहीं थे, वे एक सुधारक थे। आरम्भ में उन पर इस्लाम का असर हुआ था और बाद में कुछ हद तक ईसाई धर्म का, लेकिन फिर भी अपने धर्म में दृढ़ता के साथ जमे रहे। उस धर्म को उन्होंने उन कुरीतियों और कुप्रथाओं से, जो उस समय उनसे जुड़ गई थी, छुड़ाने की कोशिश की। सती-प्रथा बन्द करने के लिए उन्हीं के आन्दोलनों की वजह से विशेष रूप से सरकार ने उस पर रोक लगाई।"

राजा राम मोहन राय उन महान विभूतियों में से थे जिन्होंने बहुत से हिन्दुओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को ईसाई होने से रोका। वह हिन्दू धर्म को विज्ञान और बुद्धिवाद की कसौटी पर खरा उतारना चाहते थे। श्री दिनकर ने उनके विषय में लिखा है :—

"ईसाई धर्म हिन्दुत्व से कई गुना बलवान दीखता था। उसका सामना करने के लिये यह आवश्यक था कि भारत यूरोप की वैज्ञानिकता को ग्रहण कर इस वैज्ञानिकता के साथ अपने धर्म को भी संसार के सामने रखे। अतएव वैज्ञानिकता का वेदान्त से मणिकांचन संयोग नवोत्थान का प्रधान लक्षण हो गया और राजाराम मोहनराय हिन्दुत्व के उस पक्ष का आख्यान करने लगे, जिसमें मूर्ति पूजा नहीं था, अवतारवाद नहीं था और न जिसमें मन्दिर और तीर्थों की ही कोई बात थी।" उन्होंने आगे लिखा है 'राममोहन की विशेषता यह थी कि एक ओर तो वेदान्त के स्थान से हिलने को तैयार नहीं थे, दूसरी ओर वे अपने देशवासियों को अंग्रेजी द्वारा पाश्चात्य विद्याओं में निष्णात बनाना चाहते थे। ...उनका यह भी मत था कि हिन्दुत्व का कोई भी ऐसा रूप मान्य नहीं रहना चाहिए जो विज्ञान और बुद्धिवाद की कसौटी पर खरा नहीं उतरता हो।'

राजाराम मोहन राय मानवतावादी दृष्टिकोण से प्रभावित थे। उनके विषय में श्रीद्विजेन्द्र नाथ सियाल लिखते हैं—

"Raja Ram Mohan Rai was the harbinger of Universal Humanism,.........the humanist, pure and simple watching from his towards the procession of Universal Humanity in Universal History."

श्री के० एम० पाणिक्कर ने उनके सुधारों का मूल्यांकन करते हुए लिखा है—

"धार्मिक सुधारों में राजाराम मोहन राय ने जो योगदान किया उसको भारतवासी नहीं भूल सकते हैं।"

ब्रह्म समाज के दो रूप—राजा राम मोहनराय की मृत्यु के पश्चात् ब्रह्म समाज में फूट पड़ गई और उसमें दो दल बन गये। एक दल के नेता देवेन्द्र नाथ टैगोर और दूसरे दल के नेता श्री केशवचन्द्र सेन थे। देवेन्द्र नाथ टैगोर उपनिषदों पर बहुत अधिक विश्वास करते थे और जाति-पाँति तोड़ने पर अधिक बल देते हैं। ब्रह्म समाज की इस शाखा को 'आदि समाज' के नाम से पुकारा जाता है। श्रीकेशव चन्द्र सेन ईसाई मत से अधिक प्रभावित थे और वे ईसा के बहुत प्रशंसक थे। वह हिन्दू समाज में आमूल परिवर्तन के इच्छुक थे। ब्रह्म समाज की इस शाखा को 'प्रार्थना समाज' के नाम से पुकारा जाता है।

ब्रह्म समाज ने हिन्दू धर्म और भारतीय समाज की बहुत अधिक सेवा की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परन्तु इस मत के अनुयायी भारत में अधिक संख्या में नहीं हैं, केवल बंगाल में रहने वाले 5-6 हजार व्यक्ति ही इस मत के अनुयायी हैं।

आर्य समाज

सामान्य परिचय—भारत के धार्मिक और सामाजिक सुधार के क्षेत्र में आर्य समाज का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म सन् 1824 में गुजरात के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। शक्ति की खोज में बीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने घर त्याग दिया और मथुरा आकर स्वामी विरजानन्द के शिष्य बन गये। तीस वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद सन् 1874 में उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें उनका धार्मिक दृष्टिकोण प्रमुख रूप से स्पष्ट हुआ है।

सन् 1875 में उन्होंने आर्य समाज की स्थापना की। वे हिन्दू समाज के बहुत बड़े उद्धारक थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने निम्नलिखित विषयों की ओर ध्यान दिया—

(1) हिन्दू राष्ट्रवाद की भावना को बढ़ाना।

(2) हिन्दी भाषा तथा साहित्य को प्रोत्साहन।

(3) वैदिक संस्कृति के पठन-पाठन पर जोर।

(4) स्त्री-शिक्षा का प्रसार तथा नारियों का उद्धार।

स्वामी दयानन्द ने ईश्वर के सच्चिदानन्द रूप को स्पष्ट किया है। 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रन्थ में उन्होंने अपना देश और अपने राज्य का नारा लगाया था। उन्होंने भारतीय समाज की कुरीतियों मे मुक्त कराने का प्रयास किया। हिन्दू समाज की रक्षा के लिए 'शुद्धि आन्दोलन' को जन्म दिया। इससे पूर्व जो हिन्दू मुसलमान हो जाते थे, उन्हें पुनः हिन्दू धर्म में नहीं लिया जाता था। स्वामी दयानन्द के प्रयत्नों से उनका शुद्धि आन्दोलन समस्त देश में फैल गया और ईसाई तथा मुसलमान धर्म का प्रचार रुक गया।

स्वामी दयानन्द प्राचीन सस्कृति के उपासक थे। इसी आधार पर वे शिक्षा का रूप निर्माण करना चाहते थे।

वह अंग्रेजी पढ़े लिखे न थे, परन्तु उनका दृष्टिकोण उदार तथा सुधारवादी था। उन्होंने वेदों का गहन अध्ययन किया था और अन्त में इस निर्णय पर पहुँचे थे कि बहु-विवाह तथा बाल-विवाह हिन्दू परम्पराएँ नहीं हैं। उन्होंने विधवा-विवाह को उचित बताया और छुआछूत को धार्मिक दृष्टि से अनुचित बताया।

स्वामी दयानन्द का मूर्ति-पूजा में विश्वास नहीं था। उनके अनुसार

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मूर्ति-पूजा वैदिक धर्म के प्रतिकूल है। भारतीयों में राजनीतिक चेतना का संचार भी स्वामी दयानन्द ने किया। उन्होंने देश-प्रेम और संस्कृति प्रेम सिखाया। 'स्वभाषा' धर्मवीर, गुरुदत्त, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द आदि थे—

सिद्धान्त—आर्य समाज के प्रसिद्ध सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

(1) सब पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं सब सत् विद्या का मूल कारण परमात्मा है।

(2) ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधिकार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करना उचित है।

(3) वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं। वेद का पढ़ना, पढ़ाना, सुनना और सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

(4) सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिए।

(5) सब कार्य धर्मानुसार करना चाहिए।

(6) संसार का उपकार अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना समाज का मुख्य उद्देश्य है।

(7) सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य बरतना चाहिए।

(8) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

(9) प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

(10) सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालन करने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम पालन में स्वतंत्र।

योगदान—भारत को आर्य समाज का महान् योगदान है। इस समाज ने भारत के धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं—

(अ) धार्मिक योगदान—आर्य समाज में एकेश्वरवाद को मान्यता दी गई और हिन्दू समाज के कर्मकाण्डों और पुरोहितवाद का विरोध किया गया। इस समाज ने वैदिक धर्म का पुनरुत्थान किया और वैदिक रीति से यज्ञ, हवन, प्रार्थना, सत्संग आदि करके निराकार ईश्वर की उपासना के सिद्धान्त को सामने रखा। आर्य समाज तीर्थ स्थान और अवतारवाद का विरोधी है। वह आत्मज्ञान का मार्ग प्रत्येक व्यक्ति के लिए खोल देने का पक्षपाती है। आर्यसमाजियों के अनुसार समस्त ज्ञान का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वेद है और वेदों का अध्ययन करने का अधिकार प्रत्येक स्त्री पुरुष को, चाहे वह किसी जाति का हो, है। आर्य समाज ने ही जनता में हिन्दू धर्म के प्रति निष्ठा उत्पन्न करके हिन्दुओं को और धर्मों के चंगुल से बचाया। एक विद्वान ने लिखा है—

"It was Dayand Saraswati who first proclaimed that India was for the Indians."

(ब) **सामाजिक योगदान**—सामाजिक क्षेत्र में भी आर्य समाज का महान् योगदान है। आर्य समाजियों ने स्त्रियों और पुरुषों की समानता पर बल दिया छुआछूत का अन्त किया, विधवा विवाह का समर्थन किया, बहु-विवाह और बेमेल-विवाह का प्रबल विरोध किया। आर्य समाज जन्त्र-मंत्र, जादू-टोना और अन्य अन्धविश्वासों को मान्यता नहीं प्रदान करता। अतः उन्होंने इनका भी खुलकर विरोध किया। शादी-विवाह जीवन-मरण आदि की रीतियों को सरल बनाने का कार्य आर्य समाजियों ने किया। उन्होंने अनाथों और विधवाओं की दशा को सुधारने का प्रयास किया और देश में अनेक अनाथालयों और विधवा आश्रमों की स्थापना की। शैक्षिक जगत में भी आर्य-समाज की महान् देन है। गुरुकुल और डी० ए० वी० कालेज तथा अन्य संस्थाओं की स्थापना करके इन्होंने भारतीय जनता को शिक्षित बनाने का घोर प्रयास किया।

स) **राजनीतिक योगदान** – राजनीतिक क्षेत्र में भी आर्य-समाजियों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किए। स्वामी दयानन्द पहले ऐसे भारतीय थे जिन्होंने स्वदेशी और स्वराज्य की आवाज उठाई। मिसेज एनीबेसेन्ट ने लिखा है—

स्वामी जी ने भारतवासियों का ध्यान उनके गौरवशाली अतीत की ओर आकर्षित कराया और उनमें देश भक्ति की भावना जागृत की। हिन्दी और संस्कृत के प्रसार के लिये उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया।"

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि महर्षि दयानन्द और उनके आर्य-समाज में भारत में राजनीतिक चेतना, सामाजिक निर्माण, और धार्मिक पुनरुत्थान के लिये जो कार्य किया वह सदैव याद रखा जायेगा।

थियोसोफिकल सोसाइटी

सामान्य परिचय—इस सोसाइटी का स्थापना 7 दिसम्बर, 1885 को मैडम ब्लैटोवस्की और कर्नल अल्काट ने न्यूयार्क में की। सन् 1879 में ये दोनों समाज सुधारक स्वामी दयानन्द के निमन्त्रण पर भारत आये और इन्होंने भारत में इस सोसाइटी का केन्द्रीय कार्यालय अड्यार नामक स्थान में स्थापित किया। तत्पश्चात् इस सोसाइटी को श्रीमती एनीबेसेन्ट का सहयोग प्राप्त हुआ। श्रीमती

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एनीबेसेन्ट एक विदेशी महिला थीं जो भारत को अपनी मातृभूमि मानकर हिन्दू धर्म में प्रबल आस्था रखती थीं। उन्होंने 'रामायण' और 'महाभारत' आदि ग्रन्थों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद भी किया। थियोसोफिकल सोसाइटी की मान्यता थी कि समस्त संसार विकास की दैवी योजना पर आधारित है। इस सोसाइटी के तीन मुख्य ध्येय थे—

(1) जाति, उपजाति, रंग और धर्म के भेदभाव को मिटाकर विश्व व्यापक भ्रातृत्व के हेतु एक केन्द्र स्थापित करना।

(2) समस्त धर्मों के सिद्धान्तों और विज्ञान का संक्षिप्त अध्ययन करना।

(3) मनुष्य की गुप्त शक्तियों और प्रकृति के गूढ़ रहस्यों का स्पष्टीकरण करना।

सिद्धान्त—उपर्युक्त उद्देश्यों के आधार पर थियोसोफिकल सोसाइटी ने जनता के सम्मुख जो सिद्धान्त रखे, वे निम्नलिखित हैं :—

(1) समस्त धर्मों की शिक्षा का मूल तत्व एक है।

(2) परमात्मा एक है और आत्मा उसका ही अंश है।

(3) पुनर्जन्म और कर्मवाद के सिद्धान्त सत्य हैं। मनुष्य को सुकर्म करने चाहिए।

(4) जाति, रंग या वर्ण के आधार पर कोई भेदभाव करना उचित नहीं है।

(5) सभी के प्रति भ्रातृ-भाव रखना चाहिए और सभी जीवों के प्रति दया रखना चाहिए।

(6) रहस्यमयी प्रकृति मानव जीवन को प्रभावित करती है तथा मूर्ति पूजा वैज्ञानिक दृष्टि से लाभदायक है।

योगदान—थियोसोफिकल सोसाइटी ने भारत समाज के उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस सोसाइटी ने भारतीयों को अपने अतीत को देख कर समस्त संसार-वासियों के प्रति भ्रातृ-भाव रखने का संदेश दिया। ईसाई पादरियों के चंगुल से भारतीयों के बहिष्कार का विरोध किया। थियोसोफिकल सोसाइटी के सदस्यों ने सार्वजनिक उपासना भवनों की स्थापना की और देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में भी महत्वपूर्ण भाग लिया। इन्होंने हमें अपनी भारतीय सभ्यता पर गर्व करना सिखाया और संसार भर में हिन्दुत्व का प्रचार किया। शिक्षा जगत में भी इस सोसाइटी का महत्वपूर्ण योगदान है। इस समाज की ओर से अनेक स्थानों पर विद्यालय खोले गये। सेन्ट्रल हिन्दू विद्यालय और सेन्ट्रल हिन्दू महाविद्यालय की स्थापना का श्रेय थियोसोफिकल सोसाइटी को ही है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राधास्वामी मत

सामान्य परिचय—इस सम्प्रदाय की स्थापना आगरा के खत्री लाला शिवदयाल सिंह ने की। इन्होंने घोषणा की कि परमात्मा ने उन्हें सन्तसद्गुरु बनाकर भेजा है। सन् 1876 में लाला शिवदयाल की मृत्यु हो गई और उसके बाद श्री सालिगराम और श्री ब्रह्मा शंकर क्रमशः उनकी गद्दी पर बैठे। इनके बाद चौथे गुरु सरकार साहब और पाँचवें गुरु आनन्द-स्वरूप जी हुए, जिन्होंने धार्मिक शिक्षा के साथ ही औद्योगिक उन्नति की ओर ध्यान दिया और आगरे के दयालबाग में इंजीनियरिंग कालेज, गोशाला और अन्य प्रकार के कारखाने खुलवाये। इस मत के छठे वर्तमान गुरु गुरुचरणदास मेहता धार्मिक, शैक्षिक और औद्योगिक उन्नति के साथ सहकारी कृषि कार्य में उन्नति कर रहे हैं।

सिद्धान्त—राधास्वामी मत के अनुयायी ईश्वर, संसार और जीवात्मा तीनों को ही पवित्र मानते हैं। वे गुरु को ईश्वर का अवतार और सब क्रियाओं का केन्द्र मानते हैं। जिस चीज को भी गुरु छू लेता है वह उनके लिए पवित्र हो जाती है। वे राधास्वामी नाम के जाप, उनके ध्यान और इस शब्द के श्रवण को मोक्ष का साधन मानते हैं। वे उपासना के लिए मठ, मन्दिर को अधिक महत्व नहीं देते बल्कि उनका कहना है कि किसी भी स्वच्छ स्थान पर राधास्वामी का ध्यान किया जा सकता है। वे गृहस्थों के लिए भी मोक्ष का मार्ग बतलाते हैं और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को सत्य मानते हैं। उनका जाति-पाँति में विश्वास नहीं है।

वेदान्त समाज या रामकृष्ण मिशन

सामान्य परिचय—रामकृष्ण मिशन या वेदान्त समाज की स्थापना स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने की। रामकृष्ण परमहंस का जन्म सन् 1834 में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे काली देवी के उपासक थे। कहा जाता है कि एक बार उन्होंने 6 मास की समाधि लगाई और तभी उन्हें परमात्मा के दर्शन हुए। परमात्मा के दर्शन के पश्चात् वह जनकल्याण की ओर अग्रसर हुए और उन्होंने अछूतोद्धार का बीड़ा उठाया। चांडाली की वृत्ति धारण करके उन्होंने पाखाना तथा गन्दी नालियाँ साफ की। मुसलमानों और ईसाइयों के धर्म को समझने के लिए उन्होंने उनके जैसे रहन-सहन को अपनाया।

रामकृष्ण परमहंस के बाद उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु के संदेश को समस्त संसार में फैलाने का बीड़ा उठाया। विवेकानन्द का जन्म कलकत्ते के एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने कोलम्बो, अमेरिका, कनाडा, और इंग्लैंड आदि देशों में हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महत्व समझाया, जिससे उनको बहुत अधिक ख्याति मिली। विवेकानन्द ने अपने गुरु के नाम पर 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की और बैलूर तथा मायावती में अपने मठ स्थापित किए। इस मिशन ने धर्म प्रचार के साथ ही शिक्षा का प्रचार किया और दीन-दुखियों की सेवा की।

वेदान्त के प्रचार में स्वामी रामतीर्थ ने भी महान् योगदान दिया। आरंभ में वह गवर्नमेण्ट कालेज के प्रोफेसर थे, परन्तु बाद में वह अध्यापन कार्य छोड़कर संन्यासी हो गए। उन्होंने जापान, अमेरिका तथा अन्य देशों में वेदान्त का प्रचार किया। उनकी भाषण शैली अत्यन्त आकर्षक थी और हजारों व्यक्ति उनके भाषण सुनने के लिए उतावले रहते थे। सन् 1903 में 33 वर्ष की अल्पायु में ही उनकी मृत्यु हो गई।

सिद्धान्त—वेदान्त समाज या रामकृष्ण मिशन के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(1) सभी धर्म समान, अच्छे और सत्य हैं, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म में ही पूर्ण निष्ठा रखनी चाहिए।

(2) परमात्मा अव्यक्त, अजेय और अजन्मा है। वह प्रतिबन्ध रहित है और संसार के प्रत्येक व्यक्ति में विद्यमान है। मनुष्य की आत्मा ईश्वरीय है और उस आत्मा को परमात्मा के दर्शन किसी भी स्थान में हो सकते हैं। मूर्ति पूजा उपासना का अति शुद्ध और उच्च रूप है।

(3) हिन्दू धर्म के समस्त अंग सच्चे और रक्षणीय हैं तथा हिन्दू सभ्यता अति प्राचीन, सुन्दर एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण हैं।

(4) मनुष्य को अपना मन निर्मल रखना चाहिए और सम्प्रदायवाद से दूर रहना चाहिए। संसार में केवल कर्म करना चाहिए और फल की इच्छा ईश्वर पर छोड़ देनी चाहिए। मनुष्य मात्र की सेवा के हेतु अपने स्वार्थ का परित्याग करना चाहिए।

(5) पाश्चात्य सभ्यता भौतिकवादी और छल से युक्त है, अतः प्रत्येक हिन्दू को अपने धर्म, जाति और समाज को पाश्चात्य सभ्यता से बचाने का प्रयास करना चाहिए।

योगदान—भारतीय समाज को रामकृष्ण मिशन का जितना अधिक योगदान है उतना अन्य किसी समाज का नहीं। धर्म, राजनीति और समाज सुधार आदि तीनों ही क्षेत्रों में इस मिशन ने सराहनीय कार्य किया। वेदान्त वादियों ने पढ़े-लिखे लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया और सिद्ध कर दिया है कि हिन्दू धर्म केवल हिन्दुओं के लिए ही नहीं वरन् समस्त संसार के निवासियों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। उन्होंने हिन्दू संस्कृति का पोषण किया। सामाजिक क्षेत्र में इस समाज ने छूआ-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छूत को मिटाने और स्त्रियों की दशा को सुधारने का प्रयास किया। शिक्षा प्रचार के हेतु विद्यालयों और दीन दुखियों की सेवा के लिए आश्रमों और चिकित्सालयों की स्थापना की। स्वामी विवेकानन्द ने भारतीयों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न की। स्वामी विवेकानन्द ने भारतीयों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न की। आज भी अमेरिका के नगरों न्यूयार्क, बोस्टन, वाशिंगटन, पिट्सवर्ग और सेन फ्रान्सिसको में में वेदान्त सभाएँ विद्यमान हैं।

मुसलमानों के धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलन

19 वीं शताब्दी मे मुसलमानों में भी सुधार आन्दोलन ने जन्म हुआ। शासन सत्ता की इति के बाद मुस्लिम समाज में धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक समस्यायें उत्पन्न हो गईं। उनमें भी पुनर्जागरण की भावना विभिन्न आन्दोलनों के द्वारा उत्पन्न हुई।

अलीगढ़ आन्दोलन—इस आन्दोलन के जनक सर सैयद अहमद खाँ थे। उन्होंने मुसलमानों के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया। मुसलमानों के लिए पाश्चात्य शिक्षा तथा विज्ञान की आवश्यकता बताई। उन्होंने अंग्रेजों के हृदय से यह निकलवा दिया कि सन् 1857 ई० की क्रान्ति के लिए मुसलमान उत्तरदायी हैं। जीवन के अन्तिम दिनों में मुस्लिम विचारधारा को प्रभावित करने में वे पूर्ण सफल रहे। 1875 ई० में उन्होंने अलीगढ़ में···मोहमडन ऐंग्लो, ओरियन्टल कालेज, की स्थापना की जो बाद में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बना। वह नारी शिक्षा के भी समर्थक थे और पर्दे के विरोधी थे।

(2) **बहावी आन्दोलन**—सर सैयद अहमद बरेलवी तथा इस्माइल हाजी मौलवी मुहम्मद इस आन्दोलन के पथ-प्रदर्शक थे। अरब के बहावी आन्दोलन का प्रभाव इस धार्मिक आन्दोलन पर पड़ा था। इन लोगों ने जन साधारण के लिए कुरान का फारसी अनुवाद सुलभ बनाया। ईश्वर की एकता के साथ पीर पूजा का विरोध किया गया। इस आन्दोलन को विशेष सफलता न मिली।

(3) **अहमदिया आन्दोलन**—मिर्जा गुलाम मुहम्मद कादियानी ने अहमदिया आन्दोलन प्रारम्भ किया। उनका कथन था कि सभी धर्मों में सुधार आवश्यक है। वे समस्त धर्मों को सुमार्ग पर ले चलने वाला तथा वे इस्लाम को अत्यन्त श्रेष्ठ मानते थे। उन्होंने पर्दा-पथा, तलाक, बहु-विवाह प्रथा का प्रवल समर्थन किया।

(4) **अन्य आन्दोलन**—इन आन्दोलनों के अतिरिक्त लाहौर में 'अंजुमन-ए-हिमायत-ए इस्लाम' की स्थापना हुई जो मुसलमानों में शिक्षा प्रसार के साथ उनकी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सामाजिक, नैतिक तथा बौद्धिक विकास का हिमायती था। लखनऊ में 'नदवात-उ-उलेमा' का उद्देश्य सामाजिक दोषों को दूर करना था।

धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनों का भारतीय समाज पर प्रभाव

इन धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनों से निम्न प्रकार के सुधार हुए—

(1) सती-प्रथा का निषेध—सती-प्रथा की समाप्ति का आन्दोलन राजा राम मोहनराय ने चलाया। उनके सबल प्रयत्नों के कारण विलियम बेंटिक ने 1829 ई० में सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित किया। ब्राह्मणों ने इनका विरोध किया, किन्तु राजा राममोहनराय ने इन विरोधों की परवाह न की।

(2) शिशु-हत्या का निषेध—शिशुओं की हत्या गंगा में फेंक कर की जाती थी। कन्या की ओर उचित ध्यान न देकर उसे मार डाला जाता था। इस प्रकार की हत्या 1795 तथा 1802 ई० में गैर कानूनी घोषित की गई।

(3) बाल-विवाह तथा बहु-विवाह पर रोक—बहु-विवाह का विरोध सर्व-प्रथम राजा राम मोहन राय ने किया। केशवचन्द्र सेन के प्रयत्न से 1872 ई० में मैरिज ऐक्ट पास हुआ जिससे बहु-विवाह दण्डित माना गया। बाल विवाह का भी अन्त किया गया। 1884 ई० में मलाबरी नामक पारसी ने बाल-विवाह के विरुद्ध महत्वपूर्ण कार्य किया। 1909 ई० में बड़ौदा राज्य के बनाये कानून के अनुसार वर की न्यूनतम आयु 16 वर्ष और कन्या की 12 वर्ष कर दी गई। 1930 ई० में "शारदा ऐक्ट" पास हुआ जिसमें लड़की के विवाह की न्यूनतम आयु 12 वर्ष तथा बालक की 14 वर्ष कर दी गई।

(4) विधवा-विवाह का प्रसार—18 वीं शताब्दी में विधवा विवाह के लिए आन्दोलन किए गए। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर के प्रयत्नों के बाद 1856 ई० में विधवा विवाह को वैध घोषित किया गया। ब्रह्म समाज व आर्य समाज ने इस दिशा में प्रयत्न किये। शशिपद बनर्जी ने 1887 में कलकत्ते में विधवा-विवाह सहायता हेतु, एक संस्था बनाई। उसी प्रकार रमाबाई ने बम्बई में 'शारदा सदन' श्री कर्वे ने 'विधवा-आश्रम' तथा सर गंगाराम ने लाहौर में 'विधवा-विवाह सहायक सभा' बनाई। 'अखिल भारतीय महिला संघ' के द्वारा भी विधवा समस्या दूर हो गई।

(5) नारी-शिक्षा और स्त्रियों की प्रगति—1849 में कलकत्ता में 'हिन्दू बालिका विद्यालय' बना। धीरे-धीरे इस क्षेत्र में लगातार उन्नति होती गई। ब्रह्म-समाज, आर्य-समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, सर्वेंट्स आफ इण्डिया सोसाइटी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और दक्षिण शिक्षा समिति ने इस दिशा में अनवरत प्रयास किए। सन् 1907 में 'इण्डियन वीमेन्स एसोसियेशन बने।

1916 ई० में दिल्ली में लेडी हार्डिंज मेडिकल कालेज बना और भारतीय रेडक्रास सोसाइटी के 'Maternity and Child Welfare Bureau' ने महिलाओं को लाभ पहुँचाये। इसके अतिरिक्त महिलाओं के लिये अनेक विद्यालय खोले गये। स्त्रियों की उन्नति के साथ उन्हें सरकारी कार्यों में भी मौका मिला। पुरुषों की भाँति महिलायें भी शासन के उच्च पदों पर पहुँचने लगीं।

(6) **महिला मताधिकार**—1917 ई० के बाद महिला मताधिकार आन्दोलन को सफलता मिली। स्त्रियां, कौन्सिलों, नगरपालिकाओं तथा अन्य स्थानीय संस्थाओं में चुनी गई।

(7) **पर्दा-प्रथा का अन्त**—मुस्लिम युग में पर्दा प्रथा के प्रचलन से स्त्रियों की दशा खराब होती गई। शिक्षा के विकास के साथ पर्दा-प्रथा का अन्त हो गया।

(8) **दास प्रथा की समाप्ति**—मुस्लिम युग में दास-प्रथा का प्रचलन जोरों पर था। 1811 ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत में दासों के आयात पर प्रतिबन्ध लगाया था। 1832 ई० में दासों का विक्रय, अपराध घोषित किया गया। 1833 ई० के चार्टर के द्वारा भारत में दास प्रथा का अन्त हो गया। सन् 1843 के कानून के द्वारा उसे गैर कानून करार दिया गया। 19 वीं शताब्दी के आन्दोलनों के पश्चात् यह प्रथा पूर्णतया समाप्त हो गई।

(9) **जाति-प्रथा में ढील**—जाति-प्रथा से समाज को लाभ कम और हानि अधिक हुई। समाज के वर्गीकरण से वैमनस्य बढ़ा और संकुचित विचार फैले। निम्न बर्ग सदैव से मानवीय अधिकारों से वंचित रहा। सुधार आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप इस प्रथा की कठोरता समाप्त हुई। खान-पान के बन्धन ढीले हुए। उत्सवों और शिक्षा आदि क्षेत्रों में इस प्रकार के भेद-भाव कम होने लगे।

(10) **दलित वर्ग का उत्थान**—जाति-प्रथा के कारण समाज में उच्च तथा नीच वर्गो के बीच एक खाईं बन गई थी। हिन्दुओं में यह प्रथा कलंक सी बनी रही। ईसाई प्रचारकों तथा हिन्दू धर्म सुधारकों का ध्यान इस ओर गया। ब्रह्म समाज, आर्य समाज तथा थियोसोफिकल सोसाइटी आदि संस्थाओं ने इस दोष को दूर करने का प्रयास किया। 1916 ई० में बम्बई में दलितों के उत्थान के लिए "The Depressed classes Mission Society of Bombay" बनी। महात्मा गाँधी ने भी इस दिशा में सराहनीय कार्य किया। अनेक हरिजन पाठशालाएँ खोली गईं। उनके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिकार प्रप्ति के कार्य भी शुरू हुए। सार्वजनिक स्थान सरकारी पदों आदि में उनका ध्यान रखा गया।

(11) संयुक्त परिवार-प्रणाली में शिथिलता—भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रणाली सदैव से आधार बनी रही। इससे लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हुई। आधुनिक युग में इसका अन्त होता जा रहा है। पाश्चात्य विचारधारा के प्रभाव से संयुक्त परिवार प्रणाली को ठेस पहुँचा है।

(12) धार्मिक परिशोधन—धार्मिक आन्दोलनों के फलस्वरूप हिन्दू धर्म की अनेक बुराइयाँ दूर हुईं। शनैः शनैः अन्धविश्वासों का अन्त होने लगा और एकेश्वरवाद का प्रचार हुआ। मूर्तिपूजा का भी विरोध प्रारम्भ हुआ। धर्म के नाम पर किये जाने वाले कुकृत्यों की समाप्ति हुई और धर्म का उज्ज्वल रूप सामने आने लगा।

(13) भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का पुनर्जागरण—धार्मिक आन्दोलनों के फलस्वरूप भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पुनर्जागरण हुआ। भारतवासी अपनी सभ्यता और संस्कृति पर गर्व करने लगे और उनमें आत्मगौरव की भावना उत्पन्न हुई।

(14) नव-जागरण का सूत्रपात—19 वीं शताब्दी के आन्दोलनों के फलस्वरूप देश में नव-जागरण की लहर उठी और भारतीयों में नव जीवन का संचार हुआ। भारतीय निराशा और अन्धकार से निकलकर आशा के प्रकाश में आये और उन्होंने बड़ी तेजी से राष्ट्र के उत्थान में योगदान देना प्रारम्भ किया।

(15) राष्ट्रीयता की भावना का विकास—यद्यपि 19 वीं शताब्दी के आन्दोलनों का मुख्य उद्देश्य धर्म और समाज को सुधारना था परन्तु राष्ट्रीय जीवन पर भी इन आन्दोलनों का प्रभाव पड़ा। इस युग में अनेक सुधारक भारतीय सभ्यता और संस्कृति के महान उपासक थे और उनमें देश प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी थी। उनके भाषणों, व्यवहारों और उपदेशों के द्वारा भारतीय जनता में भी देश-प्रेम की भावना का जन्म हुआ, और भारतीय अपनी परतंत्रता की बेड़ियों को काटने के लिए कटिबद्ध हो गये।

(16) राजनीतिक सुधार—19 वीं शताब्दी के आन्दोलनों के फलस्वरूप अनेक राजनीतिक सुधार भी हुए। राजा राम मोहनराय के प्रयत्नों से भारतीयों को अनेक राजनीतिक अधिकारों को प्राप्ति हुई। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यह कह कर कि सुशासन कभी भी स्वशासन से अच्छा नहीं हो सकता, भारतीयों को अपने अधिकारों के लिये लड़ने को प्रोत्साहित किया। श्रीमती एनी बेसेन्ट ने होमरूल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आन्दोलन चलाया और स्वामी विवेकानन्द के भाषणों से भी भारतीयों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई।

(18) भारतीय सभ्यता और संस्कृति की ओर विदेशियों का आकर्षण

इन आन्दोलनों के फलस्वरूप विदेशी विद्वान भारतीय सभ्यता और संस्कृति की ओर आकर्षित हुए और उन्होंने भारत आकर यहाँ विभिन्न प्रकार की खोजें कीं। मैक्समूलर, सर विलियम जोन्स आदि विद्वानों ने भारतीय संस्कृति का महान अध्ययन किया और समस्त संसार के सम्मुख उसकी महत्ता का प्रदर्शन किया।

(19) साहित्य की नयी दिशा—19 वीं शताब्दी के आन्दोलनों ने भारतीय साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान की। इसके पूर्व का भारतीय साहित्य रंगरेलियों का साहित्य था। इन आन्दोलनों ने साहित्यकारो में भी देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना फूँकी। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत ग्रन्थ 'भारत दुर्दशा' लिखा। बंगला में 'आनन्दमठ' नामक उपन्यास की रचना करके साहित्य में देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की भावना को स्थान दिया गया। इसके रचयिता द्वारा 'वन्दे मातरम' नामक गीत राष्ट्रगीत बनाया गया। इस युग में साहित्य गगन में कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ टैगोर का भी प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने अपनी 'गीताञ्जलि' से भारतीयों का मस्तक सदैव के लिए ऊपर उठा दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 19 वीं शताब्दी के धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों ने केवल भारतीय समाज के ढांचे में ही परिवर्तन नहीं किये वल्कि देश के आर्थिक और राजनीतिक जीवन को भी प्रभावित किया। देश के राष्ट्रीय आन्दोलन को इन आन्दोलनों से बहुत अधिक बल मिला और भारतवासियों का एक बार पुनः अपने धर्म के प्रति अभिमान जाग उठा। इन आन्दोलनों के विषय में एक विद्वान ने ठीक ही लिखा है, 19 वीं शताब्दी के धार्मिक आन्दोलन एक नये युग के सूत्रपात के सूचक थे, जिस युग की राह भारत बहुत समय से देख रहा था। वह युग राजनैतिक चेतना, सामाजिक उत्थान, धार्मिक एकता और राष्ट्रीय जागृति का युग था।"

प्रश्न—"महात्मा गांधी का आन्दोलन जितना अधिक राजनीतिक था उससे कहीं अधिक सामाजिक और धार्मिक।" इस कथन की विवेचना कीजिए और बतलाइये कि भारत के धार्मिक और सामाजिक जीवन में महात्मा गांधी का क्या योगदान है ?

महात्मा गांधी भारत के राष्ट्रपिता थे। पिछले डेढ़ सौ वर्षों में जिन महापुरुषों ने भारत के राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन को नया मोड़ दिया उनमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

महात्मा गांधी का नाम सबसे ऊपर है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् महात्मा जी जब दक्षिण अफ्रीका से लौट कर भारत आये तो उन्हें भारतवासियों की स्थिति देखकर अत्यन्त दुःख हुआ और वे भारतीय राजनीति में सक्रिय रूप से कूद पड़े। गांधी जी ने भारतीय स्वतंत्रता के आन्दोलन को नया जीवन दिया और उसे जनता का आन्दोलन बना दिया। 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' और 'सत्याग्रह' का आश्रय लेकर गांधी जी ने भारत की परतन्त्रता की वेड़ियां काट दीं। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या गांधी जी पूर्ण रूप से राजनीतिज्ञ थे और उनका उद्देश्य भारत को स्वतन्त्र कराना मात्र था। इसका उत्तर है कि गांधी जी जितने बड़े राजनीतिज्ञ थे। उससे कहीं बड़े धार्मिक और समाज सुधारक। गांधी जी की राजनीति धार्मिकता से अनुप्राणित थी और उनके हृदय में समाज-सुधार की उत्कृष्ट अभिलाषा थी।

यद्यपि गांधी जी ने किसी नये धर्म या सम्प्रदाय का सूत्रपात नहीं किया परन्तु उन्होंने प्रचलित धर्म के वास्तविक रूप को जनता के सम्मुख रखने का प्रयास किया। धर्म के प्रति प्रगाढ़ आस्था के फलस्वरूप ही वे भारत के सामाजिक और आर्थिक जीवन में क्रान्ति ला सके। अतएव यह कहना कि गांधी का आन्दोलन जितना अधिक राजनीतिक था उससे कहीं अधिक सामाजिक और धार्मिक, पूर्ण उचित है।

गाँधी जी के सिद्धान्त

हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि गांधी जी किसी धर्म या सम्प्रदाय के प्रवर्तक नहीं थे। उन्होंने समस्त धर्मों के सार तत्व अहिंसा, सत्य और प्रेम को ग्रहण किया और जनता को इसी का पाठ पढ़ाया। उनके सिद्धान्तों को हम निम्न-लिखित रूप में रख सकते हैं—

(1) सभी धर्मों का मूल तत्व एक है और मनुष्य को सभी धर्मों के प्रति आदर रखना चाहिए।

(2) सत्य सर्वोतम धर्म है और उस पर सदैव डटे रहना चाहिए। असत्य को न सुनना चाहिए और न देखना चाहिए।

(3) सत्य को प्राप्त करने का मार्ग अहिंसा है और वह परम धर्म है।

(4) मनुष्य को ईश्वर पर पूर्ण रूप से आस्था रखनी चाहिए क्योंकि वास्तविकता के बिना संसार का कोई भी कार्य नहीं हो सकता।

(5) ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

(6) प्रार्थना में बहुत अधिक बल है, अतएव प्रार्थना नित्य करनी चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(7) मनुष्य को असत्य को सत्य से, क्रोध को क्षमा से और घृणा को प्रेम से जीतना चाहिए।

(8) मनुष्य को स्वावलम्बी बनना चाहिए। आलस्य से दूर रहना चाहिए। सादा जीवन व्यतीत करना चाहिए और उच्च विचार रखना चाहिए।

(9) दीन दुखियों की सेवा करनी चाहिए और हरिजनों से घृणा न करके प्रेम करना चाहिए।

(10) स्त्रियों को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए।

गांधी का योगदान

उपर्युक्त सिद्धान्तों से ही यह स्पष्ट है कि महात्मा गांधी का भारत के धार्मिक और सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण योगदान रहा होगा। यहाँ हम संक्षेप में उनके योगदान की चर्चा कर रहे हैं :—

(क) धार्मिक क्षेत्र में योगदान—महात्मा गांधी भले ही किसी धर्म के संस्थापक न रहे हों परन्तु वे एक महान धर्म प्रचारक थे। मानव-कल्याण को ही उन्होंने अपने जीवन का ध्येय बनाया था। भारत में धार्मिक एकता स्थापित करने में महात्मा गांधी ने महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख और ईसाई सभी को एक ही झण्डे के नीचे खड़ा किया। गांधी का विश्वास था कि कोई भी धर्म बुरा नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने धर्म का पालन करना चाहिए। धार्मिक संकीर्णता की उन्होंने सदैव आलोचना की और जब कभी भी देश में साम्प्रदायिक तनातनी का वातावरण उत्पन्न हुआ, गांधी ने उसका खुलकर विरोध किया। इकहरे शरीर वाले गांधी के ही वश की बात थी कि वह साम्प्रदायिक दंगों के समय कलकत्ते में मुसलमानों के बीच में ठहरे। ईश्वर पर उनका प्रगाढ़ विश्वास था और वह सत्य एवं ईश्वर में कोई अन्तर नहीं मानते थे। नर की सेवा, नारायण की पूजा है और इसी लिए गांधी जी की राजनीति, समाजनीति और धर्म नीति में कोई अन्तर नहीं है। जीवन में चलना भी मानव धर्म का पालन करना है। गांधी संसार के प्रत्येक कार्य में धर्म की स्वांस चाहते थे। यही कारण है कि उनकी राजनीति और समाजनीति धार्मिकता को अलग करके समझ में नहीं आ सकती। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि गांधी जी के राजनीतिक और सामाजिक योगदान को ही हम धार्मिक योगदान के नाम से पुकार सकते हैं।

(ख) सामाजिक योगदान—भारतीय सामाजिक जीवन को जितना अधिक महात्मा गांधी ने प्रभावित किया उतना अधिक पिछली शताब्दी के किसी भी महापुरुष ने नहीं किया है। भारतीय जनजीवन की कोई भी ऐसी सामाजिक कुरीति नहीं थी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जिसके विरुद्ध गांधी जी ने आवाज न उठाई हो। समाज सुधार के क्षेत्र में किये गये महात्मा गांधी के अनेक कार्यों में से तीन कार्य अत्यन्त प्रमुख हैं :—

(1) सामाजिक विषमता को दूर करना।

(2) अस्पृश्यता को दूर करना और अछूतोद्धार।

(3) नारी-जाति का उत्थान।

(1) सामाजिक विषमता को दूर करना—गांधीजी ने सामाजिक विषमता को दूर करने का घोर प्रयत्न किया। उन्होंने विभिन्न सम्प्रदायों और धर्मों के मध्य एकता स्थापित की और वर्ण एवं वर्गों के विभाजन के विरुद्ध आवाज उठाई। गांधी का आदर्श वर्ग विहीन समाज की स्थापना था। वह मिल मालिकों और मजदूरों के भेद को मिटा देना चाहते थे। यही कारण था कि भारत को बड़ी-बड़ी मिलों की आवश्यकता नहीं बल्कि घरेलू चरखों की आवश्यकता है। उन्होंने स्वदेशा आन्दोलन का सूत्रपात किया और श्रम की महत्ता पर बल दिया। देश के हजारों व्यक्ति गांधी जी के अनुयायी हो गए और घर-घर में सूत बुनने और कातने के केन्द्र स्थापित हो गए। गांधी ने भारत के ग्रामीण-जीवन को भी बहुत निकट से देखा था और उन्होंने आदर्श गावों की स्थापना का प्रचार किया था। गांधी सच्चे अर्थों में समाजवादी थे। परन्तु उनका समाजवाद वस्तुवादी नहीं था। वह प्रेम और सौहार्द के द्वारा सामाजिक भेद-भाव दूर करके एकता स्थापित करना चाहते थे।

(2) अस्पृश्यता को दूर करना और अछूतोद्धार—महात्मा गांधी अस्पृश्यता के घोर विरोधी थे। उन्होंने उसे दूर करना उतना ही आवश्यक समझा जितना कि स्वराज्य की प्राप्ति। उन्होंने कहा, "सब हिन्दू जान-बूझकर सच्चे हृदय से नीति के रूप में नहीं, बल्कि आत्म शुद्धि की भावना से छूत, अछूत का विचार त्याग देंगे तब उनका यह कार्य राष्ट्र को उचित कार्य करने की एक नई शक्ति देगा और स्वराज्य प्राप्ति में सहायक होगा।" गांधी अपने जीवन-पर्यन्त अस्पृश्यता को दूर करने का प्रयास करते रहे। कई बार तो उन्होंने इस कलंक को दूर के करने के लिए अपने जीवन की बाजी लगा दी। उन्होंने अछूतोद्धार के लिए बड़ा संघर्ष किया। उन्हें मन्दिरों में प्रवेश देने के लिए आन्दोलन किया और अन्य क्षेत्रों में समाज में धार्मिक अधिकार प्रदान किये जाने की आवाज उठाई। अछूतों की दशा सुधारने के लिए देश में दौरा करके चन्दा जमा किया, लोगों के हृदय परिवर्तन का प्रयास किया। अछूतों हेतु विद्यालयों का प्रबन्ध किया और उनके आर्थिक विकास के लिये विशेष प्रकार के उद्योग-धन्धों को संगठित किया। महात्मा गांधी ने अछूतों को हरिजन (हरि के जन) नाम दिया और "हरिजन सेवक" नमक समाचार पत्र निकाले। उन्होंने "हरिजन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेवक संघ" की स्थापना भी की, जिसका कार्य हरिजनों की दशा को सुधारना था। महात्मा गांधी स्वयं हरिजनों के साथ रहते थे, उनकी बस्तो साफ करते थे, उनके साथ भोजन करते थे और बराबरी का दर्जा देते थे। महात्मा गांधी के प्रयासों के फलस्वरूप ही भारत सरकार ने हरिजनों की सुविधा के लिए कानून बनाये और भारतीय संविधान ने अस्पृश्यता को अवैध घोषित किया।

(3) नारी जाति का उत्थान—महात्मा गांधी ने नारी जाति के उत्थान हेतु भी घोर प्रयत्न किये। उन्होंने बाल-विवाह की प्रथा का जोरदार विरोध किया और विधवाओं के हेतु भारतीय संस्कृति के अनुकूल एक नया आदर्श रखा। यह महात्मा गांधी के द्वारा उत्पन्न की गई चेतना का परिणाम था कि "भारतीय स्त्रियों की राष्ट्रीय कौंसिल" और "भारतीय स्त्री संगठन" आदि संस्थायें स्थापित हुईं जिन्होंने नारी जाति के उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान किया। महात्मा गांधी स्त्री स्वतन्त्रता के पक्षपाती थे और उनके फलस्वरूप ही श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित, श्रीमती मीरा जैन और राजकुमारी अमृतकौर आदि महिलाओं ने पुरुषों के कन्धे से कन्धा मिलाकर भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लिया और नारी जाति के सम्मुख ऊँचे उठने का आदर्श रखा।

उपसंहार—संक्षेप में हम कह सकते हैं कि गांधी का प्रभाव भारतीय जन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें गांधी जी का प्रवेश न हो। आज हम जो हैं, उसका बहुत बड़ा श्रेय गांधी जी को है।

प्रश्न (3) भारत में आधुनिक शिक्षा की प्रगति के लिए किए गए प्रयासों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

अंग्रेजों के आगमन के समय भारत में शिक्षा—वस्तुतः यूरोपीय जातियों के आगमन के समय भारतीय शिक्षा-व्यवस्था को सर्वथा शोचनीय नहीं कहा जा सकता और मुनरो ने तो शिक्षा के क्षेत्र में भारत की स्थिति अधिकांश यूरोपीय देशों से अच्छी मानी है।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अंग्रेज शासकों द्वारा मद्रास, बम्बई, बंगाल में शिक्षा-व्यवस्था की जांच करवाने पर स्पष्ट हो गया कि उनमें प्राथमिक व उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी और जन साधारण के लिए असंख्यक प्रारम्भिक विद्यालय थे तथा उच्च शिक्षा का भी समुचित प्रबन्ध था पर इस स्थिति को सराहनीय नहीं माना जाता क्योंकि दिन-प्रतिदिन शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा था और आर्थिक दशा शोचनीय होने के कारण बहुत से विद्यालय बन्द भी होते जा रहे थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh

प्रारम्भिक यूरोपीय शिक्षा-प्रयत्न (सन् 1833 तक)—यद्यपि यूरोपीय देशों की व्यावसायिक कम्पनियों ने भारत से व्यापार करना ही अपना मूल लक्ष्य माना था पर कालान्तर में जब उन्होंने साम्राज्य-विस्तार व धर्म-प्रचार को भी अपना लक्ष्य बनाया तब इसके लिए शिक्षा को एक उचित साधन समझ शिक्षा संस्थाएँ भी स्थापित कीं। इस प्रकार पुर्तगाली मिशनरियों ने बम्बई, गोआ, डामन, ड्यू, चिटगांव और हुगली में प्रारम्भिक विद्यालयों की स्थापना की जहाँ कि पुर्तगाली, ईसाई धर्म, गणित, स्थानीय भाषा व कुछ कारीगरी की शिक्षा दी जाती थी। उच्च शिक्षा की ओर भी पुर्तगालियों का ध्यान गया और उन्होंने सन् 1575 ई० में गोआ में प्रथम जेसुएट कालेज की स्थापना की तथा बाद में कुछ अन्य स्थानों में भी कालेज खोले गये जहाँ कि ईसाई धर्म, लेटिन, तर्कशास्त्र, व्याकरण व संगीत की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा-प्रसार की दिशा में डच, फ्रांसीसी व डेनमार्कवासी भी पीछे न रहे और डेन धर्म-प्रचारकों ने तो केवल मद्रास, फोर्ट सेन्ट डेविड, त्रिचनापल्ली व तंजौर में विद्यालयों की स्थापना की अपितु सन् 1716 में ट्रांववयूबर में अध्यापकों के लिए भी एक प्रशिक्षण महाविद्यालय स्थापित किया।

अन्य यूरोपीय देशों की भाँति अंग्रेजों का भी ध्यान भारत में शिक्षा-प्रसार की ओर गया और ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सन् 1614 से ही प्रोटेस्टेंट धर्म का प्रचार करने के उद्देश्य से भारतीयों को प्रशिक्षित करना प्रारम्भ कर दिया। सन् 1698 में भारत की अंग्रेजी बस्तियों में पाठशालाओं की स्थापना कर भारत में अंग्रेजी शिक्षा का सूत्रपात भी किया। कालान्तर में जैसे-जैसे अंग्रेजों का प्रभाव बढ़ने लगा वैसे-वैसे ईसाई धर्म का प्रचार व शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना पर भी उनका ध्यान गया और सन् 1757 में प्लासी के युद्ध की विजय के उपरान्त ईस्ट-इण्डिया कम्पनी को भारत में राजनीतिक शक्ति प्राप्त हो जाने पर उनकी शिक्षा-नीति में भी परिवर्तन होने लगा और उसने भारतीयों की उन्नति करना भी अपना कर्तव्य समझा। इस प्रकार कम्पनी ने मुसलमानों के लिये कलकत्ता, मद्रास व हिन्दुओं के लिये बनारस संस्कृत कालेज की स्थापना की तथा सन् 1800 में लार्ड वेलेजली ने कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की जहाँ कि हिन्दू व मुस्लिम कानूनों, भारतीय इतिहास, अरबी, फारसी, संस्कृत व भारतीय भाषाओं की शिक्षा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त भारत में विद्यालयों की स्थापना के लिये कुछ व्यक्तिगत प्रयास भी किये गये और बालक-बालिकाओं दोनों के लिए स्कूलों की स्थापना की जाने लगी तथा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा देकर अंग्रेजी को लोकप्रिय बनाने की चेष्टा की गयी। यद्यपि ईस्ट इण्डिया कम्पनी धर्म निरपेक्ष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नीति का आश्रय ले स्वयं को ईसाई मत के प्रचार से दूर रखने का भरसक प्रयास कर रही थी पर ईसाई मत के प्रचारक व उनके सहायक चुप नहीं बैठे रह गये और उन्होंने इंग्लैण्ड में इस बात का अत्यधिक प्रचार किया कि भारतीयों का नैतिक स्तर ऊँचा करने के लिए उन्हें पाश्चात्य शिक्षा प्रदान की जाय। इस दिशा में चार्ल्स ग्राण्ट का नाम उल्लेखनीय है क्योंकि उसने 'Observations on the state of Society among the Asiatic subjects of Great Britain' नामक पुस्तक में इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं लेकिन कम्पनी के संचालक ग्रांट की बातों से सहमत न थे अतः सरकार ने उसके (ग्रांट के) सुझावों को स्वीकार नहीं किया। इतना होते हुए भी ईसाई प्रचारकों व उनके सहयोगियों ने अपना आन्दोलन बन्द न किया और सन् 1813 में पुनः ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में यह प्रस्ताव रखा गया कि 'कम्पनी की सरकार भारतवासियों की शिक्षा में रुचि ले तथा इस कार्य के लिए धन खर्च करे।' कम्पनी के संचालकों द्वारा विरोध किए जाने के बावजूद ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने सन् 1813 में एक आज्ञा पत्र पास कर दिया जिसके अनुसार ईसाई पादरियों को भारत में धर्म-प्रचार की स्वतन्त्रता दी गई तथा शिक्षा को कम्पनी का आवश्यक कर्तव्य मानते हुए भारत में शिक्षा-प्रचार के लिये प्रति वर्ष कम से कम एक लाख रुपया व्यय करने की अनुमति दी गयी। इस प्रकार सन् 1813 के आज्ञा-पत्र के अनुसार भारत में राज्य शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात हुआ पर उस आज्ञा-पत्र की स्पष्टता के कारण शिक्षा-सम्बन्धी कुछ विषयों को लेकर विवाद उठ खड़ा हुआ और यह संघर्ष लगभग बीस वर्षों तक चलता रहा।

सामान्यतः सन् 1813 के आज्ञा-पत्र के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य, साधन व माध्यम सम्बन्धी विषयों को लेकर विवाद उठ खड़ा हुआ था अतः उक्त विवादास्पद विषयों को हल करने की दृष्टि से कम्पनी के सचालकों ने 3 जून, 1814 को अपना पहला शिक्षा-आदेश जारी कर केवल हिन्दू शिक्षा व्यवस्था को प्रोत्साहित करने का विचार व्यक्त किया पर 2 अक्टूबर, 1815 को तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिंग्ज ने अपने विवरण पत्र में एक लाख रुपये की निर्धारित धनराशि को भारतीय विद्यालयों के पुनरुद्धार व नवनिर्माण में व्यय कर शिक्षा को जन-साधारण के लिये सुलभ बनाने की बात कही। सच तो यह है कि सन् 1813 से 1823 तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी कोई भी सराहनीय शिक्षा-प्रयास न कर सकी और सन् 1823 के पश्चात् ही बंगाल, बम्बई, मद्रास आदि में इस दिशा में कुछ प्रयत्न किए गए तथा 17 जुलाई, सन् 1823 को गवर्नर जनरल ने एक लोक शिक्षा समिति (General Committee of Public Inst ructions) की स्थापना कर एक लाख रुपये की धनराशि व्यय करने का अधिकार उसे सौंप दिया। इधर अब देश में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजनीतिक चेतना का संचार हुआ और राजा राम मोहन राय आदि सुधारक अंग्रेजी शिक्षा व पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान के अध्ययन की अनिवार्यता भी प्रतिपादित कर रहे थे अतः उक्त समिति ने अंग्रेजी स्कूलों की स्थापना पर ध्यान दिया और कलकत्ता मदरसा, संस्कृत कालेज, बनारस व आगरा कालेज में अंग्रेजी शिक्षा का भी प्रबन्ध किया पर इससे जनता की माँग पूर्ण न हुई। इसी प्रकार बम्बई व मद्रास आदि अन्य प्रान्तों में भी अंग्रेज शासक कोई भी उल्लेखनीय शिक्षा कार्य न कर सके और कम्पनी ने सन् 1833 तक शिक्षा-क्षेत्र में कुछ भी प्रगति न की। ठीक इसके विपरीत ईसाई-धर्म प्रचारकों ने भारत में शिक्षा व्यवस्था की ओर बहुत अधिक ध्यान दिया और देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाकर पाठ्य पुस्तकों, शब्द कोषों व व्याकरण ग्रन्थों की रचना भी की तथा देश के अनेक स्थानों में कई विद्यालयों की स्थापना कर प्रारम्भिक व उच्च शिक्षा का प्रबन्ध किया। शिक्षा के प्रति मिशनरियों के उत्साह का प्रभाव अन्य व्यक्तियों पर भी पड़ा और शिक्षा-प्रसार की दिशा में कई व्यक्तिगत प्रयास भी किए गए तथा बंगाल, बम्बई, मद्रास, दिल्ली व उत्तर प्रदेश में शिक्षा संस्थाएँ स्थापित की गयीं। इस प्रकार सन् 1813 से 1833 तक भारत में शिक्षा-प्रसार के लिए विभिन्न प्रयत्न होते रहे पर स्वयं ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने कोई उल्लेखनीय शिक्षा सम्बन्धी कार्य नहीं किया अतः सन् 1833 में जब पुनः कम्पनी के लिए आज्ञा-पत्र जारी किया गया तो उसमें न केवल शिक्षा-अनुदान बढ़ा दिया गया अपितु भारतीय शिक्षा-व्यवस्था की अनिवार्य आवश्यकता भी अनुभव की गयी।

मैकाले की योजना और शिक्षा-सम्बन्धी नीति का निर्धारण—सन् 1833 के आज्ञा-पत्र में गवर्नर जनरल की कौंसिल में एक चौथा सदस्य (कानूनी सदस्य) बढ़ाने की घोषणा की गयी थी तथा इस पद पर लार्ड मैकाले को नियुक्त किया गया जो कि अंग्रेजी का प्रकाण्ड पण्डित, सफल लेखक व धारावाहिक व्याख्यान-दाता था। वह जब भारत में आया तब भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में कम्पनी के अधिकारियों में परस्पर मतभेद था और उनमें संस्कृत, अरबी व फारसी के माध्यम द्वारा पूर्वी ज्ञान का प्रचार करने के पक्षपाती प्राच्यवादी (Orientalists) व अंग्रेजी भाषा द्वारा पाश्चात्य साहित्य व विज्ञान की शिक्षा के समर्थक पाश्चात्यवादी (Anglicists) नामक दो प्रमुख दल विद्यमान थे। साथ ही बहुत से सुधारवादी भारतीय भी पाश्चात्य शिक्षा व अंग्रेजी शिक्षा व अंग्रेजी भाषा का कट्टर समर्थन कर रहे थे। इस प्रकार तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिक ने कानूनी सदस्य के रूप में भारत आने पर मैकाले को न

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

केवल बंगाल की लोक शिक्षा समिति का प्रधान नियुक्त किया अपितु कानूनी सदस्य की हैसियत से उसे सन् 1813 के आज्ञा-पत्र की शिक्षा सम्बन्धी धारा की वास्तविक व्याख्या करने के लिये कहा। मैकाले ने दो फरवरी सन् 1835 को अपना विवरण पत्र गवर्नर जनरल की कौंसिल के समक्ष प्रस्तुत कर उसमें प्राच्य साहित्य व शिक्षा का खण्डन कर अंग्रेजी माध्यम द्वारा पाश्चात्य साहित्य व विज्ञान की शिक्षा का समर्थन किया। यद्यपि प्रिंसेप ने मैकाले द्वारा प्रतिपादित विचारों का अकाट्य उत्तर देते हुए प्राच्य साहित्य व शिक्षा के जीर्णोद्धार के लिए कई तर्क प्रस्तुत किये पर स्वयं बैंटिक प्रगतिशील सुधारक व अंग्रेजी भाषा का समर्थक था अतः उसने मैकाले के प्रस्तावों को स्वीकृति प्रदान कर शिक्षा-सम्बन्धी संघर्षों का अन्त करते हुए 7 मार्च, 1835 ईसवी के आज्ञा-पत्र में शिक्षा सम्बन्धी नीति का निर्धारण करते हुए एक घोषणा की, जिसकी उल्लेखनीय बातें इस प्रकार हैं—

(1) सरकार का मूल लक्ष्य भारतवासियों में यूरोपीय साहित्य व विज्ञान का प्रचार करना है अतः केवल इसी कार्य के लिए शिक्षा सम्बन्धी निर्धारित रकम खर्च की जाएगी।

(2) प्राच्य शिक्षण संस्थाएँ भंग नहीं की जायेगी और उनके अध्यापकों व छात्रों को पूर्ववत् वेतन व छात्रवृत्ति मिलती रहेगी पर भविष्य में अब प्राच्य विद्या सम्बन्धी पुस्तकों का मुद्रण व प्रकाशन न होगा।

(3) उक्त सुधारों से बचने वाली सम्पूर्ण धनराशि भारतीयों में अंग्रेजी भाषा के माध्यम द्वारा अंग्रेजी साहित्य व विज्ञान का प्रचार करने में व्यय की जायेगी।

वस्तुतः लार्ड बेंटिक की उक्त घोषणा भारतीय शिक्षा के इतिहास में पहली घोषणा थी जिसमें ब्रिटिश सरकार ने अपनी शिक्षा-नीति स्पष्ट करते हुए शिक्षा के उद्देश्य, साधन व माध्यम आदि को स्थिर कर दिया तथा इसके अनुसार सन् 1835 से 1853 तक कई सरकारी स्कूलों की स्थापना की गयी। इसी बीच सरकार ने यह भी घोषणा कर दी कि सरकार द्वारा स्थापित विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को सरकारी पद प्राप्त करने में प्राथमिकता दी जायगी अतः न केवल उनमें पढ़ने वाले छात्रों की संख्या में वृद्धि होने लगी अपितु अन्य प्रचलित विद्यालयों में भी सरकारी विद्यालयों की पद्धति का अनुसरण किया जाने लगा। साथ ही हल्काबन्दी पाठशालाओं की भी योजना की गयी जिसके अनुसार कुछ ग्रामों के मण्डल बना कर वहाँ पर शिक्षा की व्यवस्था की गयी तथा ग्राम का जमींदार आय का एक प्रतिशत इन पाठशालाओं पर व्यय करता था। इसके अतिरिक्त स्थान-स्थान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर मिडिल व हाई स्कूलों का निर्माण किया गया और सन् 1835 में कलकत्ता में एक मेडिकल कालेज तथा रुड़की इंजीनियरिंग स्कूल खोला गया तथा सन् 1852 में मद्रास विश्वविद्यालय की भी स्थापना हुई।

वुड का शिक्षा-घोषणा-पत्र और भारतीय शिक्षा में नवीन मोड़— सन् 1832 की घोषणा के पश्चात् भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर सरकार समुचित ध्यान दे रही थी अतः जब सन् 1853 में कम्पनी को पुनः आज्ञा-पत्र प्रदान करने का अवसर आया तब भारतीय शिक्षा-सम्बन्धी एक स्थायी नीति ग्रहण करने का विचार किया गया। इस प्रकार 19 जुलाई, 1854 ई० को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालकों ने अपनी भारतीय शिक्षा नीति की घोषणा की और चूंकि उस समय पर चार्ल्स वुड कम्पनी के 'बोर्ड आफ कन्ट्रोल' का प्रधान था अतः उसी के नाम पर यह नवीन आदेश पत्र वुड का शिक्षा घोषणा-पत्र कहलाया। इस घोषणा-पत्र सम्बन्धी उल्लेखनीय धारायें निम्नलिखित हैं—

(1) भारतीय शिक्षा का उत्तरदायित्व अंग्रेज सरकार पर मानते हुए शिक्षा द्वारा भारतीयों का बौद्धिक व नैतिक स्तर ऊँचा करने के साथ-साथ यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि ब्रिटिश साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिये विश्वासपूर्वक उच्च पदों पर नियुक्ति करने के लिये भी शिक्षित भारतीय तैयार किये जायेंगे।

(2) संस्कृत, अरबी व फारसी की उपयोगिता स्वीकार कर उन्हें पाठ्यक्रम में स्थान देते हुए भी पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को ही भारतीयों के लिये उपर्युक्त माना गया तथा अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने का निश्चय किया गया।

(3) प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा-सम्बन्धी व्यवस्था के लिये एक जन-शिक्षा-विभाग (Department of Public Instruction) की स्थापना करने की घोषणा की गयी जिसका कि सर्वोच्च अधिकारी जन-शिक्षा-संचालक (Director of Public Instructions) कहलाने लगा और उसके लिए अन्य सहयोगी अधिकारी भी नियुक्त किए गए।

(4) कलकत्ता, बम्बई, मद्रास व अन्य स्थानों पर शिक्षा विद्यालयों की स्थापना का निश्चय कर सम्पूर्ण भारत में क्रमबद्ध विद्यालयों (Graded Schools) की योजना पर बल दिया गया।

(5) जनसाधारण के लिये व्यावहारिक व उपयोगी शिक्षा को आवश्यक मानते हुए हाई स्कूलों, मिडिल स्कूलों व प्राइमरी स्कूलों की वृद्धि की बात कही गयी तथा इन विभिन्न स्तर के शिक्षालयों की शिक्षा को एक दूसरे से सम्बन्धित करने की ओर भी ध्यान दिया गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(6) प्रत्येक प्रान्तीय सरकार को सहायता अनुदान सम्बन्धी कुछ नियम बना कर कुछ आवश्यक शर्तें पूर्ण करने वाली शिक्षा संस्थाओं को सहायता अनुदान देने के लिए कहा गया।

(7) अध्यापकों के प्रशिक्षण (Training) के लिए प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना पर जोर देते हुए कानून, चिकित्सा व इंजीनियरिंग में भी प्रशिक्षण की सिफारिश की गयी और व्यावसायिक (शिक्षा Vocational Education) की ओर भी ध्यान दिया गया।

(8) नारी शिक्षा को सरकार की स्पष्ट व मैत्रीपूर्ण सहायता प्रदान करने पर जोर देते हुए बालिकाओं के लिये पृथक स्कूल खोलने के लिए कहा गया।

इस प्रकार सन् 1854 से भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक नवीन अध्याय प्रारम्भ हुआ और प्रत्येक प्रान्त में शिक्षा विभाग की स्थापना की गयी तथा विद्यार्थियों के लिये अंग्रेजी व प्रान्तीय भाषाओं का सीखना अनिवार्य हो गया। कलकत्ता, बम्बई व मद्रास में विद्यालयों की संख्या बढ़ने लगी तथा सन् 1882 तक साढ़े बाइस लाख विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर चुके थे।

प्रथम भारतीय शिक्षा आयोग या हण्टर कमीशन के सुझाव—यद्यपि वुड के घोषणा पत्र ने भारतीय शिक्षा के इतिहास में युगान्तरकारी परिवर्तन व सुधार कर शिक्षा को प्रगति-पथ की ओर उन्मुख किया था पर कालान्तर में भारतीय शिक्षा की प्रगति अवरुद्ध-सी हो गयी। इस प्रकार जब लार्ड रिपन भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ तब उसने शिक्षा-पद्धति में सुधार करने के अभिप्राय से 3 फरवरी, 1882 ई० को विलियम हण्टर की अध्यक्षता में प्रथम भारतीय शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। इस कमीशन ने प्राथमिक शिक्षा स्थानीय संस्थाओं को सौंपने और उच्च शिक्षा पर सरकारी नियन्त्रण कम से कम करने की सिफारिश करते हुए स्त्रियों व दलित वर्ग के व्यक्तियों के लिये भी उचित शिक्षा-व्यवस्था पर जोर दिया। साथ ही बड़े विद्यालयों में वैकल्पिक शिक्षा का प्रबन्ध करने पर भी जोर दिया गया और कालेजों के लिए सामान्य व विशेष अनुदानों को तथा छात्रवृत्ति की भी व्यवस्था की गयी।

कर्जन की शिक्षा-नीति और भारतीय विश्वविद्यालय आयोग (सन् 1902 तथा अधिनियम, सन् 1904)—सन् 1899 में लार्ड कर्जन भारत का गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ और उसने शासन के प्रत्येक विभाग में सुधार करने की ओर ध्यान देते हुए उत्साह-पूर्वक शिक्षा कार्य को भी स्वयं अपने हाथ में ले लिया। इस प्रकार उसने भारत के प्रत्येक प्रान्त के शिक्षा संचालकों व ईसाई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रचारकों के प्रतिनिधियों को आमन्त्रित कर सन् 1901 में अपने सभापतित्व में शिमला में गुप्त शिक्षा सम्मेलन का आयोजन किया। यह सम्मेलन पन्द्रह दिन तक होता रहा और उसमें भारतीय शिक्षा के सभी पहलुओं पर प्राथमिक शिक्षा से उच्च शिक्षा तक विचार-विमर्श किया। इसके पश्चात् कर्जन ने सर रेले (Raleigh) की अध्यक्षता में 27 जनवरी, 1902 को भारतीय विश्वविद्यालय कमीशन की नियुक्ति कर उसे शिक्षा सम्बन्धी सुधारों पर मत व्यक्त करने के लिए कहा। इस कमीशन ने विश्वविद्यालयों के अधिकार बढ़ाने, उन्हें शिक्षा कार्य भी सौंपने, सीनेट, सिंडीकेट व फैक्टरियों के पुनः संगठन तथा हर कालेज के लिए विधिवत् संगठित प्रबन्धकारिणी के निर्माण का सुझाव दिया। उक्त सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए सन् 1904 में लार्ड कर्जन ने एक शिक्षा विधेयक प्रस्तुत किया जिसमें कि निम्नलिखित उल्लेखनीय सुझाव दिए गए—

(1) विश्वविद्यालयों की प्रबन्धकारिणी संस्थाओं का पुनर्गठन कर सीनेट में कम से कम 50 और अधिक 100 सदस्य-संख्या निर्धारित की गयी तथा उनका कार्यकाल 5 वर्ष निश्चित किया गया। कलकत्ता, बम्बई व मद्रास विश्वविद्यालयों में निर्वाचित फेलो (Fellow) की संख्या 20 तथा अन्य विश्वविद्यालयों में 15 निश्चित की गयी।

(2) सिंडीकेटों को कानूनी स्थिति प्रदान कर उनमें विश्वविद्यालयों के अध्यापकों का प्रतिनिधित्व भी स्वीकार किया गया।

(3) विश्वविद्यालयों के कार्यों का विस्तार कर उन्हें अपने यहाँ अध्यापकों की नियुक्ति करने व रिसर्च के लिए सुविधाएँ प्रस्तुत करने का अधिकार दे दिया गया।

(4) विश्वविद्यालयों से कालेजों की सम्बद्धता की शर्तों को स्पष्ट रूप से अंकित कर उन पर कठोरता पूर्वक आचरण करने की व्यवस्था की गयी।

(5) सीनेट के बनाए हुए नियमों में परिवर्तन करने और नवीन नियम बनाने का अधिकार सरकार को दे दिया गया तथा विभिन्न विश्वविद्यालयों की प्रादेशिक सीमा निर्धारित करने का अधिकार सपरिषद् गवर्नर जनरल को दे दिया गया।

गोखले का विधेयक और सन् 1913 का सरकारी प्रस्ताव—यद्यपि लार्ड कर्जन की शिक्षा-नीति और शिक्षा सुधारों के फलस्वरूप भारतीय शिक्षा ने प्रगति ही की थी पर भारतीयों के हृदय में कर्जन के प्रति शंका होने के कारण उसकी शिक्षा-नीति भी राजनीति से ही प्रभावित मानी गयी। साथ ही देश के लिए आद्योगिक व राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव कर बड़े-बड़े नेताओं ने मिल कर 'बंगाल राष्ट्रीय शिक्षा परिषद्' नामक एक संस्था स्थापित की जिसने एक व्यापक, उदार व जीवनोपयोगी शिक्षा की रूपरेखा प्रस्तुत कर प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय की शिक्षा तक के सभी प्रश्नों पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विचार कर उनमें सुधार करने की इच्छा व्यक्त की। यहाँ यह भी न भूलना चाहिए कि राष्ट्रीय व राजनैतिक चेतना के जाग्रत होने पर लोग जन-शिक्षण का महत्व समझने लगे थे और उन दिनों सर्वाधिक दुःखप्रद बात तो यह थी कि 150 वर्ष के अंग्रेजी राज्य में केवल 6 प्रतिशत लोग ही पढ़े-लिखे थे जबकि अंग्रेजी सरकार के शिक्षा क्षेत्र में आने से पूर्व शिक्षित भारतीयों की संख्या इससे कहीं अधिक थी। इस प्रकार जन-शिक्षण के लिए सरकार की तीव्र आलोचना की जा रही थी और 19 मार्च, 1910 को स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले न केन्द्रीय धारा सभा में सम्पूर्ण भारत में प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क व अनिवार्य बनाने का प्रस्ताव रखा। सरकार के आश्वासन देने पर उन्होंने यह प्रस्ताव वापिस ले लिया लेकिन सरकार ने केन्द्र में शिक्षा-विभाग की स्थापना करने के अतिरिक्त कुछ भी न किया अतः गोखले ने पुनः 16 मार्च, 1911 को केन्द्रीय धारा सभा में प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी एक विधेयक प्रस्तुत कर अनेक अकाट्य तर्क प्रस्तुत किए पर यह विधेयक स्वीकृत न हो सका।

यद्यपि गोखले का विधेयक स्वीकार न किया गया पर सन् 1912 में सीमा प्रान्त में प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क कर दी गयी और संयुक्त-प्रान्त (उत्तर-प्रदेश), पंजाब, आसाम व मध्य-प्रान्त में भी नाममात्र शुल्क पर प्राथमिक शिक्षा को अधिक विस्तार के साथ चालू किया गया। इसी बीच सम्राट जार्ज पंचम 12 दिसम्बर, 1911 को भारत आये और उन्होंने दिल्ली दरबार में प्राथमिक शिक्षा पर व्यय करने के लिए पचास लाख रुपये की अतिरिक्त धनराशि देने का आदेश दिया तथा 6 जनवरी, 1912 को कलकत्ता विश्वविद्यालय में जनता को सन्देश देते हुए सम्पूर्ण भारत में स्कूलों व कालेजों का जाल-सा फैल जाने की इच्छा व्यक्त की। इस प्रकार सरकार को अपनी शिक्षा नीति पर पुनर्विचार करना पड़ा और उसने 21 फरवरी, 1913 को नवीन शिक्षा-नीति सम्बन्धी प्रस्ताव पास कर प्राथमिक, माध्यमिक, विश्वविद्यालय व उच्च शिक्षा की उन्नति एवम् विस्तार के लिए कई महत्वपूर्ण सिफारिशें कीं लेकिन सन् 1914 में महायुद्ध प्रारम्भ हो जाने से उन्हें कार्यान्वित न किया जा सका।

कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग या सैडलर कमीशन—सन् 1917 में सरकार ने डा० माइकेल सैडलर की अध्यक्षता में एक कमीशन की नियुक्ति कर उसे कलकत्ता विश्वविद्यालय की शिक्षा के सम्बन्ध में जाँच करने का कार्य सौंपा तथा सम्बन्धित समस्याओं के लिए रचनात्मक सुझाव देने के लिए कहा। वस्तुतः भारत का प्राचीन व पुराना विश्वविद्यालय होने के कारण कलकत्ता विश्वविद्यालय को केवल उदाहरण के रूप में ही सामने रखा गया था अन्यथा कमीशन को ब्रिटिश भारत के सभी विश्वविद्यालयों की जाँच कर अपने सामने व्यापक दृष्टिकोण रखकर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसे सुझाव प्रस्तुत करना था जो कि सभी विश्वविद्यालयों पर लागू हो सकते हों। सैडलर कमीशन ने लगभग सत्रह महीने तक भारत का भ्रमण कर मार्च, 1919 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें प्राथमिक शिक्षा को छोड़ कर माध्यमिक व उच्च शिक्षा के अतिरिक्त स्त्री-शिक्षा, अध्यापकों के प्रशिक्षण, औद्योगिक एवम् व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में विचार करते हुए रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत किए गए। इस कमीशन के महत्वपूर्ण सुझाव निम्नलिखित हैं—

(1) इण्टरमीडिएट कक्षाओं को विश्वविद्यालयों से अलग कर दिया जाय तथा बी० ए० की परीक्षा के लिए त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाय और प्रत्येक प्रान्त में हाई स्कूल व इण्टरमीडिएट बोर्ड की स्थापना की जाय।

(2) हाई स्कूल तक अधिकांश विषयों का माध्यम भारतीय भाषा रखने का निश्चय किया गया और परीक्षा पद्धति में भी संशोधन करने को कहा गया।

(3) विश्वविद्यालय पर से सरकारी नियन्त्रण कम करने का प्रस्ताव रखते हुए वास्तविक शिक्षण कार्य करने वाले विश्वविद्यालयों के निर्माण का सुझाव दिया गया।

(4) प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक वैतनिक वाइस चांसलर की नियुक्ति का सुझाव देते हुए विश्वविद्यालयों के पारस्परिक सम्बन्धों में अधिक साम्य व सहयोग स्थापित करने के लिए एक अन्तर्विश्वविद्यालय की स्थापना की सिफारिश की गयी।

(5) नारी-शिक्षा पर विशेष जोर देते हुए औद्योगिक व प्रशिक्षण की समस्याओं को विश्वविद्यालय द्वारा किए जाने का निश्चय किया गया।

यद्यपि सैडलर कमीशन के सुझावों का प्रभाव कलकत्ता विश्वविद्यालय पर कुछ भी न पड़ा पर उसकी रिपोर्ट के आधार पर मैसूर, पटना, बनारस, अलीगढ़, ढाका, लखनऊ व हैदराबाद में स्थानीय विश्वविद्यालयों की स्थापना की गयी तथा उच्च व माध्यमिक शिक्षा का पुनर्संगठन भी हुआ।

हर्टाग समिति और वुड ऐबट रिपोर्ट— सन् 1919 के भारत सरकार अधिनियम द्वारा शिक्षा को हस्तांतरित विषय बना कर जनता द्वारा चुने गए मंत्रियों को सौंप दिया गया लेकिन यूरोपियनों की शिक्षा, केन्द्रीय प्रशासित प्रदेशों की शिक्षा, बनारस, अलीगढ़ व दिल्ली विश्वविद्यालयो, राजकुमार के कालेजों और अखिल भारतीय गवेषणशालाओं आदि पर सरकार ने अपना अधिकार रखा अतः शिक्षा विषय एक सीमित दायरे के अन्तर्गत ही मंत्रियों को सौंपे जाने के कारण भारतीय शिक्षा व्यवस्था की जाँच करने के लिए सर फिलिप हर्टाग की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गयी जिसने सितम्बर 1929 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बतलाया कि सन् 1957 तक भारतीय शिक्षा के सभी विविध अंगों में तीव्र प्रगति हुई है। हर्टांग समिति ने प्राथमिक शिक्षा को सन्तोषजनक न मानते हुए अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को सुविधानुसार करने की सिफारिश की तथा माध्यमिक व उच्च शिक्षा में कई सुधार के सुझाव दिये। हर्टांग समिति की सिफारिशों के फलस्वरूप सन् 1935 में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड का पुनर्संगठन किया गया और इस बोर्ड के सुझाव के अनुसार देश की शिक्षा समस्याओं पर विचार करने के लिए ऐबट व वुड नामक इंग्लैण्ड के दो शिक्षा-विशेषज्ञों की एक समिति नियुक्त की गयी। इस समिति ने जून, 1927 में अपनी रिपोर्ट सरकार के सामने प्रस्तुत की और सामान्य शिक्षा व उसके संगठन तथा व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education) पर अपने सुझाव पेश किए लेकिन शीघ्र ही द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो जाने के फलस्वरूप इस सुझाव को भारत में कार्यान्वित न किया जा सका पर कालान्तर में सार्जेण्ट रिपोर्ट में उक्त सभी सुझाव सम्मिलित कर दिए गए।

वर्धा-योजना और बेसिक या बुनियादी शिक्षा—महात्मा गांधी शिक्षा की वर्तमान प्रणाली से सन्तुष्ट न थे क्योंकि एक ओर तो इसमें व्यय अधिक होता था और दूसरी ओर यह बालकों के वातावरण से सम्बन्धित भी न थी। इस प्रकार उन्होंने वर्धा में 22 व 23 अक्टूबर, 1937 को एक अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया जिसमें देश के विभिन्न भागों से शिक्षा विशेषज्ञों, राष्ट्रीय नेताओं, समाज सुधारकों व प्रांतीय शिक्षा मन्त्रियों ने भाग लिया तथा गम्भीर विचार-विमर्श के उपरान्त शिक्षा की एक योजना स्वीकार की गयी जिसे कि बेसिक शिक्षा या बुनियादी शिक्षा कहा जाता है। बेसिक या बुनियादी शिक्षा-योजना की आयु रूपरेखा संक्षेप में इस प्रकार है—

(1) शिक्षा की अवधि सात वर्ष की है और सात से चौदह वर्ष तक की आयु के बालक-बालिकाओं को निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा दी जायेगी।

(2) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगी और यह शिक्षा-पद्धति बालक को आत्म-निर्भर बनावेगी।

(3) बालकों को उनकी रुचि के अनुसार व्यवसाय की शिक्षा भी दी जाएगी।

युद्धोत्तर शिक्षा योजना व सार्जेन्ट रिपोर्ट—द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति पर भारत सरकार ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा सलाहकार सर जान सार्जेण्ट को भारत के युद्धोत्तर शिक्षा-विकास पर एक स्मृति-पत्र तैयार करने का आदेश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दिया जिसमें द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त भारतीय शिक्षा के विकास का कार्यक्रम हो। सर जान सार्जेण्ट ने सन् 1944 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और उसमें शिक्षा सम्बन्धी निम्नलिखित प्रमुख सुझाव थे।

(1) छः वर्ष से चौदह वर्ष तक के बालकों की शिक्षा निःशुल्क व अनिवार्य होनी चाहिए।

(2) प्राथमिक शिक्षा के पश्चात् केवल उन्हीं बालक-बालिकाओं को हाई स्कूल की शिक्षा दी जाय जो इस शिक्षा से लाभ उठा सकें और उनके योग्य हों।

(3) इण्टरमीडिएट को हाई स्कूल में मिला दिया जाय और बी० ए० का पाठ्यक्रम तीन वर्षों का कर दिया जाय।

(4) कालेजों में प्रवेश सम्बन्धी नियम निर्धारित कर दिए जायें।

(5) देश में एक राष्ट्रीय नवयुवक आन्दोलन प्रारम्भ किया जाय जिसका उद्देश्य नवयुवकों को अपने शरीर का निर्माण व देश सेवा करने की शिक्षा देना है।

शिक्षा-प्रसार के अन्य प्रयास—यद्यपि सरकार शिक्षा-प्रसार की ओर क्रियाशील थी पर कुछ धार्मिक व सामाजिक संस्थाओं ने भी भारतीय शिक्षा के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस दिशा में स्वामी दयानन्द के आर्य समाज का नाम अत्यधिक उल्लेखनीय है और हम देखते हैं कि उसने (आर्य समाज ने) भारतीय संस्कृति के विकास व प्राचीन वैदिक शिक्षा पद्धति के पुनरुत्थान के लिए अथक परिश्रम किया है। इस प्रकार अनेक स्थानों पर गुरुकुलों की स्थापना की गयी जो कि आजकल डिग्री कालेजों के रूप में विद्यमान हैं। साथ ही अनेक स्थानों पर शिक्षा को राष्ट्रीय आधार पर चलाने के लिए राष्ट्रीय विद्यालयों की भी स्थापना की गयी जिनमें से गुजरात व काशी विद्यापीठ और जामिया मिलिया दिल्ली आदि शिक्षण संस्थाएँ उल्लेखनीय हैं।

राधाकृष्णन आयोग—15 अगस्त, 1947 को भारत विदेशी दासता से मुक्त हुआ और अब स्वाभाविक ही देश में माध्यमिक व उच्च शिक्षा का विकास होने लगा तथा कई नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना भी हुई। इस प्रकार शिक्षा को देश व वातावरण की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने की दृष्टि से भारत सरकार ने 4 नवम्बर, 1948 को डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की स्थापना कर उसे देश की वर्तमान व भावी आवश्यकताओं के अनुरूप सुझाव प्रस्तुत करने के लिये कहा। राधाकृष्णन कमीशन ने 25 अगस्त, 1949 को अपनी रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत की तथा उसमें शिक्षा के स्तर को समुन्नत करने व अनुशासनहीनता पर रोक लगाने के लिए निम्नलिखित उल्लेखनीय सुझाव दिए—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(1) शिक्षा-क्षेत्र में संकीर्ण व साम्प्रदायिक विचारों के लिए कोई स्थान न होना चाहिए और शांति निकेतन व जामिया मिलिया के आदर्श पर ग्राम विश्व-विद्यालयों की स्थापना की जाय तथा सरकार शिक्षा पर और अधिक धन खर्च करे।

(2) किसी भी कालेज में एक हजार से अधिक विद्यार्थियों को प्रवेश न दिया जाय और इण्टरमीडिएट कक्षाओं का अंत कर हायर सेकेण्डरी व त्रिवर्षीय डिग्री कोर्स प्रारम्भ किया जाय।

(3) प्रतिभाशाली छात्रों को और भी अधिक छात्रवृत्तियाँ दी जायँ तथा अध्यापकों की वेतन वृद्धि की जाय और उन्हें प्राध्यापक (Professor), प्रवाचक (Reader), व्याख्याता (Lecturer) तथा शिक्षक (Instructor) नामक चार वर्गों में विभक्त किया जाय।

(4) उच्च श्रेणियों में शिक्षा के माध्यम के लिए अंग्रेजी को हटाने में शीघ्रता न करने के लिए कहा गया और माध्यमिक कक्षाओं में मातृभाषा व संघीय (Federal) भाषा या एक प्राकृत भाषा (classical) या जिनकी मातृभाषा संघीय भाषा हो उनके लिए किसी एक आधुनिक भारतीय भाषा के अध्ययन का सुझाव दिया गया।

(5) कमीशन ने स्नातकोत्तर प्रशिक्षण व शोध (Post graduate training and Rasearch) व व्यवसायिक शिक्षा (Professional education) के सम्बन्ध में उपयोगी सुझाव देते हुए प्रचलित परीक्षा प्रणाली की भी पर्याप्त भर्त्सना की तथा स्त्रियों को अधिक से अधिक शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं के प्राप्त होने का सुझाव दिया।

यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन—सन् 1956 में एक अधिनियम द्वारा केन्द्रीय सरकार ने 9 सदस्यों के इस कमीशन की नियुक्ति की और इसे विश्वविद्यालयों व शिक्षा-सम्बन्धित संस्थाओं के परामर्श से शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने वाले कार्यों को करने का भार सौंपा। यह कमीशन न केवल विश्वविद्यालयों की आर्थिक आवश्यकताओं की देखभाल करने व उनके लिए सहायता अनुदान की स्वीकृति देने का भी अधिकारी बनाया गया अपितु उसे विश्वविद्यालयों के किसी विभाग का निरीक्षण कर उसके सम्बन्ध में सुझाव देने का अधिकार भी दिया गया। यदि कोई विश्वविद्यालय उसके सुझावों को स्वीकार नहीं करता तो उसकी ग्रांट रोकी जा सकती है।

मुदालियर आयोग—मुदालियर आयोग की स्थापना 1952 ई० में माध्यमिक शिक्षा के दोषों को दूर करने के लिए की गई। इस आयोग ने माध्यमिक शिक्षा की विभिन्न समस्याओं पर विचार करके 1953 ई० में अपने सुझाव रखे। आयोग के प्रमुख सुझाव अग्रलिखित थे :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(अ) माध्यमिक शिक्षा कक्षा 5 से आरम्भ होना चाहिए। इस शिक्षा को दो भागों में विभाजित किया जाना चाहिए (1) तीन वर्ष की जूनियर माध्यमिक शिक्षा और (2) चार वर्ष की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा ।

(ब) माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा होना चाहिए। राष्ट्रभाषा की शिक्षा पर भी बल दिया जाना चाहिए, पाठ्यक्रम का निर्माण छात्रों की विभिन्न योग्यताओं एवं क्षमताओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिए कि बालकों का सर्वांगीण विकास हो सके।

(स) प्रत्येक विद्यालय में कम से कम 200 दिन पढ़ाई अवश्य होना चाहिए और सप्ताह में 45-45 मिनट के 35 घण्टे होना चाहिए। विद्यालयों की स्थिति में सुधार किया जाना चाहिए और विद्यार्थियों के शारीरिक व्यायाम की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

(द) प्रत्येक विद्यालय की प्रबन्ध समिति 'सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन ऐक्ट' के अन्तर्गत स्वीकृति होना चाहिए।

मुदालियर आयोग के अधिकतर सुझावों को सरकार ने मान लिया। उत्तर प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा के सुधार के सम्बन्ध में जो समिति बनी उसमें 1953 ई० को आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में बनाई गई समिति के सुझाव अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इसका मुख्य सुझाव यह था कि हायर सेकेण्ड्री स्कूल में चार विभिन्न पाठ्यक्रम रखे जायें साहित्यिक, वैज्ञानिक, व्यावसायिक, और राजनैतिक। यहाँ की सरकार ने समिति के सुझावों को मान लिया।

कोठारी आयोग—1964 ई० तक विभिन्न स्तरों की शिक्षा को सुधारने के लिए जो भी प्रयत्न किये गये उनसे पर्याप्त सफलता नहीं मिली थी। फलस्वरूप भारत सरकार ने डा० दौलत सिंह कोठारी की अध्यक्षता में एक आयोग सभी स्तरों की शिक्षा के सम्बन्ध में सुझाव देने के लिए बैठाया। इस आयोग की रिपोर्ट 1966 ई० में प्रकाशित हुई। आयोग के सुझावों में निम्नलिखित महत्वपूर्ण है :—

(1) स्कूल शिक्षा की अवधि 12 वर्ष होना चाहिए और पहले दर्जे में सामान्यतया 6 वर्ष के बच्चे को भर्ती किया जाना चाहिए।

(2) 10 वर्ष से कम की आयु के बच्चों को सार्वजनिक परीक्षा में सम्मिलित नहीं होने देना चाहिए। 10 वें दर्जे तक सामान्य शिक्षा दी जानी चाहिए।

(3) माध्यमिक विद्यालय दो प्रकार के होने चाहिए (अ) वे जो 10 वर्ष के पाठ्यक्रम के विद्यालय हों (ब) जो 11 या 12 वर्ष की शिक्षा अवधि के उच्चतर माध्यमिक विद्यालय हों। आयोग ने शिक्षा के उन्नयन के लिए भी सिफारिश की।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(4) स्नातक परीक्षा के लिए दो वर्ष या दो वर्ष से अधिक की अवधि का पाठ्यक्रम होना चाहिए। विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में व्यावहारिकता लाई जानी चाहिये।

(5) विद्यार्थियों को तीन भाषाएँ पढ़ाई जानी चाहिए मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा, संघ या सहराज भाषा, एक आधुनिक भारतीय या यूरोपीय भाषा, जिसका अध्ययन मातृ भाषा, प्रादेशिक भाषा या संघ की सहराज भाषा के रूप में न किया जा रहा हो। आयोग ने यह भी सुझाव दिया कि 10 वर्ष के भीतर विश्वविद्यालय स्तर पर मातृ-भाषा को पूर्ण रूप से शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। भारत की विभिन्न भाषाओं के विकास में योगदान दिया जाय।

(6) विद्यालयों में होने वाली छुट्टियों की संख्या कम की जाय और छुट्टी के दिनों में विद्यार्थियों को विशेष काम दिया जाय।

(7) शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाया जाय और प्रत्येक शिक्षक का वेतन, चाहे वह किसी भी स्तर का क्यों न हो, 150 रु० से कम न हो। सरकारी तथा गैर-सरकारी शिक्षकों के वेतन में समानता लाई जाय। आयोग ने विभिन्न स्तर के अध्यापकों के लिये नये वेतन-क्रम भी निर्धारित किये। मंहगाई भत्ते के सम्बन्ध में आयोग ने कहा कि शिक्षकों को वही मँहगाई मिलनी चाहिए जो राज्य सरकार के अन्य कर्मचारियों को मिलती है।

यदि कोठारी आयोग के समस्त सुझाव ज्यों के त्यों मान लिये जायँ तो अवश्य ही हमारे विद्यालयों की स्थिति अत्यन्त अच्छी हो जायगी।

इन प्रयासों के अतिरिक्त भारतीय शिक्षा के सुधार के लिए कुछ अन्य प्रयास भी किये गये हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा का तेजी से विकास हुआ है सामान्य शिक्षा के साथ ही प्राविधिक और औद्योगिक शिक्षा के विकास के हेतु अनेक प्रयास किये गये हैं तथा बहुत से प्राविधिक विद्यालय खोले गये हैं। मेडिकल कालेजों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और स्त्री-शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा के लिए भी हमारी सरकार ने प्रयास किये हैं। आशा है कि निकट भविष्य में हम शिक्षा के क्षेत्र में बहुत अधिक उन्नति कर जायेंगे और भारत में निरक्षरता पूर्ण रूप से समाप्त हो जायगी।

प्रश्न (4) आधुनिक भारत में साहित्य और कला के विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

वस्तुतः मुगलकाल में फारसी साहित्य के साथ-साथ न केवल संस्कृत व हिन्दी अपितु प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य में भी महान् वृद्धि हो गयी और अठारहवीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शताब्दी के अन्त तथा उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उत्तरोत्तर साहित्य का पतन ही होता था। हाँ, सन् 1857 की क्रांति के पश्चात् भारत पर अंग्रेजों का शासन स्थायी रूप से स्थापित हो जाने पर साहित्य का भी पुनरुत्थान सम्भव हो सका और विचारक तो उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध को साहित्यिक जागृति का ही युग मानते हैं तथा इस साहित्यक प्रगति के निम्न कारण प्रस्तुत करते हैं—

(1) सन् 1857 की क्रान्ति के पश्चात् भारत में पर्याप्त समय तक पूर्णतः शांति स्थापित रही और अँग्रेजों ने भी भारत के शासन में रुचि प्रदर्शित कर सुव्यवस्थित शासन की स्थापना की। अतः साहित्यिक समृद्धि के लिए भारतीयों को समय प्राप्त हो सका।

(2) प्रेसों के कारण साहित्यिक ग्रन्थों का अधिक मात्रा में निर्माण सम्भव हो सका और साहित्य को जन-साधारण तक पहुँचने में भी सुविधा प्राप्त हो सकी। इस प्रकार पत्र-पत्रिकाओं का नवीन मार्ग प्रारम्भ हुआ और प्रायः सभी भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

(3) अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार से भारतीयों का बौद्धिक जागरण सम्भव हुआ और प्रायः सभी भाषाओं में साहित्य-रचना हुई।

(4) राष्ट्रीय आन्दोलनों के कारण राष्ट्रीय रचनाओं की वृद्धि हुई अतः इसके फलस्वरुप साहित्य का विकास भी स्वाभाविक ही हुआ।

(5) ईसाई धर्म प्रचारकों ने जनसाधारण की भाषा में अपने धर्म ग्रन्थों को भारतीय जनता तक पहुँचाने के लिए पुस्तकें प्रस्तुत कीं। अतः इसके साहित्य को अत्यधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

इस प्रकार सन् 1857 की क्रांति के उपरान्त साहित्य-क्षेत्र में आशातीत प्रगति हुई और उसका उल्लेख विविध शीर्षकों के अन्तर्गत यहाँ किया जायगा :—

(1) **संस्कृत साहित्य**—अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध व उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में संस्कृत साहित्य ने काफी प्रगति की और अनेक बड़े-बड़े यूरोपीय विद्वानों ने भी संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया तथा विभिन्न यूरोपीय भाषाओं में संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद भी किया। इसका परिणाम यह हुआ कि विश्व के समक्ष संस्कृत साहित्य का महत्व स्पष्ट हो सका और हमारे देशवासियों में भी प्राचीन इतिहास व सभ्यता से परिचित होने की प्रवृत्ति बलवती हो उठी तथा यूरोपीय व भारतीय विद्वानों के अनुसंधानों के फलस्वरूप प्राचीन भारतीय संस्कृति व सभ्यता का गौरव प्रकाश में आया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(2) हिन्दी साहित्य—वस्तुतः हिन्दी साहित्य का इतिहास अत्यधिक प्राचीन है और बारहवीं शताब्दी से ही वह विकसित हो रहा था पर उसका सर्वथा परिष्कृत रूप आधुनिक काल में ही देख पड़ता है क्योंकि मध्य युग में व्रज व अवधी भाषाओं का ही व्यवहार विशेष रूप से हुआ। हिन्दी साहित्य के एक प्रसिद्ध आलोचक श्री शिवदान सिंह चौहान तो आधुनिक काल से ही हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ मानते हैं क्योंकि अठारहवीं शताब्दी के अन्त में ही खड़ी बोली में रचनायें प्रस्तुत की गयीं। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में मुन्शी सदासुखलाल का 'सुखसागर' और इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' लिखी गयी तथा उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में लल्लू लाल ने 'प्रेमसागर' व 'सिंहासन बत्तीसी' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' द्वारा हिन्दी के विकास में योग दिया। इसके पश्चात् ईसाई धर्म प्रचारकों ने कलकत्ता के समीप श्री रामपुर को अपना केन्द्र बनाकर धर्म प्रचार के उद्देश्य से पुस्तकें प्रकाशित करवाईं और राजा राम मोहन राय ने 'बंगदूत' नामक समाचार पत्र द्वारा हिन्दी का समर्थन किया तथा आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द ने भी पहली बार हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्वीकार कर उसके स्वरूप को ईसाई धर्म-प्रचारकों द्वारा विकृत होने से भी बचाया। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रेस, समाचार पत्र व शिक्षा-संस्थाओं के भी जन्म हो जाने से तथा सर चार्ल्स वुड द्वारा देशी भाषाओं में भी शिक्षा-योजना लागू करने से पाठ्य पुस्तकों द्वारा हिन्दी गद्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। इसी बीच राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द और राजा लक्ष्मण सिंह नामक दो विभूतियाँ भी साहित्य जगत में अवतरित हुईं तथा दोनों ने अपने-अपने ढंग से हिन्दी गद्य के विकास में योगदान दिया पर वह हमारे साहित्य का आरम्भिक काल या शैशव काल ही था।

वास्तव में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आगमन के साथ हिन्दी साहित्य का विकास युग प्रारम्भ होता है और यह तो निर्विवाद रूप से सत्य है कि भारतेन्दु जो हिन्दी गद्य शैली के जन्मदाता हैं। उन्होंने 'कवि वचन सुधा' और 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' नामक मासिक पत्रों का सफल संस्थापन व सम्पादन किया। भारतेन्दु की प्रतिभा बहुमुखी थी और वह आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रथम नाटककार, निबंध लेखक, पत्रकार, आलोचक व कवि थे अतः उनकी कृतियाँ अत्यन्त विशाल परिमाण में हैं तथा साहित्य धर्म, इतिहास आदि विषयों पर लिखे गए उनके ग्रन्थों की संख्या लगभग दो सौ अड़तीस है। भारतेन्दु से प्रोत्साहन प्राप्त कर अनेक नवीन लेखक भी साहित्य-क्षेत्र में अवतरित हुए और अपनी कृतियों से हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित किया। उसकी समकालीन प्रतिभाओं में प्रतापनारायण मिश्र, बाल कृष्ण भट्ट, प्रेमघन, बालमुकुन्द

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त व अम्बिका दत्त व्यास के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार हमारा साहित्य प्रगति-पथ पर अग्रसर होता रहा और सन् 1873 में 'काशी नागरी प्रचारणी पत्रिका' के प्रकाशन तथा सन् 1878 में आर्य भाषा पुस्तकालय काशी की स्थापना आदि कार्यों से उसे गतिशील होने से साहित्य के विविध रूपों का विकास द्रुत गति से होने लगा। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सन् 1903 में इस पत्रिका का सम्पादन भार ग्रहण किया और उन्होंने न केवल हिन्दी भाषा को शुद्ध व व्याकरण सम्मत बनाने का प्रयत्न कर हिन्दी गद्य को एकरूपता प्रदान कर उसका एक निश्चित आदर्श प्रस्तुत किया अपितु अनेक नवीन लेखकों का पथ प्रदर्शन करते हुए हिन्दी गद्य के विविध साहित्य रूपों को विकसित करने की ओर प्रवृत्त किया। स्वयं द्विवेदी जी के साथ-साथ डा० श्याम सुन्दर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, जयशंकर 'प्रसाद', चतुरसेन शास्त्री, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिली शरण गुप्त आदि तत्कालीन उल्लेखनीय विभूतियाँ हैं। भाषा का एक निश्चित मानदण्ड स्थापित हो जाने से साहित्यिक विकास को भी सुविधा प्राप्त हो गयी और पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन में उत्तरोत्तर वृद्धि तथा उच्च कक्षाओं में हिन्दी को भी स्थान मिलने से स्वाभाविक ही हिन्दी लेखकों की संख्या बढ़ने लगी। उपर्युक्त लेखकों के साथ-साथ वृन्द वन लाल वर्मा, डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा, जैनेन्द्र, राहुल सांकृत्यायन, दिनकर आदि ने भी अपनी कृतियों द्वारा हिन्दी साहित्य की उल्लेखनीय सेवा की है।

(3) **उर्दू साहित्य**—यद्यपि उर्दू साहित्य का विकास व प्रगति मुस्लिम शासन काल में ही आरम्भ हो गई थी पर आधुनिक उर्दू गद्य का जन्मदाता जान गिलक्राइस्ट को कहा जाता है इस प्रकार उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में उर्दू की बहुत अधिक उन्नति हुई तथा सर सैयद अहमद खाँ ने उर्दू भाषा को विविध शासकीय क्षेत्रों में प्रगति करने के लिए बहुत अधिक योगदान दिया। आधुनिक कालीन उर्दू कवियों में गालिब व जौक के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं और गालिब ने उर्दू के साहित्यिक स्तर को बहुत अधिक उन्नत करने का श्रेय प्रदान किया है। हुए उसे विचार, भाव प्रकाश, अलंकार योजना एवं शब्दचयन की दृष्टि से मौलिक कलाकार कहा जाता है। मुगलों के पतन के पश्चात् उर्दू को अवध में आश्रय प्राप्त हुआ और लखनऊ उर्दू साहित्य का केन्द्र हो गया तथा लखनऊ में भाषा में मर्सियों की रचना आरम्भ हुई। अवध का पतन होने पर उर्दू कवियों ने अन्य मुस्लिम रियासतों में भी आश्रय लिया और अंग्रेजी सभ्यता से प्रभावित हो शृंगार के अतिरिक्त अन्य नवीन विषयों में भी रचनाएँ प्रस्तुत कीं तथा उर्दू गद्य का भी उद्भव और विकास हुआ। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थापना से भी उर्दू साहित्य की बहुमुखी समृद्धि हुई। इकबाल, जोश मलीहाबादी, हाफिज जलन्धरी, रतन नाथ सरशार, मौलवी अब्दुल हलीम, प्रेम चन्द व कृष्ण चन्द आदि आधुनिक काल के उल्लेखनीय उर्दू साहित्यकार हैं।

(4) बंगला साहित्य—यद्यपि बंगला साहित्य अत्यधिक प्राचीन है पर उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व उसमें काव्यात्मक ग्रन्थों की ही बहुलता दिखाई पड़ती है। इस शताब्दी के प्रारम्भ में श्री रामपुर के ईसाई मिशनरियों द्वारा बंगाली भाषा में बालकों की शिक्षा हेतु कुछ पुस्तकों की रचना किये जाने पर बंगला गद्य-साहित्य की नींव पड़ी और सन् 1800 में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना होने पर बंगला भाषा व साहित्य का विधिवत अध्ययन आरम्भ हो जाने से बंगला गद्य को समृद्धि का अवसर प्राप्त हुआ। कालान्तर में राजा राम मोहन राय ने एक नवीन शक्तिशाली गद्य-शैली का प्रयोग कर बंगला साहित्य की प्रगति में अपना सहयोग प्रदान किया और उन्हें आधुनिक बंगला गद्य साहित्य का जन्मदाता भी माना जाता है। चूँकि राजा राम मोहन राय की भाषा में फारसी के शब्दों का आधिक्य दिखाई पड़ता था अतः ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने बंगला को संस्कृत के समीप लाने का सफल प्रयास करते हुए उसे वास्तविक रूप प्रदान किया। साथ ही इस शताब्दी में अक्षय कुमार दत्त, महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर, राज नारायण बसु, केशव चन्द्र सेन व शिवनाथ शास्त्री आदि विद्वानों ने भी बंगला साहित्य के निर्माण में अत्यधिक सहयोग प्रदान किया। विद्यासागर जी के समकालीन बंगला कवि माइकेल मधुसूदन दत्त ने संस्कृत आदर्शों पर नाटक व मेघनाद वध नामक महाकाव्य का सृजन किया और बंगला में सॉनेट (Sonnet) लिखने की परम्परा का सूत्रपात किया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में द्विजेन्द्र लाल राय की युगान्तरकारी नाट्यकृतियाँ भी प्रकाशित हुईं और उपन्यास-जगत में बंकिम चन्द्र चटर्जी का पदार्पण हुआ जिन्हें कि नवीन व पुरातन का अपूर्व सम्मिश्रण माना जाता है और तत्कालीन बंगला गद्य साहित्य में श्रेष्ठतम स्थान प्रदान किया जाता है। इसी प्रकार बीसवीं शताब्दी में विश्व-कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर और उपन्यास सम्राट श्री शरत् चन्द्र चटर्जी ने आधुनिक बंगला साहित्य के निर्माण में महत्वपूर्ण योग दिया है। रवीन्द्र ने कविताएँ, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, कहानियाँ व समीक्षा-साहित्य का सृजन कर लगभग पचास वर्षों तक बंगाल साहित्य की अभूतपूर्व सेवा की और सन् 1912 में उन्हें 'गीतांजलि' पर 'नोबेल पुरस्कार' भी प्राप्त हुआ। अन्य आधुनिक बंगला साहित्यकारों में रमेन्द्र, सुन्दर त्रिवेदी, वनफूल, विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय, ताराशंकर बनर्जी, सजनिकांत दास, सत्येन्द्र नाथ मजूमदार, गोपाल हलधर, बुद्धदेव बसु, अचिन्त्य कुमार, अन्नदाशंकर व परशुराम आदि उल्लेखनीय हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(5) मराठी साहित्य—अन्य प्रांतीय भाषाओं की भाँति मराठी साहित्य भी प्राचीन काल से ही विकसित हो रहा था और सन्त ज्ञानेश्वर आदि ने मराठी कविता को गौरव के शिखर पर पहुँचा भी दिया था पर उन्नीसवीं शताब्दी में पुनर्जागरण के पश्चात् ही मराठी साहित्य ने विविधमुखी प्रगति की। इसी शताब्दी में मराठी में उपन्यास, कोषग्रंथ व व्याकरण आदि का निर्माण हुआ था और चिपलूणकर की 'निबंध-माला' द्वारा मराठी साहित्य को महान प्रोत्साहन मिला। लोकमान्य तिलक और उनके समाचार-पत्र केसरी ने भी मराठी के विकास में अभूतपूर्व योग दिया और तिलक की 'गीता रहस्य' न केवल मराठी अपितु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में श्रेष्ठतम स्थान रखती है। मोरापंत, मल्हार राव और विष्णु शास्त्री भी इस शताब्दी के उल्लेखनीय लेखकों में हैं तथा इनके अतिरिक्त अन्ना साहब किर्लोस्कर, काशीनाथ त्र्यम्बक तेलंग, वासुदेव शास्त्री, गणेश गडकरी, हरिनारायण आप्टे, वी० एम० जोशी, खाडेकर, ना० सी० कड़के, माडखोलकर, विनायक सावरकर, केशवसुत:, काका कालेलकर, गाडगिल आदि विभूतियों ने भी आधुनिक मराठी साहित्य को गौरवान्वित किया है।

(6) गुजराती साहित्य—भक्ति-आन्दोलन के समय स्वामी सहजानन्द, प्रेमानन्द व ब्रह्मानन्द आदि सन्तों ने भक्ति-भावनापूर्ण कई मधुर रचनाएँ प्रस्तुत की थीं और बारहवीं शताब्दी में गुजरात में गद्य साहित्य का भी उत्कर्ष हुआ पर मराठी व बंगला आदि भाषाओं की भाँति उन्नीसवीं शताब्दी में गुजराती में भी एक नवीन मोड़ आया। सन् 1848 में गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी का निर्माण होने पर गुजराती साहित्य को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ और दलपत राय व नर्मदाशंकर ने गुजराती भाषा को आधुनिक रूप प्रदान किया तथा नर्मदाशंकर को तो आधुनिक गुजराती गद्य-साहित्य का जन्मदाता भी माना जाता है। इसी प्रकार पारसी सुधारक बहराम जी ने भी गुजराती साहित्य के विकास में अपना योग दिया है और अन्य उल्लेखनीय गुजराती लेखकों में नन्दशंकर, तुलाशंकर, गोवर्धन राम त्रिपाठी, कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी व रमण लाल बसन्तलाल देसाई के नाम लिए जा सकते हैं।

(7) अन्य भाषाओं का साहित्य—आधुनिक काल में तमिल, तेलगू, कन्नड़, उड़िया, मलयालम, पंजाबी, सिन्धी, आसामी व मैथिली आदि भाषाओं के साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ है। दक्षिण भारत की भाषाओं में तमिल सर्वाधिक महत्व पूर्ण व प्राचीन भाषा है और आधुनिक काल में भी उसने उल्लेखनीय प्रगति की है तथा सी० राजगोपालाचार्य, राजन अय्यर, सरवन पिल्लई, राजवेलु चेट्टियर व

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारती आदि का नाम बहुत प्रसिद्ध है। तमिल की भाँति तेलगू भी दक्षिण भारत को भाषा है और उन्नींसवीं शताब्दी में उसका भी उत्थान हुआ। सन् 1824 में सी० पी० ब्राउन नामक एक अंग्रेज ने तेलगू भाषा के प्राचीन ग्रन्थों का संकलन व प्रकाशन कराया और इसके पश्चात् तेलगू में अनेक ग्रन्थों की रचना की गई तथा नाटक, कविता, कहानी, उपन्यास व निबंध आदि का भी लेखन कार्य हुआ। तेलगू के आधुनिक प्रसिद्ध लेखकों में वीरेश लिंगन, लक्ष्मी नरसिंहम, सी० आर० रेड्डी आदि के नाम लिये जाते हैं। इसी प्रकार अन्य प्रान्तीय भाषाओं का भी उत्थान हुआ और प्रायः सभी क्षेत्रीय भाषाओं की उन्नति हुई तथा उनमें अनेक दैनिक, साप्ताहिक व मासिक पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ तथा कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास व समीक्षा आदि विविध साहित्यिक रूपों का आधिक्य दीख पड़ने लगा। साहित्य की इस समृद्धि ने जनता के मस्तिष्क व जीवन को भी प्रभावित किया और लोगों की चिन्तन शक्ति बढ़ने से उनमें राष्ट्रीय भावनाओं का विकास व नवचेतना का संचार भी हुआ। फ्रेजर के कथनानुसार—

"Men such as Ram Mohan Roy, Keshabchandra Sen, Michael Madhusudan Datta, Bankimchandra Chatterjee, Kashinath Trimbak Telang are not bastard bantlings of a western civilization, they were creative geniuses worthy to be reckoned in the history of India with such men of old as Kalidas, Chaitanya, Jayadeva, Tulsidas and Sankaracharya; and destined in the future to shine clear as the first glowing sparks, sent out in the fiery furnace when new and old were fusing."

कला का विकासात्मक विवेचन

मुगल साम्राज्य के पतन के साथ-साथ भारतीय कला का भी पतन होना आरम्भ हो गया और नादिर शाह व अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण तथा मराठों व अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार होने से देशी नरेशों की आर्थिक व्यवस्था भी शोचनीय हो जाने के कारण उनका ध्यान कला के संरक्षक व पृष्ठपोषक न रहने के कारण कलाकारों की सृजनात्मक प्रतिभा व कलात्मक योग्यता का भी स्वतः अंत हो गया और जिन देशी राजाओं ने इस दिशा में कुछ प्रयत्न भी किए वह भी कला को उच्च स्तर तक पहुँचाने में समर्थ न हो सके। हाँ, पुनर्जागरण के पश्चात् फर्ग्युसन, हैवेल, पर्सी ब्राउन आदि विदेशी कला प्रेमियों का ध्यान अवश्य भारतीय कलाओं के पुनरुद्धार की ओर गया और उन्होंने भारत की प्राचीन कला के सौन्दर्य को सर्वत्र प्रसारित करने की चेष्टा की।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वास्तु-कला—मुगलों के पतन का वास्तु-कला पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा और उसकी उत्तरोत्तर अवनति होती गयी तथा कलाकारों ने पाश्चात्य शैलियों की नकल करना प्रारम्भ कर दिया। उदाहरणार्थ, लखनऊ में नवाब वाजिदअलीशाह के कैसरबाग व नासिरुद्दीन हैदर द्वारा बनवायी छतर मंजिल आदि भवनों का नाम लिया जा सकता है। इसी प्रकार देश के धनाढ्य पुरुषों व सरकार द्वारा भी कुछ निरर्थक, शैलीहीन विशाल भवन बनवाये गये तथा भवन निर्माण कला को सरकारों का संरक्षण प्राप्त हो जाने से अंग्रेजों ने अपनी अलग वास्तुकला के आधार पर अन्य भवनों का निर्माण किया जिसका श्रेष्ठतम उदाहरण विक्टोरिया मेमोरियल व दिल्ली का पार्लियामेण्ट भवन हैं। इस प्रकार की इमारतें अधिकतर इटालियन ढंग से बनवायी गयीं और उनमें मौलिकता व कल्पना का अभाव है। बीसवीं शताब्दी में सरकारी कला विद्यालयों की स्थापना हुई और एक नयी शैली का विकास आरम्भ हुआ जो प्राचीन भारतीय व पूर्वी शैलियों का सम्मिश्रण है तथा इसका श्रेय कलकत्ता कला विद्यालय के प्रिंसिपल श्री हैबेल व डाक्टर आनन्द कुमार स्वामी को है।

चित्रकला—वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चित्रकला का विकृत व पतनोन्मुख रूप ही दृष्टिगोचर होता है पर इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सरकार ने बम्बई, कलकत्ता में चित्रकला के केन्द्रों की स्थापना कर पाश्चात्य ढंग पर चित्रकारी की शिक्षा प्रारम्भ की अतः चित्रकला में भी पूर्व व पाश्चात्य कला का समन्वय आरम्भ हुआ। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ही चित्रकला का भी पुनरुत्थान प्रारम्भ हुआ और हैबेल व अवनीन्द्र कुमार ठाकुर का इस दिशा में प्रमुख योगदान रहा है तथा नन्द लाल बसु, असित कुमार हालदार, यामिनी राय, देवी प्रसाद राय चौधरी, रहमान चुगताई, जैनुल आब्दीन, सुधीर खास्तगीर आदि आधुनिक काल के उल्लेखनीय चित्रकार हैं। हमारे चित्रकारों का ध्यान तैलचित्र और जलचित्र के विकास की ओर भी गया तथा मूर्तिकला को भी समुन्नत किया गया।

संगीत व नृत्यकला—सर्वप्रथम सर विलियम जोन्स का ध्यान भारतीय संगीतकला का पुनरुद्धार करने की ओर गया और सन् 1813 में पटना के निवासी मुहम्मद रिजा ने 'नगमाने आसकी' की रचना की तथा जयपुर के राजा प्रताप सिंह ने 'संगीत सार' की रचना करवाई। इस प्रकार कृष्णानन्द व्यास ने 'संगीत राग कल्पद्रुम' नामक हिन्दी गीतों का संग्रह प्रकाशित किया और सर सुरेन्द्र बहादुर ठाकुर ने भी संगीत-सम्बन्धी अनेक रचनाएँ कीं तथा श्री विष्णु दिगम्बर व भातखण्डे ने आधुनिक संगीत को पुनर्जीवन प्रदान किया। सन् 1916 में बड़ौदा में अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन हुआ और सन् 1919 में अखिल भारतीय संगीत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

परिषद की स्थापना हुई तथा ओंकारनाथ पटवर्धन, रतन जानकर व उस्ताद फैयाज खाँ आदि संगीतज्ञों के प्रयास से संगीत-कला की विशेष उन्नति हुई। साथ ही बीसवीं शताब्दी में भारत के विभिन्न प्रदेशों व प्रमुख नगरों में गायन-वादन की शिक्षा के लिए केन्द्र निर्मित किए गए और विद्यालयों में भी संगीत को एक विषय मान लेने से संगीत की विशेष प्रगति हुई। इसी प्रकार बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में नृत्य का भी पुनरुत्थान हुआ और शांतिनिकेतन, केरल कला मन्दिर आदि संस्थाओं तथा उदयशंकर, रामगोपाल, रुक्मिणी देवी व मेनकमणि ने भारतीय नृत्यकला को उन्नति के शिखर पर पहुँचा दिया। कत्थक, मणीपुरी व भरत नाट्यम आदि के प्रसार के साथ-साथ लोकनृत्य को भी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ और इस शताब्दी में नाटक व रंग मंच का भी पुनर्जागरण महत्वपूर्ण है। चलचित्र में भी नृत्य व संगीत को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ और कहीं-कहीं पाश्चात्य ढंग का अनुसरण करने से फिल्मी संगीत व नृत्य में कुछ कृत्रिमता भी दीख पड़ती है। पर उनमें भी पुनरुत्थान की सम्भावना की जा सकती है।

सारांश—वस्तुत: 18 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध व 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारतीय साहित्य पतनोन्मुखी ही रहा पर सन् 1857 की कांग्रेस के पश्चात् साहित्य का पुनरुत्थान भी सम्भव हो सका। विचारक 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध को साहित्यिक जागृति का युग मानते हैं और इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसी समय से भारतीय साहित्य व कला का पुनरुत्थान हुआ। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलगू, कन्नड़, उड़िया, मलयालम: पंजाबी, सिंधी आसामी, उड़िया व मैथिली आदि भाषाओं के साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ है तथा वास्तुकला, चित्रकला, संगीत कला व नृत्य कला आदि ने भी पर्याप्त उन्नति की है।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | 14

दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देशों पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

(IMPACT OF INDIAN CULTURE ON SOUTH AND SOUTH-EAST ASIAN COUNTRIES)

प्राचीन युग में भारतीय संस्कृति का अत्यधिक विस्तार हुआ। इस संस्कृति ने एशिया तथा यूरोप के विभिन्न देशों को प्रभावित किया। मध्य एशिया, दक्षिण और दक्षिण-पूर्वी एशिया, चीन, कोरिया, जापान और फिलिप्पाइन ईरान, यूनान, रोम और मिश्र आदि विभिन्न देशों पर इस संस्कृति का प्रभाव पड़ा। इस अध्याय में हम दक्षिण और दक्षिणी-पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों पर भारतीय संस्कृति के प्रभाव को स्पष्ट कर रहे हैं।

———

प्रश्न (1) दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति के प्रसार के विषय में आप क्या जानते हैं ?

दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया भारतीय संस्कृति के प्रसार का मुख्य केन्द्र रहा। कम्बुज, चम्पा, जावा, सुमात्रा, लंका और बर्मा आदि में भारतीय संस्कृति का अत्यधिक प्रसार हुआ। यहाँ हम विभिन्न देशों में भारतीय संस्कृति के प्रसार की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं—

(1) फूनान—यह कम्बोडिया प्रान्त का एक राज्य था। हिन्दुओं ने यहाँ की असभ्यता को समाप्त किया था। चौथी शताब्दी में कांडिण्य नामक ब्राह्मण ने यहाँ अपना राज्य स्थापित किया था और भारतीय नियमों तथा रीति रिवाजों को चलाया था। 484 ई० में कांडिण्य में वंशज जयवर्मा ने नागसेन नामक भिक्षु को चीन भेजा था। सम्राट जयवर्मा की रानी कुलप्रभावती तथा पुत्र रुद्रवर्मा के लेखों से प्रकट होता है कि इस वंश के सम्राट् शैव धर्मावलम्बी थे। पांचवीं तथा छठीं शताब्दी तक वैष्णव तथा बौद्ध धर्म का प्रचार भी होने लगा था। इन राजाओं के लेख संस्कृत भाषा में लिखे हुए हैं। फूनान के व्यक्ति भारतीय दार्शनिक विचारों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा धार्मिक विश्वासों से पूर्ण परिचित थे जैसा कि इस लेख से स्पष्ट है—

"तद् भक्तोधिवसेद-विशेदपि चवा तुष्टान्तरात्माजनो ।
मुक्ते ! दुष्कृत कर्म्मरास सः परमः गच्छेत पदम् वैष्णवम् ।।

यहां के मन्दिरों का निर्माण गुप्तकाल के भारतीय मन्दिरों के ढंग पर होता था । मन्दिर ईंटों के वर्गाकार या आयताकार गर्भगृह वाले होते थे, चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ होती थीं ।

फूनान की सांस्कृतिक उन्नति में भारतीयों का विशेष योगदान है । वहाँ हिन्दू धर्म और संस्कृति की छाप सब से पहले पड़ी । कांडिण्य के पहुँचने से पूर्व वहाँ पाषाण युग की सभ्यता थी परन्तु कांडिण्य के वहाँ पहुँचने पर सभ्यता का बीज अंकुरित हुआ । चीनी स्रोतों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि काण्डिण्य ने सम्राज्ञी सोमा को कपड़े पहनना सिखाया और वहाँ भारतीय नियमों एवं संस्कारों का पालन प्रारम्भ हुआ । चौथी शताब्दी में काण्डिण्य ने यहाँ आकर यहाँ के लोगों को सुसभ्य और सुसंस्कृति बनाने में काफी योगदान दिया ।

चीन के शिन वंश के इतिहास में फूनान का पर्याप्त वृत्तांत मिलता है । इसमें लिखा है कि वहाँ के लोग काले होते थे और नंगे रहते थे । वे अत्यन्त सरल प्रकृति के थे और खेती करते थे । अपने आभूषण वे स्वयं बनाते थे । चाँदी की थाली में वे खाना खाते थे और सोना चाँदी एवं मोती और गन्ध के रूप में कर देते थे । उनके यहाँ दाह संस्कार की प्रथा प्रचलित थी । वे भारत से आई हुई लिपि का प्रयोग भी करने लगे थे । इससे पता चलता है कि शिन वंश तक (265-419 ई०) फूनान वासी बहुत अधिक सभ्य नहीं हो सके थे ।

दक्षिण-त्सो के इतिहास (479-501) में भी फूनान का वर्णन हुआ है और वर्णन उससे भी फूनान की संस्कृति की उन्नति के विषय में जानकारी प्राप्त होती है । इस से यह जानकारी प्राप्त होती है कि फूनान वासी 'सरोग' नाम का एक रेशमी कढ़ा हुआ कपड़ा भी पहनते थे और स्त्रियाँ एक वस्त्र से अपना शरीर ढँकती थीं । साधारण लोग केवल एक ही वस्त्र पहनते थे । यह लोग इस समय तक सुन्दर मकानों में रहने लगे थे और 80-90 फुट लम्बी तथा 6-7 फुट चौड़ी नावें भी बनाने लगे थे । मुर्गों की लड़ाइयाँ भी प्रचलित थीं । उनके सम्राट तथा उनके पीछे स्त्रियाँ हाथियों पर चलती थीं । चीनी स्रोतों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि ज्यों-ज्यों भारतवासी फूनान में आते गये त्यों-त्यों उसकी सभ्यता की उन्नति होती गई ।

फूनान में तीन संस्कृत लेख प्राप्त हुए हैं जिससे उसकी धार्मिक और साहित्यिक प्रगति पर प्रकाश पड़ता है । पहले लेख में विष्णु की उपासना का उल्लेख है ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरे में गुण वर्मन द्वारा विष्णु चक्र तीर्थ स्वामी के हेतु दिये गये दानों का उल्लेख है। इसमें वेद, उपवेद, वेदांग के ज्ञाता ब्राह्मणों का भी उल्लेख हुआ है। तीसरे लेख में बुद्ध धर्म और संघ एवं आर्य संधियों का विवरण प्राप्त होता है। इसमें जय वर्मन और उसके पुत्र रुद्र वर्मन का भी उल्लेख है। इन लेखों और चीनी स्रोतों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सातवीं शताब्दी तक फूनान में शैव, वैष्णव और बौद्ध धर्म का प्रसार हो चुका था। कला के क्षेत्र में भी ख्मेर मूर्तियों एवं मुहरों पर गुप्त-कालीन मूर्तियों का प्रभाव दिखलाई पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि संस्कृति के क्षेत्र में फूनान को भारतीयों की महान देन रही है।

(2) **चम्पा**—चम्पा भारत का प्राचीन उपनिवेश था। यहाँ का प्रथम भारतीय शासक श्रीमान् था। यह शैवमतावलम्बी था तथा इसके राज्य की भाषा संस्कृत थी। भद्रवर्मा के पश्चात् गंगराज ने शासन किया किन्तु उसके शासन में अशान्ति उत्पन्न हो गई। सम्राट भद्रवर्मा बड़ा विद्वान था। यह चारों वेदों का ज्ञाता था। भृगुवंशी राजा इन्द्रवर्मा का राजधर्म शैव था फिर भी बौद्ध धर्म में वह आस्था रखता था। सम्राट हरिवर्मा के शासन में न्याय व्यवस्था हिन्दू सिद्धान्तों पर आधारित थीं।

चम्पा से प्राप्त एक लेख में सम्राट को पृथ्वी पर निवास करने वाला देवता कहा गया है। भारतीय सेनाओं की भाँति चम्पा की सेनायें कई बार हाथियों की भगदड़ के कारण पराजित हुई थीं।

चम्पा में ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के बीच विवाह होने से एक नवीन जाति ब्रह्म-क्षत्रिय भारत की भाँति विद्यमान थी। चम्पा में शव को जलाने की व्यवस्था थी। शव को जलाने के बाद एक घड़े में रखा जाता था। राजा के शव की राख को सोने के घड़े में रख कर समुद्र में डाल दिया जाता था।

चम्पा में अनेक आमोद-प्रमोद प्रचलित थे। उन पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव था। चम्पा के भित्ति चित्रों में वहाँ के बाजों का प्रदर्शन हुआ है भारतीय ढोल व मजीरा वहाँ प्रचलित था। स्त्रियाँ नृत्य आदि में भाग लेती थीं।

चम्पा में 'रामायण' और 'महाभारत' का पठन-पाठन होता था। वहाँ वेदों के जानकार विद्वान भी रहते थे।

चम्पा में बौद्ध धर्म को राजाश्रय प्राप्त था। बौद्ध इन्डोचीन के वेचन्ह का शिलालेख चम्पा में तीसरी शताब्दी में बौद्ध धर्म का प्रचार प्रमाणित करता है। 605 ई० में एक चीनी सेनानायक चम्पा से कुछ बौद्ध ग्रन्थ अपने देश ले गया था। यहाँ के सम्राटों ने मठों का निर्माण किया था जिनमें भोजन, वस्त्र तथा विश्राम की सुविधाएँ थीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चम्पा में वैष्णव धर्म का भी प्रचलन था । विष्णु के लिये पुरुषोत्तम, नारायण, गोविन्दमाधव, विक्रम आदि नाम प्रचलित थे । विष्णु की चतुर्भुजी रूप में यहाँ पूजा होती थी । कृष्णावतार की विभिन्न कथाओं का यहाँ प्रचार था ।

चम्पा का प्रमुख धर्म शैव था । शिव की पूजा महेश्वर, महादेव अमरेश, शंभु-ईशान आदि अनेक रूपों में होती थी । चम्पा के लेखों में शिव को श्रेष्ठ देवता माना गया है । शिवमूर्तियों से प्रतीत होता है कि यहाँ के लोग शिव के त्रिनेत्रयुक्त, त्रिशूलधारी, ताण्डवयुक्त रूप से परिचित थे । चम्पा की संस्कृति के विषय में हमने अध्याय (15) के प्रश्न (3, 4) में विस्तार से प्रकाश डाला है ।

(3) **कम्बुज**—कम्बुज, कम्बोडिया के उत्तर में वर्तमान था । यहाँ के शासक अधिकांशतः शैव धर्म के उपासक थे । श्री मतवर्मन ने त्र्यम्बक के लिंग की स्थापना की थी । वीरवर्मा की पुत्री अपने पति तथा धर्म भक्ति में अरुन्धती के समान बताई जाती है । भारत में जिस प्रकार 'विष्णुपद' स्थापित किये जाते थे, महेन्द्रवर्मा ने उसी प्रकार 'शिवपद' स्थापित कराये थे ।

जयवर्मन द्वितीय की रानी के द्वारा भगवान शिव को दिये गये दान का उल्लेख एक शिला लेख में हुआ है। जयवर्मा के समय से कम्बुज का स्वर्ण युग आता है । इन्दु वर्मा नामक शासक ने चम्पा को जीत लिया था । ईशानवर्मा ने कम्बुज में अनेक आश्रम बनवाये थे । इसने शिव तथा विष्णु की मिली हुई एक मूर्ति बनवाई थी । सम्राट जयवर्मन बौद्ध धर्म में आस्था रखता था । कम्बुज की संस्कृति के विषय में इसी अध्याय (16) के प्रश्न (3, 4) में विस्तार से प्रकाश डाला गया है ।

(4) **स्याम**—आधुनिक स्याम अथवा थाईलैण्ड में मौन जाति के लोग रहते है । जिन्होंने बहुत कुछ भारतीय सभ्यता को ग्रहण कर लिया था । कम्बोडिया में फैले बौद्ध धर्म का प्रसार स्याम में हुआ था । स्याम में अमरावती शैली में निर्मित मूर्तियाँ प्राप्त हुईं । यहाँ के स्मारकों पर गुप्तकालीन कला स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं । यहाँ की शासन व्यवस्था में भारतीयता की पूरी छाप पाई जाती है । बी० जी० गोखले ने कहा है :—

"The influence of India ceremonial in Siamese court of life is very extensive and even today the coronation of a Siamese prince can be performed only by a Brahman priest."

(5) **जावा**—जावा का प्राचीन नाम यव द्वीप था । चीनी अनुश्रुतियों के आधार पर भारतीयों का इस प्रदेश में प्रवेश 65 ई० पू० के आस पास हुआ था ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ में चीनी यात्री फाहियान ने जावा में बसे भारतीयों की विशाल जन-संख्या का विवरण दिया है। उसके अनुसार अधिकांश भारतीय शैव मत को मानने वाले थे। छठीं शताब्दी ई० पू० के शासक पूर्णवर्मा के चार अभिलेखों से भारतीय संस्कृति के जावा में प्रसार का ज्ञान होता है।

ऐलंग तथा उसके उत्तराधिकारियों के समय में जावा में भारतीय संस्कृति, कला एवं धर्म का व्यापक प्रसार हुआ था।

चीनी यात्री फाह्यान के विवरण से प्रतीत होता है कि यहाँ पर ब्राह्मण धर्म अपनी विभिन्न शाखाओं के साथ विद्यमान था। बौद्ध धर्म का प्रभुत्व उल्लेखनीय नहीं था। गुणवर्मा की कहानी से यहाँ बौद्ध धर्म के प्रचार पर प्रकाश पड़ता है। सम्राट पूर्णवर्मा ने अपने शासन में गोमती नहर खुदवाई तथा ब्राह्मणों को एक हजार गायें दक्षिणा समर्पित की थीं।

जावा में विष्णु की पूजा की जाती थी। शेषशायी विष्णु, कृष्ण, राम, मत्स्य वाराह और नरसिंह की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। शैव धर्म का प्रचार जावा में अत्यधिक था। श्री संजय नामक सम्राट ने एक पहाड़ी पर शिवलिंग की स्थापना की थी।

यहाँ के प्राचीन साहित्य में वहुत से छन्द संस्कृत छन्दों के आधार पर निर्मित किये गये थे। शैलेन्द्र साम्राज्य में 'अमरकोष' की भाँति 'अमरमाला' की रचना हुई थी। अनेक पुस्तकों की रचना भारतीय कथानकों के आधार पर हुई थी। पुराणों में ब्राह्मण पुराण अति महत्वपूर्ण है जिसकी रचना भारतीय पुराण के आधार पर हुई।

जावा में ब्राह्मण तथा बौद्ध धर्म के अनेक स्मारकों के ऊपर भारतीय कला का प्रभाव देखा जा सकता है। बरवुदा का स्मारक यहाँ की कला की सर्वश्रेष्ठ कृति है। भगवान बुद्ध तथा हिन्दू धर्म के अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ यहाँ की कला को प्रकट करती हैं। साँची व भरहुत की भाँति यहाँ भी भगवान बुद्ध के जीवन की विभिन्न घटनाओं को चित्रित किया गया है। रामायण तथा महाभारत की अनेक कहानियाँ कलाकारों ने भित्तियों पर चित्रित की हैं। डा० रमेशचन्द्र मजूमदार ने जावा की कला के विषय में निम्न विचार स्पष्ट किए हैं :—

"I may add that the general plan of the mouldings of the Javanese temples has its counterpart in Gupta style."

(6) **सुमात्रा** –सुमात्रा में श्री विजय राज्य का निर्माण ईसा की चौथी शताब्दी तक हो चुका था। सातवीं शताब्दी तक यह वंश उन्नत दशा को प्राप्त हो गया था। चीनी यात्री इत्सिङ्ग भारत आते समय सुमात्रा गया था। वहाँ पाली

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन उसने किया था। 684 ई० के लगभग श्री जयानाश नामक बौद्ध शासक वहाँ राज्य करता था। श्री विजय में बौद्ध शिक्षा बड़े सुन्दर ढंग से दी जाती थी। आठवीं शताब्दी में शैलेन्द्रों ने इस प्रदेश पर विजय स्थापित की थी। इस वंश के शासक बौद्ध धर्म को मानने वाले थे।

अन्य द्वीपों की भांति सुमात्रा में भी भारतीय धर्म तथा सभ्यता के चिह्न प्राप्त होते हैं। बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम, बोधिसत्व तथा अन्य देवताओं की मूर्तियाँ पदंग, जम्बी आदि स्थानों में मिली हैं। भगवान शिव, गणेश, नन्दी, ब्रह्मा आदि देवताओं की प्रारम्भिक मूर्तियों पर भारतीय प्रभाव दिखाई देता है। कुछ विद्वान यहाँ गान्धार कला और कुछ विद्वान मथुरा कला का प्रभाव बतलाते हैं। काम का मत है कि यह मूर्तियाँ अमरावती कला से प्रभावित हैं :—

"Krom traces its original not to Gandhara School but to some Indian School of Art in which the Greeco Buddhist Principles are found in modified Indianized form, i.e. that of Amaravati."

डा० आर० सी० मजूमदार बुद्ध, अवलोकितेश्वर तथा मैत्रेय की मूर्तियों को भारतीय कला से प्रभावित मानते हैं :—

"According to Dr. R. C. Mazumdar those images bear for closer affinity to Indian art the style of the bronze image of Buddha is clearly reminiscent of the Gupta period, and that of Maitreiya probably belongs to the same School."

(7) **बोर्नियो**—सुमात्रा, जावा, स्याम आदि की भाँति बोर्नियो में भी भारतीय उपनिवेश रहे हैं। चौथी शताब्दी में यहाँ हिन्दू राज्य की स्थापना हुई थी। यहाँ के चार शिलालेखों से भारतीय संस्कृति के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। शिलालेख पर संस्कृत भाषा में लिखा हुआ है कि अश्ववर्मन के पुत्र मूलवर्मन ने एक महायज्ञ किया था जिसमें 20,000 गायें दान की गई थीं। कोम्बेड की गुफा में शिव, नन्दी, गणेश, ब्रह्मा, स्कन्द नन्दीश्वर आदि की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं तथा बौद्ध धर्म के अवशेष भी मिले हैं। मूर्तियों पर अमरावती शैली की छाप दिखाई पड़ती है।

सम्राट मूलवर्मा के राज्य में ब्राह्मणों का प्रभुत्व था। उसने समस्त कार्य ब्राह्मण धर्म के अनुसार किये थे। यहाँ की शिव, विष्णु की मूर्तियाँ सीधे भारत से लाई गई थीं।

(8) **बाली**—बाली द्वीप जावा के पूर्व में स्थित है। बाली द्वीप में भारतीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संस्कृति का प्रभाव आज तक दिखाई देता है। बाली द्वीप के सम्राट की चीनी सम्राट से मित्रता थी। यहाँ के राजा चणिक को कुछ लोग क्षत्रिय मानते हैं। यहाँ के लोग भगवान विष्णु तथा कृष्ण द्वारा धारण करने वाले हथियार धारण करते थे। बाली द्वीप में आज भी हिन्दू सभ्यता के चिह्न शेष हैं।

बौद्ध धर्म का प्रसार यहाँ छठी शताब्दी में हुआ था। शैव मत का प्रभुत्व यहाँ विशेष रूप से स्थापित रहा। बाली निवासी सूर्य, चन्द्र, दुर्गा, लक्ष्मी आदि पौराणिक नामों से परिचित थे। विभिन्न अवसरों पर भारतीय परम्परा के अनुसार व्रत रखे जाते थे। पितरों की पूजा भी होती थी। मन्दिरों के पुजारी संस्कृत-ज्ञाता होते थे। मन्दिरों के स्तम्भों को 'रामायण' तथा 'महाभारत' की कथाओं से सजाया जाता था। यहाँ की कला में अनेक मूर्तियों पर भारतीय कला का प्रभाव दिखाई देता है। दसवीं शताब्दी से पूर्व की मूर्तियाँ भारतीय कला से पूर्णतया साम्य रखती हैं। नरसिंह अवतार की मूर्ति कला की दृष्टि से अद्भुत सौन्दर्य युक्त है।

(9) ब्रह्मा—ब्रह्मा जिसे कि आधुनिक काल में बर्मा के नाम से पुकारा जाता है प्राचीन काल में स्वर्णभूमि के नाम से पुकारा जाता था। अति प्राचीन काल में भारत और बर्मा के बीच क्या सम्बन्ध थे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। भारत तथा ब्रह्मा के बीच प्रत्यक्ष सम्पर्क तब हुआ जब अशोक ने बौद्ध भिक्षुओं को धर्म-प्रचार के लिए वहाँ भेजा था। ब्रह्मा में बौद्ध धर्म का प्रचार बड़ी तीव्रता से हुआ था। ईसा की छठी शताब्दी में श्यामल और विमल राजकुमारों ने पेगू नामक नगर बसाया था, भविष्य में जो हंसावर्ता नाम से विख्यात हुआ। गुप्तकाल में बुद्ध-घोष ने ब्रह्मा जाकर धर्म-प्रचार किया। विष्णु की अनेक मूर्तियों से प्रतीत होता है कि यहाँ ब्राह्मण धर्म का प्रचार हुआ था। बहुत काल तक भारत का ब्रह्मा से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण भारतीयों के विचारों तथा कला ने ब्रह्मा के जीवन को प्रभावित किया था। ब्रह्मा की भाषा, लिपि तथा धर्म पर भारतीय संस्कृति की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। आज भी बहुसंख्यक बौद्धभिक्षु ब्रह्मा में वर्तमान हैं। दक्षिण भारत के तामिल राज्यों के व्यापारिक सम्बन्ध इस देश से थे। ब्रह्मा में प्रसारित भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में डा० बैजनाथ पुरी का विचार है "ब्रह्मा के प्रसिद्ध हिन्दू राजाओं में रमन्त्र देश जो दक्षिण ब्रह्मा में था, उससे उत्तर में श्री क्षेत्र तथा अराकान के ताम्र पट्टन और वैशाली थे। इनमें बहुत से लेख मिले हैं जिनसे पता चलता है कि यहाँ ब्राह्मण, शैव तथा वैष्णव और बौद्ध धर्म तथा भारतीय संस्कृति ने अपना पूर्ण स्थान बना लिया था।" ब्रह्मा के पगोड़ों, में भगवान बुद्ध की मूर्तियों और कला पर भारतीय छाप दिखाई देती है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(10) लंका—भारत तथा लंका का सम्बन्ध अति प्राचीन काल से रहा है। लंका और भारत के सम्बन्धों का उल्लेख रामायण में प्राप्त होता है। अधिकांश हिन्दू लोगों के अनुसार लंका में भारतीय संस्कृति का प्रवेश भी श्री रामचन्द्र के आक्रमण के साथ हुआ था। ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर हमें ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व 500 वर्ष के लगभग कुमार विजय लंका गया था और उसने यक्षी कुवेणी से विवाह कर वहाँ भारतीय उपनिवेश की स्थापना की थी। अशोक के समय में भी उसका पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा लंका में बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु गये थे। आज लंका में बौद्ध धर्म का व्यापक प्रसार है बोधि वृक्ष की एक शाखा लंका में लगाई गई थी जो आज भी विद्यमान है। शुङ्गकालीन लंका के राजा दुत्थगामिनी ने अनेक चैत्यों तथा विहारों का निर्माण कराया था। दुत्थगामिनी के समय अनेक बौद्ध भिक्षु राजगृह, श्रावस्ती, वैशाली, पाटलिपुत्र से लंका गये थे।

लंका तथा भारत के बीच व्यापारिक सम्बन्ध भी थे। ताम्रलिप्त, सोपारा, भड़ौच आदि बन्दरगाहों से व्यापार होता था। जातक कथाओं में भारत तथा लंका के बीच व्यापार का उल्लेख मिलता है।

लंका की कला भारतीय कला से प्रभावित है। अनुराधपुर के स्तूप तथा विहारों का निर्माण भारतीय कला के आधार पर किया गया था। सिगरिया की चित्रकला में अजन्ता शैली के दर्शन होते हैं। भारतीय संस्कृति ने लंका पर विस्तृत प्रभाव डाला था।

लंका की सभ्यता और संस्कृति के विषय में हमने अध्याय (7) के प्रश्न (1, 2, 3) में विस्तार से प्रकाश डाला है।

उपसंहार—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि दक्षिण और दक्षिण भारत और पूर्वी एशिया भारतीय संस्कृति की प्रमुख क्रीड़ास्थली रही और विभिन्न देशों पर इस संस्कृति का अत्यन्त व्यापक प्रभाव पड़ा। यद्यपि आधुनिक युग में दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों की शासन व्यवस्था आदि को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कि वहाँ भारतीय प्रभाव हो ही नहीं परन्तु वास्तविकता यह है कि एक समय ऐसा अवश्य था जब इन विभिन्न देशों में भारतीय संस्कृति फलीभूत हो रही थी। दक्षिण पूर्व एशिया के विभिन्न देश भारतीय सभ्यता के ऋणी हैं?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | 15

चम्पा की भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति
(INDIAN CIVILIZATION AND CULTURE OF CHAMPA)

भूमिका—प्राचीन काल मे हिन्द-चीन के पूर्वी क्षेत्र में अनम-केतन हुआ, नघे-अनहा-टिन्ह प्रान्तों को छोड़ कर 18 और 10 अक्षांश के बीच प्राचीन चम्पा राज्य स्थित था। इसके अन्तर्गत वर्तमान उत्तरी एवं दक्षिणी वियतनाम का अधिकांश भाग सम्मिलित था। पूर्व में इसकी सीमा चीन सागर तक थी और पश्चिम में कुछ घाटियाँ उसे मीकाँग नदी की घाटी से अलग करती थी। चम्पा राज्य विशाल होते हुए भी भौगोलिक दृष्टि से एक नहीं था। अनेक नदियों ने यहाँ की भूमि को शस्य-श्यामला बना दिया था पर स्थलीय यातायात के अभाव में विभिन्न क्षेत्रों में सम्पर्क स्थापित नहीं हो सका था और समस्त राज्य कई भागों में बँट चुका था। प्राचीन चम्पा राज्य में दो जातियों के लोग रहते थे—(1) चम, और (2) जंगली। डा० मजूमदार के मत से नृकुल की दृष्टि से यह दोनों वर्ग अस्ट्रोनेशियन जाति से सम्बन्धित थे। चम जाति के लोग अपने को ऊँचा समझते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम अथवा द्वितीय शताब्दी ई० पूर्व के आस-पास चीन का यहाँ प्रभाव हो चुका था। सम्पूर्ण टोकिन क्षेत्र उत्तरी अनम का अधिकांश भाग चीनियों के अधिकार में आ चुका था। 214 ई० पू० में चीनियों का अधिकार कैब्र- बरेला तक हो गया। चम की स्थिति केव-बरेला के दक्खिन में थी और इस कारण चीनियों एवं चम जाति में संघर्ष होना स्वाभाविक था। चीनी वृत्तांतों से यह ज्ञात होता है कि 138 ई० में क्यू-लियन ने जिनमें चम जाति के लोग थे, चीनियों के विरुद्ध विद्रोह बोल दिया। 192 ई० में हन वंश की बिगड़ती हुई परिस्थितियों से लाभ उठाकर सियाग-लिन निवासी क्यूलियन ने चीनी अधिकारियों का बध करके वहाँ स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना कर ली। सियाँग-लिन की समानता त्र-कियो से की गई है और यही वास्तव मे चम्पा राज्य था।

चम्पा में हिन्दू शासन की स्थापना का श्रेय श्रीमार नामक व्यक्ति को है। उसके उत्तराधिकारियों में भद्र वर्मा, रुद्रवर्मन, शम्भुवर्मन, इन्द्रवर्मन आदि के नाम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उल्लेखनीय है। चम्पा में भारतीय संस्कृति का प्रवेश किस समय हुआ ? इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता है। परन्तु निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि तृतीय शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक चम्पा भारतीय संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा। इसके बाद भी वहां भारतीय संस्कृति काफी समय तक फलती-फूलती रही।

———

प्रश्न (1) चम्पा की शासन-व्यवस्था के विषय में आप क्या जानते हैं ?

चम्पा की शासन-व्यवस्था के विषय में चीनी स्रोतों से पर्याप्त जानकारी उपलब्ध होती है। चम्पा के सम्राट भारतीय थे, अतएव वे शासन-व्यवस्था के उस रूप को बदल नहीं पाये थे जो उस युग में प्रचलित थी। भारतीय परम्पराओं ने चम्पा की शासन-व्यवस्था पर गहरी छाप डाली थी। यहाँ हम चम्पा की शासन-व्यवस्था के विषय में प्रकाश डाल रहे हैं।

सम्राट और उसके कार्य—चम्पा में अधिकतर सम्राटों का पद उत्तराधिकार के आधार पर प्राप्त होता था, परन्तु सम्राटों के चुनाव के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। बोचन ने एक लेख में लिखा है, "आज्ञापित सरोस रामेवरेण" इससे स्पष्ट है कि समय-समय पर जनता द्वारा सम्राट का चुनाव किया जाता रहा होगा। अधिकांश राजाओं को हम उत्तराधिकार के आधार पर राज्य प्राप्त करते हुए देखते हैं। सम्राट होने के लिये राजकीय वंशज एवं गुणों से युक्त होना आवश्यक होना माना जाता था। अनेक लेखों में राजा के गुणों का उल्लेख हुआ है। एक लेख में यह लिखा गया है कि राजा को काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद से ऊपर रहना चाहिये, सुन्दरता में उसकी तुलना कामदेव या विष्णु से की गई है। शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिये साम, दाम, भेद और दण्ड सभी का प्रयोग करना पड़ता है, अतएव सम्राट को अनेक गुणों से युक्त होना चाहिये।

जहाँ तक सम्राट के अधिकारों का प्रश्न है, हम कह सकते है कि चम्पा में सम्राट को अपरिमित अधिकार प्राप्त होते थे। वही विधान का निर्माता, कार्यपालिका का अध्यक्ष और मुख्य न्यायाधीश होता था। उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके राज्य में कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता था।

प्रान्तीय शासन—चम्पा देश तीन मुख्य प्रान्तों में बँटा हुआ था। उत्तरी भाग अमरावती था जिसमें चम्पापुर तथा इन्द्रपुर नाम के दो प्रमुख नगर थे। केन्द्रीय प्रान्त विजय था और इसका मुख्य नगर विजय चम्पा की राजधानी था। दक्षिणी भाग पांडुरंग प्रान्त था, जिसमें कोठार सम्मिलित था। यह प्रान्त कभी-कभी स्वतन्त्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रान्त भी बन जाता था—इसके लिये एक शासक या एक सेनापति नियुक्त किया जाता था। हरिवर्मन के एक लेख से ज्ञात होता है कि हरिवर्मदेव ने अपने पुत्र विक्रांतवर्मन को पांडुरंग का शासक नियुक्त किया था।

प्रान्त के अन्तर्गत अनेक छोटे-छोटे प्रदेश थे और चीनी स्रोतों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि हरिवर्मन द्वितीय के शासन-काल में इनकी संख्या 38 थी। प्रत्येक प्रान्त में नगर और ग्राम थे, जिनमें 700 से अधिक परिवार नहीं रहते थे। प्रान्तों में अनेक पदाधिकारी रहते थे जिनकी संख्या 50 के निकट थी।

न्याय एवं दंड व्यवस्था—हम पहले ही इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि सम्राट ही मुख्य न्यायाधीश होता था। न्याय के सम्बन्ध में कुछ चीनी स्रोतों से यह ज्ञात होता है कि चम्पा में दण्ड-व्यवस्था अत्यन्त कठोर थी। बेंत लगाने की प्रथा भी विद्यमान थी। चोरी के अपराध में उँगलियाँ काट ली जाती थीं। हत्या करने पर अपराधी को या तो मृतक के सम्बन्धियों के सुपुर्द कर दिया जाता था या उसकी हत्या कर दी जाती थी। अपराधी को हाथियों से कुचलवाने और शेर या घड़ियाल के आगे डाले जाने के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं।

सैनिक प्रबन्ध—चम्पा का अनम और कम्बुज से निरन्तर संघर्ष चलता रहा, अतः चम्पा के सम्राटों ने सैनिक प्रबन्ध की ओर विशेष ध्यान दिया। सेना का नेतृत्व महासेनापति या सेनापति करता था। सैनिक सम्राट के प्रति वफादार रहते थे। सम्राट की ओर से सैनिकों को हर सम्भव सहायता की जाती थी और वे कर से मुक्त थे। हस्ति सेना, अश्व सेना और पैदल सेना, तीन प्रकार की सेनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। सेना में हाथियों का प्रमुख स्थान होता था। स्थल के अतिरिक्त जल सेना भी होती थी। जहाजी बेड़ों को भी तैयार किया जाता था। अनम और चम्पा के बीच कई बार नौसेना में युद्ध हुए थे। नगरों की रक्षा के लिये समुचित प्रबन्ध किया जाता था। ऊँचे-ऊँचे किले से बनवाए जाते थे और तीर फेंकने के लिये दीवाल में छेद भी कर दिया जाता था। डा० मजूमदार ने लिखा है कि चम्पा में चीनी सेना को रोकने के लिये एक अग्र चौकी थी, जिसके बचाने के लिये किले की 20' चौड़ी तथा 10' ऊँची दीवाल थी। यह दीवाल चारों ओर थी और इसमें 13 फाटक थे। ईंट की दीवाल पर 50'-80' ऊँचे लकड़ी के मचान बने हुए थे और किले के अन्दर चम्पा की रक्षा का समस्त सामान रहता था।

आय के साधन—राज्य की आय का मुख्य साधन भूमि-कर था। यह अधिकतर उपज का $\frac{1}{5}$ भाग होता था, परन्तु कभी इसको घटा कर $\frac{1}{10}$ भी कर दिया जाता था। आयात और निर्यात के माल पर भी कर लगता था। बन्दरगाहों पर आने वाले माल का $\frac{1}{6}$ भाग कर के रूप में वसूल किया जाता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध—चम्पा के विभिन्न लेखों से उसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर भी प्रकाश पड़ता है। चम्पा में दूसरे देशों के राजदूत आने का उल्लेख प्राप्त हुआ है। डा० मजूमदार ने अपनी पुस्तक 'चम्पा' में उल्लेख किया है, "देशान्तरागत महापतिदूतसंघ" इससे स्पष्ट है कि चम्पा से दूसरे देशों को राजदूत जाते थे और वहाँ से आते थे। न्हन-वियो के एक लेख से ज्ञात होता है कि चम्पा के सम्राट ने राजनीतिक कार्यों से राजद्वार नामक एक व्यक्ति को दो बार जावा भेजा था। वह जावा में अपने कार्यों में सफल हुआ था और उसे 'अकालाधिपति' की उपाधि प्राप्त हुई थी। हो-क्वे अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि आज्ञाजयेन्द्रपति नाम का एक व्यक्ति दूसरे देशों से आये हुए पत्रों को एक क्षण में ही पढ़ लेता था। चम्पा के सम्राट ने अनेक दूत-मंडल चीनी सम्राट के पास भेजे थे। अनम, कम्बुज और चम्पा के मध्य राजदूतों के आदान-प्रदान का उल्लेख यत्र-तत्र मिलता ही है। भारत में भी चम्पा के राजदूत आते रहते थे।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि चम्पा में अति प्राचीन काल में उच्च कोटि की शासन-व्यवस्था विद्यमान थी। यह शासन-व्यवस्था भारतीयों की ही देन थी।

प्रश्न (2) चम्पा के सामाजिक और आर्थिक जीवन का संक्षिप्त परिचय दीजिए ?

चम्पा के सामाजिक जीवन पर भी भारतीय जन-जीवन की छाप के दर्शन होते हैं। वास्तव में चम्पा में सभ्यता के चरण-चिह्न लाने का श्रेय भारतीयों को ही प्राप्त है और यही कारण है कि प्राचीन चम्पा का सामाजिक जीवन भारतीय सामाजिक जीवन से मिलता-जुलता है।

(1) वर्ण-व्यवस्था—चम्पा में हम वर्ण-व्यवस्था के दर्शन करते हैं। अनेक ऐसे लेख प्राप्त हुए हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों को मान्यता प्राप्त थी। ब्राह्मण और पुरोहितों का उच्च स्थान था। ब्राह्मणों के साथ ही क्षत्रियों को भी गौरव प्राप्त था। कहीं-कहीं तो ऐसे लेख भी प्राप्त हुए हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि ब्राह्मण पुरोहित एवं अन्य सम्राट के चरण छूते थे। एक लेख में लिखा है, "ब्राह्मण पुरोहिताग्रासन क्षत्रान्यनरपति वृन्दजुगचरणारविन्दः।" परन्तु यह गौरव केवल राजा को ही प्राप्त था अन्यथा ब्राह्मणों का स्थान क्षत्रियों के ऊपर था और ब्राह्मणों के राजा होने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। कहा जाता है कि रुद्रबर्मन का पिता ब्राह्मण ही था और उसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रान्त भी बन जाता था—इसके लिये एक शासक या एक सेनापति नियुक्त किया जाता था। हरिवर्मन के एक लेख से ज्ञात होता है कि हरिवर्मदेव ने अपने पुत्र विक्रांतवर्मन को पांडुरंग का शासक नियुक्त किया था।

प्रान्त के अन्तर्गत अनेक छोटे-छोटे प्रदेश थे और चीनी स्रोतों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि हरिवर्मन द्वितीय के शासन-काल में इनकी संख्या 38 थी। प्रत्येक प्रान्त में नगर और ग्राम थे, जिनमें 700 से अधिक परिवार नहीं रहते थे। प्रान्तों में अनेक पदाधिकारी रहते थे जिनकी संख्या 50 के निकट थी।

न्याय एवं दंड व्यवस्था—हम पहले ही इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि सम्राट ही मुख्य न्यायाधीश होता था। न्याय के सम्बन्ध में कुछ चीनी स्रोतों से यह ज्ञात होता है कि चम्पा में दण्ड-व्यवस्था अत्यन्त कठोर थी। बेंत लगाने की प्रथा भी विद्यमान थी। चोरी के अपराध में उँगलियाँ काट ली जाती थीं। हत्या करने पर अपराधी को या तो मृतक के सम्बन्धियों के सुपुर्द कर दिया जाता था या उसकी हत्या कर दी जाती थी। अपराधी को हाथियों से कुचलवाने और शेर या घड़ियाल के आगे डाले जाने के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं।

सैनिक प्रबन्ध—चम्पा का अनम और कम्बुज से निरन्तर संघर्ष चलता रहा, अतः चम्पा के सम्राटों ने सैनिक प्रबन्ध की ओर विशेष ध्यान दिया। सेना का नेतृत्व महासेनापति या सेनापति करता था। सैनिक सम्राट के प्रति वफादार रहते थे। सम्राट की ओर से सैनिकों को हर सम्भव सहायता की जाती थी और वे कर से मुक्त थे। हस्ति सेना, अश्व सेना और पैदल सेना, तीन प्रकार की सेनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। सेना में हाथियों का प्रमुख स्थान होता था। स्थल के अतिरिक्त जल सेना भी होती थी। जहाजी बेड़ों को भी तैयार किया जाता था। अनम और चम्पा के बीच कई बार नौसेना में युद्ध हुए थे। नगरों की रक्षा के लिये समुचित प्रबन्ध किया जाता था। ऊँचे-ऊँचे किले से बनवाए जाते थे और तीर फेंकने के लिये दीवाल में छेद भी कर दिया जाता था। डा० मजूमदार ने लिखा है कि चम्पा में चीनी सेना को रोकने के लिये एक अग्र चौकी थी, जिसके बचाने के लिये किले की 20′ चौड़ी तथा 10′ ऊँची दीवाल थी। यह दीवाल चारों ओर थी और इसमें 13 फाटक थे। ईंट की दीवाल पर 50′-80′ ऊँचे लकड़ी के मचान बने हुए थे और किले के अन्दर चम्पा की रक्षा का समस्त सामान रहता था।

आय के साधन—राज्य की आय का मुख्य साधन भूमि-कर था। यह अधिकतर उपज का $\frac{1}{5}$ भाग होता था, परन्तु कभी इसको घटा कर $\frac{1}{10}$ भी कर दिया जाता था। आयात और निर्यात के माल पर भी कर लगता था। बन्दरगाहों पर आने वाले माल का $\frac{1}{6}$ भाग कर के रूप में वसूल किया जाता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध—चम्पा के विभिन्न लेखों से उसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर भी प्रकाश पड़ता है। चम्पा में दूसरे देशों के राजदूत आने का उल्लेख प्राप्त हुआ है। डा० मजूमदार ने अपनी पुस्तक 'चम्पा' में उल्लेख किया है, "देशान्तरागत महापतिदूतसंघ" इससे स्पष्ट है कि चम्पा से दूसरे देशों को राजदूत जाते थे और वहाँ से आते थे। न्हन-वियो के एक लेख से ज्ञात होता है कि चम्पा के सम्राट ने राजनीतिक कार्यों से राजद्वार नामक एक व्यक्ति को दो बार जावा भेजा था। वह जावा में अपने कार्यों में सफल हुआ था और उसे 'अकालाधिपति' की उपाधि प्राप्त हुई थी। हो-क्वे अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि आज्ञाजयेन्द्रपति नाम का एक व्यक्ति दूसरे देशों से आये हुए पत्रों को एक क्षण में ही पढ़ लेता था। चम्पा के सम्राट ने अनेक दूत-मंडल चीनी सम्राट के पास भेजे थे। अनम, कम्बुज और चम्पा के मध्य राजदूतों के आदान-प्रदान का उल्लेख यत्र-तत्र मिलता ही है। भारत में भी चम्पा के राजदूत आते रहते थे।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि चम्पा में अति प्राचीन काल में उच्च कोटि की शासन-व्यवस्था विद्यमान थी। यह शासन-व्यवस्था भारतीयों की ही देन थी।

प्रश्न (2) चम्पा के सामाजिक और आर्थिक जीवन का संक्षिप्त परिचय दीजिए ?

चम्पा के सामाजिक जीवन पर भी भारतीय जन-जीवन की छाप के दर्शन होते हैं। वास्तव में चम्पा में सभ्यता के चरण-चिह्न लाने का श्रेय भारतीयों को ही प्राप्त है और यही कारण है कि प्राचीन चम्पा का सामाजिक जीवन भारतीय सामाजिक जीवन से मिलता-जुलता है।

(1) वर्ण-व्यवस्था—चम्पा में हम वर्ण-व्यवस्था के दर्शन करते हैं। अनेक ऐसे लेख प्राप्त हुए हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों को मान्यता प्राप्त थी। ब्राह्मण और पुरोहितों का उच्च स्थान था। ब्राह्मणों के साथ ही क्षत्रियों को भी गौरव प्राप्त था। कहीं-कहीं तो ऐसे लेख भी प्राप्त हुए हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि ब्राह्मण पुरोहित एवं अन्य सम्राट के चरण छूते थे। एक लेख में लिखा है, "ब्राह्मण पुरोहिताग्रासन क्षत्रान्यनरपति वृन्दजुगचरणारविन्दः।" परन्तु यह गौरव केवल राजा को ही प्राप्त था अन्यथा ब्राह्मणों का स्थान क्षत्रियों के ऊपर था और ब्राह्मणों के राजा होने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। कहा जाता है कि रुद्रवर्मन का पिता ब्राह्मण ही था और उसका

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवाह क्षत्रिय कन्या से हुआ था इसलिए रुद्रवर्मन को ब्राह्मण-क्षत्रिय कुल-तिलक कहा जाता है। वैश्यों को भी समाज में मान्यता प्रदान की गई थी परन्तु उनका स्थान क्षत्रियों से बहुत नीचा था। ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच कुछ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने के संकेत भी प्राप्त होते हैं परन्तु ब्राह्मण, वैश्यों और क्षत्रियों और वैश्यों के मध्य वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने का कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। कहा जाता है कि जयवर्मन सप्तम की दोनों रानियाँ ब्राह्मणी थी। शूद्रों का दर्जा सबसे नीचा था परन्तु उन्हे हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता था।

(2) **सामाजिक स्तर**—चम्पा के निवासियों का सामाजिक स्तर काफी ऊँचा था। ब्राह्मण एवं क्षत्रिय समाज में उच्च स्थान प्राप्त करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि राजा और अन्य सामन्त आदि सुन्दर आभूषणों आदि को धारण करते थे। अनेक प्रकार के आभूषणों जैसे कर्णाभूषण आदि का उल्लेख अभिलेखों में हुआ है।

शिष्ट समाज के साथ ही चम्पा की सामाजिक व्यवस्था में हम दास-दासियों के भी दर्शन करते हैं। बहुत से लेखों में, मन्दिरों आदि में दास-दासियों के अर्पण करने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। जय परमेश्वरवर्मन प्रथम के एक लेख में सम्राट द्वारा देवी के एक मन्दिर में चम्पा, खमेर, चीनी, स्वामी दासों को दान देने का उल्लेख प्राप्त होता है। पो-क्लोड के लेख में दासियों का उल्लेख प्राप्त होता है। मलय, जावा और अनम दासियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि चम्पा का समाज स्पष्ट रूप से 2 भागों में विभाजित था। एक ओर अधिक धन-धान्य युक्त व्यक्ति थे और दूसरी ओर अधिक निर्धन दास। दासों के साथ कैसा व्यवहार किया जाता था और निर्धनों का समाज में क्या स्थान था, इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती परन्तु यह अवश्य स्वीकार किया जायगा कि समाज में वर्ग विभाजन होने पर भी दासों को अत्यधिक हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता था और दास-प्रथा का वह भीषण रूप चम्पा में देखने को नहीं मिलता था जो रोम आदि पाश्चात्य देशों में देखने को मिला है।

(3) **परिवार**—चम्पा के लेखों से तत्कालीन पारिवारिक जीवन का उल्लेख प्राप्त होता है। चम्पा के परिवारों में पितृ-सत्तात्मक व्यवस्था के दर्शन होते हैं और पिता का स्थान बहुत ऊँचा माना गया है। पृथ्वीवर्मन के बाद उसके दो भांजे सत्यवर्मन और इन्द्रवर्मन सिंहासन पर बैठे थे। इससे स्पष्ट है कि परिवार में माता और उसके कुल को उच्च स्थान प्राप्त था।

(4) **विवाह**—हम पहले ही इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि चम्पा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के समाज में उच्च-कुलों में अन्तरवर्णीय विवाह हो जाते थे। ब्राह्मणों और क्षत्रियों के वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने के अनेक उल्लेख, प्राप्त होते हैं। चम्पा में बहु-विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी। विवाह संस्कार के अन्तर्गत वर-वधू सदैव के लिए एक सूत्र में बँध जाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्चकुल के लोग अनेक विवाह करते थे परन्तु साधारण जनता में एक विवाह प्रथा ही थी। विवाहित रानियों के अतिरिक्त अन्तःपुर विलासिनी स्त्रियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि धनी व्यक्ति रखैलें भी रखते थे।

(5) **स्त्रियों का स्थान**—चम्पा में स्त्रियों को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त न था। पुरुषों का स्त्रियों के ऊपर पूर्णतया अधिकार था, यद्यपि स्त्रियों के आदर्श काफी ऊँचे थे। चम्पा में बहु-विवाह की प्रथा विद्यमान थी। विधवाओं के विषय में कोई भी जानकारी प्राप्त नहीं होती। स्त्रियाँ कभी-कभी अपने पतियों का चुनाव स्वयं कर लेती थीं परन्तु अधिकतर विवाह मध्यस्थों के द्वारा ही करवाये जाते थे। चम्पा में स्वयंवर प्रथा थी या नहीं, इस सम्बन्ध में कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं होती। स्त्री-पुरुष की सामग्री समझी जाती थी और ऐसे उल्लेख भी प्राप्त होते हैं कि एक व्यक्ति अपनी पत्नियों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों को भी रखता था। सम्राट तो अधिकतर बहु-विवाह करते थे जिससे कि राजनीतिक मित्रता स्थापित हो सके।

(5) **वेष-भूषा एवं अलकार**—चम्पा के निवासियों की वेश भूषा एवं अलंकारों के बारे में चीनी वृत्तांतों से जानकारी प्राप्त होती है। हरिवर्मन के बारे में एक चीनी दूत ने लिखा है कि सम्राट सुनहरे कढ़े हुए कौशेय वस्त्र पहनते थे। उसके ऊपर एक लम्बा कुरता पहना जाता था यह7 सोने की लड़ियों में बँधा होता था। राजा का मुकुट सुनहला होता था और उसमें 7 प्रकार के रत्न जड़े होते थे। ताम्बे की चप्पल पहनी जाती थी। विक्रान्त ब्राह्मण के बारे में पो-नगर के एक लेख में जानकारी प्राप्त होती है कि उसका शरीर, मुकुट, कटि सूत्र, हार अगेद से अलंकृत होता था उसमें मणि एवं अन्य रतन आदि जड़े होते थे। शरीर को सुगन्धित रखने के हेतु सुगन्धित चन्दन आदि का भी प्रयोग होता था। एक लेख में लिखा है कि जयसिंह-वर्मन की भाभी ग्रन्थ बनाने, पुरुषों को सजाने और कपड़े बुनने में अत्यधिक पटु थी। चम्पा के नरेश जूड़ों में भी मणियाँ जुड़वाते थे। स्त्रियों की वेश-भूषा में लम्बे लँहगे या छोटे पेटीकोट के प्रयोग का उल्लेख हुआ है। यति और दासों को लंगोटी पहने दिखाया गया है। चीनी स्रोतों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि चम्पा के लोग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रंग-बिरंगे वस्त्र भी पहनते थे तथा अपने बालों को तरह-तरह से संवारते थे एवं ऊँचे जूड़ों को अलंकृत करते थे ।

(6) **मनोरंजन के साधन**—चम्पा में गायन-वादन का अत्यधिक प्रचलन था वहाँ की शिल्पकला में अनेक नृत्य-चित्र प्राप्त हुए हैं । माइसोन के एक लेख में श्री शासन मदेश्वर के मन्दिर के नर्तकों और गामकों का उल्लेख हुआ है । हरिवर्मन की सभा में अनेक नर्तक एवं गायक थे । पो-नगर के एक लेख में इस बात का उल्लेख है कि राजकुमारी और उनके पति ने पो-नगर के मन्दिर को नर्तकियां भेंट की थीं ।

चम्पा के बाजों में मृदङ्ग और वीणा प्रमुख थे । पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही नृत्य में भाग लेते थे । मनोरंजन के अन्य साधनों में पर्व प्रमुख थे । भारत की भाँति ही चम्पा में अनेक त्योहार मनाये जाते थे । असाढ़ के महीने में नावों की दौड़ होती थी । नये वर्ष के दिन नगर में एक हाथी भी छोड़ा जाता था ।

(7) **भोजन एवं बर्तन आदि**—चम्पा के लेखों में भोजन में धान और तंदुल का उल्लेख होता है । गेहूँ का उल्लेख किसी भी लेख में नहीं हुआ है । इससे यह ज्ञात होता है कि चम्पा के निवासी गेहूँ का प्रयोग नहीं करते थे और चावल ही चम्पा के निवासियों का मुख्य आहार था । भोजन को पकाने और रखने के लिए भाँति-भाँति के बर्तन प्रयोग में लाये जाते थे । चाँदी, ताम्बे और काँसे के बर्तनों का उल्लेख हुआ है । सोने के धूपदान और सोने के ताम्बूल रखने के पात्र का भी उल्लेख प्राप्त होता है । धूप से बचने के लिए छातों का भी प्रयोग होता था ।

(8) **दाह संस्कार**—चम्पा में शव को जलाने की प्रथा विद्यमान थी । मुर्दों को गाड़ने या जल-प्रवाह करने का उल्लेख कहीं भी प्राप्त नहीं होता ।

आर्थिक जीवन

(1) **कृषि**—अनेक लेखों और चीनी स्रोतों के द्वारा चम्पा के आर्थिक जीवन के बारे में भी जानकारी प्राप्त होती है । कृषि वहाँ के लोगों का मुख्य उद्योग था और चावल की खेती पर्याप्त मात्रा में होती थी । खेती की वृद्धि के लिए नहरों और बाँधों का भी समुचित प्रबन्ध किया गया था । एक लेख से यह जानकारी प्राप्त होती है कि श्रीकान्तवर्मन ने श्री सत्यमुखलिंग देवता के हेतु नहर के ऊपर बाँध बनवाये थे । एक दूसरे लेख में यह लिखा है कि जय परमेश्वर द्वितीय ने देवताओं को प्रसन्न करने के लिए नहरों को पुनः ठीक करवाया । अनाज को भरने के लिए ग्रामों में कोषागार बनाये गये थे । अनेक राजाओं के द्वारा देवताओं को कोष्ठागारों के अर्पित करने का उल्लेख प्राप्त होता है । ऐसा प्रतीत होता है कि खेती की उन्नति के लिए कार्य करना देवताओं का कार्य समझा जाता था ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(2) व्यापार एवं उद्योग—कृषि के अतिरिक्त चम्पा में व्यापार एवं उद्योगों की उन्नति की ओर हर प्रकार का ध्यान दिया गया था। चीनी स्रोतों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि वहाँ रेशम के कीड़े पाले जाते थे और कपास की खेती पर बल दिया जाता था। चम्पा के निवासी कपड़ों पर बड़ी सुन्दरता से सोने, चाँदी, मोती और मणि जड़ने का कार्य सम्पन्न करते थे। वे भाँति-भाँति के सुगन्धित तेल भी बनाते थे। चटाई और तार के तिनकों की टोकरियाँ भी बनाई जाती थी। सोने के बरतन भी बनते थे। हाथी-दाँत का काम भी होता था। चम्पा के निवासी बड़े अच्छे नाविक थे और वे जहाजों का निर्माण भी करते थे। इन जहाजों के आकार के विषय में भी जानकारी कुछ लेखों से प्राप्त होती है।

प्रश्न (3) चम्पा के धार्मिक जीवन का संक्षिप्त परिचय दीजिए ?

चम्पा में हिन्दू और बौद्ध दोनों ही धर्मों का प्रसार हुआ। वहाँ का धार्मिक जीवन वास्तव में भारत और कम्बुज के धार्मिक जीवन से बहुत कुछ मिलता-जुलता था। राजाओं की ओर से भी धर्म को आश्रय दिया जाता था। चम्पा के राजाओं ने मन्दिरों की स्थापना अपने नाम पर की थी और देवताओं की मूर्तियों को उनके नाम के आगे ईश्वर लगाकर सम्बोधित किया था।

हिन्दू-धर्म

हिन्दू-धर्म की शैव और वैष्णव दोनों ही विचारधाराओं का प्रचलन चम्पा में था। यहाँ हम उनका उल्लेख संक्षेप में कर रहे हैं :—

(1) शैव मत—शैव-धर्म बहुत समय तक चम्पा में राजकीय धर्म रहा। भद्रवर्मन, शम्भुवर्मन, इन्द्रवर्मन, हरिवर्मन, जयहरिवर्मन, जयइन्द्रवर्मन आदि शैव धर्म के मानने वाले थे। इन लोगों ने अपने नाम के आगे ईश्वर भी लगाया था यथा भद्रेश्वर, शम्भु-भद्रेश्वर आदि। चम्पा के 90 प्रतिशत लेखों में शिव की उपासना की गई है। इन लेखों में शिव को त्रिमूर्तियों में श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। उन्हें देवताओं का ईश माना गया है। एक लेख में शिव को चम्पा का ईश कहा गया है। शिव की आराधना संसार के निर्माता, संहारक दोनों ही रूप में की जाती थी। अनेक लेखों में यह लिखा है कि बड़े-बड़े मुनि यती आदि शिव का ही ध्यान करते हैं। शिव के स्वरूप का भी लेखों में वर्णन हुआ है। उन्हें जटाधारी, त्रिनेत्र वाले, शिर पर भस्म लगाये हुए चित्रित किया है। उन्होंने योग, जप और हुँकार से अपने को पवित्र कर लिया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिव की उपासना मनुष्य एवं लिंग रूप में की जाती थी। मनुष्य के रूप में वे जटाधारी हैं, शीश पर मुकुट है और कन्धे पर बाल लटक रहे हैं। उनके सिर पर सर्प आभूषणों का स्थान लिए हुए हैं। माइसोन के लेख में मिली हुई शिव की मूर्तियाँ इसी प्रकार की हैं। कहीं-कहीं उन्हें नन्दी के साथ तांडव नृत्य करते हुए भी दिखलाया गया है। इस के साथ ही अनेक शिव-लिंग भी प्राप्त हुए हैं। भद्रवर्मन द्वारा स्थापित माइसोन के शिव लिंग ने चम्पा के इतिहास में राजकीय स्थान प्राप्त कर लिया था। माईसोन के मन्दिरों में स्थापित शिव-लिंग के साथ ही अनेक शैव देवी देवताओं का उल्लेख भी प्राप्त होता है। उमा, गौरी भवानी महादेवी महा भगवती, मातृलिंगेश्वरी तथा भूमीश्वरी आदि नामों से भी शिव शक्ति की आराधना की जाती थी। 918 ई० में इन्द्रवर्मन ने एक देवी की सोने की मूर्ति स्थापित की थी। परमेश्वरवर्मन ने 1050 ई० में, परमबोधिसत्व/ ने 1084 ई० में और हरिवर्मन ने 1050 ई० में भगवती कोठारेश्वरी के लिए दान दिया था। पो-नगर की देवी के लिए भूमि और दास-दासियों का दान परमेश्वरवर्मन ने 1283 ई० में दिया था। उमा और भगवती की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। शक्ति दुर्गा और उमा के साथ ही गणेश का उल्लेख भी लेखों में हुआ है जिन्हें विनायक के नाम से पुकारा जाता था। पो-नगर में उनका एक और माइसोन में दो मन्दिर प्राप्त हुए हैं उमा और व्यक्तियों के साथ ही अन्य मन्दिरों में भी उनकी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। गणेश को अधिकतर बैठा हुआ चित्रित किया गया है लेकिन माइसोन में गणेश जी की एक खड़ी हुई मूर्ति प्राप्त हुई है। उनका शरीर स्थूल है, वे गज-मुख हैं, बायें हाथ में एक पदार्थ और दाहिने हाथ में कोई अन्य पदार्थ है। वे जनेऊ भी धारण किए हुए हैं चम्पा में कार्तिकेय उपासना का भी उल्लेख प्राप्त होता है। शिव के मन्दिरों में गणेश और उमा की मूर्तियों के साथ इनकी मूर्ति भी स्थापित हुई है। शिव और उमा के वाहन नन्दी का भी उल्लेख मिलता है और उसकी भी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

(2) **वैष्णव मत**—चम्पा में शैव मत की प्रधानता थी परन्तु वैष्णव मत भी प्रचलित था। कुछ लेखों से विष्णु की उपासना का उल्लेख प्राप्त हुआ है। विष्णु को अनेक नामों से सम्बोधित किया जाता था यथा पुरुषोत्तम, नारायण, हरि, गोविन्द, माधव, त्रिभुवनाक्रान्ति आदि। इन्द्रवर्मन के ग्ले-लगोव के एक लेख में विष्णु का उल्लेख नारायण के रूप में क्षीर-सागर में शेष नाग की शय्या पर विश्राम करते हुए हुआ है। इसी लेख में गोवर्धन पर्वत को उठाने वाले कृष्ण रूप में भी विष्णु का उल्लेख हुआ है। चम्पा के कुछ शासकों ने अपने को विष्णु का अवतार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी माना था। बटाऊ-टवल के एक लेख में हरिवर्मन को विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया गया है। चम्पा में विष्णु की 4 बांह वाली मूर्तियों भी प्राप्त हुई हैं उनके हाथों में गदा, चक्र और शंख और पद्म भी दिखलाया गया है। वे जनेऊ भी धारण किए हुए हैं। विष्णु को गरुड़ पर भी आसीन दिखलाया गया है।

लक्ष्मी का उल्लेख चम्पा के लेखों में पद्मा एवं श्री के रूप में हुआ है। चम्पा में लक्ष्मी अपनी चञ्चल प्रकृति के लिए प्रसिद्ध थी। डोंग-डुओंग मन्दिर के कछौटे की डांटों पर लक्ष्मी की अनेक प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। वे अनेक हाथियों के मध्य बैठी हुई हैं तथा हाथी अपने सूँड़ों से उनके ऊपर पानी डाल रहे हैं। कहीं उनके दो हाथ चित्रित किए गए हैं और कहीं चार। एक लेख में लक्ष्मी का जन्म-स्थान कैलाश बतलाया गया है।

विष्णु के वाहन गरुड़ का भी उल्लेख चम्पा के लेखों में हुआ है तथा कुछ मूर्तियों में गरुड़ पर बैठे हुए विष्णु को चित्रित किया गया है। कहीं-कहीं उन्हें स्वतंत्र रूप में भी चित्रित किया गया है। गरुड़ को पक्षी और सिंह दो रूपों में दिखलाया गया है।

(3) ब्रह्मा की त्रिमूर्ति—चम्पा में शैव मत का अत्यधिक प्रचलन था। साथ ही वैष्णव मत को भी स्थान दिया गया था। कुछ ऐसी मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं जिनसे यह पता चलता है कि वहाँ ब्रह्मा की पूजा की जाती थी। चार मुख वाले ब्राह्मण देवता का अनेक लेखों में उल्लेख मिलता है इन्हें देवता स्वमुत्पन्न बतलाया गया है। एक मूर्ति में वह विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल पर बैठे हैं। उनके एक हाथ में एक चक्र और दूसरे हाथ में बड़े मुँह वाला बोतल है। चो-डिन्ह के एक लेख में यह लिखा है कि जयपरमेश्वर वर्मन ने 1233 ई० में अपने सेनापति को एक स्वमुत्पन्न देवता की मूर्ति की स्थापना का आदेश दिया था। माइसोन के मन्दिर में ब्रह्मा की दो 2 मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि चम्पा के धार्मिक जीवन में स्वतन्त्र रूप से ब्रह्मा को वह स्थान नहीं था जो शिव और विष्णु का था परन्तु त्रिमूर्ति के रूप में उनको वह गौरव प्राप्त था। इस प्रकार की अनेक मूर्तियों का उल्लेख चम्पा के लेखों में हुआ है।

(4) अन्य ब्राह्मण देवता—त्रिमूर्ति-ब्रह्मा, महेश के साथ ही अन्य ब्राह्मण देवताओं की आराधना भी चम्पा में की जाती थी। इन्द्रवर्मन के डोंग-डुओंग के लेख में ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, वासुकि, चन्द्र, वरुण अग्नि और अभिपद(बुद्ध) की उपासना का उल्लेख है। माइसोन के भद्रवर्मन के लेख में उमा, महेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु की स्तुति के बाद आकाश, पृथ्वी, वायु, अप (जल) और ज्योति (अग्नि) को भी नमस्कार किया गया है। इन्द्र को चम्पा में अत्यन्त गौरव प्रदान किया गया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इन्द्र की दो मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं और उनके साथ उनका ऐरावत हाथी भी है। चम्पा के लेखों में यम का उल्लेख धर्मराज के रूप में किया गया है चन्द्रमा और सूर्य को भी देवता माना गया है और उनके साथ राम का भी उल्लेख है। कुबेर को धन का देवता माना जाता था। कहा जाता है कि 7वीं शताब्दी में प्रकाशधर्म ने कुबेर का एक मन्दिर बनवाया था। वासुकि और सरस्वती का भी उल्लेख प्राप्त होता है। देवताओं के साथ ही यक्षों, गन्धर्वों और अप्सरों आदि का भी उल्लेख मिलता है। टुरेन के संग्रहालय में नृत्य करती हुई एक अप्सरा की अत्यन्त सुन्दर मूर्ति है। चम्पा के निवासी दैत्यों एवं असुरों के भी बारे में जानकारी रखते थे।

बौद्ध-धर्म

चम्पा के धार्मिक जीवन में बौद्ध धर्म का अपना स्थान था और जनता पर बौद्ध धर्म का काफी प्रभाव पड़ा था। वहाँ बुद्ध की मूर्तियों, स्तूपों एवं विहारों की स्थापना समय समय पर हुई। शक सम्वत् 751 में समन्त नामक एक व्यक्ति ने बुद्धि की प्रतिमाएँ स्थापित करवाईं। 875 ई० में जयइन्द्र वर्मन ने लक्ष्मीन्द्र लोकेश्वर की मूर्ति स्थापित करवाई और भिक्षु संघ के हेतु एक विहार का निर्माण भी करवाया। मृत्यु के पश्चात् इन्द्र वर्मन को परम बुद्ध लोक के नाम से सम्बोधित किया।

अवलोकितेश्वर, अभिताप, पदम धातु, वज्रधातु और चक्रधातु आदि नाम इस बात के साक्षी हैं कि चम्पा में महायान मत का ही प्रचलन हुआ। बौद्धों का धार्मिक केन्द्र डोग-डुओंग था जहाँ बुद्ध की अनेक प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इसके साथ ही अनेक स्थानों पर भी बुद्ध की अनेक मूर्तियों एवं खिलौने मिले हैं जिन पर दागव (स्तूप), अवलोकितेश्वर एवं तारा की प्रतिमाएं अंकित की गई हैं। भूमि-स्पर्श एवं धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्राओं में बुद्ध की छोटी मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई है। बौद्ध स्तूपों के अवशेष चम्पा में प्राप्त नहीं हुए हैं। चम्पा में बौद्ध धर्म के प्रसार में इन्द्रवर्मन सप्तम का बहुत बड़ा हाथ था।

धार्मिक सहिष्णुता

चम्पा के धार्मिक जीवन में हम सर्वत्र धार्मिक उदारता एवं सहिष्णुता के दर्शन करते हैं। वहाँ के सम्राटों ने सभी धर्मों की उन्नति के लिए खुले हाथों दान दिया। प्रकाश धर्म ने शिव लिंग की स्थापना की और साथ ही विष्णु के मन्दिर का निर्माण भी करवाया। इन्द्र वर्मन शिव और विष्णु दोनों का ही उपासक था। कालान्तर में जब बौद्ध-धर्म का प्रसार हुआ तब भी धार्मिक सहिष्णुता ज्यों की त्यों बनी रही। बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म के अनुयायियों में संघर्ष होने का उल्लेख चम्पा के इतिहास में प्राप्त नहीं होता।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अन्य धार्मिक मान्यताएँ

विभिन्न देवी-देवताओं की आराधना के साथ ही चम्पा में हिन्दू और बौद्ध धर्म की सी अन्य मान्यताएँ भी प्रचलित थीं। कर्म के फल को लेकर स्वर्ग और नरक की भावना ने चम्पा के निवासियों को प्रभावित कर दिया था। कलियुग का उल्लेख भी प्राप्त होता है और कहा गया है कि कलियुग के प्रभाव से बचने के लिए सदाचार अत्यन्त आवश्यक है। बौद्धों के पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रभाव भी चम्पा के निवासियों पर पड़ा था और वहाँ के लोग पुनर्जन्म में भी विश्वास करते थे। इस के साथ ही अन्य हिन्दू एवं बौद्ध मान्यताएँ चम्पा में प्रचलित थीं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि चम्पा का धार्मिक जीवन भारत के प्राचीन धार्मिक जीवन से बहुत हद तक मिलता-जुलता था।

प्रश्न (4) चम्पा की शिक्षा, साहित्य एवं कला की उन्नति के विषय में आप क्या जानते हैं ?

चम्पा में भारतीयों के प्रभाव के फलस्वरूप शिक्षा, साहित्य और कला की अपार उन्नति हुई। यहाँ इस उन्नति का चर्चा हम संक्षेप में कर रहे हैं :—

शिक्षा और साहित्य

अनेक लेखों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि चम्पा के शासकों एवं उच्च वर्ग के लोगों का शिक्षा-स्तर काफी ऊँचा था। वहाँ संस्कृत भाषा एवं साहित्य का प्रचलन था। माइसोन लेख में भद्र वर्मन के लिए लिखा है कि वह चारों विद्याओं का ज्ञाता था। इन्द्र वर्मन तृतीय को मीमांसा, बौद्ध दर्शनशास्त्र तर्क शास्त्र, पाणिनि के व्याकरण आदि का ज्ञाता कहा गया है। इसके विषय में लिखा है, "मीमांसा षट्तर्क जिनेन्द्रसूर्म्मिसकाशिका व्याकरणादिकोषाः व आख्यानशैवस्तवकल्पमीनः,पटिष्ठ एतेष्विति सत्कवीनाम्।" हरिवर्मन के माइसोन लेख से पता चलता है कि वृहस्पति की तरह वह सभी शास्त्रों का ज्ञाता था। अन्य सम्राट भी विभिन शास्त्रों के ज्ञाता थे।

विभिन्न लेखों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि भारतीय साहित्य का चम्पा में काफी प्रचार हो चुका था। वेद, षड्दर्शन, रामायण, महाभारत, बौद्ध दर्शन, साहित्य, व्याकरण, ज्योतिष, मनु एवं नारद के धर्म-शास्त्र, पुराण एवं संस्कृत काव्य ग्रन्थों का अध्ययन काफी प्रचलित था। युधिष्ठिर, दुर्योधन, युयुत्सु, राम, कृष्ण, धनञ्जय, वायु-पुत्र आदि का उल्लेख चम्पा के लेखों में हुआ है। चम्पा के निवासियों को शैव एवं वैष्णव साहित्य की भी पर्याप्त जानकारी थी। इन्द्रवर्मन तृतीय का मंत्री

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धार्मिक साहित्य का ज्ञाता था। चम्पा के कवि संस्कृत काव्य-शास्त्र के ज्ञाता थे। उन्होंने श्लेष एवं अनुप्रास अलंकारों का प्रयोग बड़ी सजीवता के साथ किया। भारतीय पुराणों के आधार पर चम्पा में 'पुराणार्थ' अथवा 'पुराणशास्त्र' नामक व्याख्या देखने को मिलती है।

कला

चम्पा की कला पर भी प्रभाव है। कला की प्रेरणा चम्पा के निवासियों को धर्म से मिली और कला का प्रसार राजकीय देख-रेख में हुआ। कला का अध्ययन हम दो रूपों में कर सकते हैं—स्थापत्य कला, और मूर्तिकला। इन दोनों कलाओं का सजीव रूप हमें चम्पा के मन्दिरों में देखने को मिलता है।

(अ) स्थापत्य कला—चम्पा के मन्दिर न तो जावा के बोरोबुदर या कम्बुज के अंकोरवाठ के मन्दिरों की तरह भव्य हैं और न उसमें शिल्प कला की बारीकी है परन्तु फिर भी उनकी बनावट अपने ही ढंग की है।

(1) मन्दिरों का संक्षिप्त परिचय—चम्पा में मन्दिरों को 'कलन' के नाम से पुकारा जाता था। अधिकतर मन्दिर धनाकार होते थे और उनकी ऊँचाई, लम्बाई चौड़ाई अधिक नहीं होती थी। लम्बाकार मार्ग में तीनों दशाओं में चौकोर खम्भे बने होते थे। जिनके बीच में निकली ड्योढ़ी होती थी जिस पर खोद कर मूर्तियाँ बनाई जाती थीं। जिनके ऊपर के भाग क्रमशः छोटे होते जाते थे। ऊपर का शिखर लौ या कमल की भाँति होता था। छत के ऊपर सूच्याकार (conical) गुम्बज होता था। गर्भगृह में केवल एक द्वार होता था जो पूर्व की ओर से होता था। इसके साथ ही 3 आले होते थे जिनमें दीपक रखे जाते थे। द्वार के आगे एक बन्द ओसारा होता था जिसके आगे एक बड़ा द्वार होता था। बाहरी द्वार के नीचे का भाग एवं ऊपर की कानस पर सुन्दरता से हारों की बेल पत्थरों को काटकर बनाई जाती थी। कार्निस के चारों किनारों पर छोटी-छोटी बुर्जियाँ होती थीं जो मन्दिर का सूक्ष्म रूप होती थीं और ऊपर चलकर छोटी होती जाती थीं। नकली द्वारों के स्थान पर उनमें आले होते थे और दीवालों पर खड़े बल के चौकोर खम्भे अब 3 हो जाते थे। तीसरी मंजिल में खम्भों की संख्या 2 होती जाती थी। कभी-कभी नहीं भी होती थी।

चम्पा के मन्दिरों को कलात्मक दृष्टि से कई श्रेणियों में बाँटा गया है। एक स्थान के मन्दिर ही अनेक समयों में बने हैं एवं माइसोन में ही कई श्रेणी के मन्दिर मिले हैं। इन मन्दिरों का निर्माण अपने-अपने ढंग पर हुआ है। 7वीं शताब्दी से लेकर 12 वीं शताब्दी तक चम्पा में अनेक मन्दिरों का निर्माण हुआ। पामांतियें ने कला के आधार पर प्रथम श्रेणी के वे मन्दिर बतलाये हैं जिनका निर्माण 7 वीं से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

10 वीं शताब्दी के मध्य हुआ है। इनमें मौलिक सूझ-बूझ है। इनमें 7 वीं शताब्दी में बना हुआ माइसोन का मन्दिर 813 और 817 ई० में बना हुआ पो-नगर के मन्दिर रखे गये हैं। दूसरी श्रेणी में भी 7 वीं और 9 वीं शताब्दी के मन्दिर हैं। हो अ-लाई का मन्दिर इसी श्रेणी में आता है। ये मन्दिर धनाकार है। तृतीय श्रेणी में सम्मिलित कला के दर्शन होते हैं। डोग-डुओंग का मन्दिर इस कला का प्रतीक है। स्टर्न ने चम्पा के मन्दिरों को जिन श्रेणियों में रखा है वे यह हैं—प्राचीन पद्धति, होअ-लाई पद्धति डोग-डुओंग, माइसोन, और विन-डिन्ह के मध्य युग की पद्धति। विन-डिन्ह के अन्तिम युग की पद्धति। यह श्रेणियाँ कई स्थानों के आधार पर बनाई गई हैं। यहाँ हम प्रमुख स्थानों के मन्दिरों की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं—

(1) माइसोन के प्राचीन मन्दिर—टूरेन से 21 मील दक्षिण या दक्षिण-पूर्व में माइसोन के मन्दिर हैं। एक मील के घेरे में विभिन्न युगों में बहुत से मन्दिर बनाये गये हैं जो सभी शैव मत से सम्बन्धित हैं। अ 1, ब 4, फ 1, अ 4, ब 1 और स 1 में शिव की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। ब 3, इ 5, व 3 में क्रमशः गणेश और स्कन्द की भी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। पार्मांतिये ने प्राप्त लेखों के आधार पर मन्दिरों की तिथियों का निर्धारण किया है। अ 1, अ 2-7, ब 3, ब 5 व 7-9, व 11-13 आदि मन्दिर छठी एवं सातवीं शताब्दी के हैं। अ 8-13, ब 14 और फ 1, स 7, स 6 और ई 7 आदि मन्दिर 7वीं शताब्दी के बीच के हैं। द 2, ई 4 और ई 8 आदि मन्दिर 11वीं शताब्दी के व 1, व 2, द 5 आदि मन्दिर 12वीं शताब्दी के हैं। ये सभी मन्दिर अधिक भव्य नहीं हैं और न ही उनकी शिल्प कला में अधिक बारीकी के दर्शन होते हैं परन्तु उनकी कला की अपनी विशेषता है।

(2) डोग-डुओंग का मन्दिर—माइसोन के दक्षिण-पूर्व में 12-13 मील दूरी पर स्थित क्वंग-नम् के प्रान्त का यह मन्दिर चम्पा के सांस्कृतिक इतिहास में अपना विशिष्ट महत्व रखता है। यह मन्दिर 328 गज लम्बा और 164 गज चौड़ा वर्गाकार क्षेत्र में बना है। इसके पूर्वी भाग में एक प्रवेश द्वार है। मुख्य मन्दिर चम्पा के अन्य मन्दिरों की भाँति है। बाहर की दीवालों पर नकली द्वार हैं जिन्हें चौकोर खम्भों से अलकृत किया गया है। मन्दिर के अन्दर के आले काफी बड़े हैं। प्रवेश द्वार पूर्व मे है और उसके नीचे सीढ़ियाँ बनी हैं। मुख्य मन्दिर के चारों ओर अन्य सहायक मन्दिरों का भी निर्माण किया गया है मेहराब में अलंकृत पुष्प बने हुए हैं जिनकी आकृति शंकु (Conical) है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(3) पो-नगर के मन्दिर—खन-होग्र के चू-लाग्रो गाँव में स्थित पो-नगर के मन्दिर भी उल्लेखनीय हैं। उनमे मुख्य मन्दिर उत्तर से दक्षिण की ओर 2 पहाड़ियों पर स्थित हैं। सामने की पंक्ति में मुख्य मन्दिर हैं और इसके आस-पास अन्य मन्दिर बने हुए हैं। पहले यह मन्दिर लकड़ी का बना हुआ था जिसे विजय सिंह ने 774 ई० में जला दिया। उसके 10 वर्ष बाद सत्यवर्मा ने फिर से एक नये मन्दिर का निर्माण कराया। मुख्य मन्दिर अत्यन्त साधारण है परन्तु यह अच्छी दशा में प्राप्त हुआ है। इस मन्दिर के छत और शिखर के बीच में 4 अंग हैं। मन्दिर के आन्तरिक भाग में शुण्डाकार गुम्बज है। इस मन्दिर में उमा की एक सुन्दर मूर्ति स्थापित है। इस मन्दर के नकली द्वारों की बनावट अन्य मन्दिरों की तरह नहीं है। इसके ऊपर निकली कमानो की तरह मेहराब है जो ऊपर की ओर धीरे- धीरे करके छोटी होती गई है।

(4) अन्य स्थानों के मन्दिर—उपर्युक्त स्थानों के मन्दिरों के अतिरिक्त कुछ अन्य स्थानों पर भी अनेक मन्दिर प्राप्त हुए हैं जिनका उल्लेख हम यहाँ कर रहे हैं :—

(1) न्होन-सोन के मन्दिर—होग्र-लाई से उत्तर में मिले ये मन्दिर ध्वंसावस्था में प्राप्त हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन मन्दिरों का स्थापत्य अत्यन्त उच्च-कोटि का था। मन्दिरों के चौकोर खम्भों एवं मेहराबों की नक्कासी अत्यन्त उच्च-कोटि की प्रतीत होती है। मन्दिर की दीवारें बाहर की ओर झुकी प्रतीत होती हैं। उसका ओसारा भी आगे की ओर बढ़ा है।

(2) पो-हे-मन्दिर—फनतिएट के समीप थिएन-छन ग्राम में एक पहाड़ी पर 3 मन्दिर प्राप्त हुए हैं। इन सब का द्वार पूर्व की ओर है। मुख्य मन्दिर ऊँची सतह पर है और उसके किनारों पर बुर्जियाँ नहीं है। यह मन्दिर कम्बुज के मन्दिर से बहुत-कुछ मिलता जुलता है।

(3) पो-दम मन्दिर—फनरी नगर के समीप पु-दिएन गाँव से 2 मील उत्तर में 6 मन्दिर प्राप्त हुए हैं। मुख्य मन्दिर अताव सुन्दर है। एक छोटे मन्दिर की ऊपरी मंजिल झुकावदार है।

(4) पो-रोम मन्दिर—विन्ह-थुग्रन के हाऊ-शन्ह ग्राम में एक चट्टान पर स्थित यह मन्दिर साधारण है। यह मन्दिर चम्पा का सबसे बाद का मन्दिर है और कदाचित इसका निर्माण 17वीं शताब्दी में हुआ।

(5) पो-क्लोंग-गराई मन्दिर—इस स्थान का मुख्य मन्दिर बहुत अच्छी दशा में प्राप्त हुआ है। इसका निर्माण जयसिंह वर्मन चतुर्थ (1287-1307 ई०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने कराया, यह मन्दिर ऊँची मेढ़ी पर बना है और इसके द्वार पर कमानीदार मेहराब है जो क्रमशः द्वितीय और तृतीय मंजिल में छोटा होता गया है। प्रत्येक मंजिल में किनारे पर बुर्ज बनाया गया है। उपर्युक्त मन्दिरों के अतिरिक्त कुछ अन्य मन्दिर भी उल्लेखनीय हैं। डुओंग-लौंग के मन्दिर इसी श्रेणी में अपना विशेष स्थान रखते हैं। इन मन्दिरों के ऊपरी भाग उल्टे-कमल की तरह के हैं।

गुफाएँ एवं किला—चम्पा में अनेक गुफाएँ भी प्राप्त हुई हैं। फोगन्ह की गुफाएं बहुत बड़ी हैं। वे बौद्ध भिक्षुओं द्वारा निर्मित की गई थीं। चम्पा में राज-प्रासादों के अवशेष नहीं प्राप्त हुए हैं परन्तु चीनी स्रोतों से यह ज्ञात होता है कि यहाँ ऊँचे-ऊँचे राज-प्रासाद बनवाये गये थे। नगर की रक्षा के लिए बनाई गई दीवारों के अवशेष अवश्य प्रात हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये किले की दीवारें हैं।

(ब) शिल्प कला—चम्पा की स्थापत्य कला पूर्णतया भारतीय नहीं है। परन्तु चम्पा की शिल्पकला को यदि भारतीय शिल्पकला की संज्ञा दी जाय तो अनुचित नहीं होगा। वहाँ की मूर्तियों पर भारतीयता की छाप पूर्ण रूप से देखने को मिलती है। काल-क्रम के अनुसार से चम्पा की शिल्पकला को 3 कोटियों में बाँटा जा सकता है। डोग-डुओंग की कला, विन्ह-डिन्ह की कला और बाद की कला। चम्पा की मूर्तियाँ या तो मन्दिरों में लगी हुई प्राप्त हुई हैं परन्तु कुछ मूर्तियाँ अलग से भी प्राप्त हुई हैं। चम्पा की मूर्तियों आदि का विस्तार से विवेचन हमने इस अध्याय के प्रश्न (2) में किया है।

(1) शिव मूर्ति—माइसोन में शिव की सोने की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। विन्ह-डिन्ह की कला की अनेक शिव की नृत्य करती हुई मूर्तियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं। एक मूर्ति में शिव पद्मासन लगाये हुए चित्रित किए गए हैं। कला की दृष्टि से यह मूर्ति अतीव सुन्दर है।

(2) विष्णु की मूर्ति—माइसोन में प्राप्त विष्णु की शेषनाग की शैय्या पर शयन करती हुई मूर्ति अत्यन्त कलात्मक है। उनके नाभि से निकले हुए कमल पर ब्रह्मा विराजमान हैं। टूरेन के संग्रहालय वाली विष्णु की मूर्ति भी अत्यन्त रमणीय है। इस मूर्ति में विष्णु के मुख पर गम्भीरता का आभास है। पामांतिये का मत है कि यह मूर्ति हो-लाई शिल्पकला की परिपाटी की है।

(3) अन्य देवी देवताओं की मूर्ति—डोंग-डुओंग में प्राप्त एक देवता की मूर्ति अत्यन्त रमणीय है। इस मूर्ति का शरीर स्थूल है। शिव, विष्णु के अतिरिक्त इन्द्र, विनायक, स्कन्द, सूर्य, उमा, लक्ष्मी, ब्रह्मा आदि की भी अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(4) बुद्ध की मूर्ति—डोंग-डुग्रोंग में बुद्ध को जो मूर्ति प्राप्त हुई है उसमें बुद्ध को पद्मासन लगाये हुए चित्रित किया गया है। उनके चेहरे पर गम्भीरता के भाव नहीं हैं और उनकी मूर्ति अत्यन्त साधारण है।

(5) नर्तकी एवं नृत्य-दृश्य—चम्पा की कला में नृत्य-दृश्य भी अत्यन्त सजीवता से दिखाये गये हैं। वत्र-किम्रो से प्राप्त एक नर्तकी की मूर्ति अतीव सुन्दर है। नर्तकी टेत्य में सुध-बुध भुलाए हुए है। इस समय नर्तकी की मूर्ति टूरेन के संग्रहालय में है। माइसोन के एक मन्दिर के खम्भे पर अंकित नृत्य दृश्य भी उल्लेखनीय है। इसमें वाद-वादन के दृश्य भी दिखाई पड़ रहे हैं। एक व्यक्ति वीणा बजा रहा है और दूसरे के आगे दो तबले एवं मृदंग रखे हैं। माइसोन के एक मन्दिर में एक व्यक्ति बाँसुरी बजाता हुआ दिखलाया गया है।

(6) द्वारपाल, गन्धर्व जन्तुओं के दृश्य—चम्पा में द्वारपालों, गन्धर्वों, नागों और पशु-पक्षिओं के चित्र प्रदर्शित किए गए हैं। इन सभी में हिंसात्मकता और क्रूरता के भाव प्रदर्शित हो रहे हैं। डोंग-डुजुवांग का द्वारपाल अपने स्थूल, शरीर चौड़े मुख एवं चपटी नाक के लिए उल्लेखनीय है। गज-सिंह और अन्य जन्तुओं को भी हिंसात्मक भाव में दिखलाया गया है। सिंहों का क्रूर चेहरा चीनी अजगर की तरह है। यहाँ के घरों और नगरों की समानता ख्मेर कला के उदाहरणों से की जा सकती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि चम्पा की शिल्पकला पर भारतीयता की गहरी छाप है। यहाँ की कला पर अमरावती एवं पल्लव-कालीन कलाओं के साथ ही गुप्तकालीन प्रभाव भी देखने को मिलता है। यह ठीक है कि चम्पा के कलाकारों ने स्वतंत्र रूप से स्थापत्य और शिल्पकलाओं के क्षेत्र में उन्नति की और वहाँ का स्थापत्य भारतीय स्थापत्य से कुछ भिन्न अवश्य है परन्तु उसका मूल भारतीय ही है। वहाँ के मन्दिरों की छतें और बुर्ज भारतीय नहीं प्रतीत होते। इस सम्बन्ध में यहाँ उल्लेखनीय है कि चम्पा के कलाकारों ने जहाँ भारतीय परिपाटी से विमुख होने का प्रयास किया है वहाँ उनकी कलात्मकता क्षीण हो गई है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | 16

कम्बुज की भारतीय सभ्यता और संस्कृति
(INDIAN CULTURE AND CIVILIZATION OF CAMBUJ)

भूमिका—वर्तमान कम्बुज जो पहले फ्रांसीसी साम्राज्य का एक अंग था, अब एक स्वतन्त्र राज्य है। प्राचीन कम्बुज देश की सीमायें वर्तमान कम्बोडिया से अधिक विस्तृत थीं और इसके साथ कोचिन-चीन और मीकांग नदी की दक्षिणी घाटी सम्मिलित थी। मीकांग नदी कम्बुज-वासियों के लिये वैसे ही पूजनीय रही है जैसे भारतवासियों के लिये गंगा और मिश्र वासियों के लिये नील। इसका कारण यह है कि कम्बुज का अधिकांश भाग ऊसर और पहाड़ी है। जितने भू-भाग में मेकांग नदी के बाढ़ का पानी पहुँच जाता है वही भाग उपजाऊ हो जाता है। छोटी-छोटी पहाड़ियों से घिरे होने के कारण कम्बुज में स्थल मार्ग से यातायात की कमी थी और वह समुद्री मार्ग से होता था।

फूनान एवं कम्बुज साम्राज्य के रूप में कम्बुज के अन्तर्गत अति प्राचीन काल में स्याम, लाओस और कचिन-चीन का विशाल क्षेत्र आ गया था। इसमें कांग और सीनम के बीच की घाटी भी सम्मिलित थी। भौगोलिक दृष्टि से कम्बुज देश से केवल मीकांग की दक्षिणी घाटी में स्थित वर्तमान कम्बोडिया और कोचिन-चीन का ही संकेत मिलता है। भौगोलिक असुविधाओं के होने पर भी भारतीयों ने इस क्षेत्र में अपने उपनिवेश स्थापित करने का प्रयास किया और वह इस कार्य में अवश्य ही सफल हुए। पहले भारतीयों ने फूनान में, जिसकी समानता वर्तमान कम्बोडिया और कोचिन-चीन के कुछ भाग को मिला कर की जाती है, अपने उपनिवेशों की स्थापना की। कालान्तर में उनका क्षेत्र अधिक विस्तृत हो गया और समस्त कम्बुज क्षेत्र में भारतीय संस्कृति का पौधा पल्लवित होने लगा।

कम्बुज में भारतीय शासन का संस्थापक कम्बु स्वयंभुव माना जाता है। उसका समय क्या था इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। कुछ इतिहासकार श्रुतवर्मन को कम्बुज में भारतीय साम्राज्य का संस्थापक मानते हैं। उसका समय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

छठी शताब्दी का प्रारम्भ माना जा सकता है। छठीं शताब्दी से लेकर तेरहवीं शताब्दी तक कम्बुज भारतीय संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा और वहाँ भववर्मन, जयवर्मन द्वितीय, यशोवर्मन और जयवर्मन सप्तम नाम के प्रतापी सम्राट हुए। इस अध्याय में भारतीय युग की कम्बुज की सभ्यता एवं संस्कृति पर प्रकाश डाला जायेगा।

प्रश्न 1—कम्बुज की शासन-व्यवस्था के विषय में आप क्या जानते हैं ? संक्षेप में प्रकाश डालिए।

कम्बुज के लेखों से वहाँ की शासन-व्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। कम्बुज राज्य जो टोंकिंग, चम्पा और श्याम की सीमाओं से घिरा था, वहाँ विभिन्न जातियों के लोग रहते थे और बहुत समय तक वह एक राजनीतिक सूत्र में बँधा रहा। सबसे पहले यहाँ स्त्रियों का राज्य था और भारतीय कौण्डिन्यों ने आकर यहाँ सुचारु रूप से शासन-व्यवस्था की एवं एक नई सभ्यता की नींव डाली। यहाँ हम कम्बुज की शासन-व्यवस्था पर संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं।

(1) सम्राट और उसका पद—कम्बुज के लेखों में अर्थ-शास्त्र और धर्म-शास्त्र का उल्लेख हुआ है और वहाँ सम्राट के पद, उसके अधिकारों आदि का चित्रण किया गया है। कम्बुज में सम्राट को देवता तुल्य माना जाता था। शासन-व्यवस्था में सम्राट सर्वोत्तम पदाधिकारी था। वह विधि का स्रोत, सेना का अध्यक्ष और मुख्य न्यायाधीश था। अधिकतर उत्तराधिकार की प्रथा ही प्रचलित थी। सम्राट की इच्छा के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं हो सकता था। वह समस्त मामलों में हस्तक्षेप कर सकता था और इस प्रकार कम्बुज में पूर्ण रूप से राजतंत्रात्मक व्यवस्था विद्यमान थी। प्रान्तों के शासकों को नियुक्त करने का अधिकार भी सम्राट को था।

(2) मंत्रि-परिषद्—सम्राट को सहायता देने के लिए कुछ मंत्री भी होते थे जिनकी नियुक्ति सम्राट स्वयं करते थे। एक लेख में 'राज्य-सभाधिपति' का उल्लेख हुआ है। सम्राट के उससे क्या सम्बन्ध थे, इस विषय में कोई जानकारी नहीं है। 'राष्ट्र' पर सम्राट की रक्षा का भार होता था और इस हेतु 'नृपान्तरंग' 'द्वाराध्यक्ष' आदि उसके अंगरक्षक होते थे। राजप्रासाद और राज्य की रक्षा करने के लिए 'शयनगृह परीक्षक' 'नरेन्द्र परिचारक' आदि भी होते थे। चीनी स्रोतों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि राजा की रक्षा के हेतु अनेक आदमी होते थे।

शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के हेतु कुमार-मंत्री, बलाध्यक्ष, मंत्री, राजभिषक् और राजकुलमहामंत्री की नियुक्ति की जाती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(3) अन्य पदाधिकारी—राजा को उसके मन्त्रियों के अतिरिक्त कुछ अन्य पदाधिकारी भी शासन-कार्य में सहायता पहुँचाते थे। इन पदाधिकारियों में पुरोहित, द्वाराध्यक्ष, अन्नाधिपति, गुण-दोष परीक्षक आदि उल्लेखनीय हैं। राजकुटीपाल और पुस्तक रक्षक आदि पदाधिकारी भी प्रमुख थे। राजकुटीपाल राजकीय मोहर रखता था और पुस्तक रक्षक राजकीय बिहारों के पुस्तकों की देख-भाल करता था। धार्मिक और जनहित के कार्यों के हेतु भी राजाओं द्वारा विभिन्न पदाधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। उल्वेकधारक, शाकाविहारक, पाणिपहारक, पत्रकारक, ताम्बूलक, तण्डुलकाविन्य और क्षुरक चाकर इसी श्रेणी में आते थे।

शासन के सुचारु रूप से चलने के हेतु विभिन्न पदाधिकारियों की नियुक्ति काफी जाँच-पड़ताल के वाद की जाती थी। इस सम्बन्ध में उनकी विद्वत्ता एवं सम्राट के प्रति भक्ति को प्रमुख स्थान दिया जाता था। बहुधा पुत्र को उसके पिता की जगह नियुक्त कर दिया जाता था। परन्तु शर्त यह थी कि पुत्र विद्वान हो और राज्य-भक्त हो। एक लेख में धर्म-स्वामी नामक एक विद्वान ब्राह्मण का उल्लेख हुआ है जसके पुत्र ने 'महाश्वपति' एवं 'श्रेष्ठ पुरस्वामी' आदि पदों को सुशोभित किया था। उसका छोटा भाई प्रचण्डसिंह भी उच्च पदाधिकारी था। उसने क्रमशः नृपातरंग, सामन्ता नौवाहन, सहस्र वर्गाधिपति के पदों पर कार्य किया। पदाधिकारियों को स्वामि-भक्ति की शपथ लेनी होती थी और वे ब्राह्मणों एवं आचार्यों के सम्मुख यह शपथ लेते थे कि वे सम्राट की सेवा में अपना सब कुछ अर्पित कर देंगे। सम्राट की सेवा में यदि किसी अधिकारी की मृत्यु हो जाती थी तो वह अपना सौभाग्य समझता था। युद्ध के समय सम्राट के लिए अपने जीवन को अर्पित कर देना विभिन्न पदाधिकारी अपना गौरव समझते थे। यदि कोई सम्राट के प्रति भक्ति न करे तो उसे चन्द्रमा और सूर्य के प्रकाश तक नरक भोगने का शाप मिलता था। स्वामिभक्त पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों को सम्राट के द्वारा वेतन दिया जाता था। यदि राज्यभक्ति प्रदर्शित करते समय किसी पदाधिकारी की मृत्यु हो जाती थी तो उसके पुत्रों के भरण-पोषण का प्रबन्ध शासक पर होता था।

प्रान्तीय शासन

विशाल कम्बुज साम्राज्य को अनेक प्रान्तों में विभाजित किया गया था। चीनी साक्ष्यों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि इन प्रान्तों की संख्या 30 थी। तदंत्रपुर, आढ्यपुर, ताम्रपुर, भवपुर, श्रेष्ठपुर, धन्विपुर, ध्रुवपुर, ज्येष्ठपुर, विक्रमपुर, उग्रपुर, ईशानपुर आदि प्रमुख प्रान्त थे। शासकों की नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थी। अधिकतर ये राजवंशी ही होते थे। उदाहरण के लिए ध्रुवपुर के शासक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के पद पर धर्मस्वामिन के ज्येष्ठ पुत्र की नियुक्ति का उल्लेख प्राप्त होता है। बहुधा पिता की मृत्यु के बाद उसका पुत्र उसी प्रान्त में शासक नियुक्त कर दिया जाता था। परन्तु साथ ही यह नियुक्ति व्यक्तित्व एवं विद्वता पर भी आधारित होती थी। ये सभी प्रान्तीय शासक पूर्ण रूप से सम्राट के प्रसाद-पर्यन्त रह सकते थे और उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई भी कार्य नहीं कर सकते थे।

स्थानीय शासन

कुछ ऐसे भी लेख प्राप्त हुए हैं जिनके द्वारा स्थानीय शासन व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। जयवर्मन के प्रसत यपन लेख में 10 गाँवों के अध्यक्ष का उल्लेख हुआ है। इसके आधार पर यह कहा जाता है कि प्रत्येक ग्राम का एक अध्यक्ष होता था। ग्राम ही स्थानीय शासन की सबसे छोटी इकाई थी। इस लेख में 'ग्रामवृद्ध' और 'पुरुष वर्धन' का भी उल्लेख हुआ है।

सैन्य-व्यवस्था

कम्बुज राज्य की भौगोलिक स्थिति कुछ इस प्रकार की थी कि इसकी रक्षा के हेतु सुदृढ़ स्थल एवं जल सेना रखना अनिवार्य था। अतएव कम्बुज में स्थल एवं जल दोनों प्रकार की सेनाओं की व्यवस्था की गई थी। विभिन्न लेखों में कुछ ऐसे अधिकारियों का उल्लेख किया गया है जिनका सम्बन्ध सेना के दोनों अंगों से था। एक लेख में महाश्वपति, महानौभ्य और सामन्तानौवाद आदि का उल्लेख है। अश्व सेना के अध्यक्ष को 'महाश्वपति' के नाम से पुकारा जाता था। 'सहस्राधिपति' एक सहस्र सैनिकों के ऊपर नियुक्त होता था। सेनाध्यक्ष के अनेक अंग रक्षक होते थे। युद्ध में हथियारों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में होता था। अंग रक्षकों में संजक नामक व्यक्ति प्रमुख होता था। राजप्रसाद के सैनिक प्रबन्ध का अध्यक्ष 'सर्वोपधाशुद्ध' कहलाता था। वह अत्यन्त स्वामिभक्त होता था और उसकी नियुक्ति राजकीय उथल-पुथल को रोकने के लिए की जाती थी।

न्याय एवं दण्ड व्यवस्था

कम्बुज के लेखों से वहाँ की न्याय एवं दण्ड-व्यवस्था के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है। एक लेख में 'व्योहाराधिकारी' एवं 'धर्माधिकरणपाल' नामक पदाधिकारियों का उल्लेख हुआ है जो न्याय-व्यवस्था से ही सम्बन्धित है। इसी प्रकार 'अम्रतक-धन-परीक्षक' 'सम्पत्ति रक्षक' और गुण-दोष परीक्षक आदि का उल्लेख भी हुआ है। एक लेख में 'पृथ्वीन्द्र पंडित' नामक एक व्यक्ति का उल्लेख हुआ है जो मुख्य न्यायाधीश के रूप में था और अन्य न्यायाधीशों के निर्णय को सम्राट के पास भेजता था। सम्राट ही सर्वोच्च न्यायाधीश था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कम्बुज में दण्ड देने की विभिन्न प्रकार की व्यवस्था थी। जुर्माने और शारीरिक यातना दोनों प्रकार का दण्ड दिया जाता था। एक लेख में एक व्यक्ति पर 10 औंस सोने के जुर्माने का उल्लेख है और उसके छोटे भाई की पीठ पर 102 बेंत मारने का उल्लेख किया गया है। एक अन्य लेख में पृथ्वीन्द्र पंडित को दण्ड दिए जाने का भी उल्लेख है।

कम्बुज के लेखों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि शासन को दीवानी मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार था और सीमाएँ निर्धारित करने के हेतु विभिन्न पदाधिकारी नियुक्त किये जाते थे। व्यक्ति की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर शासक का अधिकार समझा जाता था और सम्राट की इच्छा पर्यन्त ही व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का अधिकारी था।

राज्य की आय के साधन

राज्य की आय के साधनों में मुख्य भूमिकर ही था। इसके साथ ही अन्य प्रकार के कर भी लगाये जाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उस युग में मृतक कर की भी व्यवस्था थी। एक लेख में बाल-कर का भी उल्लेख हुआ है। व्यापार और उद्योगों से भी राज्य को अर्थ की प्राप्ति होती थी।

भूमि-बिक्री व्यवस्था—प्रसत कोक लेख में भूमि की बिक्री और उससे सम्बन्धित अधिकारियों का विस्तृत उल्लेख हुआ है। भूमि चाहने वाले को सबसे पहले प्रार्थना-पत्र देना होता था और उस प्रार्थनापत्र को गुण-दोष परीक्षक जाँच करता था। न्यायाधीश के आदेशानुसार मूल्य निर्धारित करने का कार्य 'व्ययाधिकारी' करता था और उसकी सहायता के लिए 'धर्माधिकरणपाल' और 'अमृतक धन निरीक्षक' होते थे। ढोल पीटकर भूमि का अधिकार प्रार्थी को सौंप दिया जाता था। इसी लेख में भूमि बिक्री से सम्बन्धित अन्य पदाधिकारियों यथा 'मुख्यचार' आदि का भी उल्लेख हुआ है। एक लेख में भूमि बिक्री के सम्बन्ध में 'ग्रामवृद्ध' और 'दशकग्राम' के साक्षी के रूप में रहने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। एक अन्य लेख में 'ब्राह्म सभा द्वारा' भूमि की सीमा निर्धारित करने का भी उल्लेख है।

उपसंहार—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कम्बुज की शासन-व्यवस्था का आधार धर्म एवं अर्थ था। वहाँ की शासन-व्यवस्था भारतीय थी और वहाँ राजतन्त्र की सुदृढ़ स्थापना की गई थी। शासन जनता को हर प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयास करता था।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रश्न 2—कम्बुज की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था पर संक्षेप में प्रकाश डालिये।

कम्बुज के लेखों में तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। यहाँ हम वहाँ की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था पर संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं—

Museum ... 6217 ... Lucknow

सामाजिक व्यवस्था

कम्बुज का समाज भारतीय समाज से बहुत हद तक मिलता-जुलता था वहाँ की वर्ण-व्यवस्था, वैवाहिक रीतियों, वेष भूषा, मनोरंजन, दाह-संस्कार आदि पर हम भारतीयता की छाप देखते हैं—

(1) वर्ण-व्यवस्था—कम्बुज के लेखों में 4 वर्णों का उल्लेख हुआ है। ब्राह्मण समाज में अत्यन्त गौरव के पात्र थे। उनके वैवाहिक सम्बन्ध राजवंश से भी स्थापित हो सकते थे। ब्राह्मणों और क्षत्रियों के इस संस्कार से ब्रह्मक्षत्रय जाति उत्पन्न हुई थी। कम्बुज में वैश्यों से सम्बन्धित कोई भी लेख प्राप्त नहीं होता। परन्तु उनसे सम्बन्धित एक लेख चम्पा में अवश्य प्राप्त होता है। शूद्र सबसे निकृष्ट समझे जाते थे और उनका कार्य अन्य वर्णों की सेवा करना मात्र था।

ब्राह्मणों को उच्च-स्थान दिलाने का श्रेय कौण्डिन्य नामक ब्राह्मण को है जिसने कम्बुज में आकर अपनी सत्ता स्थापित की और वहाँ की रानियों से विवाह किए। इसके साथ ही कम्बुज के लेखों में भारत से आये अनेक ब्राह्मणों का उल्लेख हुआ है। इन ब्राह्मणों में हिरण्यदाम, अगस्त्य, दिवाकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। हिरण्यदाम कम्बुज शिव-कैवल्य को तांत्रिक शिक्षा देने आया था। अगस्त्य ने यशोमति नामक राजकुमारी से विवाह किया था। दिवाकर ने राजेन्द्रवर्मन की पुत्री इन्द्रवर्मन से विवाह किया था। शिव कैवल्य और उसके वंशज कई सौ वर्षों से अधिक तक राज्यपुरोहित के पद पर सुशोभित रहे।

ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्यवर्मन के समय में जातियों का पुनः विभाजन हुआ था। व्यवसाय चुनने के हेतु जन्म का कोई बन्धन न था। एक लेख में ब्राह्मणों को हाथी हाँकते हुए दिखलाया गया है। जयवर्मन पंचम के सम्बन्ध में खुमुक और कर्मान्तर नामक 2 नई जातियों का उल्लेख है। सम्राट भी नई जातियों के निर्माण में स्वीकृति दे देते थे।

(2) वैवाहिक व्यवस्था—

हम पहले ही इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि ब्राह्मण जिस वंश में चाहते थे विवाह कर सकते थे परन्तु ब्राह्मण कन्यायें ब्राह्मणों के अतिरिक्त केवल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजवंश में ही ब्याही जाती थीं। भववर्मन प्रथम की बहन का विवाह शोम शर्मन नामक एक ब्राह्मण से हुआ था। जयवर्मन द्वितीय ने भवस्वामिनी नामक एक ब्राह्मणी से विवाह किया था तथा जयवर्मन सप्तम की दोनों रानियाँ ब्राह्मण कुल की थीं।

कम्बुज में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने में किसी प्रकार की बाधा नहीं थी। यशोवर्मन ने अपनी मामा की लड़की से विवाह किया था। अधिकतर वैवाहिक सम्बन्ध माता-पिता द्वारा ही स्थापित किये जाते थे। परन्तु एक लेख में एक कन्या द्वारा स्वयं विवाह का प्रस्ताव लेकर जाने का उल्लेख है। ऐसा प्रतीत होता है कि कम्बुज में बहु-विवाह की प्रथा थी। एक लेख में अनेक पति की प्रथा का भी उल्लेख हुआ है जिनमें 43 दास और उनकी 9 स्त्रियों का उल्लेख है। कदाचित ये नीचे वर्ग के लोग रहे होंगे। उच्च वर्ग में बहु-पति की प्रथा नहीं थी सूर्य वंश के इतिहास से यह जानकारी प्राप्त होती है कि विवाह के अवसर पर कन्या को सुन्दर आभूषण पहनाये जाते थे और दोनों पक्ष के लोग 8 दिन तक साथ रहते विधवा विवाह का भी उल्लेख प्राप्त होता है। हिरण्यवर्मन के सबसे छोटे पुत्र के थे। मरने पर उसकी विधवा पत्नी ने उसके बड़े पुत्र से विवाह किया था।

(3) **भोजन**—लेखों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि कम्बुज के निवासियों का मुख्य भोजन तंडुल था। वहाँ के रहने वाले भोजन को स्वादिष्ट बनाने के लिए नमक, जीरे और इलाइची का प्रयोग करते थे। अदरख, तेल, शहद आदि का भी प्रयोग होता था। ता-प्रोम के एक लेख में खाद्य पदार्थों में खार्य, भत्तु, घृत, दधि, गुण, क्षीर, तेल और मधु का उल्लेख हुआ है। मक्खन का प्रयोग भी वे लोग करते थे। मक्खन, मलाई, शक्कर और मिलेट से रोटी बनाई जाती थी। शराब पीने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। बर्तनों में घड़े, कढ़ाई, कलश, तश्तरी एवं सोने चाँदी के डिब्बों का उल्लेख प्राप्त होता है।

(4) **वस्त्र एवं सिंगार**—कम्बुज के निवासी धोती का प्रयोग करते थे। कन्धे को ढकने के लिए दुपट्टे का प्रयोग होता था। बेय्रोन के एक चित्र में राजा को धोती पहने दिखलाया गया है और वह गले में हार धारण किये हुए है। धोती में चुन्नटें भी डाली जाती थीं। चीनी स्रोतों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि धोती पश्चिमी देश से मँगाई जाती थी। उच्च वर्ग के लोग रेशमी वस्त्र पहनते थे। सुई वंश के इतिहास से यह जानकारी प्राप्त होती है कि सम्राट कौशेय वस्त्र पहनते थे जिन पर भाँति-भाँति का काम बना होता था। स्त्रियाँ ऊँचा लहँगा पहनती थीं। क्षत्रिय और ब्राह्मण वंश के लोगों के कुण्डल पहनने का उल्लेख हुआ है। कम्बुज के आभूषणों में मुकुट, कुण्डल, केयूर, कटक और वेणी प्रमुख थे। स्त्रियाँ अपने हाथ-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पैर रंगती थीं और बालों को सँवार कर जूड़ा बनाती थीं। चन्दन का प्रयोग भी किया जाता था। कुछ लेखों में चाँदी की मूठ लगे दर्पण का उल्लेख भी किया गया है।

(5) मनोरंजन के साधन—कम्बुज के निवासियों के मनोरंजन के साधन नृत्य, गायन और नाटक थे। नर्तकियाँ गायन एवं वादन में पारंगत होती थीं। पुरुष भी नृत्यकला जानते थे। एक लेख में 7 नर्तकियाँ 11 गायकों को एक मन्दिर को अर्पित करने का उल्लेख है। प्रह-आइन-कोसी लेख में वाद्यों का उल्लेख हुआ है यथा वरह, वीणा, घण्टा, मृदंग, पणव, भेरी, कादल। कम्बुज में नाटकों के खेलने की प्रथा भी प्रचलित थी। जयवर्मन सप्तम की साली ने जातकों के आधार पर एक नाटक लिखा था। भट्ट-वराह उच्चकोटि का नाटककार था। कम्बुज के मुक्के की प्रथा भी प्रचलित थी और यह भी मनोरंजन का मुख्य साधन था। वसन्तोत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता था।

(6) दास-प्रथा—कम्बुज के लेखों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि वहाँ दास-प्रथा भी विद्यमान थी। दास कई रूप के होते थे, कुछ दत्तक होते थे, कुछ पैतृक और कुछ शत्रु देशों के बन्दी दास बना लिए जाते थे। दास अधिकतर मन्दिरों को अर्पित कर दिए जाते थे। दास-दासियों के विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी। एक अभिलेख में 43 दासों और उनकी 9 पत्नियों का उल्लेख प्राप्त होता है जिससे स्पष्ट होता है कि एक-एक दासी के कई-कई पति होते थे। प्रह-खन के लेख में 306 दासों और 372 दासियों का उल्लेख हुआ है जो विभिन्न क्षेत्रों के रहने वाले थे। ऐसा प्रतीत होता है कि यह दास स्वामी की ओर से खेती-बारी भी करते थे और वे स्वामी की सम्पत्ति समझे जाते थे। यदि कभी वे भागने का प्रयत्न करते थे तो पकड़कर नाक-कान काट लिये जाते थे।

(7) पारिवारिक व्यवस्था—कम्बुज की पारिवारिक व्यवस्था पितृ-प्रधान थी। कुटुम्ब में वृद्ध को आदरणीय स्थान प्राप्त था। एक लेख में एक वृद्ध पुरुष के दान को सुरक्षित रखने का उल्लेख किया गया है। इससे वृद्ध पुरुष की विद्वत्ता की सुरक्षा का ही आभास होता है। सम्पत्ति पर पिता का अधिकार समझा जाता था। एक लेख में एक पुत्र पिता की दिवंगत आत्मा की शान्ति हेतु तर्पण करता हुआ बतलाया हुआ है। वहाँ संयुक्त परिवार-प्रथा प्रचलित थी।

(8) स्त्रियों की दशा—कम्बुज में स्त्रियों की दशा भारत की अपेक्षा निम्नकोटि की थी। यद्यपि कुछ लेखों में माँ की ओर की वंशावली दी गई है परन्तु पिता को माता की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ स्थान प्राप्त था। वहाँ बहु-विवाह की प्रथा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी प्रचलित थी और उच्च वर्ण के लोग निम्न वर्ण की कितनी ही स्त्रियाँ रख सकते थे। ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो जाते थे। दासों को अत्यन्त हीन दृष्टि से देखा जाता था और इस बात का भी उल्लेख हुआ कि एक-एक दासी कई-कई पति रखती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च वर्ण की स्त्रियाँ केवल एक ही पति रखती थीं परन्तु, निम्न वर्ण की स्त्रियों के कई दास पति होते थे। विधवा विवाह का भी एक लेख में उल्लेख हुआ है। हिरण्यवर्मन के सबसे छोटे पुत्र युवराज के मरने के बाद उसकी विधवा स्त्री ने उसके बड़े भाई से विवाह किया था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह विधवा विवाह की प्रथा सर्वत्र विद्यमान नहीं थी।

(9) **मृतक संस्कार**—लिअंग वंश के इतिहास से यह जानकारी प्राप्त होती है कि मृतकों का 4 प्रकार से अंतिम संस्कार होता था—जला कर, भूमि में गाड़ कर, शरीर को नदी में फेंक कर और शरीर को पशु-पक्षियों के खाने के लिए छोड़ कर। दाह कर्म के समय मूछों और बालों को कटवा लिया जाता था। इस प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है कि मृतक के वंशज 7 दिन तक कुछ नहीं खाते थे और निरन्तर चिल्लाया करते थे। मृतक के साथ पुरोहित प्रार्थना करते थे और गाते हुए जाते थे।

आर्थिक व्यवस्था

कम्बुज देश की प्राचीन आर्थिक व्यवस्था की जानकारी के साधन भी बहुत कम हैं। चीनी स्रोतों से इस सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त होती है साथ ही कुछ लेखों में भी इस सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डाला गया है :—

(1) **कृषि**—कम्बुज देश सदैव से चावल की उपज के लिए प्रमुख रहा है और प्राचीन युग में भी वहाँ तंडुल (चावल) की खेती प्रचुर मात्रा में होती थी। कुछ लेखों में मुद्ग और तिल का भी उल्लेख हुआ है। कृषि के लिए दास आसानी से मिल जाते थे और उन्हें 'दास कृषावलि' कहा जाता था। एक लेख में दासों द्वारा पैदा की गई उपज का वर्णन हुआ है। अदरख, मसाले, इलाइची भी यहाँ बहुतायत में उपजती थी।

(2) **पशु-पालन**—कृषि के अतिरिक्त कम्बुज के निवासियों का पशु-पालन भी मुख्य उद्यम था। गायों, बैलों, घोड़ों, हाथियों आदि को वे पालते थे। अनेक लेखों में बैल, गाय, भेड़ों आदि के धन का उल्लेख हुआ है और ये वहाँ विनिमय के काम में भी आते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(3) व्यवसाय एवं उनका संगठन—कम्बुज में इस प्रकार के अनेक लेख प्राप्त हुए हैं जिनमें व्यवसायों और श्रेणियों में उनके संगठन का उल्लेख हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न व्यवसायों की अलग-अलग श्रेणियाँ थीं और कई श्रेणी उस व्यवसाय विशेष के लोगों के हितों की रक्षा करती थीं। स्वर्णकार-संघ का उल्लेख अनेक स्थानों में हुआ है। शिल्पियों का भी कुछ लेखों में उल्लेख मिलता है। स्वर्णकारों को चामीकरकार कहा जाता था और उनका व्यवसाय काफी उन्नत दशा में था। अन्य व्यवसायों के विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है। उनमें जुलाहे, गांधिक, माली, पान बेचने वाले, हाथी हाँकने वाले आदि उल्लेखनीय हैं। पुरोहितों का भी अपना एक संगठन था और पुरोहितगीरी वहाँ का एक व्यवसाय ही था। व्यवसाय चुनना जाति पर आधारित नहीं था।

(4) व्यापार—कम्बुज के कुछ लेखों से वहाँ के व्यापार के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त होती है। भूमि बेचते समय सीमा निर्धारित करने के हेतु ग्राम-वृद्ध एवं अन्य पदाधिकारी सहायता कार्य करते थे। विक्रीकर का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है किन्तु चीनी स्रोतों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि शासक को व्यापारिक कर सोने-चाँदी, मोती एवं सुगन्धित वस्तुओं के रूप में प्राप्त होता था। देशीय व्यापार के साथ ही अन्तर्देशीय व्यापार भी होता था। एक लेख में चीनांशुक का उल्लेख हुआ है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ चीन से रेशम आता था। एक लेख में सम्राट हर्षवर्मन द्वारा एक चीनी व्यापारी को छोड़ देने के आदेश का भी उल्लेख है। टंग-वंश के नवीन इतिहास से यह पता चलता है कि कम्बुज का व्यापार उत्तर में टोंकिन और पश्चिम में भारत के साथ होता था और वहाँ हीरा, चन्दन आदि पदार्थ पाये जाते थे। एक चीनी स्रोत से यह जानकारी प्राप्त होती है कि पश्चिम में भारत के साथ व्यापार होता था और पश्चिम भारत से फूनान को एक बड़ा जहाज आया था जिसमें बिक्री के लिए एक नीला स्फटिक का शीशा था। व्यापार के लिए अधिकतर जल मार्ग का ही प्रयोग होता था। स्थल-मार्ग से व्यापार हाथियों के माध्यम से होता था। कम्बुज के व्यापारिक सम्बन्ध पश्चिम में भारत और उत्तर-पूर्व में चीन के साथ थे। ऐसा प्रतीत होता है कि कम्बुज के लेखों में वहाँ के व्यवसाय एवं व्यापार आदि के विषय में अधिक प्रकाश नहीं डाला गया है परन्तु यह अवश्य सत्य है कि कम्बुज का व्यापार अत्यन्त उन्नत अवस्था में था। वहाँ की कोई मुद्रा नहीं प्राप्त हुई है परन्तु वहाँ मुद्राओं का प्रयोग अवश्य होता रहा होगा।

(5) तौल एवं मान—कम्बुज के कुछ लेखों से वहाँ के तौल एवं मान के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय में भी जानकारी प्राप्त होती है। वहाँ भारतीय तौल के मापदण्डों का प्रचलन था। यह मापदण्ड क्रमशः 'खारिका', 'द्रोण', 'प्रस्थ' 'कुडव' थे। कुडव सबसे छोटा बाँट था और यह लगभग एक पाव के बराबर था। 'प्रस्थ' एक सेर के बराबर था। एक 'द्रोण' में 16 सेर होते थे तथा एक 'खारिका' में 256 सेर होते थे। 'काक' नामक एक अन्य बाँट का भी उल्लेख हुआ है परन्तु उसका अनुपात नहीं निर्धारित किया जा सकता। मानों में 'पाद', 'घटी', 'तुला', 'पण' और 'सीस' का उल्लेख हुआ है। पाद द्वारा मक्खन, दही, शहद आदि नापा जाता था और यह 150 ग्रेन के लगभग होता था। 'घटी' का प्रयोग घी तौलने के लिए होता था। 'तुला' सौ पल के बराबर थी। 'पण' से मुद्रा और तौल दोनों का ही संकेत हो सकता है। इन तौल एवं माप दण्डों से यह प्रतीत होता है कि कम्बुज का आर्थिक जीवन काफी उन्नति की स्थिति में था।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कम्बुज का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन अति प्राचीन काल में ही काफी उन्नत था। जब संसार के अन्य देश अत्यन्त अवनति स्थिति में थे, कम्बुज में अत्यन्त उच्चकोटि की भारतीय सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित सभ्यता फलीभूत हो रही थी।

प्रश्न (3) कम्बुज की धार्मिक व्यवस्था के विषय में आप क्या जानते हैं ?

कम्बुज ब्राह्मण धर्म के उत्थान का प्रमुख स्थल रहा है। भारत के कांडिण्य नामक एक ब्राह्मण ने जाकर वहाँ सभ्यता का प्रसार किया और इस धर्म के प्रसार में योगदान दिया। ब्राह्मण धर्म के साथ ही कम्बुज में बौद्ध-धर्म का प्रसार हुआ। बौद्ध-धर्म बाद में वहाँ पहुँचा परन्तु कुछ राजाओं के शासन काल में उसे राजकीय धर्म के रूप में स्वीकार किया गया और इस कारण इस धर्म का भी यहाँ पर्याप्त प्रसार हुआ। यहाँ हम कम्बुज में ब्राह्मण और बौद्ध धर्म के रूप की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं :—

ब्राह्मण धर्म

कम्बुज में ब्राह्मण धर्म का मुख्य रूप से प्रचलन था। शैव और वैष्णव दोनों ही मतों का पर्याप्त प्रसार हुआ था। साथ ही अन्य देवी-देवताओं की पूजा भी की जाती थी। इस धर्म की विभिन्न विचार-धाराओं यथा-यज्ञ, भक्ति, तप-यंत्र आदि के प्रचलन का भी उल्लेख यहाँ के लेखों में प्राप्त होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शैव-मत—कम्बुज में शैव मत राजकीय धर्म के रूप में स्वीकार किया गया। कुछ बौद्ध शासकों ने भी शैव मत को मान्यता प्रदान की। इसे देवराज के नाम से सम्बोधित किया गया। शैव धर्म को सैद्धान्तिक रूप से शिव एवं पार्वती की मूर्तियों द्वारा प्रदर्शित किया गया। वट-विहार मन्दिर में मिले लेख में शिव और पार्वती का उल्लेख है और इन दोनों की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। पार्वती शिव की जाँघ पर बैठी हुई हैं। सम्राट इन्द्रवर्मन ने 879 ई० में 3 शिव मूर्तियों की स्थापना करवाई थी। इन्द्रवर्मन के काल में अमरभव नामक एक साधु ने एक सोने की शिव मूर्ति बनवाई थी। वन्ते-श्राई में रावण को कैलाश पर्वत उठाते हुए दिखलाया गया है और इस पर शिव एवं पार्वती को बैठे हुए दिखलाया गया है।

शिव मूर्तियों के साथ ही शिव लिंग का भी उल्लेख प्राप्त होता है। अनेक लेखों में उपासक के नाम पर शिव लिंग का नामकरण किया गया है। जैसा पिंगलेश्वर, सिद्धेश्वर, आदि। अनेक लेखों में शिव का वड़ा विशद् वर्णन हुआ है और इस बात का भी उल्लेख है कि उनके शीश पर गंगा एवं चन्द्रमा विराजमान हैं। एक लेख में शिव की 8 प्रकार की मूर्तियों की स्थापना का उल्लेख हुआ है। एक अन्य लेख में 8 फुट ऊँचाई पर शिव लिंग की स्थापना का उल्लेख है। राजेन्द्र वर्मन के मेब्रोन के लेख में भी एक शिव-लिंग की स्थापना का विवरण प्राप्त होता है। ब्राह्मण, विष्णु और महेश की त्रिमूर्ति का उल्लेख प्राप्त हुआ है।

ऐसा प्रतीत होता है कि शैव मत के अनुयायी अनेक सम्प्रदायों में विभाजित थे। उनमें मुख्य सम्प्रदाय पाशुपति सम्प्रदाय था। भववर्मन के नाम-प्रह लेख में विद्या पुष्प नामक एक सम्राट के अधिकारी के दानों का उल्लेख हुआ है जो पाशुपति सम्प्रदाय का आचार्य था।

वैष्णव मत—कम्बुज में वैष्णव मत को वह गौरव नहीं प्राप्त था जो कि शैव मत को प्राप्त था। परन्तु फिर भी विष्णु की उपासना के कई लेख प्राप्त हुए हैं। विभिन्न लेखों में विष्णु को वासुदेव, हरि, नारायण, माधव, कृष्ण और पद्मनाभ त्रिविक्रम के नाम से पुकारा गया है। एक लेख में गुणवर्मन द्वारा विष्णु मूर्ति के हेतु दिए गए दान का उल्लेख हुआ है। जयवर्मन की महिषी कुलप्रभावती ने विष्णु देवता की एक मूर्ति की स्थापना करवाई थी। एक अन्य लेख में गुण-वर्मन द्वारा विष्णु के पदचिह्नों की स्थापना का उल्लेख है। जयवर्मन के पुत्र ने हरिमन्दिर बनवाया था। यशोवर्मन के मामा ने भी एक विष्णु-मूर्ति की स्थापना की थी। एक मन्दिर में कृष्ण को गोवर्धन पर्वत उठाते हुए एवं विष्णु को अपने तीन पगों में समस्त विश्व को नापते हुए चित्रित किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कम्बुज के लेखों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि वहाँ शैव और वैष्णव मतों के अनुयायियों में किसी प्रकार का संघर्ष नहीं हुआ है। एक मत के अनुयायी दूसरे मत के लोगों को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। ऐसे भी उल्लेख प्राप्त हुए हैं जब एक मत के अनुयायियों ने दूसरे मत के देवता की मूर्ति स्थापित की है। भववर्मन के एक अधिकारी ने एक शिव लिंग के साथ ही विष्णु की मूर्ति भी स्थापित करवाई थी। शैवों का प्रधान शिवाचार्य वैष्णव कुल में पैदा हुआ था। उत्तर भारत के लेखों से भी शैवों और वैष्णवों के पारस्परिक सम्बन्धों का उल्लेख प्राप्त होता है। एक लेख में शिवाचार्य की अध्यक्षता में वैष्णव मन्दिरों के स्थापना का उल्लेख प्राप्त हुआ है। कई लेखों में शिव और विष्णु की सम्मिलित मूर्ति स्थापित करने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। ताम्रपुर के एक प्रधान ने शिव तथा विष्णु की मूर्ति स्थापित की थी। एक लेख में हरिहर तथा दूसरे में शंकर-नारायण की मूर्ति की स्थापना का भी उल्लेख हुआ है।

अन्य देवी-देवता—शिव और विष्णु की आराधना के साथ ही कम्बुज में अन्य देवी-देवताओं की भी आराधना की जाती थी। कम्बुज के लेखों में गणेश, आदित्य, स्वयम्भु, ब्रह्मा, दुर्गा, गंगा इन्द्राणी, गौरी, सरस्वती, वागेश्वरी, चतुर्भुजी आदि का भी उल्लेख प्राप्त है।

भक्ति-मार्ग एवं पाप-पुण्य— कम्बुज में भक्ति मार्ग को मुख्य रूप से अपनाया गया था और कदाचित भाषण की प्रथा भी प्रचलित थी। लाग पाप-पुण्य में भी विश्वास करते थे और देवी देवताओं की उपासना में ही वे अपना और समाज का कल्याण समझते थे।

यज्ञ और तप आदि—कम्बुज में भक्तिमार्ग और पौराणिक देवी-देवताओं की उपासना के साथ ही वैदिक यज्ञों एवं तप आदि का भी प्रचलन था और वहाँ अनेक यज्ञ किए जाते थे। शिवाचार्य नामक ब्राह्मण सम्राट ईशानवर्मन द्वितीय, जयवर्मन एवं राजेन्द्रवर्मन का होत्र था। सम्राट उदयादित्य बमदेव के समय में उसके गुरु जयेन्द्रबर्मन ने ब्रह्म यज्ञ किया था। मालिक को यजमान की ओर से दक्षिणा भी देने की प्रथा थी। सूर्यवर्मन ने दिवाकर पण्डित को हवन के पश्चात् बहुत अधिक दक्षिणा दी थी। एक लेख में मालिनी नामक एक स्त्री द्वारा ब्रह्म-यज्ञ करने का उल्लेख भी प्राप्त हुआ है।

कम्बुज में तप की प्रथा भी विद्यमान थी और विद्वान यतियों को अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था। शिखाशिव नामक एक यति जिसने कि एक शिव-मन्दिर का निर्माण किया था, अत्यन्त प्रमुख हुआ। स्त्रियों को भी तप करने का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिकार था। जयवर्मन सप्तम की दूसरी रानी इन्दिरा देवी ने तप किया। योगियों को विवाह का भी अधिकार था। एक लेख में महीधर ब्राह्मण के उमा नामक एक स्त्री से विवाह करने का उल्लेख हुआ है। कुछ लेखों से यह जानकारी भी प्राप्त होती है कि वहाँ तीर्थयात्रा आदि का भी प्रचलन था।

देवराज मत—कम्बुज में देवराज मत का भी प्रचलन था। अनेक विद्वानों का मत है कि यह मत कम्बुज में मध्य जावा से आया था और इसका प्रसार चम्पा में हुआ था। इस मत के विषय में निश्चित रूप से कोई धारणा नहीं बनाई जा सकती। इसमें राजकीय प्रशासन का मुख्य अंग शिव की मूर्ति को माना जाता था जो लिंग के रूप में काफी ऊँचाई पर कैलाश पर्वत के संकेतों से युक्त स्थापित की जाती थी। साथ ही कुछ तांत्रिक क्रियाएँ भी की जाती थीं। सम्राट को देवता स्वरूप मान प्रदान किया जाता था और देवता की मूर्ति पर उसकी मूर्ति भी स्थापित की जाती थी।

देवराज मत के सम्बन्ध में उदयादित्य वर्मन का स्डोक-काक लेख उल्लेखनीय हैं। जिसमें सम्राट परमेश्वर जयवर्मन द्वारा जावा से लौटने और एक राजकीय देवता जिसे ख्मेरी भाषा में 'कम्रतेंजगत त राज' कहा गया है, एवं जिसका संस्कृत रूप देवराज है, की मूर्ति महेन्द्र पर्वत पर स्थापित करने का उल्लेख हुआ है। देवराज मत में सम्राट की स्थापना को भी स्थान दिया गया था। इस मत से सम्बन्धित कुछ तांत्रिक सस्कार भी थे जिनका उल्लेख भी स्डोक-काक लेख में हुआ है। वास्तव में देवराज मत का सम्बन्ध शैव-शक्ति की उपासना से था परन्तु उसमें पूर्वजों के मूर्ति की स्थापना एवं स्थानीय देवी-देवताओं की उपासना भी सम्मिलित थी। इस मत के अन्तर्गत सम्राट को देवता की शक्ति का प्रतीक माना जाता था जिससे कि समस्त देश को राजनीतिक सूत्र में बाँधा जा सके। सम्राट को देवता का रूप प्रदान करके राष्ट्र के एकीकरण का प्रयास किया जाता था। देवराज मत के अन्तर्गत अनेक धार्मिक भावनाओं का समावेश था जिनका प्रमुख उद्देश्य सम्राट को ईश्वरीय रूप प्रदान करना था। उसमें पूर्वजों की उपासना भी की जाती थी। पहले देवराज मत का संकेत केवल शिव लिंग की स्थापना से ही था परन्तु बाद में इसमें विष्णु एवं बुद्ध की मूर्तियाँ भी स्थापित की जाने लगीं।

बौद्ध धर्म

कम्बुज में ब्राह्मण धर्म के काफी बाद बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ। पहले वहाँ बौद्ध धर्म के महायान मत का प्रसार हुआ। बौद्ध धर्म का प्रसार ब्राह्मण धर्म के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में नहीं हुआ बल्कि वह ब्राह्मण धर्म का सहायक सिद्ध हुआ। इसका शैव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मत के साथ संतुलन हुआ और महात्मा बुद्ध को भी त्रिमूर्ति के मध्य स्थान दिया गया। कालान्तर में हीनयान धर्म ने इस संतुलन को बिगाड़ दिया और ब्राह्मण धर्म एवं बौद्ध धर्म के मध्य खाई पैदा हो गयी। परन्तु कम्बुज में कभी भी बौद्धों और ब्राह्मणों के मध्य संघर्ष नहीं हुआ। सम्राटों ने सदैव दोनों धर्मों को आदर की दृष्टि से देखा।

कम्बुज में बौद्ध धर्म का सबसे पहला लेख छठी शताब्दी या सातवीं शताब्दी के आरम्भ का मिलता है। इस लेख में 3 बोधिसत्वों-शास्ता, मैत्रेय और अविलोकितेश्वर के प्रति दान में दिए गए दास-दासियों का उल्लेख किया गया है। अविलोकितेश्वर का उल्लेख किसी अन्य लेख में नहीं है परन्तु शक संवत् 791 ई० के प्रसततकम के लेख में लोकेश्वर की स्थापना का विवरण है। कहा जाता है कि राजेन्द्र वर्मन के शासनकाल में कम्बुज में बौद्ध धर्म की काफी उन्नति हुई। एक लेख में उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। राजेन्द्र वर्मन के समय के एक लेख में बौद्ध धर्म के योगाचार्य-मत का भी उल्लेख हुआ है।

कम्बुज में बौद्ध धर्म के अनेक देवी-देवताओं की उपासना मूर्ति की स्थापना का उल्लेख प्राप्त होता है। जयवर्मन पंचम के 988 ई० के एक लेख में बुद्ध प्रज्ञापारमिता लोकेश्वर, मैत्रेय, वज्रिन, और इन्द्र आदि की उपासना का उल्लेख हुआ है। उनकी उपासना पद्म वैरोचन नामक एक बौद्ध भिक्षु ने की थी। नाम-वन्ते लेख में 981 ई० में त्रिभुवन राज द्वारा बुद्ध की माता की मूर्ति स्थापित करने का उल्लेख भी है। जयवर्मन सप्तम की दोनों रानियाँ बौद्ध थीं और उसके फिमानक लेख में त्रिकाय, बुद्ध एवं लोकेश्वर की आराधना का उल्लेख है। जयवर्मन की छोटी बहन भी बौद्ध धर्मिणी थी।

कम्बुज में हीनयान का प्रवेश महायान के बाद हुआ। सूर्य वर्मन के समय का हीनयान से सम्बन्धित एक लेख श्याम के लापवुरि में प्राप्त हुआ है। इस लेख के आधार पर भी यह कहा जाता है कि कम्बुज में महायान के साथ हीनयान का भी प्रचलन था। महायान मत से सम्बन्धित अनेक लेख अंकोर, सियेम, रापः, व नोम वह मबेंग, यही, अंकोर के दक्षिण अंकारे ओम आदि स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। चीनी स्रोतों से भी कम्बुज फूनान में बौद्ध मत के प्रसार का उल्लेख प्राप्त होता है। कहा जाता है कि 539 ई० में रुद्रवर्मन ने चन्दन की एक बुद्ध मूर्ति चीनी सम्राट को भेजी थी। 675 ई० में भारत जाते समय इत्सिंग नामक एक चीनी यात्री ने फूनान देश में बौद्ध धर्म के प्रसार का उल्लेख किया है। उसने यह भी लिखा है कि एक दुष्ट राजा ने बौद्ध सम्प्रदाय के लोगों को नष्ट कर दिया था और इससे बौद्ध धर्म को काफी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्षति हुई ... । ऐसा प्रतीत होता है कि वा-नोम क्षेत्र जो कि हिन्द चीन के दक्षिण-पूर्वी भाग में था, में बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ था और कदाचित भववर्मन के किसी वंशज ने इस धर्म को हानि पहुँचाई थी । 10 वीं, 13 वीं शताब्दी में बौद्ध धर्म यहाँ अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँच गया । सूर्य वर्मन और जयवर्मन सप्तम के प्रयत्नों से इस धर्म की विशेष उन्नति हुई । यशोवर्मन ने भी सौगत आश्रम की स्थापना करके बौद्ध धर्म की उन्नति में योगदान दिया ।

कम्बुज में बौद्ध धर्म के प्रसारकों में फिमानक, कवीन्द्रमथन, कीर्तिवर्मन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । कवीन्द्रमथन, राजेन्द्रवर्मन और कीर्ति वर्मन का मंत्री था और उसने बुद्ध, बज्रपाणि एवं प्रज्ञापारमित और लोकेश्वर की मूर्तियाँ स्थापित करवाई थीं । कीर्तिवर्मन, जय वर्मन पंचम का मंत्री था और उसके प्रयासों से बौद्ध धर्म की अपार उन्नति हुई । उसके काल में 'महाविभाग' और 'तत्व संग्रह' की टीका भारत से कम्बुज आई ।

कम्बुज के लेखों में बौद्ध धर्म से सम्बन्धित सार्वजनिक कार्यों का भी उल्लेख हुआ है । के-ता-प्रोम के एक लेख में सम्राट जयवर्मन द्वारा किए गए सार्वजनिक कार्यों का उल्लेख हुआ है । उसने अशोक की भाँति ही बौद्ध धर्म के प्रसार के साथ सार्वजनिक क्षेत्र में अनेक कार्य किए । एक लेख में इसके द्वारा 101 चिकित्सालय बनवाने का उल्लेख प्राप्त होता है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि 10 वीं शताब्दी के बाद कम्बुज में बौद्ध धर्म की महायान साखा की विचारधारा का पर्याप्त प्रसार हुआ इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि कम्बुज में बौद्ध धर्म कभी भी ब्राह्मण धर्म का विरोधी नहीं बना और यही कारण था कि ब्राह्मणों ने तथागत को भी ब्राह्मण धर्म में स्थान दिया ।

प्रश्न (4) कम्बुज की शिक्षा, साहित्य एवं कला के विषय में अपने विचार प्रकट कीजिए ।

शिक्षा, साहित्य एवं कला के क्षेत्र में भी कम्बुज को भारत की बहुत बड़ी देन है । यहाँ हम प्राचीन काल में कम्बुज की शिक्षा, साहित्य एवं कला की उन्नति पर संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं :—

शिक्षा

कम्बुज की शिक्षा-प्रणाली, अध्ययन विषय, विभिन्न स्तरों की शिक्षा आदि की व्यवस्था में भारतीय प्रणाली का अनुसरण किया गया है और संस्कृत, पाली एवं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राकृत तीनों भाषाओं को अपनाया गया है। सर्वोच्च स्थान संस्कृत को प्रदान किया गया है। एक लेख में गुणाढ्य का भी उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि वहाँ प्राकृत भाषा के अध्ययन का का ी प्रचलन था। कम्बुज में स्त्रियों को भी शिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी।

शिक्षक एवं विद्यार्थी—कम्बुज के लेखों में उपाध्याय या अध्यापक का उल्लेख हुआ है। विद्यार्थियों को अन्तेवासिन या शिष्य के नाम से पुकारा जाता था। शिव सोम का एक शिष्य श्री इन्द्र परमेश्वर क्षेत्र में उपाध्याय नियुक्त किया गया था। परमेश्वर के के मन्दिर में 'विजय की उपाध्याय पद पर नियुक्ति हुई थी। यह सब बातें लेखों के द्वारा ज्ञात होती हैं। शिक्षा के केन्द्र मन्दिर थे। इन मन्दिरों में स्त्रियों को रहने का अधिकार नहीं था और उनके लिए पढ़ने का अलग प्रवन्ध था। ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्रियाँ अधिकतर घर पर ही शिक्षा प्राप्त करती थीं। जयवर्मन सप्तम की प्रथम रानी ने अपनी वड़ी वहन से शिक्षा प्राप्त की थी। कम्बुज के लेखों से गुरु-शिष्य के सम्बन्धों पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु-शिष्य का सम्वन्ध, पिता-पुत्र की भाँति था।

शिक्षण-केन्द्र—जैसा कि हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि धार्मिक आश्रम एवं मन्दिर शिक्षा के केन्द्र थे। यशोवर्मन ने इस प्रकार के 100 आश्रम एवं प्रत्येक के साथ एक-एक मन्दिर बनवाये थे। उनके प्रमुख को कुलाध्यक्ष के नाम से पुकारा जाता था। वैष्णव आश्रमों में 3 वेदों के ज्ञात, आचार्य, शाब्दिक ब्रह्मचारी आदि आदर के पात्र थे। शैव आश्रमों में शिव और पाशुपति आचार्यों एवं वैय्याकरणों आदि को गौरव की दृष्टि से देखा जाता था। बौद्ध आश्रमों में बौद्ध धर्म के ज्ञाताओं को ऊँची दृष्टि से देखा जाता था। सभी आश्रमों में 2 लेखक, दो पुस्तक रक्षक एवं दो राजकुटीपाल और 6 पत्रकार नियुक्त किये जाते थे। आश्रमों के खर्चे का प्रवन्ध राजा एवं उच्च श्रेणी के पुरुषों द्वारा किया जाता था। व्यापारियों से अनाज एवं वस्त्र आदि प्राप्त किये जाते थे।

अध्ययन विषय—कम्बुज में विद्यार्थी अपनी इच्छानुकूल विषयों का चयन करते थे। इन्द्र वर्मन का गुरु शिवसोम, शास्त्र, वेद, काव्य, पुराण, साहित्य एवं व्याकरण आदि का पूर्ण ज्ञाता था। शिवस्वामी वेद, व्याकरण और तर्क में पारंगत था। कवीन्द्र पंडित ने 5 व्याकरण, शव्द-अर्थ, आगम शास्त्र, काव्य, सम्पूर्ण महाभारत एवं रामायण का पूर्ण अध्ययन किया था। इससे स्पष्ट है कि कम्बुज में उन सभी विषयों की शिक्षा दो जाती थी जिनकी भारत में दी जाती थी। वेदांगों के अन्तर्गव छन्द, व्याकरण, ज्योतिष एवं काव्यों का अध्ययन किया जाता था। गन्धर्व

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्या, शिल्प विद्या, होराशास्त्र, एवं चिकित्सा शास्त्र का उल्लेख भी एक लेख में हुआ था। रामायण, महाभारत, पुराणों आदि का अध्ययन भी होता था। वहां मनुस्मृति, रघुवंशम, किरातार्जुनीयम आदि भी पहुँच चुके थे। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' वहां के विद्यार्थियों के लिए व्याकरण शास्त्र की एक प्रमुख पुस्तक थी। उपनिषदों का कहीं भी उल्लेख प्राप्त नहीं है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि श्रुति के अन्तर्गत यह भी आ जाते थे। इस प्रकार कम्बुज में ब्राह्मण-शिक्षा का विशेष प्रबन्ध हुआ था।

बौद्ध शिक्षा—बौद्ध शिक्षा केन्द्रों को 'सौगताश्रमों' के नाम से पुकारा जाता था। जय वर्मन पंचम के मंत्री कीर्तिवर्मन ने विदेशों से बहुत से बौद्ध ग्रन्थों को मँगवाया था। सूर्यवर्मन ने भी बौद्ध शिक्षा के लिए एक केन्द्र खोला था। जयवर्मन द्वितीय की पत्नी इन्दिरा देवी ने शास्त्रों का गहन अध्ययन किया था। बौद्ध आश्रमों में स्त्री शिक्षा का भी प्रचलन था।

साहित्य एवं लेखन-कला

साहित्य—कम्बुज में वेद, वेदांग, षड्दर्शन, व्याकरण, पुराण आदि के साथ ही कालिदास, भारवि की साहित्यिक रचनाओं का भी अध्ययन होता था। मनुस्मृति, कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र, वात्स्यायन का काम-सूत्र भी कम्बुज में प्रचलित थे। वहाँ के विद्वान् शुद्ध संस्कृत लिख सकते थे। वहाँ के विद्वानों ने भारतीय साहित्य के निर्माण में विशेष योगदान दिया। यशोवर्मन ने एक महाभाष्य पर टीका लिखी थी। वहाँ के विद्वानों द्वारा लिखी गयी रचनाओं के कुछ उल्लेख प्राप्त हुए हैं। स्मृतियों से श्लोक उद्धृत किए जाते थे। विद्वानों को राजकीय संरक्षण प्राप्त होता था और राजा कवियों आदि को प्रोत्साहित करता था। जयवर्मन तृतीय का गुरु भागवत एक उच्चकोटि का कवि था और उसे एक सोने की पालकी भेंट की गई थी तथा कवीन्द्र पंडित की उपाधि दी गयी थी। फल प्रिय नामक एक कवि को भी कवीन्द्र पण्डित की उपाधि से विभूषित किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि कम्बुज में कवि सम्मेलनों का भी आयोजन होता था। एक लेख में एक कवि द्वारा अपने प्रतिद्वन्द्वी को हराने का उल्लेख प्राप्त हुआ है।

लेखन-शैली—कम्बुज में ब्राह्मी लिपि और दक्षिणी पल्लव लिपि में लिखे गये लेख प्राप्त हुए हैं। इससे स्पष्ट है कि वहाँ की लेखन शैली भारतीय पल्लव या उत्तर भारत की लिपि से मिलती-जुलती थी। वहाँ के निवासी भारतीय वर्णमाला का भी प्रयोग करते थे। त्सिन वंश के इतिहास में जिसमें 265 ई० से 419 ई० तक का विवरण प्राप्त होता है मध्य भारत की लिपि वर्णमाला से मिलती-जुलती फ़ुनान की लिपि और वर्णमाला का प्रयोग किया गया है। 18वीं शताब्दी में लिखे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गये टांग-टिएन नामक ग्रन्थ की लिपि एवं वर्णमाला भी भारतीय है। इससे स्पष्ट है कि कम्बुज में भारतीय लिपि और वर्णमाला का प्रचलन था।

कला

कम्बुज की कला पर उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत दोनों की कला का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है तथा वहाँ के प्राचीन मन्दिर भारत के उत्तर भारत के गुप्तकालीन मन्दिरों एवं दक्षिणी भारत के गोपुरम की याद दिलाते हैं। कम्बुज में वास्तुकला और शिल्पकला दोनों की ही अपार उन्नति हुई। यहाँ हम वहाँ की कला की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं :—

(1) वास्तुकला—कम्बुज की वास्तुकला की उन्नति में वहाँ के शासकों ने विशेष योगदान दिया। वास्तव में कम्बुज की वास्तुकला का अध्ययन 2 कालों के अन्तर्गत किया जाता है—(1) आदि ख्मेर कला और (2) शास्त्रीय युग की कला।

(अ) आदि ख्मेर कला—ख्मेर कला के आदि युग के प्राचीन अंग को ही ख्मेर कला के नाम से भी पुकारा जाता है। इस पर भारतीय प्रभाव बहुत अधिक है और अनेक विद्वान यही कहते हैं कि दक्षिणी भारत की पल्लव कला और ख्मेर कला एक ही शैली की है। ख्मेर कला का काल ईसा की 6ठीं से 7वीं शताब्दी तक निर्धारित किया गया है। इस कला का मुख्य केन्द्र संभोर एवं प्राई कुक है जो कपांग के निकट फूनान की प्राचीन राजधानी रही होगी। इस युग में मन्दिरों का निर्माण पूर्णतया भारतीय ढंग से हुआ। मन्दिर इंटों के बनते थे और उनमें पत्थरों का भी प्रयोग होता था। पत्थर के मन्दिरों में संभोर के निकट हंचेई एवं कोकोथेम के प्राईकुक के मन्दिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हंचोई के मन्दिर में चतुर्भुज अनन्तशयन की प्रतिमा है। प्राईकुक के मन्दिर की दीवारों पर बने पतले स्तम्भों पर अति सुन्दर नक्काशी हुई है। संभोर और प्राईकुक में इंटों के सुन्दर मन्दिरों का निर्माण हुआ है। वेयोंग का प्राचीन मन्दिर भी 7वीं शताब्दी में बनवाया गया था। यह मन्दिर भी अतीव सुन्दर हैं। इस मन्दिर पर भी भारतीय कला की छाप देखने को मिलती है। वास्तव में यह मन्दिर भारत के भूमरा मन्दिर, कांचीपुर के कैलाश मन्दिर और मामल्यपुरम् के रथों की सम्मिलित झाँकी प्रस्तुत करता है।

(ब) शास्त्रीय युग की कला—ख्मेर की कला का दूसरा युग 8वीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है और इसे शास्त्रीय युग की कला के नाम से पुकारा जाता है। इस युग की कला पर भी भारतीयता की छाप है परन्तु इस समय के कलाकारों

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ने कुछ स्वतन्त्रता को भी अपनाया है। शास्त्रीय युग की कला के विकास में भी सम्राटों का योगदान अत्यधिक रहा और अनेक विद्वानों ने इस युग की कला का नामकरण शासकों के नाम पर भी किया है जैसे इन्द्रवर्मन की कला, यशोवर्मन की कला आदि।

इस युग में अनेक सुन्दर मन्दिरों का निर्माण हुआ है। 869 ई० में प्रह-खोन, 891 ई० में वंकोंग और 893 ई० में लोले के मन्दिर स्थापित हुए। यशोवर्मन प्रथम ने अंकोर राज्य की स्थापना की और वहाँ अनेक सुन्दर मन्दिरों का निर्माण किया। यहाँ की कला का प्रमुख केन्द्र नोम-वकेंग था और यहाँ 9वीं शताब्दी के अन्त एवं 10वीं शताब्दी के प्रारम्भ में वकेंग के मन्दिर और नाम-क्रोम-नोम-वोक, प्रसत-कवो तथा वक्सई वक्रों का निर्माण किया गया। 10वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बन्ते-श्राई की कला प्रमुख है और इस सम्बन्ध में मेवोन एवं प्रेरुप के मन्दिर भी स्थापित किए गए। सूर्यवर्मन प्रथम (1012-1049) में ख्मेर की कला तथा उत्तर में लाओस एवं पश्चिम में श्याम की ओर भी बढ़ी और 11वीं शताब्दी के आरम्भ तक वह वलेंग कला के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस कला में ता-क्यो, फिमानक के मन्दिरों का निर्माण हुआ। 1068 ई० में वफ्ओन के प्रसिद्ध मन्दिर का निर्माण हुआ जिसकी कला एक स्वतन्त्र कला है। 11वीं शताब्दी के अन्त और 12वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कम्बुज की कला को बहुत धक्का लगा। 11वीं शताब्दी के अन्त में ता-प्रोम, प्रह-खन, अंकोर थोम के गोपुरम, बन्ते-चमर एवं प्रासाद आदि भी निर्मित हुए। यही खमेर की कला का अन्तिम युग है और 14वीं शताब्दी में स्याम से संघर्ष होने के फलस्वरूप वहाँ की कला का अन्त हो गया। इस युग में लकड़ी के मन्दिरों का निर्माण भी हुआ। अधिकतर मन्दिर भारतीय शैली पर ही निर्मित किये गये परन्तु यहाँ के कलाकारों ने कुछ स्वतन्त्रता का भी परिचय दिया।

लोले के मन्दिर—कम्बुज की कला में लोले के मन्दिर अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। यशोवर्मन द्वारा निर्मित यह मन्दिर अपने शिखर और अलंकरण के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। ये मन्दिर एक ही स्थान पर क्रास आकार के क्रम से बनाये गये हैं और उनके प्रवेश द्वार खुदे हुए अत्यन्त सुन्दर चित्रों से अलंकृत हैं। दरवाजे पर, आलों पर, द्वारपालों की मूर्तियाँ हैं। छत से कलश तक का शिखर कई भागों में बँटा है जो क्रम से नीचे से ऊपर छोटे होते जाते हैं। ऊपर का कलश द्रविड़ परिपाटी का है। लोले के मन्दिरों में अधिकतर शिव पार्वती की मूर्तियाँ मिलती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मन्दिर ख्मेर कला और शास्त्रीय कला के मध्य युग के हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बक्सई-चम्कों और बखेंडा के मन्दिर—बक्सई-चम्को का मन्दिर भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसका निर्माण 947 ई० में हुआ था। लोले के मन्दिर की तरह उस पर शिखर है यह मन्दिर समतल भूमि पर नहीं बना है। प्रवेश द्वार तक पहुँचने के हेतु चारों ओर सीढ़ियाँ हैं और मन्दिर 5 मंजिल के पिरामिड स्थल पर है। इस मन्दिर में कोई भी लिंग-मूर्ति प्राप्त नहीं है और कदाचित इसका निर्माण पूर्वजों की मूर्तियों की स्थापना हेतु किया गया था।

अंकोर-थोम के निकट यशोवर्मन द्वारा निर्मित नोम-बखेंग का मन्दिर एक पहाड़ी पर बना हुआ है जिसमें यशोवरेश्वर नामक शिव लिंग की स्थापना हुई थी। इसमें एक विहार को 5 मंजिल के शुण्डाकार मन्दिर में परिणित किया गया है। सबसे ऊपर की मंजिल पर पत्थर के 5 शिखर हैं। शायद इन शिखर मन्दिरों के बीच में देवराज मत से सम्बन्धित कोई देव-स्थान रहा होगा। प्रत्येक मंजिल में श्रेणियों के दोनों ओर पत्थर के सिंह बैठे हुए दिखलाये आये हैं। यह मन्दिर शास्त्रीय युग की कला का एक अत्यन्त सुन्दर नमूना है।

अंकोरवाट (नगरमंदिर)—सूर्यवर्मन द्वारा बनवाये गये अंकोरवाठ के मन्दिरों में ऊँचाई और चौड़ाई पर संतुलन का सफल प्रयास हुआ है। यह मन्दिर कम्बुज के मन्दिरों में सुन्दरतम रहा होगा। ढाई मील के घेरे में बने हुए इस विशाल मन्दिर के चारों ओर एक खाई है और उसमें प्रवेश करने के हेतु एक पुल बना है। यह मन्दिर क्रास आकार क्रम में बना है। इसकी बीथी (गैलरी) लगभग 1/2 मील की परिधि में है और इसमें 25 सौ फुट की लम्बाई तक विष्णु-यम से सम्बन्धित एक कथानक चित्र अंकित है। मुख्य द्वार पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ है। और ऊपर पहुँचने के लिए क्रास आकार के 4 आंगन हैं। देवस्थान पृथ्वी से 200 फिट की ऊँचाई पर है जहाँ पर त्रिदेवराज के मूर्ति की स्थापना की गई थी। मन्दिर के बीच का शिखर अत्यन्त ऊँचा है और उसके चारों कोनों पर भी 4 शिखर बने हुए हैं। इन शिखरों की तुलना भुवनेश्वर के मन्दिरों के शिखरों से की जाती है। मन्दिर के बाहरी भाग की बनावट, झुकाव और गोलाई में ख्मेर के कलाकारों ने अपनी स्वतंत्र बुद्धि का परिचय दिया है और उनमें भारतीय प्रभाव देखने को नहीं मिलता। इन मन्दिरों में कहीं पर भी चीनी के प्लास्टर का प्रयोग नहीं हुआ। यह मन्दिर स्थापत्य कला और शिल्पकला दोनों ही दृष्टियों से अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

निएक पेन का मन्दिर—13 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बने हुए निएक पेन का मन्दिर भी उल्लेखनीय है। यह मन्दिर कमलाकार सोपान युक्त मेढ़ी पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बना हुआ है। मन्दिर के शिखर का अमलक भी कमल की भांति है। नकली द्वार पर लोकेश्वर की प्रतिमा है और कम्बुज की स्थापत्य कला का सुन्दर नमूना है।

स्थापत्य कला के अन्य नमूने—जयवर्मन सप्तम ने अपनी राजधानी अंकोर थोम के चारों ओर दीवार, 5 बड़े द्वार और एक खाई बनवाई और बीच में बेयोन का विशाल लोकेश्वर मन्दिर बनवाया जिसके 54 शिखरों के प्रत्येक कोने पर लोकेश्वर का मुख अंकित है। इसके अतिरिक्त प्रह-खन, ता-प्रोम, बन्ते-श्राई के विहारों और निएंक-पिकग के छोटे मन्दिरों के निर्माण का श्रेय भी उसी को प्राप्त है इन्द्रवर्मन के गुरु द्वारा 1304 ई० में निर्मित बन्ते-श्राई का गोपुरम, कम्बुज स्थापत्य कला का सुन्दर नमूना है। इसके एक पीढ़े पर 3 मन्दिरों का निर्माण हुआ जहाँ शिव लिंगों की स्थापना की गई। दो और स्थान मन्दिर पुस्तकालय के काम में आते थे। संभोर और लोले की भांति यह सब एक ही पीढ़ी पर बने हुए हैं। बन्ते-श्राई के मन्दिरों का महत्व शिल्पकला के फलस्वरूप अधिक बढ़ गया है।

अंकोरवाट के 100 वर्ष बाद अंकोरथोम का निर्माण किया गया। इसमें भव्य प्रासादों के भी दर्शन होते हैं। नगर के चारों ओर की दीवारों पर 5 फाटक हैं जिनके ऊपर 70 फुट ऊँचे शिखर हैं। बेयोन का मन्दिर नगर के मध्य में है। यह मन्दिर बौद्ध धर्म से सम्बन्धित है और लोकेश्वर की मूर्तियाँ बुद्ध की मूर्तियों की सी प्रतीत होती है। बौद्ध धर्म से सम्बन्धित होने पर भी इस मन्दिर में सैनिक चित्रों के साथ ही रामायण के चित्र भी अंकित किए गए हैं। जयवर्मन स्वयं बौद्ध था। उसने 1191 ई० में अपने पिता की मूर्ति को लोकसेवा के रूप में स्थापित करने के हेतु प्रह-सन का मन्दिर बनवाया। यह मन्दिर स्थापत्य कला के साथ ही शिल्प कला के लिए प्रसिद्ध है। ता-प्रोम के मन्दिर का निर्माण भी जयवर्मन सप्तम ने अपनी माँ की मूर्ति स्थापित करने के लिए करवाया। ये सभी मन्दिर कम्बुज की स्थापत्य कला के सुन्दर नमूने हैं।

शिल्प कला—कम्बुज की शिल्पकला स्थापत्य कला की भाँति भारतीय प्रभाव से मुक्त है। आदि ख्मेर काल में स्थापत्य कला की भाँति शिल्पकला भी पूर्णरूप से भारतीय है। इस युग के शिल्प को देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों यह भारतीय कलाकारों की कृतियाँ हैं। वेश भूषा, अलंकरण, आदि सभी कुछ भारतीय प्रतीत होती है। कलाकारों ने मुख्यतः धार्मिक चित्रों का ही निर्माण किया है और अनेक चित्रों में रामायण, महाभारत एवं पुराणों की कथाओं का आश्रय लिया गया है। कालान्तर में अंकोर थोम के बेयोन मन्दिर में संकेत चित्र भी बनाये गये हैं साथ ही कम्बुज की झांकी भी अंकित की गई है। कम्बुज सम्राटों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की इष्ट देवता के रूप में जो मूर्तियां बनी हैं वे अतीव सुन्दर हैं। कम्बुज की शिल्प कला मुख्य रूप से धार्मिक शिल्पकला है वहाँ की निर्मित मूर्तियों को हम 3 कोटियों में बाँट सकते हैं (1) ब्राह्मण मूर्तियाँ (2) बौद्ध मूर्तियाँ और (3) दैनिक जीवन से सम्बन्धित मूर्तियाँ।

(1) ब्राह्मण मूर्तियाँ—ब्राह्मण देवी-देवताओं के अनेक मूर्तियों का निर्माण कम्बुज में हुआ। विष्णु, शिव, ब्रह्मा, गणेश, हरिहर, उमा, महेश्वरी और बलराम आदि की अनेक मूर्तियाँ ख्मेर कला में बनाई गई हैं। त्रिमूर्ति में ब्रह्मा का नाम पहले आता है परन्तु प्रह-प्रोम की कला में ब्रह्मा को प्रधान रूप नहीं मिला है। ब्रह्मा की खड़ी हुई मूर्तियों में फ्नोट (वतपोवाल) एवं नोमप्रसत राक की मूर्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। ब्रह्मा की सबसे सुन्दर मूर्ति वसेत से प्राप्त हुई है जो इस समय म्यूजिगिमे (पेरिस) में हैं। इनमें ब्रह्मा पद्मासन लगाये हैं और उनके मुख पर गम्भीरता का भाव अंकित है। ओठों पर मुस्कान है।

विष्णु की भी अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। यह मूर्तियाँ खड़ी हुई और शेषनाग शैय्या पर शयन करती हुई दोनों ही रूपों में दिखाई गई हैं। खड़ी मूर्तियों में सबसे सुन्दर और अच्छी दशा में विष्णु की मूर्ति प्रसत-डम्प्रे क्राप में प्राप्त हुई है। इस मूर्ति में विष्णु शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हैं और उनके मुख पर प्रसन्नता का भाव है। मेबोन में विष्णु की एक कांसे की मूर्ति प्राप्त हुई है जो पूरी तरह टूटी हुई है। तुओल-वसेत की सुहावटी (लिन्टल) पर विष्णु की शेषनाग शैय्या पर शयन करतो हुई मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है। उनकी नाभि से निकले हुए कमल पर ब्रह्मा विराजमान हैं। ख्मेर के कलाकारों ने विष्णु के विभिन्न अवतारों यथा कूर्मावतार, नृसिंहावतार, वाराहावतार, राम एवं कृष्ण से सम्बन्धित लीलाओं को भी चित्रित करने का प्रयास किया है। अंकोर-थोम में विष्णु से सम्बन्धित अनेक चित्र प्राप्त हुए हैं। मारीच का आखेट, सीता का हरण, राम-सुग्रीव मित्रता, राम-रावण आदि के अनेक सुन्दर चित्र प्राप्त हुए हैं। कृष्ण की गोवर्द्धन पर्वत उठाने की लीला को भी अत्यन्त सुन्दरता से चित्रित किया गया है। कम्बुज में जो मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं उनमें शिव की मूर्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। शिव की अनेक मूर्तियाँ बैठी और खड़ी हुई प्राप्त हुई हैं। उनके शरीर का आधा भाग मुख एवं शीश भी कई स्थानों से प्राप्त हुआ है। म्यूजे अल्बर्ट-सराऊ में शिव की एक अखंडित मूर्ति है। वकोन से प्राप्त एक मूर्ति में शिव के मुकुट पर बाल-चन्द्र दिखलाया गया है। वसाक से प्राप्त मूर्ति बैठी हुई अवस्था में है, जिसका बाँया घुटना मुड़ा हुआ है, बाँया हाथ उसी जाँघ पर है, माथे पर तीसरा नेत्र है। बन्ते-श्राई में शिव के मुड़े हुए घुटने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर बैठी हुई पार्वती को दिखलाया गया है। प्राई-वेन में शिव को उमा और नन्दी सहित दिखलाया गया है। बन्ते-श्राई में रावण द्वारा कैलाश पर्वत उठाये जाने का चित्र अतीव सुन्दरता से चित्रित किया गया है। उसमें शिव-पार्वती के साथ कैलाश, पर्वत पर बैठे हुए हैं साथ में गणेश भी हैं। कुछ यती भी आपस में बैठे बातचीत कर रहे हैं। पर्वत की गुफाओं में बाघ, सिंह हिरन आदि भागते हुए दिखलाये गये हैं। कम्बुज में शिव की तांडव नृत्य करती हुई कोई भी मूर्ति प्राप्त नहीं हुई है परन्तु चम्पा में इस तरह की मूर्त्ति अवश्य ही मिली है। नृत्य करती हुई अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं परन्तु यह सभी मूर्तियाँ अप्सराओं की हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश के साथ ही अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ पर्याप्त संख्या में प्राप्त हुई हैं। एक मूर्ति में बलराम को मूसल लिए हुए चित्रित किया गया है। मोर पर चढ़े हुए कार्तिकेय और ऐरावत हाथी पर चढ़े हुए इन्द्र को भी चित्रित किया गया है। ख्मेर कला में अप्सराओं, यक्षों, यतियों की भी अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। मन्दिरों की रक्षा में द्वारपालों को भी चित्रित किया गया है। महाभारत के चित्रों में अंकोरवाट में वाण शैय्या पर पड़े हुए भीष्म द्वारा दिया गया उपदेश अत्यन्त सुन्दरता से चित्रित किया गया है। अंकोरवाट की बीथियों में कृष्ण-लीला और विष्णु से सम्बन्धित कथाएँ चित्रित हैं। सागर-मन्थन, शिव द्वारा कामदेव को भस्म करने आदि के चित्र अतीव सुन्दर हैं।

(2) **बौद्ध मूर्तियाँ**—कम्बुज में महात्मा बुद्ध, बोधिसत्व, मैत्रेय, अवलोकि तेश्वर, लोकेश्वर, और प्राज्ञा-पारमिता की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। बुद्ध की खड़ी मूर्तियों में प्राई-केवास, वात-रोम और लोक-प्राहयात से प्राप्त मूर्तियाँ मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं। बुद्ध के केश घुँघराले हैं और उनका संघाटी से पूरा शरीर ढँका है। इन मूर्तियों की तुलना सारनाथ से प्राप्त बुद्ध की मूर्ति से की जाती है। अंकोरवाट में प्राप्त एक मूर्ति में बुद्ध अभय मुद्रा में हैं। यहाँ बुद्ध पद्मासन मुद्रा में हैं। नाग पर पद्मासन पर बैठे हुए भी बुद्ध की मूर्तियाँ प्राप्त हुई है। नाग पर पद्मासन पर बैठे हुए भी बुद्ध की कई मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। बोधिसत्व लोकसेवा की 4 भुजा वाली कई मूर्तियाँ भी कम्बुज में प्राप्त हुई हैं। यह दया केप्रतीक हैं और उनके चारा हाथों में बोतल, पुस्तक, माला और कमल का फूल है। एक मूर्ति में केवल उनके दो ही हाथ दिखलाये गये हैं। प्रज्ञा-पारमिता की मूर्ति भी चित्रित की गई है। हेवज की नाचती हुई काँसे की मूर्ति अत्यन्त रमणीय है। यह मूर्ति बन्ते-श्राई में प्राप्त हुई है। कदाचित यह बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित शक्ति का देवता था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(3) दैनिक जीवन से सम्बन्धित मूर्तियाँ—कम्बुज के कलाकारों ने दैनिक जीवन से सम्बन्धित चित्रों को भी अंकित करने का प्रयास किया है। बेयोन के मन्दिर में दैनिक जीवन से सम्बन्धित अनेक चित्र हैं। मंदिर की बाहरी दीवार पर धनुष बाण लिए हुए हाथी पर सेना सहित जयवर्मन को दिखलाया गया है। इसी मन्दिर में कुछ व्यक्तियों को नाव पर भ्रमण करते हुए दिखलाया गया है। बड़ी मछलियों, नागों, उड़ने वाले पक्षियों, झील में मछलियों का शिकार आदि के चित्र भी अत्यन्त सजीवता से अंकित हैं। एक चित्र में बाजार में एक आदमी को मोल-भाव करते हुए दिखलाया गया है। एक अन्य चित्र में कम्बुज देश के निवासियों का प्रमुख मनोरंजन मुर्गे की लड़ाई भी चित्रित की गयी है। वन्ते-श्राई में 2 व्यक्तियों को एक ही स्त्री के लिए लड़ते हुए चित्रित किया गया है। इन दोनों के हाथ में मूसल हैं और दोनों उसका हाथ पकड़े हुए हैं।

नृत्य कला

कम्बुज में नृत्य-कला का भी प्रचलन था। अनेक चित्र नृत्य करते हुए भी मन्दिरों की दीवारों पर प्राप्त हुए हैं। शिव की ताण्डव करती हुई कोई भी मूर्ति कम्बुज में प्राप्त नहीं हुई है परन्तु चम्पा में इस प्रकार की मूर्ति अवश्य ही प्राप्त हुई है। अप्सराओं की अनेक मूर्तियाँ नृत्य करती हुई चित्रित की गई हैं जिससे स्पष्ट होता है कि कम्बुज में अवश्य ही नृत्य-कला का प्रचलन रहा होगा। कोई ऐसा लेख नहीं प्राप्त हो रहा है जिसमें किसी राजा के दरबार में नर्तकियों के नृत्य करने का उल्लेख प्राप्त हुआ हो। ऐसा प्रतीत होता है कि नर्तकियाँ मुख्य रूप से मन्दिरों में ही रहती थीं।

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि साहित्य और कला के क्षेत्र में कम्बुज में अपार उन्नति हुई थी। कम्बुज का साहित्य पूर्णतया भारतीय था। कला पर भारतीयता की छाप थी। कम्बुज के कलाकारों ने सदैव सजीवता को बनाये रखने का प्रयास किया है। यद्यपि उनकी प्रारम्भिक कला पूर्ण रूप से भारतीय है परन्तु कालान्तर में उन्होंने स्वतन्त्र शैली का भी परिचय दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | 17

सीलोन में भारतीय संस्कृति
(INDIAN CULTURE IN CEYLON)

भूमिका

एशिया के मानचित्र को देखने से यह स्पष्ट होगा कि सीलोन भारत के अत्यधिक निकट है और ये दोनों देश एक दूसरे से समुद्र की एक धारा के द्वारा अलग हुए हैं। अधिकतर सीलोन निवासी भारतीय जाति के हैं और आज भी उनकी मुख्य भाषाएँ सिंहली और तामिल हैं। सीलोन यद्यपि भारत के अत्यधिक निकट है परन्तु समुद्र की धारा के कारण यह दोनों देश अलग हैं और यही कारण है कि जिस समय भारत पर मुसलमानों का आक्रमण हुआ, उस समय सीलोन पर कोई आंच नहीं आई भारत वर्ष में बौद्ध धर्म मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के फलस्वरूप समाप्त सा हो गया था परन्तु सीलोन में आज भी बौद्ध-धर्म के अनुयायी अधिक संख्या में पाये जाते हैं। जिस समय भारतवर्ष विदेशी दासता के चंगुल में फंसा था उस समय भी सीलोन एक स्वतंत्र राज्य था। परन्तु पुर्तगालियों और अंग्रेजों ने सीलोन में भी अपनी सत्ता स्थापित की। इस समय सीलोन भी एक स्वतंत्र राज्य है और भारत से उसके अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध हैं।

सीलोन में भारतीयों का पदार्पण किस समय हुआ, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु सीलोन के इतिहास की विधिवत जानकारी हमें देवानां प्रिय-तिष्य के समय से होती है। उसने वहाँ 247 ई० से लेकर 207 ई० पूर्व तक राज्य किया। सत्य तो यह है कि सीलोन का विधिवत इतिहास उसी समय से प्राप्त होता है जिस समय से बौद्ध धर्म ने सीलोन में प्रवेश किया। भारतीय संस्कृति के चरण-चिह्न सीलोन में अति प्राचीन काल से जम चुके थे।

सीलोन के इतिहास को 4 कालों में विभाजित किया जा सकता है—(1) प्राचीन युग (2) पूर्व मध्य-युग, (3) मध्य-युग और (4) आधुनिक युग। इनमें से प्राचीन युग का सूत्रपात हम 247 ई० पृ० से मान सकते हैं। यह युग 363 ई० तक चलता रहा। पूर्व मध्य-काल 363 ई० से 1017 ई० तक माना जा सकता है। मध्य युग 1017 ई० से 1506 ई० तक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

माना जाना चाहिए। मध्य-युग को 2 कालों में विभाजित किया जा सकता है। 1017 ई० से 1235 ई० तक के युग को पौलोन्नरव युग के नाम से पुकारा जा सकता है और 1235 ई० से 1509 ई० के युग को दक्षिण-पश्चिम की ओर झुकाव के युग के नाम से पुकारा जा सकता है। और इसके बाद आधुनिक युग का सूत्रपात होता है। इस अध्याय में हम सीलोन में भारतीय संस्कृति के प्रसार की चर्चा करेंगे और उस युग की सीलोन की संस्कृति एवं सभ्यता पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे। 1509 ई० तक सीलोन में विशेष रूप से भारतीय संस्कृति का प्रसार रहा।

सीलोन के इतिहास का प्राचीन युग

प्रश्न (1) सीलोन के प्राचीन युग की शासन व्यवस्था, धर्म, साहित्य एवं कला के विषय में आप क्या जानते हैं ?

सीलोन के प्राचीन युग की शासन व्यवस्था भारतीय शासन व्यवस्था के अनुरूप ही थी। सीलोन के प्राचीन युग के इतिहास के अन्तर्गत 247 ई० पू० से 363 ई० तक के इतिहास का अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि इस युग में देवानांप्रिय तिस्य के शासन से लेकर महासेन के शासन तक का अध्ययन किया जाता है। इस युग की शासन-व्यवस्था, शिक्षा, साहित्य एवं कला पर यहाँ हम संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं।

शासन-व्यवस्था

सीलोन की शासन-व्यवस्था किस प्रकार की थी इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए भी स्रोतों का अभाव है परन्तु 'महावंश' नामक ग्रन्थ एवं उस युग में भारत में पाये जाने वाले अभिलेखों से कुछ जानकारी अवश्य प्राप्त होती है। जब आर्य सीलोन में आये तो उन्होंने गाँवों में निवास किया तथा शासन को चलाने के लिए गाँव सभाओं का गठन किया। ग्रामणी गाँव सभा का अध्यक्ष होता था। और कालान्तर में अनुराधपुर एवं मागम के ग्रामणियों ने अपने क्षेत्र का विस्तार किया और वे उत्तरी एवं दक्षिणी पूर्वी क्षेत्र के सम्राट बन बैठे तथा गाँव सभा के ऊपर एक केन्द्रीय सरकार का शासन स्थापित हो गया।

अति प्राचीन काल में लंका को 3 भागों में विभाजित किया जा सकता है। इन तीनों भागों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण उत्तरी प्रदेश था जिसकी राजधानी अनुराधपुर थी। दूसरा प्रदेश रुहुण था जो दक्षिण-पूर्व में स्थित था एवं जिसकी राजधानी मांगम थी। तीसरा भाग कलनिगंगा का प्रदेश था और उसकी राजधानी कल्यानि थी। प्रारम्भ में ये तीनों ही स्वतंत्र राज्य थे परन्तु ई० पू० द्वितीय शताब्दी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के अन्तिम चरण में रुहुण के सम्राट दुतुगमनु ने अन्य छोटे राजाओं को पराजित करके एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना कर ली। और इसके बाद महासेन के समय तक हमें लंका में शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के दर्शन होते हैं।

जैसा कि हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि ई० पू० द्वितीय शताब्दी के अन्तिम चरण से लेकर 362 ई० तक के लंका के इतिहास को हम प्राचीन इतिहास के अन्तर्गत रख सकते हैं। यहाँ हम इस युग को दृष्टि में रखते हुए ही लंका की शासन-व्यवस्था की चर्चा कर रहे हैं :—

(अ) सम्राट—इस समय अति प्राचीन काल की जनतंत्रात्मक व्यवस्था के स्थान पर हम लंका में राजतंत्रात्मक व्यवस्था के दर्शन करते हैं। सम्राट को अपरमित अधिकार प्राप्त थे और राज्य की समस्त भूमि सम्राट की भूमि ही समझी जाती थी तथा वह उसका उपयोग अपनी इच्छानुसार कर सकता था। सीलोन में संयुक्त परिवार की प्रथा विद्यमान थी और परिवार के सबसे बड़े व्यक्ति को मुखिया माना जाता था। यही प्रथा राजघरानों में भी विद्यमान थी।

सम्राट की मृत्यु के बाद उसके भाई अपनी अवस्थानुसार सम्राट बनते थे और तत्पश्चात् उसके पुत्रों को शासन की बागडोर सँभालनी होती थी। परन्तु किन्हीं खास परिस्थितियों में हम इस नियम की अवहेलना के भी दर्शन करते हैं।

आधुनिक युग को देखते हुए उस युग में सम्राट के कर्तव्य बहुत कम थे। उसका मुख्य कार्य विदेशी आक्रमणों से रक्षा करना और राज्य में सुख-शान्ति को बनाये रखना था। सम्राट धार्मिक कार्यों यथा विहारों के निर्माण आदि की भी व्यवस्था करता था। उनका यह भी कार्य था कि वे भिक्षुओं आदि के खाने की व्यवस्था करें। सम्राट तालाबों और पुस्तकालयों के निर्माण आदि के कार्यों पर विशेष ध्यान देता था। यद्यपि वे स्वेच्छाचारी शासक थे परन्तु अधिकतर उन्हें परम्पराओं में बद्ध होकर रहना होता था और वे जनकल्याण के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे। इस सम्बन्ध मे प्रसिद्ध विद्वान जी० सी० मेन्डीज अपनी पुस्तक 'सीलोन का प्राचीन इतिहास' (The Early History of Ceylon) में लिखते हैं :—

"The kings at this time were absolute rulers and were not bound by any system of law; but they usually observed the customs of the people and did not act against the popular interests. If they acted as they liked and disregarded the welfare of the people, they knew that some aspirant to kingship might seize the throne and rule with the approval of the discontented people." **—G. C. Mendis.**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ब) सम्राट के सहायक—चूँकि सम्राट समस्त कार्य स्वयं नहीं कर सकता था इसलिए वह इन कार्यों को पूरा करने के लिए अपने सहायकों की भी नियुक्ति करता था। विभिन्न जिलों के शासन के लिए प्रशासकों एवं अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती थी। ये प्रशासक केन्द्रीय सरकार का आज्ञानुसार समस्त कार्य करते थे। ऐसे भी उदाहरण प्राप्त होते हैं कि कुछ सम्राटों ने अपने को सलाह देने के लिए मंत्रि-परिषद जैसे संगठन की भी व्यवस्था की थी।

(स) स्थानीय संस्थाएँ—ऐसा प्रतीत होता है कि उस युग में कुछ स्थानीय संस्थाओं का भी गठन किया गया था और किसी क्षेत्र विशेष के शासन में ये स्थानीय संस्थाएं अत्यधिक सहायक सिद्ध होती थीं। स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधि सम्राट के सम्मुख क्षेत्र की समस्याओं को रख सकते थे। अधिकतर सम्राट इन स्थानीय संस्थाओं के कार्यों में हस्तक्षेप तब तक नहीं करते थे जब तक कि ये विधिवत कार्य करती रहती थीं और सम्राट की आज्ञाओं का पालन करती रहती थीं। यदि कभी सम्राट की मृत्यु हो जाती थी या अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाती थीं, उस समय भी ये स्थानीय संस्थाएं अपना कार्य विधिवत करती रहती थीं।

(द) सैन्य-व्यवस्था—सम्राट अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए सेनाएँ रखते थे और ये सेनाएँ उस रूप में नहीं होती थी जैसी कि आधुनिक युग में देखने को मिलती हैं। साधारणतया सैनिक वही लोग होते थे जिन्हें कि राजा की ओर से युद्ध करने के लिए भूमि आदि दी जाती थी। सामन्ती प्रथा का उग्र रूप प्राचीन काल के सीलोन में देखने को नहीं मिलता बल्कि सम्राट की अपनी व्यक्तिगत सेना के दर्शन होते हैं। यही कारण है कि सीलोन में राजनीतिक उतार-चढ़ाव का दृश्य अपेक्षाकृत कम ही दिखाई पड़ता है। सेना का सबसे बड़ा कर्मचारी सेनापति कहलाता था जो कि सेना के ऊपर पर्याप्त नियंत्रण रखता था। यदि सेनापति कोई अत्यन्त प्रसिद्ध व्यक्ति होता था तो अक्सर बदनाम राजाओं को सिंहासन से उतारने का उसे अवसर प्राप्त हो जाता था।

(इ) राज्य की आय एवं व्यय—राज्य की आय का प्रमुख स्रोत भूमि कर था। इसके साथ ही सिंचाई कर भी लिया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय व्यापारियों आदि पर भी कर लगाया जाता था। राज्य की आय का अधिकतर धन सेना के रख-रखाव के हेतु व्यय होता था। साथ ही तालाबों विहारों और पुस्तकालयों आदि के निर्माण में भी काफी खर्च होता था। नगरों की सुरक्षा के लिए उनके चारों ओर चहार-दीवारी बनवाई जाती थी और राजा कला की उन्नति पर धन व्यय करते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(ई) कृषि एवं सिंचाई-व्यवस्था—चूँकि राज्य की आय का प्रमुख स्रोत कृषि थी अतः सम्राट कृषि के विकास के लिए घोर प्रयत्न करते थे। कृषि की उन्नति के हेतु सिंचाई की पूर्ण व्यवस्था की जाती थी। पहले सिंचाई के लिए नदी से पानी प्राप्त किया जाता था फिर उसे एकत्रित करने के लिए वृहद् तालाबों का निर्माण किया जाने लगा। सबसे पहले तालाबों का निर्माण अनुराधपुर में हुआ। अभयवैव, तिसावैव और नुवरवैव सबसे प्राचीन तालाब हैं। वंसव नाम के सम्राट, जिसने 127 ई० से 170 ई० तक राज्य किया, ने 11 तालावों का निर्माण कराया। हेतु-तिस्य, जिसका शासनकाल 323 ई० से लेकर 334 ई० तक रहा, ने 6 तालाब बनवाये। इस युग के अन्तिम सम्राट महासेन ने जिसका शासन-काल 334 ई० से 362 ई० तक बतलाया जाता हैं, ने 16 तालाबों का निर्माण करवाया। इतिहासकार मेन्डीज का विचार है कि वासम और महासेन के द्वारा निर्मित तालाबों के फलस्वरूप सीलोन में कृषि की अपार उन्नति हुई। यही कारण था कि उस युग में अनुराधपुर एवं महावलिगंगा के बीच की जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई। मेन्डीज लिखता है:—

"The tanks and canals built by Vasabha and Mahasen must have led to great progress in agriculture and an increase of population in the region between Anuradapura and the Mahavali Ganga."
—G. C. Mendis.

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अति प्राचीन काल में सीलोन में सुदृढ़ राजनीतिक संगठन की स्थापना हो चुकी थी और एक ऐसी शासन-व्यवस्था का बीज अंकुरित हो चुका था जिसने कालान्तर में सीलोन की उन्नति में महान योगदान दिया। इसका बहुत कुछ श्रेय भारतीयों को ही था क्योंकि भारतीयों से इस क्षेत्र में सीलोन के निवासियों ने बहुत कुछ सीखा था। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सीलोन की प्राचीन शासन-व्यवस्था भारतीय शासन-व्यवस्था की अत्यन्त ऋणी है।

प्राचीन युग में धर्म, साहित्य एवं कला

प्रथम शताब्दी ई० में ही लंका में धर्म-साहित्य, एवं कला का पर्याप्त विकास हो चुका था यद्यपि लंका के अति-प्राचीन काल में धर्म, साहित्य एवं कला के विकास के सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि इससे पहले ही लंका में सभ्यता के बीज अंकुरित हो चुके थे। यहाँ हम प्राचीन युग में लंका में धर्म एवं कला की उन्नति पर संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धर्म

भारतीय उपनिवेश की स्थापना के पहले लंका में कौन सा धर्म था इस सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी नहीं है। जातकों में यह कहानियाँ प्रचलित है कि वहाँ यक्षणियाँ निवास करती थीं और कुछ पुस्तकों के आधार पर यह कहा जा सकता हैं कि यहाँ नागों का निवास था। इसलिए इसे नागद्वीप के नाम से भी पुकारा जाता था। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि बौद्ध धर्म के विकास के पूर्व लंका में ब्राह्मण धर्म था। परन्तु इसे भी अनेक विद्वान स्वीकार नहीं करते। हाँ यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि कोई न कोई समय ऐसा अवश्य था जब लंका में ब्राह्मण धर्म का प्रचलन रहा था। वाल्मीकि की रामायण में रावण को महापंडित कहा गया है। उसे चारों वेदों का पर्याप्त ज्ञान था। परन्तु यह कौन सा समय था इस बात की विवेचना करना उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि इस सम्बन्ध में कोई भी जानकारी प्राप्त नहीं है। अनैतिहासिक युग में लंका में चाहे जो धर्म प्रचलित रहा हो परन्तु लंका के इतिहास का क्रम-बद्ध अध्ययन वहाँ बौद्ध धर्म के प्रवेश के बाद से ही होता है। वहाँ धार्मिक विकास का प्रथम आभास हमें सम्राट देवानांप्रिय-तिस्य के समय में ही मिलता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि तृतीय शताब्दी ई० पू० के मध्य से ही हमें लंका के धार्मिक विषयों की जानकारी प्राप्त होती है। उस समय वहाँ बौद्ध धर्म का प्रचलन था। उसे राज्य संरक्षण भी प्राप्त हुआ था, फलस्वरूप वह पूर्ण रूप से विकसित होने लगा। प्रथम शताब्दी में इसका काफी प्रचलन हो चुका था। उस समय वहाँ अनेक बौद्ध भिक्षु निवास करते थे। कालान्तर में जब बौद्ध धर्म महायान और हीनयान शाखाओं में बँट गया तो कुछ लंका के निवासियों ने पहले प्राचीन धर्म को ही अपनाया। महायान का वहाँ विरोध हुआ। सिंहल के वीरतिस्य नाम के सम्राट ने महायान को दबाने का प्रयास किया। वलगम्बा के समय में थेरवाह शाखा से धम्मरुचि शाखा का विकास हुआ तथा बाद में बौद्ध धर्म अन्य शाखाओं में भी विभाजित होने लगा। मेन्डीज का मत है कि थेरवाद का विरोध करने वाला पहला शासक महासेन था। उसने लिखा है :—

"Mahasen (A. D. 342-362) was the first king to work against the Theravada community at the Mahavihara and to support sects that opposed them."

—**G. C. Mendis.**

प्राचीन काल में सीलोन में बौद्ध धर्म के साथ ही अन्य धर्म भी विद्यमान थे ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि अनुराधपुर में जैन आजीवक भी निवास करते थे। कुछ विद्वान यह मत व्यक्त करते हैं कि उस समय सीलोन में शिव और उनके पुत्र

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्कन्द की भी पूजा की जाती थी। कुछ लोग रुढ़िवादी धर्म को ही अपनाये हुए थे और वे यक्षणियों, यक्षों आदि को ही पूजा करते थे।

साहित्य

भारत के बौद्ध-भिक्षु सीलोन में भारत की लेखन कला भी लेकर आये। परन्तु सीलोन में बौद्ध धर्म के प्रवेश के समय से 200 वर्ष के भीतर किसी प्रकार के साहित्य के निर्माण का उल्लेख नहीं प्राप्त होता। थेरवाद के सिद्धान्त भी लंका में नहीं लिखे गये बल्कि शिष्यों ने अध्यापकों से सुन कर उन्हें कंठाग्र कर लिया। इस बात का संकेत मिलता है कि सीलोन में अकाल पड़ने पर बहुत से भिक्षु मर गये जिनको कि थेरवाद के सिद्धान्त याद थे। जो भी शेष बचे उन्होंने भिक्षु होने से अस्वीकार कर दिया क्योंकि वे विनय के द्वारा प्रतिपादित कठोर मार्ग का अनुसरण नहीं कर सके। अतः ऐसे समय में इन भिक्षुओं को जो धर्म के प्रति जागरूक थे इस बात की आवश्यकता महसूस हुई कि उन सिद्धान्तों को लिखित रूप में रखा जाय जो उनके धर्म से सम्बन्धित थे। परिणाम यह हुआ कि धार्मिक सिद्धान्तों के रटने के बजाय लिखने की परम्परा प्रारम्भ हुई। प्रथम शताब्दी के अन्त तक सीलोन में पाली में लिखे गये बौद्ध धार्मिक ग्रन्थों की सिंहली भाषा में आलोचनाएं प्रकाशित होने लगीं। उस समय की सिंहली भाषा अन्य आर्य भाषाओं से भिन्न थी। कालान्तर में जब महायान शाखा का प्रसार हुआ तो सीलोन में उच्च कोटि के धार्मिक साहित्य का प्रसार होने लगा और ब्राह्मी लिपि में बौद्ध धर्म की शिक्षाओं को चट्टानों पर खोदा गया।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सीलोन के प्राचीन साहित्य के सम्बन्ध में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है। प्रथम शताब्दी ई० के बाद जो भी साहित्य हमें प्राप्त होता है वह धार्मिक साहित्य ही है।

कला

सीलोन में कला के दर्शन हमें वहाँ बौद्ध धर्म के प्रवेश के बाद से ही होते हैं। जब बौद्ध भिक्षु यहाँ आये तो पहले वे गुफाओं में ही रहते थे। प्रथम शताब्दी ई० पू० से गुफाओं में रहने की प्रथा समाप्त सी हो गई और उत्तरी एवं दक्षिणी-पूर्व क्षेत्र में फिर विहारों का निर्माण होने लगा। सीलोन में अनुराधपुर के महा विहार और अभय के विहार विशेष उल्लेखनीय हैं। अनुराधपुर के विहारों के अवशेषों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि उन विहारों के ऊपरी भाग के निर्माण में ईंट, लकड़ी या मिट्टी का प्रयोग होता था। प्रत्येक विहार के अन्दर एक डागैव (चैत्य) होता था। इस युग का सर्वश्रेष्ठ डागैव (चैत्य) अनुराधपुर में रुवनवैलिसेय का था। इन डागैवों (चैत्यों) की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आकृति विभिन्न प्रकार की होती थी। परन्तु प्राचीन युग के अधिकतर चैत्य मध्यप्रदेश के सांची स्तूप की भाँति ही बनाये गये थे।

प्राचीन युग में सीलोन में राजकीय भवनों का भी निर्माण हुआ था, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पहले साधारण जनता भी गुफाओं में ही रहती थी। 'महा-वंश' में कुछ राजभवनों एवं कलाकृतियों का उल्लेख हुआ है। अनुराधपुर की चहार-दीवारी का निर्माण भी उस युग के कलाकारों की कला का नमूना है। जिस का शिलान्यास कुटकरण-तिस्य (16 ई०-38 ई) के समय में हुआ था 'महावंश' में चहार दीवारी का उल्लेख हुआ है और कहा जाता है कि उसे सम्राट वासभ द्वारा (127 ई०-171 ई·) पूरा कराया गया था। इसकी ऊँचाई लगभग 25 फुट थी।

सीलोन में उस युग में स्थापत्य कला के साथ ही शिल्प कला का भी विकास हो चुका था। वहाँ दक्षिणी भारत में कृष्णा नदी पर मिलने वाली अमरावती कला की भाँति चूने पर उच्च-कोटि की कलाकृतियों का अंकन किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में सीलोन में पहले कला के कुछ नमूने भारत से गये और उसके वाद ही अन्य कलाकृतियों का निर्माण हुआ था।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में लंका में धर्म, साहित्य एवं कला के क्षेत्र में उन्नति हुई परन्तु लंका की इस उन्नति का श्रेय भारतवासियों को ही प्राप्त है। भारतीय बौद्ध धर्म के प्रवेश के बाद ही लंका में हम धर्म, साहित्य और कला के बीज अंकुरित होते हुए देखते हैं।

सीलोन के इतिहास का पूर्व-मध्य कालीन युग

प्रश्न (2)—सीलोन के पूर्व-मध्य युग की शासन-व्यवस्था, धर्म, साहित्य एवं कला के विषय में आप क्या जानते हैं ?

सम्राट महासेन के पुत्र कीर्ति श्री मेघवर्ण के सिंहासनारूढ़ होने से लेकर महीन्द्र पंचम के काल में चोलों की सीलोन विजय के इतिहास को पूर्व-मध्य काल के इतिहास के अन्तर्गत रखा जाता है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि 362 ई० से लेकर 1017 ई० तक का इतिहास सीलोन के इतिहास के पूर्व-मध्य युग के अन्तर्गत आता है। इस युग की शासन-व्यवस्था, धर्म, साहित्य एवं कला के विषय में यहाँ हम संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं :—

शासन व्यवस्था

(1) **सम्राट**—पूर्व-मध्य युग में भी प्राचीन युग की भाँति ही सम्राटों को अपरिमित अधिकार प्राप्त थे। वे स्वेच्छाचारी होते थे परन्तु उनके इन अपरिमित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिकारों पर देश की परम्पराओं का बन्धन रहता था और इन परम्पराओं का उल्लंघन करने का साहस सम्राट को नहीं होता था। राजा दैवी अंश समझा जाता था और उसकी आज्ञा का पालन करना देवता की आज्ञा का पालन करना माना जाता था। प्रजा बोधिसत्व के समान उसकी पूजा करती थी। सम्राट के उत्तराधिकार का नियम रहा था कि बड़े भाई की मृत्यु के बाद छोटा भाई सम्राट बनता था और यह क्रम चलता रहता था। भाइयों की मृत्यु के बाद बड़े भाई की सबसे बड़ी सन्तान को सिंहासनारूढ़ किया जाता था।

(2) युवराज—सम्राट के बाद युवराज का स्थान होता था। साधारणतया युवराज के पद पर सम्राट के उत्तराधिकारी की ही नियुक्ति की जाती थी और उसे महाधिपादि के नाम से पुकारा जाता था। अगवो (568-601 ई०) के समय से युवराज को दक्षिण का शासक बनाया जाने लगा।

(3) सम्राट के कर्मचारी—युवराज के पश्चात् राज्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण अधिकारी सेनापति होता था। यह राजधराने से सम्बन्धित होता था और इस पर राजा को अधिक विश्वास होता था। उसके बाद महालेखा (The Chief Scribe) छत्रगाहक (Umbrella Bearer) और असिग्राहक (Sword Bearer) आदि अन्य अधिकारी होते थे। छाता राजकीय वैभव का प्रतीक समझा जाता था। उसे वही गौरव प्राप्त था जो आधुनिक युग में ध्वज को प्राप्त है। इस छाते या छत्र को ले जाने वाले को छत्र वाहक के नाम से पुकारा जाता था। महालेखा का मुख्य कार्य राजा के पत्र-व्यवहार आदि का कार्य सम्पन्न करना था। असिग्राहक राजा का शरीर रक्षक था। इन अधिकारियों के अतिरिक्त कुछ अन्य अधिकारी भी होते थे।

(4) सामाज्य का विभाजन—पूर्व मध्य युग में साम्राज्य का राजनीतिक विभाजन हुआ था। साम्राज्य का उत्तरी भाग जिनकी राजधानी अनुराधपुर थी, प्रिहीतीरथ के नाम से पुकारा जाता था। उसे राजरथ के नाम से भी कहा जाता था क्योंकि उस पर सीधे सम्राट का शासन होता था। साम्राज्य के दक्षिणी भाग को रुदुन कहा जाता था और केन्द्र के बाहरी भाग को मलयरथ के नाम से पुकारा जाता था। राजरथ को पुनः पश्चिम देश (Western District), उत्तर देश (North District), पूर्वी देश (Eastesn District) और दक्षिणी देश (Southern Distiet) में विभाजित कहा गया था। दक्षिण देश सबसे बड़ा था। साम्राज्य के यह चारों क्षेत्र सीधे अनुराधपुर के राजा के नियंत्रण में रहते थे। रुहन और मलयरथ के शासन के लिए प्रशासकों की नियुक्ति की जाती थी। कुछ ऐसे साक्ष्य प्राप्त हुए हैं कि रुहुन के प्रशासक पर्याप्त मात्रा में स्वतंत्रता का उपभोग करते थे और कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता है कि जैसे वे स्वतंत्र शासक हों।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(5) **ग्राम-प्रबन्ध**—इस युग के शासन की अत्यन्त प्रमुख विशेषता गांव का स्वशासन था। गांव का शासन पंचायतों द्वारा किया जाता था और ग्रामवासी अपने झगड़ों का निपटारा स्वयं कर लेते थे। प्रतिवर्ष निरीक्षण करने के लिए सरकारी कर्मचारी गांव का दौरा करते थे। जिन ग्रामों को विहारों को दिया जाता था उन्हें कुछ विशेष सुविधाएँ प्राप्त थीं। इन गांवों के अपराधियों को राजा के अधिकारी भी नहीं पकड़ सकते थे। परन्तु यदि इन गांवों में अपराधियों को दण्ड नहीं दिया गया होता था तो सम्राट को यह अधिकार था कि इन गांवों पर अर्थ-दण्ड कर दे। साधारणतया राजा की ओर से गांव के शासन में बहुत कम हस्तक्षेप होता था और राज्य या सरकार के परिवर्तन का कोई भी प्रभाव गांव के प्रबन्ध पर नहीं पड़ता था।

(6) **सैन्य-व्यवस्था**—साम्राज्य की रक्षा के लिए सम्राट की अपनी सेना होती थी और पूर्व मध्य युग में भी सामन्ती प्रथा का उग्र रूप देखने को नहीं मिला था सम्राट की अपनी सेना होती थी और इस कारण राजनीतिक विद्रोह कम ही होते सेना का सबसे बड़ा कर्मचारी सेनापति होता था जो राजा का अत्यन्त विश्वास पात्र होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व-मध्य युग में स्थल सेना के साथ ही सम्राटों की जल सेना भी होती थी और जलसेना के युद्धों के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं।

(7) **राज्य की आय एवं व्यय के साधन**—राज्य की आय का प्रमुख साधन भूमिकर था। साथ ही सिंचाई कर की भी व्यवस्था थी। गांवों में विभिन्न प्रकार के कर ग्राम पंचायतों द्वारा वसूले जाते थे और वहाँ स्वशासन की व्यवस्था थी। व्यापारियों पर भी कर लगाया जाता था। राज्य की आय का बहुत बड़ा भाग सेना पर खर्च होता था और साथ ही तालाबों, विहारों, मंदिरों, पुस्तकालयों के निर्माण एवं अन्य सार्वजनिक कार्यों पर भी पर्याप्त राशि व्यय की जाती थी।

(8) **न्याय एवं दण्ड-व्यवस्था**—सीलोन में पूर्व मध्य युग में न्याय की भी अच्छी व्यवस्था थी। सम्राट ही मुख्य न्यायाधीश होता था। साथ ही न्याय कार्य के लिए अन्य कर्मचारियों की भी नियुक्ति की जाती थी। सरकारी अधिकारियों को अपराधियों को पकड़ने के हेतु कुछ नियमों का पालन करना होता था। सरकारी अधिकारी गुलामों से बेगार नहीं ले सकते थे। हत्या करने वाले अधिकारी को बहुधा निर्वासित कर दिया जाता था। यदि कोई व्यक्ति किसी घर में सेंध लगा कर माल की चोरी कर लेता था तो ग्रामवासियों को तुरन्त उसका पता लगाना होता था। यदि 45 दिन के अन्दर ग्रामवासी उसका पता नहीं लगा पाते थे तो उन्हें राजा की ओर से अर्थ-दण्ड दिया जाता था। यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति की हत्या करने का प्रयास करे तो उसे 50 कलन्द सोना दण्ड स्वरूप देना होता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। कभी-कभी बैल की हत्या करने वाले को फाँसी भी दे दी जाती थी। पशुओं के चुराने वालों पर राजा की ओर से दाग लगा दिया जाता था।

(9) भूमि-व्यवस्था एवं सिंचाई—भूमि निश्चित समय के लिए राज्य की ओर से व्यक्तियों को दे दी जाती थी और उसके बदले लोगों से कर लिया जाता था। उस अवधि की समाप्त होने पर यह भूमि राज्य की ओर से किसी अन्य व्यक्ति को भी दी जा सकती थी। अधिकतर धान की उपज होती थी और वहाँ से चावल दक्षिण भारत को भी भेजा जाता था। कृषि की उन्नति के हेतु सिंचाई की भी सुन्दर व्यवस्था थी। प्राचीन युग की भाँति ही इस युग में भी सिंचाई के लिए अनेक तालाबों का निर्माण करवाया गया था। पाँचवीं शताब्दी के प्रथम चरण में उपतिस्स प्रथम ने पोलोन्नरव एक तालाब का निर्माण करवाया था। मुगलन द्वितीय (537-556 ई०) ने भी कई तालाबों का निर्माण करवाया। अगबो प्रथम (568-601 ई०) को मिहिन्दले तालाब का निर्माण करवाने तथा उसे अलहारा नहर के पुनरुद्धार का श्रेय प्राप्त है। अगबो द्वितीय ने कान्तालाई और गिर तालाबों का निर्माण कराया था। इस प्रकार सिंचाई आदि की सुन्दर व्यवस्था सीलोन में हुई थी।

(9) व्यापार—यद्यपि सीलोन की आय का मुख्य स्रोत भूमिकर ही था और वहाँ व्यापार आदि की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया था परन्तु फिर भी कुछ विदेशी व्यापारी सीलोन आये थे। इस बारे में कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता कि मध्य युग के आरम्भ में भारत आने वाले अरब सीलोन पहुँचे थे या नहीं, परन्तु यह अवश्य सत्य है कि तृतीय शताब्दी तक ग्रीक व्यापारी वहाँ अवश्य पहुँच चुके थे। ग्रीक राजा कांस्टैन्टाइन (327-337) के समय में सीलोन के व्यापारी काफी मात्रा में आये। सीलोन से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने वालों में पारसीक भी प्रमुख थे और 7 वीं शताब्दी तक पर्शिया से सीलोन का व्यापार होता था। यह व्यापार 7 वीं शताब्दी में उस समय बन्द हो गया जिस समय पर्शिया पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। कालान्तर में अरब व्यापारी भी यहाँ आये और उनका सीलोन से 10 शताब्दी तक काफी व्यापार चला। कालान्तर में चीनियों के भी सीलोन के व्यापारियों से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुए।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सीलोन में सुदृढ़ शासन-व्यवस्था का संगठन किया गया था और यह देश मध्य युग में भी सुख-सम्पन्नता से युक्त था। चावल की उपज वहाँ विशेष मात्रा में होती थी और इस कारण लोगों को खाने पीने में कोई कठिनाई नहीं होती थी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पूर्व मध्य युग में धर्म साहित्य और कला

सीलोन का पूर्व-मध्य-काल धर्म, साहित्य और कला की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यहाँ हम इस युग के धर्म कला और साहित्य के सन्दर्भ में संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं—

धर्म

(1) **बौद्ध धर्म**—प्राचीन युग की भाँति ही पूर्व मध्य युग में भी सीलोन में बौद्ध धर्म का प्रभाव स्थापित था। वास्तव में महायान के प्रवेश के फलस्वरूप बौद्ध धर्म यहाँ अधिक जन-प्रिय हो चुका था और इस धर्म के अनुयायियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। इस युग में बौद्ध धर्म से सम्बन्धित अनेक विहारों का निर्माण हुआ। पोप के दिनों में निरन्तर धार्मिक उपदेश होते थे। सम्राट ने भी बौद्ध धर्म के प्रति अपनी श्रद्धा को प्रकट किया था। कित-सिरि भवन के समय में दलदा, जो भगवान बुद्ध का दांत माना जाता था और जिस की पूजा कलिन्द में होती थी, वहाँ से सीलोन लाया गया था। इस दल्दरा की स्थापना दलता मलिगांव नामक स्थान में हुई थी और वहाँ वर्ष में एक बार जुलूस निकाला जाता था। इस जुलूस के अवसर पर तरह-तरह के नाच रंग होते थे। । मध्य काल तक बौद्ध धर्म की विभिन्न शाखाओं का यहाँ विकास हो चुका था और इन विभिन्न शाखाओं के अनुयायियों में होड़ भी रहती थी। बौद्ध धर्म की धम्मरुचि और सागलिक शाखाओं की काफी वृद्धि हुई थी। इन शाखाओं के अनुयायी अधिकतर सीगरिय और मिहित्तले के विहारों में रहते थे। चीनी लेखों में महिशासक और धर्मगुप्तकस नामक शाखाओं का भी उल्लेख हुआ है।

लंका में महायान का अत्यन्त तेजी से प्रसार हुआ। महायान धर्म के फलस्वरूप ही वहाँ बोधिसत्वों की उपासना का काफी प्रचार हुआ। बोधिसत्व अवलोकितेश्वर और लोकेश्वर की उपासना विहारों में अत्यधिक मात्रा में होती थी। उस युग की बोधिसत्वों की कुछ मूर्तियाँ आज भी वहाँ प्राप्त हुई हैं।

महायान शाखा के प्रसार के फलस्वरूप सीलोन में संस्कृत भाषा का अत्यधिक प्रसार हुआ। परिणाम यह हुआ कि सीलोन के निवासी भारतीय साहित्य से भली-भाँति परिचित हो गये।

(2) **हिन्दू धर्म**—संस्कृत भाषा और सभ्यता के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप सीलोन के निवासियों के सम्बन्ध हिन्दू धर्म से भी स्थापित हुए और वहाँ शनैः-शनैः हिन्दू धर्म का प्रसार हुआ। गुप्त काल में भारतीय सभ्यता और हिन्दू धर्म ने लंका के निवासियों को काफी आकर्षित किया था और वहाँ के बहुत से निवासी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हिन्दू देवी-देवताओं की उपासना और वेद का अनुसरण करने लगे थे। 790 ई० में भगवान विष्णु की एक मूर्ति सीलोन लायी गई थी और इस मूर्ति की स्थापना देउन्दर (दोन्द्र) में करके वहाँ एक मन्दिर का निर्माण भी करवाया गया था। इस समय यह मूर्ति केरडी के महादेवले में हैं। तामिल निवासियों ने लंका में शैव मत का भी प्रचार किया और उनके प्रयास से यहाँ कुछ शैव मन्दिर भी बनवाये गये।

साहित्य

बौद्ध धर्म की महायान शाखा और संस्कृत भाषा के प्रसार के फलस्वरूप सीलोन में साहित्यिक अभिरुचि के बीज अंकुरित हुए। इस युग में आरम्भ में पाली में अनेक टीकाएँ लिखीं गई। इनमें सर्व प्रमुख महाविहार की 'महाअट्ठकथा' है। ये टीकाएँ इस समय प्राप्त नहीं हैं। पाली की प्रारम्भिक पुस्तकों में 'दीप वंश' अवश्य प्राप्त हुई जो पद्य में है। इसमें बौद्ध धर्म के प्रचार से लेकर सम्राट महासेन के राजकुल तक का इतिहास सुन्दर छन्दों में लिखा गया है। इस युग की एक अन्य महत्वपूर्ण रचना 'महावंश' है। इसकी रचना 6ठीं शताब्दी में हुई। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्वपूर्ण है। महावंश उन दो रचनाओं में से एक है जिन्होंने कालान्तर में पाली और सिंहली साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया। दूसरी रचना जातक है। महाबोधिवंश की रचना इसी युग में हुई। इस युग में संस्कृत के एक महान ग्रन्थ का सृजन हुआ। यह ग्रन्थ कुमार दास द्वारा रचित 'जानकी हरण' है। यह रचना भारत में भी अधिक प्रसिद्ध हुई।

इस युग में सिंहली भाषा में बहुत कम ग्रन्थों की रचना हुई। चतुर्थ शताब्दी के अन्तिम चरण में कुछ पाली ग्रन्थों का अनुवाद अवश्य ही सिंहली भाषा में हुआ। ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि सम्राट अगबो प्रथम (568-601) के समय में सिंहली भाषा के 12 ग्रन्थ थे। 9वीं शताब्दी में 'सीयावासलाकर' का सृजन हुआ। यह दण्डी के 'काव्यादर्श' पर लिखा गया। तीन अन्य ग्रन्थ जो धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, सिहली भाषा में लिखे गये। ये हैं-'सिकावलनन्द विनिसा; 'हेरानासिका विनिसा' 'दम्पिय उदुवगैटपद'। प्रारम्भ में सिंहली भाषा की लिपि आर्य-लिपि से मिलती जुलती थी परन्तु इस समय हम सिंहल की लिपि में आर्य लिपि से भिन्नता के दर्शन करते हैं। इस युग के अन्तिम चरण तक सिंहली भाषा अपना आधुनिक रूप धारण कर चुकी थी।

कला

इस युग की सीलोन की कला वास्तव में भारतीय कला है। बौद्ध-धर्म के प्रभाव के फलस्वरूप वहाँ कला का अत्यधिक विकास हुआ। इस युग के सम्राटों द्वारा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया गया। मन्दिरों में मण्डप, गर्भगृह प्रदिक्षणापथ आदि का निर्माण किया जाता था। इस युग के डागैवा (चैत्य) छोटी आकृति के होते थे एवं उनमें वर्गाकार चबूतरे बनाये जाते थे। पूर्व मध्य युग की भारतीय कला का सबसे उत्कृष्ट नमूना सीगिरिय चट्टान के किले का निर्माण है। ईंटों का बना हुआ सिंहावृति कला का यह एक अत्यन्त उत्कृष्ट नमूना है। किले की दीवारों पर संगमरमर की तरह सुन्दर पालिश की गयी है जो उसके निर्माणकर्ताओं की कलात्मकता की सुन्दर परिचायक है। इस युग में भारतीय कला के आधार पर मूर्ति निर्माण का कार्य हुआ था। इस्सुरुमुनिय में बने हुए मनुष्यों और स्त्रियों और महात्मा बुद्ध की मूर्तियाँ भारतीय इतिहास के गुप्तकाल की तरह की प्रतीत होती है। सीगिरिय में मिलने वाले चित्र अजन्ता की गुफाओं में मिलने वाले चित्रों से मिलते-जुलते हैं। सीगिरिय में भी अजन्ता के चित्रों की भाँति सजीवता के दर्शन होते हैं। इन चित्रों की मुख मुद्रा, हाथों में पुष्प एवं वाद्यों आदि का चित्रण अत्यन्त कलात्मक ढंग से किया गया है। सीगिरिय के चित्रों के विषय में पर्सी ब्राउन ने लिखा है :—

"In the Sigiriya frescoes hands holding flowers, fruits or musical instruments are most gracefully rendered."

—Percy Brown.

उपसंहार—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि सीलोन के इतिहास का पूर्व-मध्ययुग सांस्कृतिक, और सभ्यता की दृष्टि से भारत का अत्यधिक ऋणी है और इस युग में सीलोन में भारतीय संस्कृति का बहुत अधिक प्रसार हुआ था।

———

प्रश्न (3) पोलोन्नरव युग की शासन व्यवस्था, धर्म, साहित्य और कला के विषय में आप क्या जानते हैं ?

1017 ई० से लेकर 1509 ई० के सीलोन के इतिहास का अध्ययन मध्य युग के इतिहास के अन्तर्गत किया जाना चाहिए। 10 7 ई० से 1215 ई० तक का युग पोलोन्नरव के युग के नाम से पुकारा जाता है। 1017 ई० से 1235 ई० तक की कला अनुराधपुर के स्थान पर पोलोन्नरव की उन्नति की कला थी। इस युग के सीलोन के सम्राटों ने पोलोन्नरव को अपनी राजधानी बनाया था। इस युग में बहुत समय तक सीलोन में दक्षिण भारत के चोलों का राज्य था। यहाँ हम इस युग की शासन-व्यवस्था, धर्म एवं साहित्य के विषय में संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं—

शासन-व्यवस्था

इस युग की शासन-व्यवस्था अपने पूर्ववर्ती शासन-व्यवस्था की भाँति ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी। परन्तु प्रभाकर प्रभु के शासन-काल में उसमें कुछ परिवर्तन हो गये थे। इस युग में भी स्वेच्छाचारी राजा थे और उनके अपरिमित अधिकारों के दर्शन होते हैं। राजा को सहायता देने के लिए मंत्रि-परिषद् भी होती थी जिसमें युवराज, सेनापति और प्रान्तों के गवर्नर और नगरों के मुख्य अधिकारी होते थे। राज्य की आय का मुख्य स्रोत कृषि कर ही था। इस युग की सैन्य-व्यवस्था भी पूर्व मध्य-युग की भाँति ही थी परन्तु पोलोन्नरव युग में कुछ अन्य प्रकार के हथियार प्रयोग किए जाते थे। सीलोन की सैन्य-व्यवस्था भारतीय सैन्य-व्यवस्था की भाँति ही थी जिसमें पैदल, हाथी, घुड़सवार और रथी होते थे। तलवार भाला, बर्छी आदि विभिन्न प्रकार के हथियारों का प्रयोग युद्धों में होता था। चोलों ने सीलोन में सुन्दर सैन्य-व्यवस्था का प्रयास किया था। इस युग में होने वाले युद्धों के फलस्वरूप जनता को काफी कष्ट उठाने पड़े।

कृषि और सिंचाई के क्षेत्र में इस युग में अपार उन्नति हुई। इस युग के विजयबाहु नामक राजा ने अनेक तालाबों की मरम्मत कराई। पराक्रमबाहु ने भी कृषि की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया। उसके द्वारा 'पराक्रम का समुद्र' (Sea of Parakrama) नामक तालाब का भी निर्माण करवाया गया।

धर्म

पोलोन्नरव युग में भी सीलोन में बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म प्रचलित थे। बौद्ध धर्म में अब वह स्फूर्तिदायिनी शक्ति नहीं रह गई थी जो पूर्व-मध्ययुग में देखने को मिलती थी। सीलोन पर चोलों के आधिपत्य के फलस्वरूप बौद्ध धर्म को काफी धक्का लगा था और विजयबाहु ने बौद्ध धर्म के उत्थान का प्रयास किया था। विजयबाहु प्रथम की मृत्यु के बाद विक्रमबाहु द्वितीय के युद्धों के फलस्वरूप बौद्ध धर्म को अत्यधिक धक्का लगा। अनेक विहारों को लूट लिया गया। पराक्रमबाहु प्रथम के शासन में बौद्ध-धर्म को अवश्य ही प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था, परन्तु उसकी मृत्यु के बाद पुनः यह धर्म पतन की ओर बढ़ने लगा।

पोलोन्नरव युग में हिन्दू धर्म को अवश्य ही प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। चोलों की सीलोन विजय के परिणामस्वरूप वहाँ के हिन्दू धर्म को विशेष प्रोत्साहन मिला। जब विजयबाहु प्रथम राजा बना तो उसने भी हिन्दू धर्म को कोई चोट नहीं पहुँचाई। कहा जाता है कि इस युग के अनेक सम्राटों ने मनु के राज्य-शास्त्र के अनुसार अपने शासन को चलाया। हिन्दुओं के कर्मवादी सिद्धान्त का इस समय तेजी से प्रसार हुआ और कर्मानुसार कुछ जातियों का उत्थान भी हुआ। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि पोलोन्नरव युग सीलोन में हिन्दू धर्म के प्रसार का युग था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

साहित्य

इस युग में सीलोन में साहित्य के क्षेत्र में अपार उन्नति हुई। पराक्रम बाहु जिसे कि बौद्ध-धर्म के पुनरुद्धारक के रूप में मान्यता प्राप्त है, ने साहित्य के क्षेत्र में महान कार्य किया। इस युग में बौद्ध-धर्म से सम्बन्धित अनेक टीकाओं की रचना हुई। ये टीकाएँ पाली भाषा में लिखी गईं। 'अभिधम्मक-संघ' इस युग की उत्कृष्ट रचना है। एक अन्य सुन्दर रचना 'धत्वंश' है। इसका रचयिता 'धर्मकीर्ति' था। कहा जाता है कि इसने 'कुलवंश' की भी रचना की जो कि 'महावंश' के आगे की रचना है। उस पर संस्कृत काव्य ग्रन्थ का प्रभाव है। कुलवंश के रचनाकारों द्वारा अनेक संस्कृत रचनाओं की जानकारी प्राप्त होती है। उसमें कौटिल्य के अर्थशास्त्र और कालिदास की रचनाओं का उल्लेख हुआ है। पोलोन्नरव युग में सिंहली भाषा में भी कुछ ग्रन्थों की रचना की गयी है। परन्तु अधिकतर ग्रन्थ पाली भाषा में ही लिखे गये। 'गुरुलुगोनी' नाम का 13वीं शताब्दी में एक उच्च कोटि का गद्यकार हुआ जिसने कि 2 उच्चकोटि के ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों के नाम 'अमवतुरा' और 'धर्मप्रदपिकाव' हैं। लीलावती के काल (1197-1200 ई०) में 'ससाधुवत' नामक एक उच्चकोटि के काव्य-ग्रन्थ का भी सृजन हुआ। इसमें बोधिसत्व की उस कथा का वर्णन है जब कि वे एक हिरन के रूप में पैदा हुए थे। इस कविता पर कालिदास और कुमारदास का प्रभाव स्पष्ट होता है।

सस्कृत के अध्ययन ने पाली और सिंहली साहित्यकारों को भी बहुत प्रभावित किया और कुछ भिक्षुओं ने अपने धार्मिक विषयों को छोड़ कर संस्कृत ग्रन्थों में दिये गये विषयों को अपनी रचना का माध्यम बनाया। मोग्गलन का पाली व्याकरण, चन्द्रगोमिन के संस्कृत के व्याकरण के आधार पर लिखा गया। 'अभिधम्मपदविका' की रचना अमरकोष के आधार पर हुई।

कला

पोलोन्नरव शासकों की सम्पन्नता का प्रभाव वहाँ के स्थापत्य; शिल्प आदि पर भी पड़ा। विजयबाहु ने अनेक विहारों और स्तूपों (दगोबाओं) का पुनरुद्धार करवाया परन्तु पराक्रमबाहु के शासन-काल में अनेक सुन्दर भवनों का निर्माण हुआ। पराक्रमबाहु को पोलोन्नरव में सबसे बड़ा दगोबा बनवाने का श्रेय प्राप्त है। उसके द्वारा बनवाया गया कीडी दगोवा और निशंकमल द्वारा बनवाया गया रनकोट दगोबा, अनुराधपुर के दगोबाओं की भाँति विशाल है। इस युग में बनवाये गये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ईंटों के विहार सीलोन के विहारों में सबसे बड़े हैं। पराक्रमबाहु ने लंका तिलिका विहार और जीतवनराम विहार का निर्माण करवाया। यह विहार अत्यन्त भव्य हैं। निशंकलम ने दो विशाल मन्दिरों का निर्माण करवाया। पराक्रमबाहु के महल के अवशेष अब भी प्राप्त होते हैं। पोलोन्नरव के मन्दिरों में चोल प्रभाव अत्यधिक है।

गुफाओं पर अनेक भव्य रिलीफ चित्र उस युग में बनाये गये। पोलोन्नरव के गल विहार में महात्मा बुद्ध के अनेक चित्र बनाये गये थे। हिन्दू शिल्प-कला का सबसे सुन्दर नमूना एक साधु की मूर्ति है जो कि पोलोन्नरव में एक गुफा को काटकर पोतगल बिहार के समीप बनाई गई है। कुछ वि॰ान इसे पराक्रमबाहु की मूर्ति कहते हैं परन्तु कुछ इसे अगस्त्य की मूर्ति बतलाते हैं। पोलोन्नरव के शिल्प के अन्य नमूनों से यह पता चलता है कि इस युग में शिल्पकला पहले की भाँति उन्नत नहीं थी और उसमें भारत के 'गुप्तकाल की सी' सरलता और सजीवता नहीं थी। दूसरी ओर उसमें द्रविड़ प्रभाव देखने को मिलता है जिससे अलंकारिता और वर्णनात्मकता अधिक स्पष्ट हो रही है।

पोलोन्नरव में जीतवनराम में दीवारों के ऊपर सुन्दर चित्रकला भी है। इन चित्रों में अधिकतर चित्र महात्मा बुद्ध से सम्बन्धित हैं और शशिजातक आदि की महात्मा बुद्ध से सम्बन्धित कथाओं को चित्रित किया गया है।

उपसंहार—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि पोलोन्नरव युग में सीलोन में भारतीय संस्कृति का विशेष प्रभाव रहा। यह प्रभाव दक्षिणी-पश्चिमी एशिया के झुकाव के युग तक भी देखने को मिलता है और इस युग में भी सीलोन में भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ। परन्तु इसके बाद वहाँ पुर्तगीजों का शासन स्थापित हुआ और पुर्तगीजों एवं अंग्रेजों ने सीलोन में शासन किया। यह युग भारतीय संस्कृति के ह्रास का युग था और सीलोन में भी पाश्चात्य संस्कृति का विशेष प्रसार हुआ।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | 18

दक्षिण और दक्षिणी-पूर्वी एशिया में यूरोपीय शक्तियाँ और उनकी औपनिवेशिक नीति

(EUROPEAN PIONEERS IN SOUTH AND SOUTH-EAST ASIA AND THEIR COLONIAL POLICY)

भूमिका—हम पहले ही इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि बहुत समय तक दक्षिणी और दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों में भारतीय संस्कृति का प्रसार रहा। कम्बोडिया, बोर्नियो, मलाया, श्याम, बर्मा और सीलोन आदि पर भारतीय संस्कृति के प्रभाव की चर्चा हमने पिछले अध्यायों में की है। कालान्तर में इन सभी राज्यों पर यूरोपियन प्रभाव पड़ा और यूरोप की विभिन्न शक्तियों ने दक्षिणी एवं दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों पर अपना अधिकार कर लिया। इस अध्याय में हम दक्षिण पूर्वी एशिया के यूरोपीय उपनिवेशों और उनके औपनिवेशिक नीति की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं।

प्रश्न 1—दक्षिण-पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों में यूरोपीय उपनिवेशों की स्थापना और उनकी औपनिवेशिक नीति की चर्चा संक्षेप में कीजिए।

दक्षिणी पूर्वी एशिया के आधुनिक राज्यों में बर्मा, श्याम, मलाया इंडोनेशिया, फिलिप्पाइन द्वीपसमूह और इंडोचाइना आदि उल्लेखनीय हैं। इन प्रमुख देशों के अतिरिक्त दक्षिण पूर्वी एशिया में अनेक अन्य द्वीप भी हैं जिन पर अब भी कुछ विदेशी राज्यों का प्रभुत्व बना हुआ है तथा वे निरन्तर स्वतंत्रता का प्रयास कर रहे हैं। यहाँ हम प्रमुख राज्यों पर पाश्चात्य देशों के प्रभाव का उल्लेख संक्षेप में कर रहे हैं—

फिलिप्पाइन द्वीप समूह

जापान के दक्षिण और इंडोचाइना के पूर्व में जो फिलिप्पाइन द्वीप समूह है उसमें कुल मिला कर 3141 द्वीप हैं और इनमें प्रमुख द्वीप लूजोन और मिन्हानाओ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है । 15वीं शताब्दी में इन द्वीपों पर इस्लाम का प्रचार आरम्भ हुआ था । भारत के प्रचारक बर्मा, मलाया, श्याम, इण्डोचायना, आदि देशों में अपने प्रभाव स्थापित कर चुके थे परन्तु फिलिप्पाइन द्वीप समूहों तक न पहुँचे थे ।

(1) स्पेन का प्रभाव—दक्षिण पूर्वी एशिया के अन्य देशों की भाँति फिलिप्पाइन द्वीप समूह में भी सब से पहले पुर्तगीज लोग व्यापार के हेतु आये । परन्तु यहाँ अपना प्रभाव स्थापित करने के कार्य में स्पेनिश लोगों को ही सफलता मिली । 1521 ई० में फर्डिनन्ड मैगेलन पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ फिलिप्पाइन पहुँचा था । फिलिप्पाइन पहुँच कर उसने वहाँ स्पेन का आधिपत्य जमाने का प्रयास किया । परन्तु वहाँ के निवासियों से युद्ध करते हुए उसकी मृत्यु हो गई । इसके बाद फिलिप्पाइन पर अधिकार करने के हेतु स्पेन और पुर्तगाल में संघर्ष हुए । 1527 ई० में स्पेन के निवासियों को वहाँ अधिकार करने में सफलता नहीं मिली । 1564 ई० में एक शक्तिशाली स्पेनिश बेड़े ने मैक्सिको से फिलिप्पाइन की ओर प्रस्थान किया और केबू द्वीप पर अधिकार स्थापित कर लिया । 1571 ई० में स्पेन निवासियों ने मनीला पर अधिकार कर लिया और उसे अपनी राजधानी बनाया । स्पेन के निवासियों का राज्य फिलिप्पाइन द्वीप समूह में 1571 ई० से लेकर 1898 ई० तक रहा । वहाँ स्पेन के निवासियों की नीति यह रही कि अपने धर्म एवं सभ्यता का अधिक से अधिक प्रसार किया जाय और वे फिलिप्पाइन की बहुसंख्यक जनता को ईसाई बनाने में सफल हुए ।

व्यापार के क्षेत्र में स्पेन के निवासियों को अधिक सफलता नहीं प्राप्त हुई परन्तु जहां तक ईसाई धर्म के प्रचार का प्रश्न है, स्पेन के निवासी अवश्य ही सफल हुए । स्पेन के निवासियों ने फिलिप्पाइन में ईसाई धर्म की शिक्षा के हेतु स्कूलों आदि का भी प्रबन्ध किया ।

(2) अमेरिका का प्रभाव—फरवरी 1898 ई० में संयुक्त राज्य अमेरिका और स्पेन के मध्य युद्ध हुआ । इस सम्बन्ध में यह उल्लेख कर देना चाहिए कि 19वीं शताब्दी के अन्त तक अमेरिकन महाद्वीप के कतिपय द्वीपों पर स्पेन का प्रभाव था । उन्हीं को लेकर अमेरिका और स्पेन के मध्य संघर्ष हुए । अगस्त 1898 ई० में स्पेन अमेरिका के हाथों पराजित हुआ । परिणाम यह हुआ कि जहां अमेरिकन महाद्वीप के प्रदेश स्पेन की अधीनता से मुक्त हुए वहां फिलिप्पाइन द्वीप समूह पर भी अमेरिका का अधिकार स्थापित हो गया और फिलिप्पाइन के निवासियों ने अपने को स्वतंत्र करने का प्रयास किया, परन्तु वे सफल न हुए । अमेरिका ने फिलिप्पाइन द्वीप समूह की शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए वहां की आन्तरिक सुदृढ़ता एवं आर्थिक विकास पर विशेष बल दिया । 1931 ई० तक फिलिप्पाइन में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगी हुई अमेरिका की पूँजी 80 करोड़ रुपया तक पहुँच चुकी थी। आरम्भ में अमेरिका की सरकार ने फिलिप्पाइन निवासियों को पूरी तरह से दबा कर रखा परन्तु यह जानकर कि वे स्वतंत्रता के लिए उग्र संघर्ष करेंगे वहां के निवासियों को संतुष्ट करने की नीति अमेरिका ने अपनाई। 1907 ई० में सबसे पहले फिलिप्पाइन में पार्लियामेण्ट की स्थापना हुई जिसके 2 सदन थे—(1) प्रतिनिधि सभा और (2) कमीशन। प्रतिनिधि सभा के सदस्यों को जनता चुनती थी और कमीशन के सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किए जाते थे। कमीशन में 5 अमेरिकन और 4 फिलिप्पाइनी होते थे। 1916 ई० में अमेरिका की कांग्रेस ने एक विधेयक पारित करके कमीशन के सदस्यों की भी जनता द्वारा निर्वाचित करने की व्यवस्था कर दी। 1921 ई० में अमेरिका ने फिलिप्पाइन के प्रति अपनी नीति में परिवर्तन किया। उस समय सिलियोनाड उड वहाँ का गवर्नर जनरल था, जो स्वराज्य आन्दोलन का तीव्र विरोधी था। उनका विचार था कि अभी फिलिप्पाइनी लोग इस योग्य नहीं है कि उन्हें स्वयं शासन करने दिया जाय अतएव अमेरिका को वहां अपना सुदृढ़ शासन स्थापित रखना चाहिए। इसका फिलिप्पाइन की जनता ने विरोध किया और वहां अत्यन्त उग्र आन्दोलन हुए। परिणामस्वरूप बाध्य होकर अमेरिका की कांग्रेस को 1934 ई० में एक कानून पारित करना पड़ा जो 'टाइडिंग्ज मैक्डफ कानून' के नाम से प्रसिद्ध है। इस कानून के अनुसार फिलिप्पाइन को यह अधिकार दिया गया कि वह अपने लिए संविधान का स्वयं निर्माण करे। अमेरिका और फिलिप्पाइन में क्या सम्बन्ध रहेगा यह भी कानून द्वारा निर्धारित कर दिया गया।

इण्डोनेशिया एवं बोर्नियो

मलाया के दक्षिण पूर्व में जो बहुत से द्वीप पश्चिम से पूर्व की ओर हजारों मील तक फैले हुये हैं, पहले उन्हें ईस्ट इंडीज (East Indies) कहा जाता था। अब इन द्वीपों को इन्डोनेशिया कहा जाता है। इनमें मुख्य रूप से सुमात्रा, जावा, बाली, सोएम्बाला, फ्लोरेंस, तिमोर, बांगका, बोर्नियो, सेलब ज, मोलक्का, न्यूगाइनिया और पापुआ द्वीप आते हैं।

15वीं शताब्दी में बालि द्वीप को छोड़ कर सभी मुसलमानों के सम्पर्क में आकर मुसलमान बने, लेकिन उन्होंने अपने पुराने देवताओं की उपासना भी जारी रखी। अब भी यहां पौराणिक हिन्दू धर्म का अंश वर्तमान है।

पाश्चात्य देशों से सम्पर्क—सोलहवी शताब्दी में सभी द्वीपों में अनेक छोटे-छोटे राजा विद्यमान थे। सभी राजाओं ने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। ये राजा परस्पर संघर्ष किया करते थे। ऐसी ही परिस्थिति में पुर्तगीजों का यहां आगमन हुआ। उन्होंने मलक्का पर विजय करके, अपना दुर्ग बना लिया और उसे अपने सामुद्रिक व्यापार का प्रधान केन्द्र बनाया।

सत्रहवीं सदी में डचों का यहां आगमन हुआ तथा 1641 में डचों ने पुर्तगीजों से मलक्का जीत लिया। मलक्का पर अधिकार हो जाने से दक्षिणपूर्वी एशिया के प्रदेशों में डच लोगों की शक्ति वहुत बढ़ गई। जावा को अपना केन्द्र बना कर अपने व्यापारिक हितों की रक्षा की आड़ में डच लोगों ने इन द्वीपों पर अपनी सेनाओं की स्थापना की और यहां के शासकों की राजनीतिक दुर्वलता से लाभ उठा कर अपने राजनीतिक प्रभुत्व को स्थापित कर लिया।

अठारहवीं सदी में फ्रांस की राज्य क्रान्ति हुई। फ्रांसीसी कान्तिकारियों ने हालैण्ड पर भी कब्जा कर लिया। इसी कारण फ्रांसीसियों का पूर्वी, दक्षिणी द्वीपों पर भी अधिकार हो गया। लेकिन नैपोलियन के युद्धों के समय ब्रिटेन की विजय हुई थी। अतः अब इण्डोनेशिया पर ब्रिटेन का आधिपत्य स्थापित हो गया। 1811-1819 तक इन द्वीपों पर ब्रिटेन का प्रभुत्व रहा। वियेना कांग्रेस के निर्णयों द्वारा ये प्रदेश फिर से हालैण्ड के अधिकार में आ गये और वहां अपने प्रभुत्व (1819) की फिर स्थापना की। इस समय बहुत से द्वीपवासियों ने डचों की अधीनता को अस्वीकार कर विद्रोह करना आरम्भ कर दिया। सुमात्रा वासी विधर्मियों का शासन स्वीकार नहीं करते थे। अतः इन डचों को द्वीपों को पूर्णतया आधीन करने के लिये काफी संघर्ष करना पड़ा। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में सुमात्रा पर डचों ने विजय पाई तथा 1880 ई० में डच लोग बोर्नियो की चीनी बस्तियों को अपनी अधीनता में लाने में समर्थ हुए, लेकिन 1931 तक ही सम्पूर्ण बोर्नियो पर अपना प्रभुत्व स्थापित रख सके। 1910 के बाद इन्होंने जावा और बाली पर अधिकार कर लिया। इस समय इण्डोनेशिया के विभिन्न द्वीपों के निवासियों में अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता की भावना प्रवल रूप से विद्यमान थी, उन्हें डच लोगों का शासन पसंद नहीं था और इसी कारण से बीसवीं सदी के प्रारम्भिक भाग तक वे अपनी स्वाधीनता के लिये संघर्ष करते रहे। अन्त में वे हालैण्ड जैसे शक्तिशाली देश के आगे पराजित हो गये। 1927 ई० में डच सरकार ने इण्डोनेशिया में आंशिक स्वराज्य की भी स्थापना का उद्योग किया।

ब्रिटेन द्वारा अधिकृत देश—ब्रिटिश लोगों ने दक्षिणी पूर्वी एशिया के द्वीपों को हालैण्ड को सौंपने के वाद भी कुछ स्थानों पर कब्जा कर रखा था। 1840 में बोर्नियो के उत्तर पश्चिम के द्वीप लाबुआन पर कब्जा कर इसे उन्होंने अपना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यापारिक केन्द्र बनाया। बोर्नियो द्वीप के ही राज्य ब्रुनेई के सुल्तान की निर्बलता का लाभ उठा कर 1880 में ब्रिटिश लोगों ने उसे अपने आधिपत्य में ले लिया था। इस राज्य की स्थिति देशी रियासतों की भांति थी।

बोर्नियो के उत्तरी-पश्चिमी समुद्री तट पर सरावक नामक एक राज्य था। इसकी भी राजनीतिक दुर्बलता से लाभ उठा कर 1863 में ब्रिटिश सरकार ने सरावाक के सुल्तान से समझौता कर लिया। इस सुल्तान की स्थिति ब्रिटेन के अधीनस्थ राजा के समान थी। इस प्रकार सारावाक पर भी ब्रिटेन का अधिकार हो गया।

इसके अतिरिक्त उत्तरी-पश्चिमी बोर्नियो के जंगली प्रान्त (जहाँ रबर अधिकता से होता है) पर अंग्रेजों का अधिकार था तथा बोर्नियो का दक्षिणी-पूर्वी भाग हालैण्ड के अधिकार मे था। 1914-18 के प्रथम महायुद्ध के बाद न्यूगाइनिया द्वीप का उत्तरी भाग अंग्रेजों के अधिकार में आ गया तथा इस द्वीप का पश्चिमी भाग हालैण्ड के अधिकार में था। कोकोस कीलिंग आदि द्वीप समूहों पर भी अंग्रेजों का आधिपत्य था।

इण्डोचायना

इस राज्य के पाँच मुख्य भाग हैं, नोन्किन, अनम, कोचीन चायना, कम्बोडिया और लाओस। नोन्किन का प्रदेश तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से ही चीन देश के अन्तर्गत हो गया था और उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग तक चीन के मंचू साम्राज्य के अधीन था। इसका कारण यही था कि नोन्किन का प्रदेश चीन से लगा हुआ था। प्राचीन समय में अनाम के दक्षिणी भाग चम्पा राज्य के अन्तर्गत थे। चम्पा के पश्चिम में कम्बोडिया (कम्बुज) का राज्य था। यह भी भारतीय उपनिवेश था। सोलहवीं शताब्दी में जब पुर्तगीज लोगों ने व्यापार आदि के लिए इस देश में आना शुरू किया, तब कम्बुज देश की राजनीतिक व सामाजिक शक्ति बहुत निर्बल थी। इस प्रकार आधुनिक इण्डोचायना सोलहवीं शताब्दी के अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था।

पश्चिमी देशों से सम्पर्क—16वीं शताब्दी में इंडोचायना के समुद्र तट पर पुर्तगीजों ने आना प्रारम्भ किया परन्तु उन्होने वहाँ अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित करने मे कोई प्रयास नहीं किया। पुर्तगीजों के बाद हालैण्ड, स्पेन, ब्रिटेन और फ्रांस के व्यापारी यहाँ व्यापार के हेतु आये परन्तु उन्होंने भी वहाँ अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास नहीं किया। इस प्रकार 19वीं शताब्दी के मध्य तक इंडोचायना पाश्चात्य प्रभुत्व से बचा रहा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फ्रांस का प्रभुत्व—सत्रहवीं सदी में पेरिस में एक मिशनरी सोसाइटी की स्थापना हुई थी जिसका उद्देश्य विदेशों में रोमन कैथोलिक धर्म का प्रचार करना था। इस मिशन के कुछ पादरियों ने इंडोचायना के दक्षिणी भाग कोचीन चायना में अपना कार्य शुरू किया। इन्हीं पादरियों के साथ कुछ फ्रांसीसी व्यापारी भी कोचीन चायना और अनम पहुँचे। ये लोग व्यापार से ही सन्तुष्ट नहीं रहे, और इन्होंने प्रदेश के राजनीतिक मामलों में भी हस्तक्षेप शुरू कर दिया। अनम की राजगद्दी के झगड़े में फ्रांसीसी पादरियों की सहायता से ही गिआलोंग, अनम का राजसिंहासन प्राप्त करने में सफल हुआ। आगे चल कर यह गिआलोंग अत्यन्त शक्तिशाली सम्राट बना और केवल अनाम ही नहीं अपितु तोन्किन, कोचीन चायना, लाओस और कम्बोडिया को भी अपने प्रभुत्व में लाने में समर्थ हुआ। सम्राट गिआलोंग ने फ्रेंच पादरियों की ही सहायता से गद्दी प्राप्त की थी अतः उसके राज्य में फ्रांस का प्रभाव बढ़ना शुरू हो गया। फ्रेंच पादरी बहुत निश्चिन्तता से अपने धर्म-प्रचार का कार्य कर रहे थे। और इस प्रकार धर्म और व्यापार की आड़ में यहाँ अपना प्रभाव और प्रभुत्व स्थापित कर रहे थे। लेकिन अनम की जनता इन पादरियों के कार्यों से असन्तुष्ट थी और 1858 में उन्होंने अनेक फ्रेंच पादरियों पर आक्रमण कर दिया। पादरियों के प्रति किये गये व्यवहार को फ्रेंच लोगों ने सहन नहीं किया और फ्रेंच सेनायें कोचीन चायना में घुस आईं। वहाँ का राजा इन सेनाओं का मुकाबला नहीं कर सका और 1863 में सन्धि करने के लिये विवश हुआ। इस संधि के अनुसार कोचीन चायना फ्रांस के अधीन हो गया और उसको एक बड़ी रकम हर्जाने के रूप में देनी पड़ी। फ्रांस ने 1873 में तोन्किन प्रदेश पर भी कब्जा कर लिया। अनम की विदेशी नीति का संचालन फ्रांस सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। इस प्रकार अनम सम्राट की स्थिति भी चीनी मंचू सम्राट की भाँति हो गई। फ्रांसीसियों का तोन्किन में प्रवेश होने करने के कारण वहाँ की जनता ने विद्रोह किया और सर्वत्र अव्यवस्था छा गई। चीन की सरकार ने तोन्किन को सैनिक सहायता भेजी। इस कारण तोन्किन प्रश्न को लेकर चीन और फ्रांस में युद्ध छिड़ गया। अन्त में चीन को दबना पड़ा और 1833 में अनम का राजा फ्रांस के अधीन हो गया। 1893 में लाओस पर भी फ्रांस ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उन्नीसवीं सदी के अन्त होने के पूर्व ही लगभग सम्पूर्ण इंडोचायना फ्रांस के अधिकार में आ गया था। 1887 ई० में फ्रेंच सरकार ने यहाँ एक गवर्नर जनरल की नियुक्ति की तथा जिन प्रदेशों में (अनम, कम्बोडिया) पुरानी राजसत्ता थी, वहाँ पर रेजिडेण्ट नियुक्त किया। यहाँ का राजा कठपुतली शासक की भाँति था। अब यहाँ शीघ्र ही फ्रेंच सभ्यता और संस्कृति का प्रचार होने लगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

1914-18 के महायुद्ध में फ्रेंच सेना में हजारों अनामी सिपाही थे। हजारों अनामी मजदूर फ्रांस में काम करने के लिये गये। लेकिन युद्ध समाप्ति पर 1919 से वहाँ भी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। इस लिये फ्रांस की सरकार ने वहाँ धीरे-धीरे स्वशासन को स्थापित करने की नीति को अपनाया। कोचीन चायना में प्रतिनिधि सभा की स्थापना की गई और उसमें प्रतिनिधि निर्वाचित करने का अधिकार जनता को दिया गया। सिविल सर्विस में भी यहाँ के लोगों की संख्या बढ़ाई जाने लगी तथा 1930 में अनम के राजा ने भी पाश्चात्य देशों के ढंग पर अपने राज्य के शासन का पुनर्संगठन किया। यद्यपि अनम और कम्बोडिया का शासन वहाँ के राजवंशों का शासन था लेकिन वस्तुतः ये भी फ्रांस के ही आधीन थे। इसके अतिरिक्त कोचीन चायना में जो प्रतिनिधि सभा की स्थापना हुई थी उसमें भी निर्वाचित सदस्यों की संख्या बहुत कम थी। ऐसी दशा में इंडोचायना में विदेशी फ्रेंच शासन के विरुद्ध विद्रोह की भावना प्रबल होती जा रही थी। इसके विरोध में फ्रांसीसी अधिकारियों ने हिन्दचीन में राष्ट्रवाद को बुरी तरह से दमन किया था, लेकिन दूसरे युद्ध में इनकी परिस्थिति भिन्न हो गई थी।

इस समय अनम के राष्ट्रवादियों के दो संगठन थे—(1) वियतनाम राष्ट्रवादी दल जिसका पहला अधिवेशन कैन्टन (चीन) में विदेशी भूमि पर 1914 में हुआ था और (2) वियतनामी साम्यवादी दल जिसकी स्थापना 1930 में हो ची मिन्ह ने की थी। 1930 के दशक में हिन्दचीन के फ्रांसीसी प्रशासन ने राष्ट्रवादी नेताओं को मृत्युदण्ड देकर सारे आन्दोलनों को नष्ट कर दिया था। लेकिन साम्यवादियों के विरुद्ध ठोस कदम नहीं उठाया जा सका। इस समय साम्यवादी विचार धारा से युक्त उत्तरी वियतनाम और पूँजीवादी विचारधारा से युक्त दक्षिणी वियतनाम में जो सेनाएँ लड़ रही हैं वह संसार की शान्ति के लिए खतरनाक हैं।

स्याम या थाईलैण्ड

इंडोचायना के पश्चिम में स्याम देश है जिसका वर्तमान नाम थाईलैण्ड है। दक्षिणी पूर्वी एशिया में स्याम ही एक ऐसा देश है, जो किसी पाश्चात्य देश के सीधे शासन में नहीं रहा और जिसकी राजनीतिक स्वतन्त्रता कायम रही, यद्यपि यहाँ भी अनेक विदेशी राज्यों ने व्यापार-सम्बन्धी विशेषाधिकार प्राप्त किये थे। दक्षिण-पूर्वी एशिया के अन्य देशों के समान स्याम में भी 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पुर्तगीजों ने व्यापार के हेतु पदार्पण किया। इसके बाद डच और इंग्लिश व्यापारियों ने स्याम में पदार्पण किया परन्तु इनमें से कोई भी वहाँ पर अपना राजनीतिक प्रभाव स्थापित नहीं कर सका तथा उन्होंने अपना कार्यक्षेत्र व्यापार एवं धर्म-प्रचार तक ही रखा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कालान्तर में कुछ परिस्थितियाँ इस प्रकार की बनीं कि स्याम में पाश्चात्य उपनिवेशों की स्थापना नहीं हो पाई परन्तु व्यापारिक संधियों के कारण स्याम की राजनीतिक स्वतन्त्रता काफी हद तक मर्यादित हो गई। स्याम एक स्वतन्त्र राज्य रहा परन्तु उस पर पाश्चात्य देशों का कुछ प्रभाव सा रहा। आरम्भ में राजतंत्रात्मक व्यवस्था थी परन्तु प्रथम महायुद्ध के बाद वहाँ लोकतन्त्रात्मक प्रवृत्तियाँ बढ़ीं। 1932 ई० में स्याम में एक नये शासन विधान की स्थापना की गई और उसके अनुसार जनता को पर्याप्त अधिकार प्राप्त हो गये।

1930 के बाद जापान जिस गति से पूर्वी एशिया में अपनी शक्ति के विस्तार में लगा था, स्यामी उससे भली-भाँति परिचित थे। स्याम के राजनीतिक नेताओं को विश्वास था कि जापान शीघ्र ही सम्पूर्ण पूर्वी और दक्षिणी पूर्वी एशिया का नेतृत्व करेगा। अतएव जापान-थाईलैण्ड मैत्री संधि सम्पन्न हुई और इस सन्धि के अनुसार थाईलैण्ड को अपने खोये हुए क्षेत्रों पर पुनः अधिकार का अवसर दिया गया था। ऐसी स्थिति में 1940 में जब जापानी सेनाएँ इण्डोचायना में प्रवेश कर गई थीं और फ्रांस द्वारा शासित यह देश जापान के प्रभाव में आ गया था, तब फ्रांस की निर्बलता का लाभ उठा कर स्याम ने इण्डोचायना के प्रदेशों को जहाँ थाई-निवासी अधिक रहते थे, अपने अधिकार में कर लिया। जापानियों ने स्याम के इस कार्य में सहायता दी। इससे स्याम और जापान के सम्बन्ध और भी दृढ़ हो गए।

दिसम्बर 1941 में स्याम ने जापान को द्वितीय महायुद्ध में सहायता दी। 1941 में जब जापान ने स्थल मार्ग द्वारा मलाया और बर्मा पर आक्रमण किया था, उसके लिए स्याम के स्थल मार्ग का स्वतन्त्रतापूर्वक उपयोग किया था। इस समय स्याम (थाइलैंड) की सरकार का प्रधान नेता श्री लुआग पिबुल संग्राम था, जो जापान का प्रबल समर्थक था।

महायुद्ध में जापान के परास्त हो जाने पर ब्रिटिश सेनाओं ने स्याम पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया तथा उन माँगों को पेश किया, जिसके अन्तर्गत थाइलैण्ड ब्रिटिश संरक्षित प्रदेश बन कर रह गया। थाई और अमेरिकन सरकार ने इन मार्गों का विरोध किया। अतः 1946 के शांति-सम्मेलन में थाईलैण्ड ने ब्रिटिश नागरिकों को युद्ध-क्षति के लिये भारी मुआवजा देकर अपने अधिकार वापस पा लिये। थाइलैण्ड को संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनवाया गया तथा सोवियत संघ से राजनयिक सम्बन्ध स्थापित किए गए और अब थाईलैण्ड की विदेशी नीति अमेरिकन मार्ग पर चलने लगी। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राजनीति में उसकी प्रायः वही स्थिति रही, जो महायुद्ध से पूर्व थी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महायुद्ध की समाप्ति पर स्याम के शासन में अनेक सुधार किए गए। 1946 में स्याम के लिए एक नया शासन-विधान बना, उसके पार्लियामेण्ट में दो सभाएँ रखी गईं, तथा यह व्यवस्था की गई दोनों सभाओं के सदस्यों का पूर्ण निर्वाचन हो। 1948 तक पिबुल संग्राम, जिसने जापान की मित्रता रखने के कारण अपनी लोक-प्रियता कुछ दिनों के लिये खो दी थी, फिर से सत्तारूढ़ हो गया । इस प्रकार स्याम में लोकतंत्र की स्थापना हुई।

मलाया

मलाया स्याम की खाड़ी के दक्षिण पूर्व में स्थित है। भौगोलिक दृष्टि से मलाया का महत्व बहुत अधिक है, क्योंकि यूरोप, पश्चिमी एशिया व भारत से पूर्वी व दक्षिणी पूर्वी एशिया आने का छोटा रास्ता मलाया के जलडमरुमध्य से होकर जाता है। सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान होने के कारण द्वितीय महायुद्ध में मलाया का प्रमुख स्थान था।

चौदहवीं सदी में अरब के मुसलमान व्यापारियों ने यहां भी अपना कब्जा किया। इस समय यहाँ अनेक छोटे-छोटे राज्य कायम थे। इससे फायदा उठाकर मुसलमान तुर्क व अफगानों ने जावा, सुमात्रा, मलाया में अपना शक्ति स्थापित की। मलाया में मलक्का सबसे महत्वपूर्ण बन्दरगाह था। मलक्का ही आधुनिक सिंगापुर बन्दरगाह है। चौदहवीं शताब्दी के अन्त होने से पूर्व ही अरबों ने मलक्का पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। राजनीतिक विस्तार करने के साथ-साथ उन्होंने अपने धर्म का प्रचार भी किया था। इस समय तक मलाया में हिन्दू और बौद्ध धर्म बहुत क्षीण हो चुके थे। वहाँ के निवासियों ने अरबों के सम्पर्क में आकर इस्लाम को स्वीकार कर लिया।

पाश्चात्य देशों में सम्पर्क— 1511 में मलक्का पर अल्बुकर्क के नेतृत्व में पुर्तगीजों का अधिकार हो गया था लेकिन 1641 ई० में हालैण्ड के लोगों ने अपने व्यापार में विस्तार के लिए मलक्का को पुर्तगीजों से छीन लिया। अठारहवीं सदी के अन्त में जब फ्रान्स और ब्रिटेन का युद्ध शुरू हुआ (नैपोलियन की विजयों के कारण हालैण्ड पर फ्रांस का अधिकार था) तो ब्रिटेन ने हालैण्ड के समुद्रपारीय प्रदेशों को भी अपने अधीन कर लिया। इसी समय 1795 ई० में मलक्का भी ब्रिटिश लोगों के हाथों में चला गया। लेकिन 1814 में वियेना की कांग्रेस (Vienna Congress) के निर्णयों के अनुसार इण्डोनेशिया के विभिन्न द्वीप हालैण्ड को वापस मिल गये। इसमें मलक्का भी डचों को वापस मिल गया। 1824 में अंग्रेजों ने डच लोगों से एक समझौता किया जिसके अनुसार सुमात्रा ने अपने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रभुत्व में विद्यमान प्रदेशों के बदले में उन्हें मलक्का प्राप्त हो गया। मलक्का पर अंग्रेजों का अधिकार हो जाने से धीरे-धीरे सम्पूर्ण मलाया पर उनका अधिकार हो गया।

इस समय मलाया में बहुत छोटे-छोटे राज्य थे जो आपस में झगड़ते रहते थे। सिंगापुर व उसके समीप के कुछ द्वीप व प्रदेश ब्रिटिश सरकार के अधीन थे। इन्हे स्टेट्स सेटलमेण्ट कहा जाता था। 1867 में इन्हें ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत एक क्राउन कालोनी के रूप में परिवर्तित कर दिया गया और इन पर शासन ब्रिटिश सरकार के उपनिवेश विभाग (Colonial Department) द्वारा किया जाने लगा।

स्टेटस सेटलमेन्ट के अतिरिक्त मलाया में कुछ (Federated Malaya) States) थे और कुछ स्वतन्त्र। ये रियासतें भी ब्रिटिश शासन की अधीनता स्वीकार करती थीं। 1896 ई० में मलाया के चार राज्यों पेराक, सेलगोर, नेग्री, सम्बिलान और पेहोग का एक संघ (Federation) बनाया गया। इनके ऊपर एक अंग्रेज रेजीडेन्ट रहता था। इस संघ के कारण सुल्तानों की शक्ति कम होती गई। इन सुल्तानों को निजी खर्च दिया जाता था। उनके पास राजनीतिक शक्ति नहीं थी।

प्रथम महायुद्ध के बाद यहाँ भी स्वतंत्रता आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध असन्तोष मलाया में निरन्तर बढ़ता गया। ब्रिटिश लोगों ने मलक्का (सिंगापुर) का केवल व्यापारिक केन्द्र के रूप में ही विकास नहीं किया था, अपितु साथ ही पूर्वी एशिया में उसे अपना सामरिक अड्डा बनाया था। इस समय भारत, लंका, बर्मा, मलाया, बोर्नियो, तथा चीन के कैन्टन प्रदेशों पर ब्रिटिश आधिपत्य था। अतः ब्रिटेन के जंगी जहाज व जलसेना यहीं रहती थी। यह बन्दरगाह उसके उपनिवेशों के बीच में था। यहाँ पर अंग्रेजों ने मजबूत किलेबन्दी की थी। लेकिन 1939-45 के द्वितीय महायुद्ध के अवसर पर जापान ने स्थल मार्ग से आकर सिंगापुर की सेना को पराजित कर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और ब्रिटिश सेनाओं को सिंगापुर छोड़ने पर विवश किया। महायुद्ध के पश्चात् मलाया ब्रिटिश आधिपत्य से मुक्त हो गया था, वहाँ राष्ट्रीय स्वाधीनता और लोकतन्त्रात्मक प्रवृत्तियों को बहुत बल मिला।

ब्रह्मा या बर्मा

तेरहवीं शताब्दी में जब चंगेज खाँ के नेतृत्व में विस्तृत मंगोल साम्राज्य की स्थापना हुई, उस समय ब्रह्मा में पागन राज्य शासन कर रहा था। जब मंगोलों ने दक्षिणी चीन पर भी आक्रमण कर दिया तो मंगोलों ने पागन पर भी आक्रमण कर उसका पतन कर दिया। ब्रह्मा में अनेक छोटे-छोटे राज्यों की पुनः स्थापना हो गई। इन राज्यों में आवा, पेगू, तुगू और अराकान राज्य प्रमुख थे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ब्रह्मा का अराकान राज्य समुद्रतट पर स्थित था। इसलिये वहाँ व्यापार के सिलसिले में अरब और पुर्तगीज व्यापारी आते थे। अरब व्यापारियों के सम्पर्क में आकर बहुत से अराकानी लोगों ने इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया ये मुसलमान व्यापारी भारत भी आते-जाते थे अतः मुगल बादशाहों से भी अराकान का सम्बन्ध हो गया। ब्रह्मा के राज्यों में तुगू राज्य सबसे अधिक शक्तिशाली था। उसने पुर्तगीजों से बन्दूक और बारुद का प्रयोग सीखा तथा अराकान को छोड़ कर पूरे बर्मा पर अधिकार कर लिया। स्याम को जीतकर वहाँ को राजधानी अयोध्या पर भी अपना अधिकार कर लिया।

सत्रहवीं शताब्दी में तुगू राज्य का पतन हो गया, उसके स्थान पर आवा राजवंश शक्तिशाली हो गया। लेकिन 1885 में अंग्रेजों ने क्लाइव के नेतृत्व में आवा और अराकान साम्रज्य को जीतकर 1893 ई० तक सम्पूर्ण बर्मा पर अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार बर्मा की स्वतंत्र सत्ता का अन्त हुआ।

ब्रिटिश लोगों ने ब्रह्मा को जीतकर उसे ब्रिटिश भारत के एक प्रान्त के रूप में परिवर्तित कर दिया। लेकिन बर्मा के राष्ट्रीय नेता जहाँ अपने देश को स्वतंत्र कराने के इच्छुक थे, वहीं वे भारत का सम्पर्क भी समाप्त करना चाहते थे। 1931 में बर्मा के शासन की समस्याओं को हल करने के लिये व राष्ट्रीय नेताओं से समझौता करने के लिये पृथक गोलमेज कान्फ्रेन्स का आयोजन किया गया और 1937 में बर्मा भारत से पृथक होकर ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत पृथक देश हो गया।

इस समय बर्मा के शासन के सम्बन्ध में जो व्यवस्था हुई, उसके अनुसार वहाँ आंशिक रूप से स्वराज्य की स्थापना हुई। लेकिन वे पूर्ण स्वतंत्रता चाहते थे इसलिए वहाँ अनेक आन्दोलन हुए।

इसी बीच 1939 से 45 तक जापान ने पूर्वी एशिया की एकता के लिये नारा लगाया और द्वितीय विश्व युद्ध यूरोप में प्रारम्भ हो चुका था। इस युद्ध की आग एशिया में भी फैल गई तथा जापान ने मुख्य रूप से भाग लिया। इस युद्ध में पहले तो जापान की जीत हुई लेकिन शीघ्र ही अमेरिका द्वारा नागासाकी-हिरोशिमा की बमबारी के बाद जापान ने हथियार डाल दिये। जापान पर अमेरिका का अधिकार हो गया। लेकिन इस युद्ध का परिणाम यह हुआ कि दो ही वर्षों के बाद पूर्वी एशिया के देश पश्चिमी देशों के चंगुल से छूट कर स्वतंत्र हो गये। ब्रह्मा भी 1947 में स्वतंत्र हो गया यद्यपि यहाँ साम्यवाद का प्रभाव है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पाश्चात्य देशों की औपनिवेशिक नीति

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि दक्षिणी पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों में पाश्चात्य देशों द्वारा अपने उपनिवेशों की स्थापना की गई। स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस, ब्रिटेन और अमेरिका आदि ने विभिन्न समयों में दक्षिणी पूर्वी एशिया के विभिन्न क्षेत्रों पर अपने अपने अधिकार स्थापित करने के प्रयास किए। इन सभी पाश्चात्य देशों की औपनिवेशिक नीति एक दूसरे से मिलती जुलती थी। यहां हम उनकी औपनिवेशिक नीति की प्रमुख बातों पर संक्षेप में प्रकाश डाल रहे हैं—

(1) आरम्भ में दक्षिण-पूर्वी एशिया में जाने वाले विभिन्न पाश्चात्य व्यापारियों ने अपने को केवल व्यापार से ही सन्तुष्ट रखा। पुर्तगाल और फ्रांस के व्यापारी वहां अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित करने के लिए कभी भी अधिक चिंतित नहीं रहे। कालान्तर में सभी पाश्चात्य देशों की नीति में परिवर्तन हुआ और स्याम को छोड़ कर सभी दक्षिणी पूर्वी एशिया के देश किसी न किसी रूप में पाश्चात्य शक्ति के आधीन हो गये और इन शक्तियों ने वहाँ राजनीतिक सत्ता स्थापित की। फिलिप्पाइन द्वीप समूह पर अमेरिका की सत्ता स्थापित हुई। बर्मा, मलाया और इण्डोनेशिया के कतिपय द्वीप ब्रिटेन के आधीन रहे। तिमारे द्वीप का कुछ भाग एवं अन्य कतिपय द्वीप पुर्तगाल के कब्जे में गये। सम्पूर्ण दक्षिण पूर्वी एशिया में केवल स्याम ही एक ऐसा देश था जो किसी विदेशी राज्य के शासन में नहीं था परन्तु वहां भी एक्सट्रा टेरिटरी (Extra Territory) व व्यापारिक विशेषाधिकारों के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी कि स्याम को पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न राष्ट्र नहीं कहा जा सकता।

(3) 19 वीं शताब्दी में दक्षिणी पूर्वी एशिया के विभिन्न प्रदेशों एवं द्वीपों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए पाश्चात्य देशों में परस्पर विरोध एवं संघर्ष होता रहा परन्तु 20 वीं शताब्दी में इस विरोध एवं संघर्ष का अन्त हो गया। जिस राज्य पर जिस शक्ति का अधिकार था वहां उसकी सत्ता को अन्य राज्यों ने स्वीकार कर लिया।

(4) राजनीतिक सत्ता स्थापित करने के पश्चात सभी पाश्चात्य शक्तियों ने यह भली भांति समझा कि दक्षिणी-पूर्वी एशिया पर अधिक दिनों तक शासन स्थापित रखना दुष्कर काय होगा इसलिए उन्होंने उसे अधिक से अधिक आर्थिक दृष्टि से खोखला बनाने का प्रयास किया।

(5) पाश्चात्य शक्तियों ने दक्षिणी-पूर्वी एशिया में आधुनिकीकरण का भी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रयास किया और उनके प्रयत्नों से वहाँ अनेक विद्यालयों की स्थापना हुई और दक्षिण-पूर्वी एशिया के निवासियों को विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारों की जानकारी हुई।

(6) दक्षिणी-पूर्वी एशिया में शासन करने वाली विभिन्न शक्तियों ने वहां के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलनों को कुचलने का प्रयास किया। इन क्षेत्रों की जनता ने अपनी स्वतंत्रता के लिए समय-समय पर आन्दोलन किए परन्तु सभी शक्तियों ने इन आन्दोलनों को कुचलना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझा। कुछ पाश्चात्य शक्तियों ने इस कार्य में केवल शक्ति का आश्रय लिया जब कि ब्रिटेन आदि पाश्चात्य शक्तियों ने कूटनीति का आश्रय लेकर दक्षिणी-पूर्वी एशिया में अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास किया।

(7) द्वितीय महायुद्ध के समय विभिन्न पाश्चात्य देशों को दक्षिणी-पूर्वी एशिया में जापान से मुँह की खानी पडी और 1939-45 के महायुद्ध के फलस्वरूप दक्षिण पूर्वी एशिया के अनेक देशों से पश्चिमी देशों के साम्राज्यों का अन्त हो गया।

उपसंहार

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि 16वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी मध्य तक दक्षिणी-पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों पर पाश्चात्य शक्तियों ने अपनी सत्ता स्थापित की और वहाँ दृढ़तापूर्वक राज्य किया। इन सभी शक्तियों की औपनिवेशिक नीति लगभग एक सी ही रही। सभी का मूल उद्देश्य दक्षिणी-पूर्वी एशिया को आर्थिक दृष्टि से खोखला बना कर अपने स्वार्थ की सिद्धि करना था। सभी शक्तियों ने इन क्षेत्रों को अपने व्यापार को प्रोत्साहन देने का प्रयास किया और इसके परिणाम स्वरूप दक्षिणी-पूर्वी एशिया की जनता को अपार कष्टों का सामना करना पड़ा। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि दक्षिणी पूर्वी एशिया के आधुनिकीकरण में पाश्चात्य शक्तियों का महान योगदान रहा और आधुनिक युग में दक्षिणी पूर्वी एशिया में जो हम राजनीतिक जागृति एवं औद्योगीकरण देख रहे हैं उसका बहुत कुछ श्रेय पाश्चात्य शक्तियों को ही प्राप्त है परन्तु पाश्चात्य शक्तियों ने यह कार्य दक्षिणी-पूर्वी एशिया की जनता के हित के लिए नहीं किया बल्कि उन्होंने यह कार्य अपने ही स्वार्थ सिद्धि के लिए किया था। आज भी अनेक पाश्चात्य देशों की दक्षिणी-पूर्वी एशिया की जो नीति बनी हुई है वह इस बात की परिचायक है कि पाश्चात्य जगत इस क्षेत्र को कभी भी पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नहीं देखना चाहता और विभिन्न देशों में आपसी संघर्ष करा कर अपने स्वार्थ की सिद्धि करना चाहता है। वियतनाम में जो संघर्ष हो रहा है वह इस बात का स्पष्ट परिणाम है।

———

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय | 19

दक्षिणी और दक्षिणी-पूर्वी एशिया में स्वतन्त्रता आन्दोलन

(FREEDOM MOVEMENT IN SOUTH AND SOUTH-EAST ASIA)

भूमिका

पिछले अध्याय में हमने इस बात का उल्लेख किया है कि दक्षिणी और दक्षिणी पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों पर 16वीं शताब्दी के बाद से पाश्चात्य देशों का शासन स्थापित होने लग गया और स्याम को छोड़कर सभी देश किसी न किसी पाश्चात्य शक्ति के अधीन हो गये। दक्षिणी पूर्वी एशिया के विभिन्न देश, जिन पाश्चात्य शक्तियों के अधीन हुए उनकी चर्चा हमने पिछले अध्याय में की है। भारत में अंग्रेजों का शासन स्थापित हुआ और भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की चर्चा हमने अध्याय (11) में की है। सीलोन में पहले पुर्तगीजों और फिर अंग्रेजों का शासन रहा परन्तु वहाँ की जनता ने भी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष किए और अब एक स्वतन्त्र राष्ट्र है।

———

प्रश्न 1—दक्षिणी-पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों में स्वतन्त्रता संग्राम का चित्रण कीजिए।

16वीं शताब्दी के बाद से दक्षिणी-पूर्वी एशिया के विभिन्न देश पाश्चात्य जगत के अत्यधिक निकट आते गये और वहाँ पाश्चात्य देशों की सत्ता स्थापित होती गई। केवल स्याम ही ऐसा देश बचा जहाँ कि किसी विदेशी शक्ति ने अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित नहीं की। शेष सभी देश परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ गये। कालान्तर में वहाँ की जनता ने अपनी स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के लिए संघष किया और द्वितीय महायुद्ध के बाद दक्षिणी-पूर्वी एशिया के अनेक देश स्वतत्र हो गये। यहाँ हम विभिन्न देशों में स्वतन्त्रता संग्राम की चर्चा संक्षेप में कर रहे हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इण्डोचायना या हिन्द-चीन

फ्रांस का प्रभाव—1863 ई० में इण्डोचायना में फ्रांस के प्रभाव का सूत्रपात हुआ और उसने अपनी साम्राज्यवादी नीति को जारी रखा तथा 5 वर्षों में कम्बोडिया भी उसके अधीन आ गया था। 1883 ई० तक अनम का राजा फ्रांस की अधीनता स्वीकार कर लेने के लिए विवश हो गया था। 1893 में लाओस पर भी फ्रांस का आधिपत्य स्थापित हो गया। इस प्रकार 19वीं शताब्दी के पूर्व ही समस्त इण्डोचायना फ्रांस की अधीनता स्वीकार कर चुका था और वह उसी प्रकार फ्रांस के अधीन था जिस प्रकार भारत ब्रिटेन के।

स्वतन्त्रता के प्राथमिक प्रयास—फ्रांस की सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए इण्डोचायना में अनेक स्वतन्त्रता आन्दोलन हुए। द्वितीय महायुद्ध से पूर्व अनेक दल स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्नशील थे। इन दलों में (1) फाम-पुइन्हो दल (2) क्रान्तिकारी दल और (3) आतंकवादी दल प्रमुख थे। पहला दल नरम दल था। दूसरा दल अनम के नवयुवक देशभक्तों का था जिसमें 1928 ई० तक कम्युनिस्ट लोग भी शामिल हो चुके थे। तीसरा दल इण्डोचायना से बाहर कैण्टन को अपना केन्द्र-स्थल बनाकर इण्डोचायना की स्वतन्त्रता के लिए सक्रिय था।

द्वितीय महायुद्ध और स्वतन्त्रता आन्दोलन—द्वितीय महायुद्ध के समय ये समस्त दल अपने-अपने ढंग से इण्डोचायना की राष्ट्रीयता और स्वतन्त्रता के लिए कार्य कर रहे थे। क्रान्तिकारी दल के लोग जिसमें साम्यवादी भी सम्मिलित थे, द्वितीय महायुद्ध को राष्ट्रीय स्वाधीनता के हेतु एक स्वर्णिम अवसर मानते थे और इसलिए उन्होंने श्री देकू की सरकार का छिपे-छिपे प्रतिरोध प्रारम्भ किया। उन्होंने कुछ ऐसी गुप्त समितियाँ कायम कीं जो फ्रेन्च शासन और जापान के सैनिक प्रभाव को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील थीं। इन देशभक्तों ने गुरिल्ला युद्ध नीति को अपना कर फ्रांस एवं जापान के अफसरों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया जिससे विदेशी सरकार के लिए कार्य करना दूभर हो गया। महायुद्ध के समय इन लोगों के लिए सम्भव नहीं था कि वह सामने आकर फ्रांस और जापान की शक्तियों का मुकाबला कर सकें परन्तु ये गोरिल्ला युद्ध करके इण्डोचायना को स्वतन्त्र कराने के लिए प्रयत्नशील रहे।

वियत-मिन्ह सरकार की स्थापना—1944 ई० में फ्रांस ने जर्मनी के आधिपत्य से स्वतंत्र होने के बाद जनरल डेगाल के नेतृत्व में अपनी सरकार का संगठन किया। उस समय इण्डोचायना में श्री देकू की स्थिति अत्यन्त डावांडोल हो गई। श्री देकू के लिए फ्रांस का प्रभाव बनाये रखना कठिन हो गया। इस स्थिति में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राष्ट्रवादी देशभक्तों ने इण्डोचायना की राष्ट्रीय स्वतंत्रता की घोषणा की और वियत-मिन्ह स्वतन्त्र सरकार का संगठन किया। वियत-मिन्ह का नेता हो ची मिन्ह था जो राष्ट्रवादी के साथ ही कम्युनिस्ट भी था। हो ची मिन्ह के अनुयायी काफी समय में इण्डोचायना की स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्नशील थे और निरन्तर गोरिल्ला युद्ध कर रहे थे। अगस्त 1945 में जब जापान ने आत्म-समर्पण कर दिया तो हो-ची-मिन्ह को अवसर मिला और उन्होंने अनम के राजा और सम्राट बाओ दाई की उपेक्षा करके इण्डोचायना में 'वियतनाम' नामक रिपब्लिकन राज्य की स्थापना की घोषणा की और उसे विदेशी आधिपत्य से मुक्त करा लिया।

इण्डोचायना अनेक राज्यों एवं प्रदेशों में विभाजित था। और उसमें कम्बोडिया एवं अनम के राजाओं की वह स्थिति थी जो भारत में ब्रिटिश शासकों के आधीन रामपुर और ग्वालियर आदि की रियासतो के राजाओं की थी। अनम का राजा बाओ दाई सम्राट होते हुए भी फ्रेन्च गवर्नर जनरल के हाथ की कठपुतली था। जब हो-ची-मिन्ह के नेतृत्व में 'वियतनाम रिपब्लिक' की स्थापना हुई तो बाओ दाई अपने पद पर स्थिर न रह सका और 25 अगस्त 1945 को उसने अपना सम्राट पद त्याग दिया तथा 2 सितम्बर 1945 ई० को 'वियतनाम रिपब्लिक' का शासन अनम के आधीन आ गया।

फ्रांस के आधिपत्य की पुनः स्थापना—फ्रांस किसी भी हालत में अपने इण्डोनेशिया के साम्राज्य को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था और उसने एक योजना वहाँ किसी न किसी प्रकार अपना शासन बनाये रखने के लिए तैयार की। इस योजना के अनुसार इण्डोचायना को अपने आन्तरिक शासन के लिए कुछ स्वतंत्रता प्राप्त हो जाती परन्तु विदेशी मामलों और सेना पर फ्रांस का नियन्त्रण रहता। इण्डोचायना के राष्ट्रवादी नेताओं ने इस योजना को अस्वीकार कर दिया और वे पूर्ण स्वतन्त्रता का ही नारा बुलन्द करते रहे। फ्रांस इसके लिए तैयार न हुआ परन्तु वह द्वितीय महायुद्ध की परिस्थितियों के फलस्वरूप अपनी सम्पूर्ण सेनाओं को इण्डोचायना न भेज सका और मित्र राज्यों ने मिलकर यह व्यवस्था की कि इण्डोचायना पर कब्जा करने के लिए ब्रिटेन और चीन की सेनाएँ भेजी जायँ। ब्रिटिश सेनाएँ दक्षिणी इण्डोचायना पर और चीनी सेनाएँ उत्तरी इण्डोचायना पर कब्जा करें। परन्तु मार्च 1945 और अगस्त 1945 के बीच हो-ची-मिन्ह अत्यधिक शक्तिशाली था और उसने इण्डोचायना के बहुत बड़े भाग पर कब्जा कर लिया था। ब्रिटिश सेनाओं ने अपने कार्य में कुछ सफलता प्राप्त की और सेगोन को अपने आधीन करके उन्होंने उसे फ्रांस के आधीन कर दिया। 1946 ई० तक काफी बड़ी मात्रा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में फ्रेन्च सेनाएँ सैगोन पहुँच चुकी थीं। फ्रेञ्च सरकार ने वियतनाम सरकार के नेताओं पर फ्रेञ्च यूनियन की योजना को स्वीकार करने के लिए दबाव डाला परन्तु वियतनाम के स्वतंत्रता-प्रेमी नेताओं ने इसे अस्वीकार कर दिया। अतएव फ्रांस इस बात का प्रयत्न करने लगा कि जैसे सैगोन में उसकी सेनाएं प्रविष्ट हुई हैं उसी प्रकार उत्तरी इण्डोचायना में भी प्रविष्ट हो जायँ और वहाँ रहने वाली चीनी सेनाओं का स्थान फ्रांस की सेनाएँ ले लें। परन्तु यह तभी सम्भव था कि जब या तो फ्रांस वियतनाम सरकार से युद्ध करे अथवा किसी प्रकार समझौता करके उसे राजी करे। 6 मार्च 1947 ई० को फ्रांस ने वियतनाम सरकार से समझौता किया जिसमें यह स्वीकार किया गया कि 'वियतनाम रिपब्लिक' की स्थिति एक स्वतंत्र राज्य की हो। परन्तु वियतनाम रिपब्लिक का शासन किन-किन प्रदेशों पर रहे यह लोकमत द्वारा निश्चित किया जाय। इस समझौते के अनुसार फ्रेञ्च सेनाओं को टोकिन में प्रवेश करने की अनुमति प्राप्त हो गई। यह समझौता 'हनोई समझौते' के नाम से प्रसिद्ध है। यह समझौता अधिक दिनों तक कायम न रहा और फ्रेञ्च सरकार एवं वियतनाम में पुनः संघर्ष आरम्भ हो गया। वियतनाम सरकार के नेताओं की सैन्यशक्ति इतनी नहीं थी कि वे फ्रेंच सेनाओं का मुकाबला कर सकते। वियतनाम के स्वतंत्रता-प्रेमियों के लिए यह असम्भव था कि वे फ्रेन्च सेनाओं को पराजित कर टोकिन, अनम, कोचीन चायना में अपनी सत्ता स्थापित कर सकें अतएव उन्होंने गोरिल्ला युद्ध का आश्रय लिया।

बाओ दाई की सरकार—हो-ची-मिन्ह के साथ युद्ध में फ्रेञ्च सरकार ने यह आवश्यक समझा कि इण्डोचायना में कोई ऐसी सरकार स्थापित कर दी जाय जो फ्रांस के हाथ की कठपुतली हो। फ्रांस यह समझता था कि इण्डोचायना में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो हो-ची-मिन्ह की साम्यवादी नीति के विरुद्ध हों, अतएव उसने यह आवश्यक समझा कि इन तत्वों के साथ समझौता किया जाय। मार्च 1949 ई० में फ्रान्स के राष्ट्रपति श्री आरयोल एवं बाओ दाई से इण्डोचायना के प्रश्न पर सन्धि हुई और इस सन्धि के अनुसार फ्रांस ने इण्डोचायना के शासन का अधिकार बाओ दाई के सुपुर्द कर दिया।

बाओ दाई और हो-ची-मिन्ह में संघर्ष—बाओ दाई फ्रांस की ओर से इण्डोचायना का शासक नियुक्त किया गया था परन्तु अब भी उसके बहुत बड़े भाग पर हो-ची-मिन्ह की 'वियतनाम रिपब्लिक' की सेनाओं का कब्जा था। इन क्षेत्रों पर अधिकार करने के लिए बाओ दाई के लिए यह आवश्यक था कि वह फ्रांसीसी सेना की सहायता ले। उसने ऐसा ही किया और एक लाख से भी अधिक फ्रेन्च

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सैनिक इण्डोचायना पहुँच गये। परिणाम यह हुआ कि हो-ची-मिन्ह और बाओ दाई की सेनाओं से युद्ध आरम्भ हो गया। रूस, कम्युनिस्ट चीन आदि अनेक देशों ने हो-र्चा-मिन्ह की सरकार को इण्डोचायना की वैध सरकार के रूप में मान्यता प्रदान की और अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि ने बाओ दाई सरकार को।

आज की स्थिति—यद्यपि रूस और अन्य साम्यवादी देशों ने हो-ची-मिन्ह की सत्ता को स्वीकार किया था परन्तु आरम्भ में हो-ची-मिन्ह पूर्णतया साम्यवादी नहीं था। परन्तु जब अमेरिका और फ्रांस तथा ब्रिटेन आदि देशों ने बाओ दाई की सरकार का समर्थन किया तो हो-ची-मिन्ह पूर्ण रूप से साम्यवादी बन गया और इस प्रकार सम्पूर्ण हिन्द चीन या वियतनाम आधुनिक युग में 2 में भागों वँट गया है। दक्षिणी वियतनाम पर अमेरिकी समर्थक सरकार का शासन स्थापित है और उत्तरी वियतनाम पर साम्यवादो सरकार की स्थापना हुई है। अमेरिका उत्तरी वियतनाम पर बमबारी करके उत्तरी वियतनाम के साम्यवादियों को घुटने टेक देने के लिए विवश कर रहा है परन्तु उत्तरी वियतनाम के स्वतन्त्रता-प्रेमी नागरिक जिन्हें अपने प्रिय नेता हो-ची-मिन्ह से प्रेरणा प्राप्त हुई है, कभी भी घुटने टेक देने को तैयार नहीं है। इस प्रकार इण्डोचायना में आज भी युद्ध के बादल मँडरा रहे हैं। स्वतन्त्रताप्रेमी स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष शील हैं और उपनिवेशवाद के पुजारी वहाँ अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

थाइलैंड

दक्षिणी पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों में स्याम या थाइलैण्ड ही एक ऐसा देश था जो राजनीतिक दृष्टि से अधीन नहीं हुआ था और द्वितीय महायुद्ध के समय बर्मा (ब्रिटेन के अधीन) और इण्डो-चायना (फ्रांस के अधीन) के बीच वह एक स्वतन्त्र राष्ट्र था। यद्यपि स्याम के ऊपर अनेक आर्थिक प्रतिबन्ध लगाये गये थे और महायुद्ध के समय में स्याम की सरकार पूर्ण रूप से वशवर्ती सी गई थी परन्तु स्याम की राजनीतिक स्वतन्त्रता कभी भी समाप्त नहीं हुई। महायुद्ध के बाद मित्र-राज्यों ने स्याम पर अधिकार करने का भार ब्रिटेन पर छोड़ा और वहाँ ब्रिटिश सेनाओं ने अधिकार करके वहाँ की सरकार के सम्मुख यह शर्त रखी कि स्याम पूरी तरह ब्रिटिश शासकों का नियन्त्रण स्वीकार कर ले और उसका विदेशी व्यापार ब्रिटिश शासकों द्वारा नियन्त्रित हो तथा जब तक वह संयुक्त राज्य संघ का सदस्य न बन जाय तब तक ब्रिटेन का संरक्षित देश रहे। स्याम की स तन्त्रता-प्रेमी जनता ब्रिटेन की इन मांगों को स्वीकार करने के लिये तैयार न थी और इस कारण उसने ब्रिटेन का विरोध किया। अन्त में 1 जनवरी 1946 को ब्रिटेन और स्याम के मध्य एक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समझौता हुआ जिसके अनुसार (1) स्याम को एक स्वतन्त्र राज्य स्वीकार किया गया, और (2) 1941 ई० के पहले वहाँ ब्रिटिश लोगों को जो व्यापार-सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे पुनः प्राप्त हुये, तथा (3) महायुद्ध के समय ब्रिटेन की जो हानि उठानी पड़ी स्याम की सरकार ने वह हर्जाना देना स्वीकार किया। इस प्रकार स्याम अपनी प्रादेशिक स्वतन्त्रता की रक्षा करने में सदैव समर्थ हुआ और यद्यपि विभिन्न विदेशी शक्तियों ने उस पर अधिकार करने का प्रयास किया परन्तु किसी न किसी प्रकार स्याम ने अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखा।

मलाया

ब्रिटिश आधिपत्य और स्वतन्त्रता का आरम्भिक प्रयास—1824 ई० में ब्रिटेन और हालैण्ड में एक समझौता हुआ जिसके अनुसार ब्रिटेन को इस बात की छूट मिली थी कि वह मलाया में अपने प्रभुत्व का विस्तार करे। शनैः-शनैः ब्रिटेन ने सम्पूर्ण मलाया को अपने अधिकार में कर लिया। मलाया में केवल स्टेट्स सेटिलमेन्ट प्रदेश ऐसा था जो कि ब्रिटेन के सीधे शासन में था तथा शेष दो भाग फेडरेटेड मलाया स्टेट्स (संघ में संगठित मलाया राज्य) और इनफेडरेटेड मलाया स्टेट्स (संघ में संगठित नहीं हुये मलाया राज्य) ब्रिटेन की सत्ता को स्वीकार तो करते थे परन्तु ब्रिटिश अधीनता में उनकी स्थिति वैसी ही थी जैसी कि भारतीय देशी रियासतों की थी। 1896 ई० में मलाया के पैराक, सेलाबोर, नेगी और सेम्बिलान एवं पेहाना राज्यों का एक संघ बनाया गया था जहाँ की सरकार के प्रधान को रेजीडेंट जनरल कहा जाता था और उसकी नियुक्ति ब्रिटिश सरकार द्वारा होती थी। जो राज्य इस संघ में सम्मिलित नहीं हुए थे वे भारत की रियासतों की भाँति ही शेष रहे थे। 1914-18 ई० के मध्य जब समस्त संसार में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का आन्दोलन प्रबल हुआ, फेडरेटेड मलाया स्टेट्स में भी इस आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया और ब्रिटिश रेजीडेंट जनरल (जिसे अब चीफ सेक्रेटरी कहते थे) की शक्ति का अन्त करके प्राचीन सुलतानों के प्रभुत्व की पुनर्स्थापना का प्रयास किया गया। यूरोपियन निवासियों ने इसका विरोध किया और इस बात का पूर्ण प्रयास किया कि वहाँ ब्रिटेन की सत्ता स्थापित रहे। 1935 ई० में फेडरेटेड मलाया स्टेट्स के शासन में सुधार किया गया तथा स्टेट्स सेटिलमेन्ट के गवर्नर को यह अधिकार दिया गया कि वह फेडरेटेड मलाया स्टेट्स पर भी अपना शासन एवं नियंत्रण रखे। इन शासकों से मलाया के लोग पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं हुये और उन्होंने अपना स्वतन्त्रता आन्दोलन जारी रखा।

द्वितीय महायुद्ध में स्वतन्त्रता आन्दोलन—जब जापान ने दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों को पाश्चात्य साम्राज्यवाद के चंगुल से मुक्त किया तो मलाया के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राष्ट्रीय आन्दोलन को बहुत बल मिला। परन्तु मलाया से ब्रिटिश शासन का अन्त कर जब जापान ने वहाँ सैनिक शासन स्थापित किया तो राष्ट्र प्रेमी मलाया के निवासी उसका विरोध करने के लिये भी तत्पर हुए। अभी-तक वहाँ की जनता ब्रिटिश आधिपत्य के विरुद्ध आवाज उठा रही थी परन्तु वह किसी भी हालत में जापान के आधिपत्य को स्वीकार करने के लिये भी तत्पर नहीं थी। परिणामस्वरूप जापान को बाध्य होकर वहां स्वराज्य की स्थापना करनी पड़ी और जापान ने मलाया के विभिन्न क्षेत्रों को मिलाकर उसकी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।

द्वितीय महायुद्ध के बाद स्वतन्त्रता आन्दोलन—1945 ई० में जब जापान ने आत्म समर्पण किया और सितम्बर 1945 में जब ब्रिटिश सेनाओं ने मलाया में प्रवेश किया तो उन्होंने देखा कि मलाया में राष्ट्रवादी देशभक्तों का शासन स्थापित है। ब्रिटेन के लिये यह स्थिति असह्य थी और उसने राष्ट्र-प्रेमी मलाया के निवासियों पर अनेक अत्याचार किये परन्तु जब ब्रिटेन ने देखा कि किसी भी प्रकार से मलाया की स्वतन्त्रता-प्रेमी जनता का दमन नहीं किया जा सकता तो उसने बाध्य होकर अक्टूबर 1945 में मलाया के सम्बन्ध में एक योजना प्रकाशित की। इस योजना के अनुसार मलाया के विभिन्न राज्यों को मिलाकर एक यूनियन के निर्माण करने का प्राविधान था। सिंगापुर को इस यूनियन से बाहर रखने की बात कही गई थी और यह कहा गया था कि उस पर पहले की तरह ही ब्रिटेन का शासन स्थापित रहेगा। मलाया यूनियन के लिये ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त गवर्नर की व्यवस्था का भी प्राविधान था। मलाया के राष्ट्रीय नेताओं ने ब्रिटिश सरकार की इस योजना को अस्वीकृत कर दिया और उसका विरोध करने के लिये एक संगठन का निर्माण किया जिसे 'यूनाइटेड मलाया नेशनल आर्गनाइजेशन के नाम से पुकारा गया। ब्रिटिश सरकार मलाया के राष्ट्रीय नेताओं के विरोध की उपेक्षा न कर सकी और उसने मलाया की जनता के सम्मुख एक नई योजना रखी। इस योजना की प्रमुख बातें यह थीं—(1) मलाया के दस राजाओं की पृथक रूप से सत्ता स्थापित रहे, उनकी पृथक सरकारें और पृथक व्यवस्थापिका सभायें हो एवं उन्हें मिला कर एक संघ (Federation) का संगठन किया जाय। संघ की अलग सरकार और अलग व्यवस्थापिका हो। (2) मलाया के शासन पर देखभाल रखने के हेतु ब्रिटिश सरकार की तरफ से एक हाई कमिश्नर की नियुक्ति की जाय। इस हाई कमिश्नर का कार्य सरकार पर सीधा नियंत्रण रखना न होकर केवल राज्य-कार्य में परामर्श देना मात्र हो (3) शासन-कार्य को चलाने के लिये विभिन्न राज्यों की सरकारों एवं संघ सरकार को अपने अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यूनाइटेड मलाया नेशनल आर्गनाइजेशन के नेताओं को ब्रिटिश सरकार की यह योजना पसंद थी परन्तु मलाया में ऐसे उग्र राष्ट्रवादी नेता बहुत से थे जो ब्रिटेन का किसी भी तरह का हस्तक्षेप बर्दाश्त करने को तैयार नहीं थे। मलाया की नेशनलिस्ट पार्टी ब्रिटिश आधिपत्य की तो विरोधी थी ही, साथ ही उसका यह भी कहना था कि मलाया के सुल्तानों के शासन का अन्त करके वहाँ लोकतन्त्र शासन की स्थापना की जाय। ब्रिटिश शासन तो पूर्णतया समाप्त किया जाना चाहिये। इस प्रकार मलाया नेशनल आर्गनाइजेशन के नेता नरम दल के थे और मलाया नेशनलिस्ट पार्टी के नेता गरम दल के।

ब्रिटिश सरकार के लिये मलाया नेशनलिस्ट पार्टी की मांगों को स्वीकार करना सम्भव न था, अतएव 1947 की एक योजना अनुसार मलाया के शासन का पुनर्संगठन किया गया परन्तु इससे भी मलाया की राजनीतिक समस्याओं का अन्त नहीं हुआ।

मलाया में समष्टिवाद—मलाया की जनता में चीनी और भारतीय लोगों की संख्या बहुत अधिक थी। जब चीन में साम्यवादी व्यवस्था स्थापित हो गई तो मलाया में भी साम्यवादी व्यवस्था जोर पकड़ने लग गई। 1952 ई० में मलाया में साम्यवादी आतंक बहुत गंभीर हो गया और अक्टूबर 1951 ई० में साम्यवादियों ने मलाया में ब्रिटिश सरकार की ओर से नियुक्त उच्च आयुक्त की हत्या कर दी। परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने इन साम्यवादियों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की परन्तु साम्यवादी किसी भी तरह शान्त न हुये और मलाया का स्वतन्त्रता आन्दोलन अब राष्ट्रवादियों के स्थान पर साम्यवादियों का आन्दोलन बन गया।

स्वायत्त सरकार की प्राप्ति में प्रगति—इस समय ब्रिटिश सरकार मलाया में स्वायत्त सरकार की मांग को स्वीकार करने के हेतु तैयार सी हो गई थी। 1955 ई० में अनेक साम्यवादियों को इस आश्वासन पर क्षमा दान किया गया कि वे साम्यवादी कार्यवाहियाँ छोड़ देंगे। 1956-57 ई० में भी यह रियायत प्रदान की गई। जब अनेक साम्यवादियों ने आत्म समर्पण नहीं किया तो ब्रिटिश सरकार ने शक्ति का आश्रय लिया और 1958 ई० तक 10 वर्षों से निरन्तर चलते हुये संघर्ष का अन्त निकट दिखलाई पड़ा।

1948 ई० में संघीय प्रशासन की स्थापना की गई थी। इस समय तक राजनीतिक दृष्टि से मलायाई 'जनता संयुक्त मलायाई राष्ट्रीय संघ' और 'राष्ट्रवादी पार्टी' में विभक्त हो गई थी। 'संयुक्त मलायाई राष्ट्रीय संघ' ब्रिटिश शासन के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्तर्गत संघ की स्थापना और सुल्तानों के स्थिति को बनाये रखने के पक्ष में थी परन्तु उग्र राष्ट्रवादी पार्टी इसकी विरोधी थी। मलाया में रहने वाले चीनियों एवं भारतीयों ने मलायाई मामलों में अधिक रुचि लेते हुये भी मलाया के पार्टी संगठन में भारत और चीन के सम्बन्धों का विशेष ध्यान रखा तथा 1946 ई० में भारतीय 'मलायाई भारतीय कांग्रेस' और चीनी 'मलायाई चीनी संघ' में संगठित हुये। साम्यवाद के आने में 'मलायाई चीनी संघ ने विशेष योगदान दिया। 1954 ई० में ब्रिटिश सरकार को कोई भी सहयोग न देने वाली पार्टियों में 'मलायाई राष्ट्रवादी पार्टी' और 'मलायाई चीनी संघ' प्रमुख थीं परंतु जब ब्रिटिश अधिकारियों ने सिंगापुर मलायाई संघ में निर्वाचन का निश्चय पूर्ववत बनाये रखा तो 'मलायाई राष्ट्रीय संघ,' 'मलायाई चीनी संघ' और 'मलायाई भारतीय कांग्रेस' ने सम्मिलित होकर चुनाव लड़ने का फैसला किया। 1955 ई० में हुये संघीय निर्वाचन में विधान परिषद की कुल 93 जगहों में से 52 निर्वाचनीय जगहों में 51 जगहें इस संगठन को प्राप्त हुईं और संयुक्त मलायाई राष्ट्रीय संघ के नेता टिन्कू अब्दुल रहमान मुख्य मंत्री बने और उन्होंने एक मलायाई सरकार का गठन किया।

पूर्ण स्वतन्त्रता और राष्ट्र मण्डलीय पद की प्राप्ति—टिन्कू अब्दुल रहमान ने प्रधान मंत्री बनते ही पूर्ण संवैधानिक परिवर्तन पर बल दिया और ब्रिटिश उच्च आयुक्त के निषेधाधिकार को बदलने की माँग की। उन्होंने ब्रिटिश सरकार से यह मांग अत्यन्त बल देकर की। फलस्वरूप जनवरी 1956 ई० में लण्डन में एक सम्मेलन हुआ और यह तय किया गया कि अगस्त 1957 ई० में राष्ट्र मण्डल के अन्तर्गत मलाया को पूर्ण स्वायत्त सरकार और स्वाधीनता प्रदान की जायेगी। लण्डन सम्मेलन के तुरन्त बाद ही मलाया के संविधान का मसविदा तैयार करने के हेतु 'रीड आयोग' का संगठन किया गया। इस आयोग ने संविधान का निर्माण किया और अगस्त 1956 ई० में मलाया को राष्ट्र मण्डलीय पद प्राप्त हो गया। इस समय दक्षिणी पूर्वी एशिया के अनेक देशों में मलाया भी एक स्वाधीन देश है। वहाँ की जनता की अपनी सरकार है और अपनी शासन व्यवस्था है।

वर्मा

ब्रिटिश आधिपत्य और स्वतंत्रता के प्रारम्भिक प्रयास—1886 ई० से वर्मा में ब्रिटिश आधिपत्य की घोषणा की गई और वहाँ के राजा को गिरफ्तार करके भारत भेजा गया। वर्मा को ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया और उसे भारत के एक प्रान्त के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। 1909 ई० के मिन्टो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मार्ले सुधार और 1919 ई० के मॉन्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों को बर्मा पर भी लागू किया गया। 1919 ई० के इन सुधारों के आधार पर भारत के केन्द्रीय शासन में जिस व्यवस्थापिका सभा की स्थापना की गई उसमें बर्मा के प्रतिनिधि भी शामिल थे परन्तु बर्मा के राष्ट्रीय नेता उससे सहमत नहीं हुए। बर्मा में भी राष्ट्रीय आन्दोलन जोर पकड़ता गया। भारत की इंडियन नेशनल कांग्रेस में बर्मा भी शामिल हुआ और वहां के क्रान्तिकारी दलों ने भी बर्मा को ब्रिटिश अधिकार से मुक्त कराने के लिए प्रयास किया। बर्मा के राष्ट्रीय नेता एक ओर ब्रिटे। के आधिपत्य से अपने को स्वतंत्र कराने के लिए प्रयत्नशील थे परन्तु साथ ही उन्हें भारत में सम्मिलन भी स्वीकार न था। साइमन कमीशन (1927-28) के सम्मुख बर्मा के नेताओं ने भारत से सम्बन्ध-विच्छेद और अपनी पृथक सत्ता की माँग प्रस्तुत की। 1931 ई० में बर्मा के शासन की समस्याओं को हल करने एवं वहां के राष्ट्रीय नेताओं के साथ समझौता करने के लिए एक अलग गोलमेज सम्मेलन करने का आयोजन किया गया। 1937 ई० में बर्मा भारत से अलग हो गया और ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत उसकी अलग सत्ता स्वीकार की गई। वहां आंशिक रूप से स्वराज्य की स्थापना और ऐसी शासन-व्यवस्था की नींव डाली गई जिसमें वहां की जनता का कुछ हाथ अवश्य था। परन्तु बर्मा के स्वतंत्रता-प्रेमी केवल इसी से सन्तुष्ट नहीं हुए। वे पूर्ण रूप से स्वाधीनता चाहते थे।

बर्मा में जापानी प्रभाव और स्वतंत्रता आन्दोलन—द्वितीय महायुद्ध के समय बर्मा में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाई जा रही थी और अनेक उग्र राष्ट्रीय दल ब्रिटिश शासन का अन्त करने का प्रयत्न कर रहे थे। यही कारण था कि जब द्वितीय महायुद्ध में जापान ने दक्षिणी-पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों से पाश्चात्य साम्राज्य का अन्त करने के लिए बर्मा पर आक्रमण किया तो अनेक बर्मी देशभक्तों ने उसका स्वागत किया और उन्होंने समझा कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए यह सुनहरा अवसर है। उन्होंने ब्रिटेन के आधिपत्य का अन्त करने के लिए जापान से समझौता करने में संकोच का अनुभव नहीं किया। फरवरी 1942 ई० में जापान की सेनाओं ने बर्मा के बहुत बड़े भाग को ब्रिटेन की अधीनता से स्वतंत्र करा दिया और वहां शान्ति-व्यवस्था रखने के हेतु सैनिक शासन का संगठन किया गया। जापान बर्मा में एक ऐसी सरकार की स्थापना करना चाहता था जो पाश्चात्य साम्राज्यवाद का अन्त करने के हेतु जापान को सहयोग दे, इसलिए एक अगस्त 1942 ई० को डा० बा मो के नेतृत्व में बर्मा में एक स्वतंत्रता प्रेमी सरकार का संगठन किया गया। डा० बा मो का यह विचार था कि जापान के साथ सहयोग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

करके बर्मा अपनी पूर्ण स्वतंत्रता तो प्राप्त कर ही लेगा साथ ही एशिया से पाश्चात्य साम्राज्यवाद के अन्त में भी सहायक सिद्ध होगा।

डा० बा मो की सरकार जापानियों की सहायता से संगठित हुई थी परन्तु बर्मा में अनेक ऐसे नेता भी थे जो बर्मा में जापान के बढ़ते हुए प्रभाव को पसन्द नहीं करते थे। उनका कहना था कि जापान फासीवादी विचारधारा से प्रभावित है और इसलिए बर्मा में उसका प्रभाव उचित नहीं है। वे बर्मा में एक ऐसी स्वतंत्र सरकार की स्थापना करना चाहते थे जिस पर किसी भी विदेशी शक्ति का कोई प्रभाव न हो। इन नेताओं में जनरल आग सान प्रमुख थे। उन्होंने वर्मा में 'एन्टी फासिस्ट पीपुल्स फ्रीडम लीग' (फासिस्ट विरोधी जन-स्वातंत्र्य सभा) नामक संस्था का संगठन किया जिसका उद्देश्य बर्मा से जापान के प्रभाव को समाप्त करके 'स्वतंत्र बर्मी रिपब्लिक' की स्थापना करना था।

पुनः ब्रिटिश प्रभाव और स्वतंत्रता आन्दोलन—जनवरी 1945 ई० में मित्र राज्यों की सेनाओं ने बर्मा पर पुनः आक्रमण किया और कुछ समय बाद ही वहाँ अपना अधिकार स्थापित करके जापानी प्रभाव को समाप्त कर दिया। परन्तु अब ब्रिटेन के लिए सम्भव नहीं था कि वह पहले की तरह बर्मा पर शासन करे। बर्मा के लोगों में स्वाधीनता की भावना बहुत प्रबल हो चुकी थी और वे किसी भी हालत में ब्रिटिश आधिपत्य को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं थे। 'एण्टी फासिस्ट पीपिल्स फ्रीडम लीग', जो जापान के बर्मा में प्रभाव की विरोधी थी, ब्रिटेन के अधीनता को भी सहन करने के लिए तैयार नहीं थी। उसके सदस्य स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए हर कुर्बानी करने के हेतु तैयार थे।

उत्तर ब्रिटेन भी बर्मा को पूर्ण स्वाधीनता देने के लिए तैयार न था। मई 1945 ई० में ब्रिटिश बर्मी सरकार ने एक योजना प्रकाशित की। इसमें कहा गया कि बर्मा की स्थिति वही रहेगी जो जापान के आक्रमण से पूर्व 1941 में थी। ब्रिटिश सरकार ने कहा कि उसकी नीति अन्ततोगत्वा बर्मा में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना करना है परन्तु अभी वह स्थिति नहीं है कि यह कार्य किया जा सके। बर्मा के देश भक्तों ने इस योजना का विरोध किया। जापान की विजयों के फलस्वरूप बर्मा के नागरिक कई बार स्वाधीनता का आस्वाद ले चुके थे और इस कारण वे पूर्ण स्वाधीनता की मांग पर दृढ़ रहे। आग सान और उनके अनुयायियों ने ब्रिटिश शासन का घोर विरोध किया और बर्मा में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध अनेक आन्दोलन हुए। 1946 ई० में बर्मा के नवीन ब्रिटिश गवर्नर सर हुवर्ट रान्स ने बर्मा के राष्ट्र-वादी नेताओं के साथ समझौता करके बर्मा के शासन के लिए एक 'एक्जीक्यूटिव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कौन्सिल' (Executive Council) का संगठन किया जिसमें 11 सदस्य रखे गये। इनमें से 6 सदस्य 'एन्टी फासिस्ट पीपुल्स फ्रीडम लीग' के थे और 5 अन्य राजनीतिक दलों के। इस कौंसिल के निर्माण से बर्मा के नेताओं को सन्तोष हुआ और वे यह सोचने लगे कि शीघ्र ही उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति हो जायगी।

कौंसिल की व्यवस्था सामाजिक रूप से की गई थी जिससे कि आगे की कार्यवाही की जा सके। 20 दिसम्बर 1946 ई० को ब्रिटेन के प्रधान मंत्री ने यह घोषणा कर दी कि बर्मा को यह निर्माण करने की पूर्ण स्वाधीनता होगी कि बर्मा ब्रिटिश कामनवेल्थ का अंग बनकर रहना चाहता है या उसके साथ कोई भी सम्बन्ध न रखकर पूर्ण स्वाधीनता चाहता है। जनवरी 1947 में लन्दन में एक कांफ्रेन्स हुई जिसमें बर्मा का प्रतिनिधित्व श्री आग सान ने किया। इस कांफ्रेन्स में यह निर्णय लिया गया कि बर्मा का शासन-विधान तैयार करने के लिए एक संविधान-परिषद् का निर्वाचन किया जाय और जब तक बर्मा की विधान सभा अपना कार्य न समाप्त कर ले तब तक के लिए वहाँ एक सामयिक सरकार का संगठन किया जाय। सामयिक समय में संयुक्त राज्य संघ में बर्मा एक सदस्य के रूप में सम्मिलित हो और ब्रिटिश सरकार इस बात का प्रयत्न करे कि बर्मा को संयुक्त राष्ट्र संघ में एक सदस्य के रूप में सम्मिलित कर लिया जाय। इस सम्मेलन के बाद भी बर्मा को पूर्ण स्वाधीनता नहीं मिली थी इसलिए बर्मा के राजनीतिक नेता सन्तुष्ट नहीं थे। बर्मा के अनेक राजनीतिक नेता पूर्ण स्वराज्य चाहते थे और यह नहीं चाहते थे कि सामयिक रूप से भी बर्मा का ब्रिटेन से कोई सम्बन्ध रहे। परन्तु आग सान और उनके अनुयायी लन्दन की कांफ्रेन्स के निर्णयों से सन्तुष्ट थे और उनका विचार था कि बर्मा के लिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करने का यह स्वर्णिम अवसर है। इसके बाद संविधान परिषद का संगठन किया गया और इसके द्वारा जो शासन विधान तैयार किया गया उसे 1948 ई० में लागू किया गया। बर्मा ने ब्रिटिश कामनवेल्थ से बाहर एक स्वतंत्र राज्य रहने का फैसला किया और इस प्रकार बर्मा एक स्वतंत्र राज्य है और इस पर किसी भी विदेशी शक्ति का कोई प्रभाव नहीं है।

इण्डोनेशिया

स्वतंत्रता के प्रारम्भिक प्रयास—इण्डोनेशिया में हालैण्ड तथा ब्रिटेन दोनों का आधिपत्य रहा है। 19वीं शताब्दी के मध्य में अन्य देशों के समान इण्डोनेशिया में भी राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आन्दोलन जोर पकड़ता गया और वहाँ राजनीतिक जागृति उत्पन्न हुई। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में इण्डोनेशिया के स्वतंत्रता आन्दोलन ने प्रबल रूप धारण कर लिया। 1914-18 ई० में महायुद्ध के अवसर पर इस आन्दोलन को और अधिक बल मिला। ब्रिटेन, फ्रान्स और मित्र राष्ट्रों ने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

डंके की चोट पर यह घोषणा की कि वे लोकतंत्रवाद और राष्ट्रीय स्वाधीनता के सिद्धान्तों के लिए ही आस्ट्रिया के खिलाफ युद्ध कर रहे हैं। इन सिद्धान्तों का प्रभाव इण्डोनेशिया पर पड़ना स्वाभाविक था। 1920 ई० में जावा, सुमात्रा में डच शासन के विरुद्ध विद्रोह हुआ। इस विद्रोह का दमन करने में डच सरकार को काफी कठिनाई का अनुभव हुआ। 1920 ई० के बाद इण्डोनेशिया में इस विद्रोह की गति मंद पड़ गई क्योंकि 1927 ई० में डच सरकार ने इण्डोनेशिया में आंशिक स्वराज्य की स्थापना का उद्योग किया। इस वर्ष इण्डोनेशिया का शासन करने के लिए बाकायदा एक विधान सभा का संगठन किया गया, जिसके 2/3 सदस्य निर्वाचित होते थे और 1.3 सदस्य डच सरकार द्वारा मनोनीत होते थे। इण्डोनेशिया के लिए एक सिविल सर्विस की भी आयोजना की गई। आरम्भ में इस सिविल सर्विस में केवल डच लोग ही रहते थे परन्तु बाद में इण्डोनेशिया के निवासियों को भी इसकी सदस्यता प्रदान की गई। 1941 ई० तक इसमें 44 प्रतिशत के लगभग इण्डोनेशिया कर्मचारी हो गये। 1927 ई० के शासन सुधारों के द्वारा डच सरकार ने वहाँ स्थानीय स्वशासन की स्थापना करने का भी प्रयास किया था। इन सभी बातों से इण्डोनेशिया के निवासी सन्तुष्ट न हुए थे और वे स्वतंत्रता के निरन्तर संघर्ष कर रहे थे।

द्वितीय महायुद्ध और इण्डोनेशिया का स्वतंत्रता संग्राम—द्वितीय महायुद्ध तक इण्डोनेशिया में स्वतंत्रता आन्दोलन काफी जोर पकड़ चुका था और वहाँ की जनता हालैंड के आधिपत्य को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं थी। मई 1940 ई० में यूरोप के रणक्षेत्र में जब हालैंड, जर्मनी द्वारा परास्त कर दिया गया तो इण्डोनेशिया में इसका बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। हालैंड की पराजय का प्रभाव उसके साम्राज्य पर अवश्य पड़ता और इस कारण इण्डोनेशिया में स्वतंत्रता का आन्दोलन अत्यधिक प्रबल हो गया। इस समय हालैंड के लिए उचित यही था कि हालैंड इण्डोनेशिया के राष्ट्रवादी देशभक्तों के साथ सहानुभूति प्रकट करता और इण्डोनेशिया को स्वतंत्रता प्रदान कर देता। परन्तु हालैण्ड ने ऐसा नहीं किया, बल्कि उल्टे उसकी साम्राज्यवादी सरकार ने स्वाधीनता के आन्दोलन को कुचलने के लिए अत्यन्त घृणित कार्य किया। पुलिस की शक्ति बढ़ा दी गई और अनेक देशभक्त नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। अनेक ऐसे कानून बनाये गये जिनके अनुसार जनता को भाषण देने और विचार व्यक्त करने से रोका गया। परन्तु इण्डोनेशिया की राष्ट्रवादी आकांक्षाओं को कुचलना आसान न था और अन्ततोगत्वा बाध्य होकर इण्डोनेशिया की डच सरकार को शासन में सुधार करने के लिए

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोचना पड़ा। इस उद्देश्य से एक कमीशन की नियुक्ति की गई। जिसका कार्य जनता से राय पूछना था कि वहाँ किस प्रकार के शासन की स्थापना की जाय।

इण्डोनेशिया की जनता इस कमीशन से भी सन्तुष्ट नहीं हुई और स्वाधीनता संग्राम जोर पकड़ता गया। इस बीच यूरोप के रणक्षेत्र में जर्मनी और इटली निरन्तर विजय प्राप्त कर रहे थे। फ्रान्स, बेल्जियम आदि देशों पर जर्मनी का कब्जा हो चुका था और ब्रिटेन पर बड़े जोरदार हवाई आक्रमण हो रहे थे। इस स्थिति में इण्डोनेशिया के स्वतंत्रता-प्रेमी यह अनुभव करने लगे कि डच साम्राज्यवाद का अन्त करने का यही सुनहरा अवसर है और इसका उन्हें पूरा लाभ उठाना चाहिए। 1941 ई० में जापान भी मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित हुआ और उसने यह दावा किया कि वह दक्षिणी-पूर्वी एशिया से पाश्चात्य देशों के साम्राज्यवाद का अन्त कर इस क्षेत्र में स्वाधीन सरकारों की स्थापना करेगा। इण्डोनेशिया के राष्ट्रवादी देशभक्तों को जापान से बहुत बड़ी आशा थी। उन्होंने यह अनुभव किया कि वहाँ की डच सरकार को समाप्त करने का एक मात्र उपाय यही है कि जापान की सेनाएँ इण्डोनेशिया पर आक्रमण करें और डच सेनाओं को परास्त कर उनके देश को स्वतंत्र करें। यही कारण था कि जब जापान ने फिलिपाइन आदि देशों पर विजय प्राप्त की तो इण्डोनेशिया के लोग अत्यधिक प्रसन्न हुए।

जापानी सेनाएँ बड़ी तेजी के साथ दक्षिणी-पूर्वी एशिया में आगे बढ़ रही थीं और प्रशान्त महासागर के क्षेत्र में कोई भी देश उनका मुकाबला नहीं कर सकता था। डच लोगों के लिए भी जापानी आक्रमण से अपने साम्राज्य की रक्षा कर सकना सम्भव नहीं था। जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, बाली आदि विभिन्न द्वीप जो हालैण्ड के आधीन थे उन पर जापानी सेनाओं ने आक्रमण किया और मार्च 1942 ई० में सम्पूर्ण इण्डोनेशिया डच आधिपत्य से मुक्त होकर जापानी सेनाओं के कब्जे में आ गया। इण्डोनेशिया में जापान की ओर से सैनिक शासन की स्थापना की गई ताकि देश में शान्ति और सुव्यवस्था कायम रह सके।

परन्तु जापान इण्डोनेशिया को अपने आधीन नहीं रखना चाहता था और इस कारण वहाँ डा० सुकर्ण के नेतृत्व में स्वतंत्र राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की गई और जिस समय अगस्त 1945 ई० में महायुद्ध में परास्त होकर जापान ने मित्र राज्यों के सम्मुख आत्म-समर्पण किया था उस समय इण्डोनेशिया में डा० सुकर्ण के नेतृत्व में स्वतंत्र रिपब्लिकन राज्य स्थापित हो चुका था।

द्वितीय महायुद्ध के बाद की स्थिति—द्वितीय महायुद्ध में जब जापान ने घुटने टेक दिये तो मित्र राज्यों की ओर से ब्रिटिश सेनाओं पर यह दायित्व डाला गया कि वे इण्डोनेशिया से जापानी सेनाओं को पराजित करके वहाँ अपना सैनिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आधिपत्य स्थापित करें। साथ ही यह भी व्यवस्था की गई कि जो द्वीप मित्र सेनाओं के कब्जे में आते जावें उन्हें पुनः डच सरकार को दे दिया जाय। ब्रिटिश सेनाओं ने इण्डोनेशिया के कुछ भाग को जीत कर उसे डच सरकार के सुपुर्द कर दिया परन्तु जब वे जावा, मदुरा और सुमात्रा में आये तो जापानी अधिकारियों और सैनिकों को अपने कब्जे में लेना उन्होंने उचित समझा परन्तु यह उचित नहीं समझा कि वे इन द्वीपों में इण्डोनेशियायी रिपब्लिक सरकार का प्रतिरोध करे। ब्रिटिश सेनाएँ यह भली भाँति जानती थी कि यदि डा० सुकर्ण की रिपब्लिकन सरकार का प्रतिरोध करने का प्रयत्न किया जायगा तो इण्डोनेशिया की सेना एवं जनता उसका कड़ा मुकावला करेगी। इस प्रकार 1946 ई० में स्थिति यह थी कि जावा, मदुरा और सुमात्रा और अन्य द्वीपों में स्वतन्त्र रिपब्लिकन सत्ता थी जो किसी प्रकार डच लोगों के आधिपत्य को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। अन्य द्वीपों पर 'नीदरलैण्ड इंडीज सिविल एडमिनिस्ट्रेशन' फिर से स्थापित कर दिया गया था। इसके बाद डच सेनाओं और डा० सुकर्ण की सेनाओं के मध्य भयंकर संघर्ष हुए परन्तु अन्ततोगत्वा 1946 ई० में डच सरकार और इण्डोनेशियायी रिपब्लिक सरकार में सामयिक रूप से सन्धि हो गयी। 25 मार्च, 1947 ई० में दोनों के मध्य एक समझौता हुआ और इस समझौते के अनुसार केवल उन प्रदेशों पर जिन पर डा० सुकर्ण की रिपब्लिकन सरकार का कब्जा था उन्हें 'स्वतन्त्र इण्डोनेशियायी रिपब्लिक' के रूप में स्वीकार किया गया। साथ ही यह भी प्राविधान किया गया कि डच सरकार की राजधानी एवं हालैण्ड को मिलाकर एक यूनियन कायम की जाय।

इस समझौते के बाद भी इण्डोनेशिया में हालैण्ड का प्रभाव कायम रहता और इस कारण इस समझौते से देश के राष्ट्रीय नेताओं को सन्तोष नहीं हुआ। परिणाम यह हुआ कि मार्च 1947 ई० में हालैण्ड और इण्डोनेशिया रिपब्लिकन में पुनः संघर्ष हुए और डच नेताओं ने जावा, मदुरा और सुमात्रा पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास प्रारम्भ किया। फलस्वरूप यह मामला संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाया गया और उसके प्रयासों से वहाँ शान्ति की स्थापना हुई। इण्डोनेशिया की समस्या पर विचार करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की गई जिसमें हालैण्ड और इण्डोनेशिया रिपब्लिक का एक-एक सदस्य रखा गया तथा एक सदस्य इन दोनों को मिल कर नियुक्त करना था। इन दोनों ने मिलकर अमेरिका को कमेटी का सदस्य नियुक्त किया। साथ ही हालैण्ड ने बेल्जियम और इण्डोनेशिया ने आस्ट्रेलिया को सदस्य बनाया। इस कमेटी ने इण्डोनेशिया में एक राज्य संघ स्थापित करने का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सुझाव दिया और कहा कि जावा, सुमात्रा, एवं मदुरा भी उस राज्य-संघ में सम्मिलित होने चाहिए। कमेटी ने यह भी कहा कि इण्डोनेशिया राज्यसंघ और हालैण्ड को मिलाकर एक यूनियन बनाया जाय जो विदेशी राजनीति और सेना आदि पर नियन्त्रण रखे। परन्तु यह समझौता भी अधिक दिनों तक लागू न रह सका क्योंकि डच सरकार निरन्तर इस बात के लिए प्रयत्नशील थी कि इण्डोनेशिया की विभिन्न जातियों को और प्रदेशों को डा० सुकर्ण के विरुद्ध उभार दिया जाय। दोनों में पुनः संघर्ष प्रारम्भ हो गये। परिणाम यह हुआ कि इण्डोनेशिया की समस्या के समाधान के लिए एक गोलमेज परिषद् हेग में हुई जिसने 2 नवम्बर, 1949 ई० को अपना कार्य समाप्त किया। इस परिषद् ने यह फैसला किया कि हालैण्ड और इण्डोनेशिया दोनों राज्यों की स्थिति सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न राज्यों के समान हो और ये दोनों सम्पूर्ण-प्रभुत्व सम्पन्न स्वतन्त्र राज्य स्वेच्छापूर्वक एक यूनियन का निर्माण करें जिसमें दोनों राज्यों की स्थिति समान मानी जाय। इस फैसले को दोनों पक्षों ने स्वीकार किया और इस प्रकार हेग सम्मेलन के द्वारा जहाँ इण्डोनेशिया का हालैण्ड के साथ सम्बन्ध स्थापित रहा वहाँ उसकी राष्ट्रीय स्वाधीनता की आकांक्षाएँ भी पूर्ण हो गईं।

फिलिप्पाइन द्वीप समूह

पहले अध्याय में हमने इस बात का उल्लेख किया है कि फिलिप्पाइन द्वीप समूह पर यूरोपीय शक्तियों ने सबसे पहले स्पेन में अपना आधिपत्य स्थापित किया परन्तु बाद में वहां संयुक्त राज्य अमेरिका का आधिपत्य स्थापित हुआ। इस प्रकार फिलिप्पाइन द्वीप समूह में कैसे स्वतन्त्रता की भावना उत्पन्न हुई और कैसे बाध्य होकर अमेरिका को वहां आंशिक स्वराज्य की घोषणा करनी पड़ी, इसका उल्लेख भी हमने पहले अध्याय में किया है।

फिलिप्पाइन पर जापान की विजय और स्वतन्त्रता संग्राम—1942 ई० में जब जापान ने वहां अधिकार किया तो वहां वैध शासन विद्यमान था। मानुआल क्वेजोन वहां के राष्ट्रपति थे और श्री ओसमेना उपराष्ट्रपति। वहां की पार्लियामेन्ट का भी संगठन किया गया था। फिलिप्पाइन की यह लोकतन्त्रीय सरकार आंशिक रूप से स्वतन्त्र अवश्य थी परन्तु फिर अमेरिका का उस पर पर्याप्त प्रभाव था। फिलिप्पाइन के स्वतन्त्रता-प्रेमी देशभक्त इससे असन्तुष्ट थे। जापान की विजय के फलस्वरूप फिलिप्पाइन के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति को स्वदेश छोड़कर अमेरिका भागना पड़ा परन्तु फिलिप्पाइन में कुछ ऐसे देशभक्त भी थे जो जापान की विजय को अपनी राष्ट्रीय स्वधीनता के लिये सुनहरा अवसर समझते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थे। उनका विचार था कि अमेरिका की पराजय से उन्हें स्वाधीन होने का जो अवसर प्राप्त हुआ है उसका अवश्य ही उपयोग किया जाना चाहिए। श्री लारेल उनके नेता थे और उनके नेतृत्व में वहाँ फिलिप्पाइन की सरकार का संगठन किया गया और जापान के सहयोग से उन्होंने अपना शासन-कार्य चलाया।

इसके साथ ही फिलिप्पाइन में एक ऐसा दल भी था जो जापान के सहयोग को अनुचित समझता था। यह दल 'हुक बली-हप, (जनता की सेना) कहलाती थी। इस दल ने लारेल की सरकार का विरोध किया और उसे उच्च एवं सम्पन्न वर्ग की सरकार कहा। हुक-बलो हप दल का झुकाव साम्यवाद की ओर था और इस कारण उन्होंने श्री लारेल की सरकार का विरोध किया।

फिलिप्पाइन पर अमेरिका का पुनः अधिकार और स्वतन्त्रता संग्राम—अक्टूबर 1944 ई० में अमेरिका की सेनाओं ने फिलिप्पाइन पर आक्रमण किया और जनवरी 1945 ई० तक फिलिप्पाइन के सभी द्वीप अमेरिकी सेना के कब्जे में आ गये। 27 फरवरी 1945 ई० को राष्ट्रपति ओसमेना ने अमेरिका के प्रभाव से मुक्त फिलिप्पाइन की सरकार बनाई। राष्ट्रपति ओसमेना ने इस बात का प्रयास किया कि वह वहां की आन्तरिक स्थिति को सुदृढ़ बनावे और अमेरिका से इस प्रकार का सम्बन्ध रखे कि राष्ट्रवादी देशभक्तों को शिकायत का अवसर न मिले। जब फिलिप्पाइन पर अमेरिकी सेनाओं ने कब्जा किया था तो श्री लारेल उनके साथ जापान चले गये थे। जापान के आत्म-समर्पण के बाद उन्हें फिलिप्पाइन लाया गया और उन पर मुकदमा चलाया गया परन्तु इतने शक्तिशाली व्यक्ति पर मुकदमा चला कर उसे दण्ड देना सम्भव न था। 1945 ई० के बाद फिलिप्पाइन में हुक-बली-हप दल निरन्तर प्रबल होता गया और फिलिप्पाइन की सरकार ने इस दल को कुचलने का प्रयास किया और परिणामस्वरूप 1949 ई० में उनमें भीषण संघर्ष हुआ। द्वितीय महायुद्ध के बाद अमेरिका ने फिलिप्पाइन को स्वतन्त्रता प्रदान कर दी है परन्तु यहां से अमेरिकी प्रभाव का अन्त नहीं हो पाया। 1956 ई० में अमेरिकन कांग्रेस ने फिलिप्पाइन के लिए ट्रेड ऐक्ट स्वीकृत किया जिससे वहां अमेरिका का का आर्थिक प्रभुत्व कायम रहा और अमेरिकियों ने अपनी पूँजी से फिलिप्पाइन के आर्थिक क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। अमेरिका ने यह भी जिम्मेदारी ली कि वह भविष्य में विदेशी आक्रमणों से फिलिप्पाइन की रक्षा करेगा। इस कारण उसने वहां अनेक स्थानों पर सैनिक केन्द्र कायम करने का अधिकार प्राप्त कर लिया। इस समय स्थिति यह है कि फिलिप्पाइन स्वतन्त्र है परन्तु वहां अब भी अमेरिकियों का काफी प्रभाव बना हुआ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपसंहार—उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि दक्षिणी-पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों ने पाश्चात्य साम्राज्यवाद से अपने को स्वतन्त्र करने के हेतु भयंकर संघर्ष किये और वहां के अनेक देशों को स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई परन्तु अब भी दक्षिणी-पूर्वी एशिया में कुछ ऐसे छोटे-छोटे देश हैं जो पाश्चात्य साम्राज्यवाद के शिकार बने हुये हैं। आवश्यकता इस बात है कि दक्षिणी-पूर्वी एशिया में शान्ति बनाये रखने के लिए सभी देशों को अपनी आन्तरिक एवं वाह्य नीति के निर्धारण में पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जाय और उन पर किसी भी वाह्य शक्ति का कोई भी नियन्त्रण न रहे। जब तक ऐसा नहीं होता इस क्षेत्र में पूर्ण शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती।

मुद्रक : राजन प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राज्य संग्रहालय पुस्तकालय
प्रो० बी० एन० पुरी
संग्रह
लखनऊ

State Museum Library
6717
Lucknow

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

COVER ENGRAVED & PRINTED AT
ABW
ALLAHABAD BLOCK WORKS (P) LTD.
(ALLAHABAD)